मनस्तत्त्व

यशदेव शल्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

समर्पण—

प्रो० भीखन लाल आत्रेय को

प्रकाशकीय

हिंदी में मनोविज्ञान संबंधी उच्चस्तर के ग्रंथों के अभाव को देखते हुए हिंदुस्तानी एकेडेमी ने इस विषय से संबंधित अनेक ग्रंथ प्रकाशित किए हैं। प्रस्तुत ग्रंथ भी इसी अभाव की पूर्ति के लिए है। श्री यशदेव शल्य जी ने मन और उससे संबंधित समस्त प्रक्रियाओं का विवेचन अत्यन्त सरल ढंग से किया है। यद्यपि पुस्तक का विषय अत्यन्त जटिल है, किन्तु इस पुस्तक में योग्य लेखक ने उसको सरल और रोचक बना दिया है। मेरा विश्वास है कि हिंदी संसार तथा इस विषय में रुचि रखने वाले पाठक और विद्यार्थी प्रस्तुत पुस्तक का स्वागत करेंगे और उसे अत्यन्त उपयोगी पावेंगे।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
उत्तर प्रदेश,
जनवरी १९५८

धीरेन्द्र वर्मा
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

प्राक्कथन

इन पृष्ठों में मैंने 'मनस्तत्तव' की अपनी कल्पना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें सभी पहलुओ से 'मनस्तत्त्व' का विश्लेपण हो, ऐसी वात नही है, किन्तु मन के अस्तित्व का क्या अर्थ है और हमारी प्रवृत्तियो और प्रक्रियाओ का क्या रूप और आधार है, इस सम्वन्ध में एक रूपरेखा अवश्य वन सकी है। प्रथम पाच निवन्ध मुख्यत: शरीरविज्ञान और जीवविज्ञान से सवन्ध रखते हैं। इन निवधो में या तो मनस्प्रक्रिया का विश्लेषण है अथवा हेरेडिटी (Heridity) के अर्थ का। शेष निवन्धो में मन की दार्शनिक व्याख्या है।

प्रथम निवन्धो में हमने शरीर वैज्ञानिक और जीववैज्ञानिक आधार पर मनस्प्रक्रिया की यान्त्रिकता का प्रतिपादन किया है। हमारे विचार से दो निवध विशेष महत्व के हैं। तृतीय निवन्ध में जेनेटिक्स की सहायता से विकासवाद की व्याख्या का प्रयास किया गया है। इस निवध का महत्व और इस पुस्तक में सगति कुछ अस्पष्ट है, किन्तु मन की मेरी कल्पना में यह अनिवार्य है। इसका कारण यह है कि मैं अमोयवा और मनुष्य को मूलत भिन्न नही समझता, जैसा कि प्रत्येक विकासवादी के लिए ठीक है, किन्तु इस विकास के कारण क्या हैं ? दूसरे निवध में हमने मनस्प्रक्रिया की व्याख्या की सहायता से विकासवाद में से 'मानसिक-प्रयास' की कल्पना को दूर करने का प्रयास किया है और तृतीय निवध में विकास के कारण स्पष्ट करने का प्रयास है। तृतीय निवध इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि चतुर्थ निवध में हेरेडिटी (Heredity) के सम्वन्व में जो कहा गया है उसके लिये यह निवध आधार प्रस्तुत करता है। चतुर्थ निवध हेरेडिटी और परिवेश के सम्वन्ध का विश्लेपण है और व्यक्तित्व-निर्माण में उनके महत्व की व्याख्या है। यह निवन्ध प्रथम दो निवन्धो में प्रस्तुत तथ्यो का जेनेटिक्स की सहायता से समर्थन भी है। पाँचवें निवन्व में प्रवृत्ति और विचारणा (Instinct and Intelligence) की व्याख्या है। ये पाँचो निवन्ध केवल मनस्प्रक्रिया की यान्त्रिकता, अथवा जो भी कुछ इसे नाम दिया जाए, को ही प्रमाणित नही करते प्रत्युत् मन को एक मेटर आफ डिगरी) भी मानते हैं। इनमें अमोयवा और मनुष्य को एक शृखला की दो सापेक्ष कडियां स्वीकार किया गया है।

पिछले निवधो में मन की 'अमानसिकता' अथवा भौतिकता के समर्थन में

कुछ और तर्क हैं। प्रथम पाँच निबंध केवल आधार प्रस्तुत करते हैं, उन्हें निर्णयात्मक नही कहा जा सकता। स्पष्टतः ही यहाँ बहुत से प्रश्न छोड दिए गये है या उनको पर्याप्त स्थान नही दिया गया, किन्तु पुस्तक पहले ही काफी भारी हो चुकी थी और मेरे पास इतना समय और धैर्य नही था कि और लिख सकता, इसलिए उन प्रश्नों को अन्य पुस्तक के लिए छोड देना उययुक्त समझा गया।

यहाँ एक बात की ओर पाठको का ध्यान मुझे और आकर्षित करना है—वह है एक महत्वपूर्ण शब्द अथवा सिद्धान्त—'प्रक्रियात्मक-सम्बन्ध' अथवा प्रक्रिया का सिद्धान्त। यह सिद्धान्त मेरी मनस्प्रक्रियाओ की व्याख्या को समझने के लिए अपूर्व महत्व का है क्योकि इसका स्रोत मेरी ही कल्पना है। इसी से इसके महत्व और अर्थ को समझने में भूल हो सकती है।

यह पुस्तक विश्व विद्यालयो के दर्शन के विद्यार्थियो के लिए भी उपयोग की हो सकती है। यद्यपि इसमें जीववैज्ञानिक अध्ययन कुछ अधिक है और दर्शन के विद्यार्थियो को जीवविज्ञान का ज्ञान इतना नही होता, किन्तु उन्हें यह जीवविज्ञान के कोर्स के लिए नही पढनी है, वे जीववैज्ञानिक तथ्यो की उलझन में पडे विना इसके अर्थ को सुविधा से समझ सकते है। इसके अतिरिक्त, यदि जीवविज्ञान और शरीर विज्ञान मन की प्रकृति को समझने के लिए अवश्यक है तो कोई कारण नही कि विद्यार्थी इस सम्बन्ध में इतना भी जानने का प्रयास क्यो नही करें।

पुस्तक के चित्र श्री गुरवचन सिह ने मेरे बनाए हैं, एतदर्थ मै उनका आभारी हूं।

अखिल भारतीय दर्शन परिषद्
लाइन बाजार
फरीदकोट (पंजाब)

यशदेव शल्य

विषय-सूची

धन्यवाद-प्रकाश

१ पृ०२-७ ग्राफ मोर्गन टी० की "फिजियालोजीकल साइकालोजी" से उद्धृत ।

२ पृ० ४२ तथा ४८ के चित्र मोर्गन टी० की "फ़िजियालोजीकल साइका-लोजी" से उद्धृत ।

३ पृ० ११३ तथा १२९ के चित्र "प्रिंसीपल्ज़ ऑफ जेनेटिक्स" ले० सिन्नट और डन से उद्धृत ।

४ पृ० १२८ का चित्र "मीनिग ऑफ एवोल्यूशन" ले० सिम्पसन, जी० जी०, से उद्धृत ।

प्रथम ३ के लिए —

By permission of McGraw Hill Book Co., New York.

अन्तिम के लिए --By permission of Yale University Press.

प्रवेश

मन अथवा मनस्तत्त्व की प्रकृति का पर्यालोचन दर्शन के लिए आधार भूत ह और यदि इसके सम्बन्व में कुछ निर्णय किया जा सके तो दर्शन की कम से कम तीन चौथाई समस्याए सुलझ जाती हैं। मनोविज्ञान में हम 'मन क्या है', इस प्रश्न को अनावश्यक समझ कर छोड सकते है और तव मन पर विचार कर सकते हैं। वहा यह सुविधा जनक है। वहाँ हम उन अवस्थाओ अथवा घटनाओ के सम्बन्ध में, उनके किसी पहलू विशेष का अथवा समग्र का, अध्ययन कर सकते है। यह प्रविधि विज्ञानो के लिए सुविधा जनक है। किन्तु दर्शन में पहले मूल प्रत्यय के ही लक्षणो का विवेचन करना होता है। कुछ मनोवैज्ञानिक केवल शरीर की यान्त्रिक प्रक्रियाओ को ही मानसिक अवस्थाए मानते है और इच्छा, उद्देश्य, भावना अथवा सुख-दु.ख जैसी किसी अवस्था को स्वीकार नही करते। पावलाव को प्रयोगशाला में इन शब्दो के प्रयोग पर जुर्माना किया जाता था।[१] दूसरी ओर फ्रायड है, वह सुख-दु ख, इच्छा-द्वेष आदि को मौलिक गुण अथवा अवस्थाए मानता है, जो एक वार अस्तित्व में आकर रहस्यमय ढग से विद्यमान रहती है। किन्तु फ्रायड या पावलाव के लिए इन अवस्थाओ को प्रकृति तथा इनके स-सम्बन्वक (Correlators) के सम्बन्ध में किसी विवाद में पडना आवश्यक नही है। उनके लिए महत्त्व इन अवस्थाओ के प्रक्रियात्मक सस्थान (Functional pattern) का है।

मनस्तत्त्व के दर्शन के लिए भी यह आवश्यक है कि वह इस प्रक्रियात्मक सस्थान को समझे और इसे दृष्टि में रखकर आगे अन्वेषण के लिए अग्रसर हो। प्राचीन दार्शनिको के पास मनोवैज्ञानिको द्वारा अन्वेपित प्रक्रियात्मक सस्थान सम्वन्वी प्रस्तुत सामग्री नही थी, अतः मन के सम्बन्ध में उनकी धारणाए वहुत कुछ उथली थी। आज जब कि मनोविज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हो चुकी है, अभी तक एक आधारभूत प्रविधि (Method) और सार्वभौम सिद्धान्त की प्रतिष्ठा नही हो सकी। सम्भवत. जिस प्रकार दर्शन के लिए यह आवश्यक है कि वह तथ्यो से समर्थित हो, अन्यथा वह प्रकल्पना मात्र रह जाएगा, उसी प्रकार विज्ञान के लिए भी यह आवश्यक है कि वह एक समन्वित सिद्धान्त पर प्रतिष्ठित हो, जिसमें तथ्यो के सकलन में अभ्युप-

---

१ Pavlove's selected works, P. 395 (Moscow 1955).

गमो द्वारा एक समन्वित सस्थान का निर्माण हो सके और जो सम्पूर्ण विज्ञान के तथ्यो में सगत हो सके।

प्रस्तुत पुस्तक में हम मनोविज्ञान के एक ऐसे ही समन्वित दर्शन की प्रतिष्ठा के उद्देश्य से प्रवृत्त नही हुए है, यह हमारी शक्ति से बहुत अधिक बडा कार्य है, किन्तु हमने मनोविज्ञान की एक विशेष प्रणाली द्वारा अपने ढग से समस्या पर विचार किया है, और दूसरे खड में मन को सम्पूर्ण विज्ञान को प्रसग में समझने का प्रयास किया है। इन पृष्ठो में हम प्रथम खड के तथ्यों का एक सम्पूर्ण दर्शन के साथ सम्बन्ध—सूत्र खोजने का प्रयास करेंगे।

प्रथम खड में हमने जीव वैज्ञानिक आधारो पर मनोवैज्ञानिक तथ्यो की व्याख्या करने का प्रयास किया है। मन का जीव वैज्ञानिक अध्ययन उसके केवल एक पहलू विशेष से ही सम्बन्ध रखता है, किन्तु हमारा उद्देश्य मनोविज्ञान न होकर दर्शन है, अत इस अध्ययन को हम एक आधारभूत समस्या के रूप में देखते है। इसके अतिरिक्त, जीव विज्ञान में भी हम किसी स्पेश्यलाइज्ड दृष्टिकोण मे नही चिपटे है। जीव विज्ञान में हमारी रुचि इस आधारभूत समस्या अथवा दर्शन को लेकर है कि क्या जीवन की उत्पत्ति और विकास जड पदार्थ की अपनी ही प्रकृति के कारण है अथवा यह किसी अन्य तत्व के पदार्थ के साथ सयोग के कारण है? क्या मानव मन अन्य प्राणियो के मन के समान ही है अथवा उनसे भिन्न है? क्या मन केवल मानव मन ही है और अन्य प्राणी केवल यत्र है अथवा अन्य प्राणी भी मन युक्त है? या फिर मनुष्य भी एक यान्त्रिक प्राणी है और मन केवल एक कल्पना है? ये प्रश्न मनोविज्ञान और दर्शन दोनो के लिए महत्त्व पूर्ण है और इनका उत्तर मन के जीव वैज्ञानिक स्तर पर अध्ययन मे ही मिल सकता है।

विकासवाद को सर्व प्रथम डारविन ने समीचीन रूप से प्रस्तुत किया था। उसने यद्यपि विकास-प्रक्रिया के आधार में किसी अति पादार्थिक तत्व की कल्पना नही की थी, किन्तु फिर भी वह विकास में अन्य कारणो के साथ प्राणी के "प्रयास और इच्छा" आदि को भी एक कारण समझता था। जहाँ तक हम जानते है, आजकल डारविन के चुनावो के विचार से कोई सहमत नही है, विशेषत नेचुरल सिलेक्शन तथा अर्जित प्रवृतियो की हेरेडिटी की कल्पना मे। किन्तु कुछ जीव वैज्ञानिक और दार्शनिक विकास, (जैवी और सार्वभौम) के मूल में किसी अति पादार्थिक तत्व, ईश्वर अथवा अन्य शक्ति के अभ्युपगम (Hypothesis) को स्वीकार करते है। इनमें भी अनेक सम्प्रदाय है। बर्गसा जब कि ऐसी किसी शक्ति की कल्पना करता है जिसे वह एलन्‌वाइटल कहता है, वह सोद्देश्यतावादी नही

हैं। दूसरे शब्दो में, एलनवाइटल किसी निहित उद्देश्य की चरितार्थता के लिए विकास शील नही है, वह केवल अपनी अदम्य "वासना" के द्वारा ही प्रेरित है, और प्राणियो के विविध रूप उसी सृजनात्मक प्रक्रिया के मार्ग में उत्पन्न होते हैं। एलनवाइटल की सृजनात्मकता किसी पूर्व प्रस्तुत उद्देश्य को स्वीकार कर समाप्त हो जाती है। दूसरी ओर अरविन्द हैं जो विकास के मूल में ईश्वर या ब्रह्म की आत्म चरितार्थता की सोद्देश्य प्रक्रिया को देखते हैं। उनके अनुसार, यदि निम्न से उच्चतर की उत्पत्ति होती है तो उच्चतर को पहले से ही निम्न में विद्यमान होना चाहिए यद्यपि उच्चतर निम्नतर में स्पष्ट रूप से विद्यमान न होकर केवल बीज रूप में (In Potential form) ही हो सकता है। अर्थात् उद्देश्यानुकर्षक शक्ति (Motive force), जो निम्नतर को ऊपर उठने को प्रेरित करती है, उच्चतर है और निम्नतर में विद्यमान है। उनके अनुसार, विकास त्रिरूप है (१) नवीन उच्चतर की उत्पत्ति (२) उच्चतर का निम्नतर में अवतरण और उसका उच्चतर में रूपान्तरण तथा (३) निम्नतर का उच्चतर द्वारा अपने उपयोग के लिए सघटन। इस प्रकार वे उच्चतम को भी सदैव विद्यमान मानते हैं, यद्यपि गुप्त रूप में।

अरविन्द के अनुसार, सच्चिदानन्द अथवा सार्वभौम आत्मा ही पदार्थ का रूप ग्रहण करता है जो कि आत्मा के एकदम विपरीत प्रतीत होता है, और यह धीरे धीरे विभिन्न स्तरो में से होकर आत्म स्वरूप, पूर्ण चैतन्य और आनन्द की ओर विकास करता है। स्पष्टत. अरविन्द की इस कल्पना के पीछे कोई तर्क नही है। सच्चिदानन्द स्वरूप ने, जो कि उच्चतम है, कैसे पदार्थ का, जो कि निम्नतम है, स्वरूप ग्रहण किया ? और इसमें उसका क्या उद्देश्य हो सकता है ? अरविन्द इसका उद्देश्य लीला बताते हैं। तब क्या चैतन्य और आनन्द, जो असीम और पूर्ण है, अपूर्णता के स्तर भी रखता है ? इसी प्रकार, जो चैतन्य है वह अचैतन्य कैसे हो सकता है ? यह सब स्पष्टतः अन्तर्विरोध पूर्ण है।

अरविन्द औपनिषदिक आनन्दवाद और वैष्णव लीलावाद के सौंदर्य से अभिभूत प्रतीत होते हैं। अन्यथा दर्शन में उनकी स्वतंत्र रुचि नहीं है। और इस ब्रह्मवाद को आधुनिक बनाने के उद्देश्यसे अथवा आधुनिक विज्ञानादि से उसकी रक्षा के लिए उन्होने विकासवाद और साइकोएनेलेसिस इत्यादि का उपयोग किया और उन "निम्नतर" सिद्धान्तो में "उच्चतर" ब्रह्मवाद को मिलाकर उनका उदात्तीकरण कर दिया।

किन्तु कुछ दार्शनिक वास्तव में ही जीवन की विचित्रता से प्रभावित

होकर उसकी सगत व्याख्या खोजने के उद्देश्य से इसमें प्रवृत्त होते हैं और कुछ कल्पनाओ और अभ्युपगमो का सहारा लेते हैं ।जीवित पदार्थ अजीवित से बहुत अधिक भिन्न है, और जीवन इस पृथ्वी पर एक सर्वथा विलक्षण और भौतिक विज्ञान द्वारा अव्याख्येय गुण है । शायद जीवन पदार्थ में रासायनिक क्रियाओ द्वारा नव्योत्क्रान्त (Emergent) गुण हो, किन्तु उसका ऊर्ध्वमुखीन विकास और फिर क्रमश मन की उत्पत्ति आदि की व्याख्या रसायण शास्त्र नही कर सकता । एक तरह से जीवन और मन को पदार्थ का नव्योत्क्रान्त गुण कहना अधिक आभ्युपगमिक (Hypothetical) प्रतीत होता है । पदार्थ और जीवन तथा मन के बीच कुछ बडे, कम से कम प्रतीयमान, अन्तर है और उन्हें उपेक्षित नही किया जा सकता । एलनवाइटल इत्यादि कल्पनाए इस विशेष स्थिति का साम्मुख्य करने के लिए ही है ।

बर्गसा का एलनवाइटल एक अन्ध –अविचारपूर्ण प्रक्रिया है, जो पदार्थ में प्रवेश कर उसे एक नवीन सभावनाओ और नवीन अनुभूतियो से युक्त कर देती है, किन्तु व्हाइटहेड का ओर्गेनिजम का सिद्धान्त जब कि सर्वभौमिक विकास प्रक्रिया (Ultimate Principle) में किसी निहित उद्देश्य को स्वीकार नही करता, वहाँ प्रत्येक वस्तु सत्त्व (Actuality) अपने व्यक्तिगत उद्देश्य की चरितार्थता चाहता है। व्यक्तिगत वस्तु सत्त्व की सृजन प्रक्रिया (The Process of concrecence) व्यक्तिगत सघटन (Unity) की ओर उद्दिष्ट है। वस्तु सत्त्व की सृजन प्रक्रिया के तीन मुख्य स्तर है। क्योंकि सम्पूर्ण प्रक्रिया अनुभूत्यात्मक है, अत यह अनुभूति की चरितार्थता में पूर्ण होनी है । क्योंकि व्यक्ति-प्रक्रिया सोद्देश्य है, यह अतिम कारण(अथवा-उद्देश्य) की प्राप्ति में, जो कि इसे प्रेरित करता है, चरितार्थ होती है । यह अन्तिम कारण व्यक्तिगत उद्देश्य है । व्हाइटहेड की यह प्रक्रिया (Process) अथवा व्यक्तिगत उद्देश्य जीव विज्ञान तक सीमित नही है, प्रत्युत् सम्पूर्ण अस्तित्व से सम्बन्धित है । किन्तु जीव विज्ञान के सम्बन्ध में व्हाइटहेड ने जो कहा है वह हमारे लिए और भी अधिक महत्वपूर्ण है, वह कहता है–

(हम भौतिकवादी-रासायनिकतावादी) प्रविधि (Method) की शानदार सफलता हम स्वीकार करते है । किन्तु आप किसी समस्या को उसके सुलझाव की प्रविधि से सीमित नहीं कर सकते । समस्या प्राणी के व्यवहार को समझना है । यह एक दम स्पष्ट है कि कुछ प्राणियों के कुछ व्यवहार किसी लक्ष्य अथवा उद्देश्य की पूर्व कल्पना से निर्धारित होते है ।

समस्या का यह सुलझाव नही है कि क्योकि कुछ व्यवहारो की भौतिक रासायनिक नियमो द्वारा व्याख्या की जा सकती है अत' जो इस नियम के अन्तर्गत नही हो सकते, उनकी उपेक्षा की जाए। वास्तव में समस्या की विद्यमानता स्वीकार नही की गई, उसका एक दम निषेध किया गया है। अनेक वैज्ञानिको ने अत्यन्त धैर्य से ऐसे प्रयोगो का आविष्कार किया है जिससे अपना यह विश्वास प्रमाणित किया जा सके कि प्राणी व्यवहार किसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर निर्धारित नही होते। उन्होने अपना शेष समय शायद लेख लिख कर यह प्रमाणित करने में लगाया है कि मनुष्य दूसरे प्राणियो के समान ही है और इसलिए "उद्देश्य" उनके (लेखक के भी) व्यवहार की व्याख्या करने के लिए अप्रासगिक है। वैज्ञानिक यह प्रमाणित करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर कि उनके व्यवहार निरुद्देश्य हैं, अध्ययन के मनोरंजक-विषय बन जाते हैं।

"अन्तिम कारण के बहिष्कार का दूसरा कारण यह भी है कि यह व्याख्या को हानिकार रूप से सरल कर देता है। यह ठीक है कि पूर्वानुगामी भौतिक घटनाओ में अनुक्रम खोजने में किया गया महान परिश्रम अन्तिम कारण के सरल सिद्धान्त से विनष्ट हो जाएगा। किन्तु केवल यह बात कि अन्तिम कारण की कल्पना घातक है, एक वास्तविक समस्या की उपेक्षा करने के लिए कोई उचित युक्ति नहीं है। यदि हमारे मस्तिष्क निर्बल भी हो तो भी समस्या तो समाप्त नहीं होती।" (Limitations of Science से उद्धृत)

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि अन्तिम कारणता और प्राणी-व्यवहार की सोद्देश्यता को एक ही अर्थ में नही समझना चाहिए। यहाँ हम व्हाइट हैड के प्रक्रिया (प्रॉसेस) के सिद्धान्त को प्रसंग में नही लाना चाहते, यहाँ हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि प्राणी व्यवहार की सोद्देश्यता इससे प्रमाणित नहीं होती कि मेरा लिखने का व्यवहार सोद्देश्य है। यह कहा जा सकता है कि बन्दर के अधिकांश व्यवहार भी सोद्देश्य हो सकते हैं और कुत्ते के भी, किन्तु इसीलिए मच्छर का व्यवहार भी सोद्देश्य नही हो सकता। यह ठीक है कि हमारा प्रत्येक व्यवहार एक विशेष अभाव की अनुभूति से अनुप्राणित होता है और यह अपनी चरितार्थता एक विशेष स्थिति में पाता है, जिसे हम उस व्यवहार का उद्देश्य कहते हैं, किन्तु यह सोद्देश्य इस अर्थ में नही है कि उस व्यवहार में उस उद्देश्य का ज्ञान विद्यमान रहता है। अतः यदि हम उस व्यवहार को, जिसकी चरितार्थता एक विशेष स्थिति अथवा घटना में होती है, एक प्रक्रिया कहें, तब वह प्रक्रिया एक और अद्वितीय है और वह एक निश्चित

स्थिति—अन्तिम कारणता—अथवा उद्देश्यानुकर्षकशक्ति (Motive Force) द्वारा निर्धारित होती है। इस प्रक्रिया को हमने वासनात्मक व्यवहार और आत्म व्ययी क्रिया दो पहलुओं में, प्रथम निबन्ध में, विभाजित किया है। जैसा कि हमने वहाँ प्रमाणित किया है, यह आवश्यक नही है कि प्रक्रिया के प्रत्येक क्षण में उद्देश्य का बोध विद्यमान रहे। दूसरे, उस व्याख्या के अनुसार, अन्तिम कारण अथवा उद्देश्य को यहाँ निर्धारक नही कहा जा सकता, वह व्यवहार केवल अभावात्मक व्यवहार (Vacume Activity) है। किन्तु यदि उस अर्थ में प्रत्येक प्रक्रिया को सोद्देश्य कहा जाए तो हमें आपत्ति नहीं होगी। किन्तु सोद्देश्यता का यह सामान्य अर्थ नही है। मैक्डुगल प्राणियो को सामान्य अर्थ में ही सोद्देश्य बताता है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

पीछे हमने सोद्देश्यता के लिए उद्देश्यानुकर्षक शक्ति शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अभिप्राय है कि विकास अग्रानुसारी न हो कर अग्रानुकर्षित है, क्योकि सार्वभौम-सोद्देश्य प्रक्रिया का उद्देश्य पूर्व विद्यमान सार्वभौम तत्त्व होना चाहिए, जिसकी ओर विकास आकर्षित है। व्यष्टि क्रियाओ की सोद्देश्यता उससे भिन्न है, यहाँ उद्देश्य भविष्य में निहित न होकर केवल उसकी चरितार्थता भविष्य में निहित है। किन्तु सार्वभौम सोद्देश्यता में उद्देश्य अतीत में प्रविष्ट होकर उसे अपनी ओर आकर्षित करता है, जैसे अरविन्द के दर्शन में, क्योकि सार्वभौम उद्देश्य की पूर्व कल्पना उसकी वास्तविक विद्यमानता के बिना नही हो सकती। किन्तु इसके लिए पुन यह आवश्यक है कि उद्दिष्ट भविष्य और विकास शील अतीत तथा वर्तमान में कोई मौलिक भेद नही हो। मान लीजिए, मन तत्व केवल एक मानसिक तत्व है। तब उसे अवश्य या तो 'इतना कम मानसिक' होना चाहिए कि वह पदार्थ के समान जड हो सके अथवा उसे इतना अति मानसिक होना चाहिए कि मानसिकता की श्रेणियाँ केवल उसकी विकार मात्र हो। दूसरी कल्पना को हमने अतर्क सम्मत और असम्भव पाया है। जहाँ तक प्रथम कल्पना का सम्बन्ध है, इसकी सोद्देश्यता के साथ कोई संगति प्रतीत नहीं होती। ह्वाइट हैड विकास के सार्वभौम नियम (Ultimate Principle) को सोद्देश्य नहीं मानता और व्यष्टि सत्त्वो को जिस प्रकार वह सोद्देश्य मानता है, उस से काल की वास्तविकता का खण्डन नही होता।

सोद्देश्यतावाद की एक अन्य प्रकार से भी कल्पना की जा सकती है। यह कहा जा सकता है कि विकास का कोई अन्तिम उद्देश्य नहीं है, प्रत्युत् प्रतिपद एक नवीन उद्देश्य की उत्पत्ति होती है। सोद्देश्यतावाद का यह रूप हाल्डेन के इमर्जेंट से बहुत भिन्न नहीं है। हाल्डेन इस इमर्जेंट के सम्बन्ध में

कहता है—"मेरा विचार है कि विकास-परम्परा के साथ एक "इमर्जेंट" भी सयुक्त हो सकता है, जैसे मस्तिष्क के साथ मन है। रायेस (१९०१) ने इस प्रकार के "इमर्जेंट" का मन के रूप में एक मासल चित्र देने का प्रयास किया था और कहा था कि प्रजनन के साथ सयुक्त तीव्र वासनाएँ हमारे समान उस मन में भी विद्यमान हैं। यदि ऐसी कल्पनाओ में कुछ सत्यता है तो, मैं सोचता हूँ, क्या ऐसा इमर्जेंट सभवत मन के समान ही नही होना चाहिए ? विकास के साथ सयुक्त ऐसे एक अज्ञात तत्व में मेरा सन्देह वास्तव में इसके सौन्दर्य के प्रति तथा उस असीम वैचित्र्य के प्रति, जो कि विश्व की अद्वितीय विशेषता है, मेरा अभिनन्दन है। इसने मुझे वैज्ञानिक अनुसन्धान के २५ वर्षों में अत्यधिक प्रभावित किया है।"

इस उद्धरण में यह स्पष्ट है कि इस काव्योचित कल्पना का कारण जीवन की अजीवित से विलक्षणता तथा इसके विकास को निरन्तर ऊर्ध्वोन्मुखता है, जैसा कि ज० डब्लू० एन० सुलिवान ने लिखा है—"ये अनियमित विभिन्नताएँ (Random Variations) और जीवन के लिए सघर्ष इस स्पष्ट तथ्य का, कि जीवन का विकास निरतर ऊर्ध्वोन्मुख हो रहा है, बिल्कुल भी समाधान नहो करते।"* किन्तु हमारे विचार में, यदि जीवित पदार्थ का नव्योत्क्रान्तगुण मान लिया जाए, जिसको हम उसके घटक तत्वो में नहीं पाते, तो यह अयुक्ति सगत नहो होगा। अन्यथा या तो हमें दो या अधिक तत्त्वो का अस्तित्व स्वीकार करना होगा अथवा जड़ पदार्थ का जीवन अथवा मन का निम्नस्तर रूप मानना होगा। हमारे विचार में, कोई भी तथ्य हमें ऐसा मानने को बाध्य नही करता। इसके अतिरिक्त, जीवन का अस्तित्व देश और काल की दृष्टि से अत्यल्प है, शेप सब 'अजीवित' पदार्थ है, अत यह मानना अधिक उचित जान पड़ता है कि जीवन एक नव्योत्कान्त गुण है। यदि मूल तत्व, सवेदादि, मानसिक गुण हैं, जैसा कि इस पुस्तक के अन्तिम अध्याय में सकेत है, तो भी वह तत्व अत्यन्त निम्नस्तरीय मानसिक गुण से युक्त ही हो सकता है। उस अवस्था में जीवन नव्योत्क्रान्त गुण नहीं कहा जाएगा, जीवित और अजीवित में भेद केवल सघटनात्मक रह जाएगा। अब यदि जीवित की उत्पत्ति उसी तत्व से मान ली जाए जिससे अजीवित की है और इसमें किसी सहगामी इमर्जेंट, एलनवाइटल अथवा ऊर्ध्व मन की प्रकल्पनाएँ न की जाएँ तो रासायनिक स्तर पर यह हमें उचित जान पडता है कि जीवित पदार्थ की यह प्रकृति है कि वह प्रजनन करता है और इस प्रजनन क्रिया में कुछ रासायनिक परिवर्तन उत्पन्न होते रहते हैं। ये परिवर्तन आकस्मिक और नियमित दोनो ही

*Limitations of science. 1959, (Mentor Books)

प्रकार के हैं। नियमित परिवर्तन ऊर्ध्वोन्मुख रहा है, ऐसा हम पाते हैं, किन्तु जैसा कि हाल्डेन कहता है, यह अनिवार्य नियम नहीं है। जो असख्य जातियाँ पृथ्वी से उठ गई हैं, उनमें विकास न ऊर्ध्वोन्मुख था और न लाभप्रद। सभव है, यह विकास आज विघटन की ओर हो। इस विषय में हमने विस्तार से दूसरे तथा तीसरे निवन्ध में विचार किया है। हमने वहाँ यह प्रमाणित किया है कि जैवी विकास को इन सब कल्पनाओं के विना ही ठीक तरह से समझा जा सकता है।

२

हमने पुस्तक के प्रथम खड मे अधिकाशत जीव विज्ञान के आधार पर कुछ समस्याओं पर विचार किया है। इसके दो कारण हैं, जिनमें एक के सम्बन्ध में हमने अभी विचार किया है जीव वैज्ञानिक विकास के सम्बन्ध में विविध कल्पनाओं का परिहार करना, और दूसरा कारण है हमारी यह धारणा कि मानव-मन को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसे अन्य प्राणियों की परम्परा म एक कडी समझा जाए और इस प्रकार उसके मन को अन्य प्राणियों के मन के समान, यद्यपि अधिक विकसित, समझा जाए। इसे जेनेटिक साइकालोजी अथवा विकासवादी मनोविज्ञान कहा जा सकता है।

मनुष्य का मन समाज तथा भाषा के कारण एक अत्यन्त उलझन पूर्ण व्यापार हो गया है। अत यदि केवल उसी को सम्मुख रखकर उस पर विचार किया जाए तो वहुत सम्भव है कि हम भूलकर जाए और कल्पनाओं मे उलझ जाए। किन्तु अन्य प्राणियों का अध्ययन करने मे, उनके मन की सरलता के कारण, यह बाधा नहीं है। इस पद्धति मे यद्यपि यह कठिनाई है कि जब कि मानव मन मनोवैज्ञानिक का अपना मन है और अतएव उसके अध्ययन में मनोवैज्ञानिक अपने अनुभवों को सम्मुख रख सकता है, वहाँ अन्य प्राणियों के अध्ययन म उसे अधिकाशत उनके व्यवहार से उनके अनुभवों का अनुमान करना होता है। हम व्यवहार वादियों के साथ इस बात में विलकुल भी सहमत नहीं हैं कि मनोविज्ञान का विषय केवल प्राणी-व्यवहार हैं, अनुभव, यदि कोई ऐसी वस्तु होती भी हो तो, नहीं। हमारे विचार मे, मानसिक अनुभव को शारीरिक व्यापार का पर्याय नहीं कहा जा सकता। मेरे क्रोध का अनुभव मेरे मुंह के लाल होने और सम्बन्धित अग सचालन आदि का पर्याय नहीं है, चाहे व्यवहारवादी मेरे इस व्यवहार को देखकर निरपवाद रूप से वता सकता हो कि मैं क्रुद्ध हूँ। किन्तु यदि व्यवहारवादी व्यवहार को केवल मानसिक अनुभव

का सहगामी मानता है और मेरे अनुभव को वास्तविक और अद्वितीय मानता है, तो मैं उसे अपने मन का अध्ययन करने का अधिकार देने में सकोच नही करूँगा, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मैं अपने पाठको को इस पुस्तक द्वारा अपने विचारो तथा अनुभवो को समझने का अधिकार देता हूँ।

अन्य प्राणियो के व्यवहार द्वारा उनके अनुभवो को समझने में निश्चय ही बडी कठिनाई है, क्योकि उनके अनुभवो का क्षेत्र और विस्तार हमसे कुछ भिन्न है। किन्तु मनोवैज्ञानिक अध्ययन में हमें उनके अनुभवो को अनुभव नही करना होता, केवल कुछ सामान्य अनुभवो की समता के आधार पर उनका निश्चय करना होता हैं। यदि मनोविज्ञान के लिए पूर्ण सहानुभूति आवश्यक होती तो शायद कवि सबसे अच्छे मनोवैज्ञानिक होते। किन्तु शायद कवि इस क्षेत्र में सबसे अधिक अयोग्य होगे। मनोवैज्ञानिक अपने अध्ययन में अपने अनुभव और व्यवहार दोनो के आधार पर दूसरो का निर्णय करता है। यदि चीटी खाड उठा ले जाती है और नमक नही उठाती तो मनोवैज्ञानिक यह जान लेता है कि चीटी खाड को पसन्द करती है और नमक को नही। उसे यहाँ यह जानने की आवश्यकता नही है कि चीटी को खांड का कैसा स्वाद आता है। किन्तु अधिकाश समस्याएँ अधिक उलझन पूर्ण होती हैं और वहाँ मनोवैज्ञानिक को अपने अनुसार दूसरे प्राणियो का और दूसरे प्राणियो के अनुसार अपना अनुमान करना होता है। उदाहरणत —चीटी अपने बिल को कैसे लौटती है, इस व्यवहार को लें। क्या वह जानती है कि उसका घर है और कि उसकी तत्कालीन दैशिक स्थिति से घर की दैशिक स्थिति का क्या सम्बन्ध है, जैसे हम जानते हैं ? यदि वह कभी यह सापेक्ष सम्बन्ध भूल जाए तो क्या वह घर को खोजती है जैसे हम खोजते हैं और उसे उस समय यह ध्यान रहता है कि उसका घर कही है और कि उसे वहाँ पहुँचना चाहिए इत्यादि ? अनेक प्राणी–मनोवैज्ञानिको ने इन समस्याओ का अध्ययन करने का अत्यन्त प्रशसनीय प्रयत्न किया है, किन्तु इस सम्बन्ध में उनमें तथा अन्य मनोवैज्ञानिको में भी, भयानक मतभेद है। जैसे मैक्डुगल सभी प्राणियो के प्राय सभी व्यवहारो को सोद्देश्य, अर्थात सज्ञान मानता है, जब कि इसके एकदम विपरीत वाट्सन और पावलाव है, जो मनुष्य के प्रसग में भी सोद्देश्यता आदि शब्दो का प्रयोग नही करना चाहते। ये विभिन्नवाद अत्यन्त विकसित प्रणालियाँ हैं, जिनके बीच हमें यहाँ निर्णय करना है।

किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों को तो मानव-मनोविज्ञान को जैवी मनोविज्ञान के अनुसार समझने के विचार पर ही आपत्ति है। जैसे सी० डी० ब्राड अपने

एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ "माइड एंड इट्स प्लेस इन नेचर" में लिखते हैं—
"यदि हम विश्व के किसी महत्वपूर्ण पहलू के स्वभाव और ढांचे (स्ट्रक्चर) का अध्ययन करना चाहते हैं तो यह अधिक उचित है कि हम उसे उसके सर्वाधिक विकसित तथा विशिष्ट रूप में ही देखें, बजाय इसके कि हम उसे उसके अविकसित आरंभिक स्तर पर देखें, जहाँ वह विश्व के अन्य पहलुओ से कठिनाई से पृथक् किया जा सकता है। यदि किसी की रुचि उसके विकास के अध्ययन में भी हो तो उसके विकसित रूप को जानना भी कम से कम उतना ही महत्वपूर्ण है जितना यह जानना कि वह किससे विकसित हुआ है। और फिर, यदि हम दूसरी ओर से आरभ करते है, तो हमारे दो भ्रान्तियो में भटक जाने का भय है। (१) यह बहुत सभव है कि हम अन्तिम अवस्था की उलझनो और विशेषताओ की उपेक्षा कर दें, क्योकि हम यह नही देख सकते कि ये पहली सरल अवस्थाओ से कैसे उत्पन्न हो सकती है। (२) दूसरा भय यह है कि हम यह देखते हुए कि इ का विकास 'अ' से हुआ है और 'उ' का 'इ' से, हम यह समझ सकते है कि उ अ का ही व्याज रूप है।"

यह आपत्ति वास्तव में एक सीमा तक उचित है जब कि हम वाट्सन इत्यादि की व्याख्याओ को ध्यान में रखते है, किन्तु यह नही भूल जाया जाए कि हम वास्तव मे विकास परम्परा को देख रहे है, यह देख रहे हैं कि मनुष्य के मन का इतिहास क्या है, तब यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह इतिहास की कोई एक घटना नही है प्रत्युत् उन घटनाओ के आधार पर विकसित एक घटना है। किन्तु यदि हम किसी घटना का इतिहास नही जानते तो हम उसके सम्बन्ध में अच्छी तरह से नही समझ सकते, और मानव-मन के सम्बन्ध में तो भयानक भूलें कर सकते है। चीटी और मनुष्य का मन एक ही नही है, किन्तु चीटी के मन से मनुष्य के मन का यदि हम सम्बन्ध नही जानते तो आत्मा-परमात्मा और अह, आत्म, अन्तर्मन और ऊर्ध्व मन आदि की कल्पनाओ मे भटक जाने की बहुत अधिक सभावनाएँ रहती है। उदाहरणत ज्ञान को ही लें, प्राचीन दार्शनिको ने इसे प्रकाश, आत्मा का गुण आदि अनेक प्रकार से अभिहित किया था। किन्तु चीटी आदि की सहायता से हम इस सम्बन्ध में अधिक ठीक जान सकते है। और इसी प्रकार, अपने अनुभव के विश्लेपण के आधार पर चीटी आदि को समझ सकते है। चीटी के अपने घर के ज्ञान की समस्या को ही लें। इसके लिए आवश्यक है कि हम पहले यह देखें कि हमें घर का ज्ञान कैसे होता है, जब हम घर लौटना चाहते हैं। सामान्यत हमारा अपने घर का ज्ञान घर के रूप, आकार तथा दैशिक स्थिति आदि का ज्ञान है। किन्तु यदि हम गाडी में चढ कर दूसरे नगर में जाते है तो हमारा घर का ज्ञान उस

सम्पूर्ण प्रक्रिया का ज्ञान है जिसमें गाडी की यात्रा तथा उसके पश्चात् अपने नगर में घर की दैशिक स्थिति इत्यादि सम्मिलित है। यदि हम वाहर हैं और घर की दैशिक स्थिति इत्यादि भूल जाते हैं, दूसरे शब्दो में, यदि चाक्षुष सवेदो का परस्पर तथा उनका काइनेस्थटिक सवेदो के साथ स-सम्वन्ध शिथिल हो जाता है, तो कहा जायगा कि हम घर का ज्ञान नही रखते। किन्तु एक अन्धा अपने घर को जानता है तो उसका घर का ज्ञान हमारे से वहुत भिन्न होता है। वह घर को पेशीय अभ्यास तथा स्पर्श सवेदो की स्मृति के आधार पर जानता है। हमारे घर के ज्ञान में घर की सुख-दु खादि की स्मृतियाँ भी विद्यमान रहती हैं। हम चीटी के मस्तिष्क के निर्माण को देखकर तथा उसके व्यवहारादि को देख कर यह अनुमान करते हैं कि सवेदो का उतना उलझनपूर्ण सम्मिश्र (कॉम्प्लेक्स) चीटी के मस्तिष्क में सम्भव नही है, व्यवहार इसका समर्थन करता है। अत चीटी यदि घर को ठीक लौट सकती है तो या तो पेशीय अभ्यास के द्वारा, अथवा जैसा कि हमने प्रवृत्ति निवन्ध में देखा है, घ्राण के द्वारा। यदि हमें कोई रास्ता प्रथम वार तय करना पडा है और उसके पश्चात् उस रास्ते के घरो आदि के रग वदल दिये जाते है तो हम रास्ता भूल जाएँगे। वडे नगरो में हम सामान्यत ही रास्ता भूल जाते हैं, दूसरे शब्दो में, हम रास्ता नहीं जान पाते, क्योकि हम रास्ता जानने के लिए अधिकाशत चाक्षुष सवेदो पर निर्भर करते हैं और उनका न तो हम सम्वन्ध अच्छी तरह से स्थापित कर पाए होते हैं और न उनकी स्मृति* ही जम पाई होती है। चीटी के लिए घर का ज्ञान विशेष गन्धयुक्त रास्ते का ज्ञान है, दूसरे शब्दो में, चीटी के लिए घर का ज्ञान घ्राण-सवेदो का स-सम्वन्ध है। तो क्या वह उस रास्ते की दैशिक सापेक्ष स्थिति का ज्ञान भी रखती है? दैशिक स्थिति का ज्ञान चाक्षुष और काइनेस्थेटिक सवेदो अथवा केवल चाक्षुप सवेदो अथवा केवल काइनेस्थेटिक सवेदो अथवा काइनेस्थेटिक और स्पर्श सवेदो का स-सम्वन्ध है। अतः चीटी शायद घर की दैशिक स्थिति का ज्ञान घ्राण और काइनेस्थेटिक सवेदो के स-सम्वन्ध के रूप में रखती है। किन्तु यह ज्ञान शायद केवल पूर्व सवेदो के वास्तविक सवेदो के साथ सम्पर्क होने पर उत्पन्न परिचितता की अनुभूति के रूप में ही होता है, केवल पूर्व सवेदो के स-सम्वन्ध के प्रजागरण के रूप में नहीं। इस प्रकरण में कवूतर पर किये एक प्रयोग को वताना शायद मनोरजक और उपयोगी होगा।

---

*जैसा कि हमने शरीर और मन निवन्ध में प्रतिपादित किया है, स्मृति भी उसी प्रकार सावेदनिक अभ्यास मात्र है जैसे पेशीय अभ्यास।

हमारे घर की ड्योढी के एक आले में एक कबूतर दम्पति ने बच्चे देने के लिए घोसला बनाना आरम्भ किया। घोसले के लिए तिनके वे हमारे घर के सामने की एक छत से लाते थे, किन्तु वे बाहर जाने के लिए पहले पिछले दरवाज़े से हमारे आँगन में आते और फिर ड्योढी की छत के ऊपर बने चौबारे के ऊपर से होकर उस सामने की छत पर पहुँचते। इसी प्रकार वे लौटते भी थे। अब मैंने आँगन की ओर द्वार बन्द करके उन्हें बाहर के द्वार से जाने को बाध्य किया, जो कि सीधा रास्ता था। उधर का द्वार खुला होने पर भी वे इधर उधर उडते रहते थे। जब बाध्य होकर उस द्वार से बाहर जाते भी थे तो लौटते पुन पिछले द्वार की ओर से ही थे। मैं वह द्वार बन्द रखता, किन्तु तब तक कबूतर बैठा प्रतीक्षा ही करता रहता। इस प्रकार अनेक बार किया गया किन्तु कबूतरो ने अपना रास्ता नही बदला, यद्यपि वह रास्ता लम्बा और उलटा था।

इसी युगल पर फिर एक और प्रयोग किया गया—जब इन्होने अडे दिये तब मैंने उन अडो को उठाकर उनके स्थान पर कुक्कुट के अडे रख दिये। अडे पर्याप्त बडे होने पर भी कबूतरो ने उन्हें नही पहिचाना। उसके पश्चात् मैंने उनका घोसला उठाकर उनके स्थान पर लम्बा सूखा घास गोल लपेट कर रख दिया, घोसला जब कि मोटे तिनको द्वारा सुन्दर ढग से बनाया गया था, मेरा रखा घास का घोसला केवल गोल कर दिया गया था। इस घोसले में भी कुक्कुट के अडे ही रखे गये। किन्तु कबूतरो ने कुछ भी सन्देह प्रकट नही किया। फिर मैंने उनका अपना घोसला उस घोसले से एक फुट के अन्तर पर सामने के कोने में उनके अपने अडो के साथ रख दिया। कबूतरों ने इसकी भी कोई परवाह नही की। तब मैंने दो दिन के लिए उनके घोसले के पास (जो मेरा बनाया था)नीले रग का एक बडा कागज़ रखा और फिर उसे दूसरे(उनके अपने बनाये हुए)घोसले के पास वहाँ से हटा कर रखा। किन्तु कबूतरो ने इस सबकी कोई परवाह नही की। इस सब के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि कबूतर की चाक्षुष स्मृति अच्छी नही है और कि ये अधिकतर काइनेस्थेटिक सवेदो पर अधिक निर्भर करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि कबूतर का घर का ज्ञान हमारी अपेक्षा बहुत भिन्न और बहुत अल्प है।

पशुओ की यह स्थिति हम प्राय अपने साथ तुलना करके और अपनी यह स्थिति पशुओ पर प्रयोग करके जानते हैं। किन्तु अपने आदर्शों, रुचियो, दृष्टिकोण, सबेग में सम्पूर्ण उलझन-पूर्ण व्यक्तित्व को ठीक प्रकार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम अन्य प्राणियो के सरल मानसिक

व्यापारो की प्रकृति को समझें। पुस्तक के चतुर्थ तथा पचम निवन्ध में हमने इस ओर कुछ प्रयास किया है।

यह ठीक है कि मनुष्य में मन ने कुछ आगे विकास किया है, उसके हाथो की अँगुलियो की उलझन पूर्ण व्यापार-सामर्थ्य के पीछे एक अत्यन्त उलझन पूर्ण भेजे का होना अनिवार्य है। और इस सबसे ऊपर है उसकी भाषा सम्बन्धी योग्यता। यद्यपि भाषा-ज्ञान के लिए हमारे भेजे का अधिक विकसित होना आवश्यक है, किन्तु समाज के कारण जिस प्रकार भाषा का और इस प्रकार अपार मानसिकता का विकास हुआ है, वह आश्चर्य-जनक है।

मनोविज्ञान (प्राणी मनोविज्ञान और मानव मनोविज्ञान दोनो) में एक सगत अभ्युपगम विकसित करने के लिए अनेक प्रविधियाँ प्रस्तुत की गई हैं और इनमें कोई भी अभी तक एक सार्वभौम सिद्धान्त होने की प्रतिष्ठा नही पा सकी। मनोवैज्ञानिको ने मानव तथा प्राणी-व्यवहार को एक सरल, प्रयोगात्मक तथा अस्खलनीय आधार पर रखने के लिए उकसाहट-प्रतिक्रिया (Stimulus-Responce) तथा निर्धारित प्रतिक्रिया (Conditioned Responce) इत्यादि सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। व्यवहारवाद ने भी, जो कि इन दोनों विचारो को पूर्व पक्ष के रूप में स्वीकार करता है, मनोविज्ञान के क्षेत्र पर शासन किया है।

जैसा कि हमने अगले पृष्ठो में देखा है केवल उकसाहट-प्रतिक्रिया का सिद्धान्त अत्यन्त सरल व्यापारो की व्याख्या भी नही कर सकता। कबूतरो के घोसला बनाने के व्यापार को ही लें। यहाँ शायद विशेष तापमान तथा प्रकाशादि के विशेष शेड को उकसाहट कहा जा सकता है, किन्तु अनेक वार देखा गया है कि व्यक्ति विशेष घोसला समाप्त कर लेने पर भी घोंसला बनाता रहता है। यहाँ स्पष्टत आन्तरिक परिस्थिति उकसाहट से कही अधिक घोसला बनाने के व्यवहार की उत्तरदायी कही जा सकती है। इस आन्तरिक परिस्थिति को वाइटल फैक्टर कहा जाता है और इसका महत्व पावलाव ने भी स्वीकार किया है। हमने प्रथम निवन्ध में वासनात्मक व्यवहार तथा वासनाव्ययी प्रक्रिया को अनेक प्रकार के व्यवहारो की व्याख्या के लिए प्रस्तुत किया है। उसमें उकसाहट को दूसरे किनारे पर रखा गया है, जहाँ कि प्रतिक्रिया को होना चाहिए। उकसाहट यहाँ केवल अवरुद्ध वासना के, जो कि आत्मचरितार्थता के लिए विकल है, निकास का साधन बनती है। किन्तु प्रतिक्रियावाद म प्रतिक्रिया एकदम यान्त्रिक और जड है, महत्व केवल उकसाहट का है, जो कि प्रतिक्रिया का निर्धारण करती है। इस प्रकरण में वाट्सन से एक उद्धरण देना उपयोगी हो सकता है। वह कहता है—"एक व्यवहारवादी का विश्वास है कि

यदि उत्पत्ति से पूर्व शिशु की प्रतिक्रियाओ की, जो कि शिशुओ में पर्याप्त समान होती हैं, एक सूची बनाई जा सके, और यदि परिवेश का निर्धारण किया जा सके, तो वह किसी भी शिशु का व्यक्तित्व किसी भी विशेष प्रकार से निर्धारित कर सकता है—एक चोर के रूप में, एक निर्धन के रूप में, धनी के रूप में अथवा भिखारी के रूप में। "एक सीमा तक यह दावा ठीक है, किन्तु केवल एक सीमा तक। किन्तु यह दावा किया जा सकता है कि रवीन्द्र या आईस्टीन का निर्माण केवल उकसाहट-प्रतिक्रिया के निर्धारणो द्वारा नही किया जा सकता है।

निर्धारित प्रतिक्रियावाद (Conditioned Reflex)ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक प्राविधिक सिद्धान्त (Methodological Principle) के रूप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देन दी है। यह प्रविधि पावलाव ने आविष्कृत की थी, और इसे उसने प्राणी-व्यवहार में अत्यन्त गहराई से मूलित प्रमाणित किया था। सामान्य-रीफ्लेक्स एक उकसाहट तथा तज्जन्य प्रतिक्रिया में सरल सम्वन्ध है। जब कुत्ते के मुंह में रोटी डाली जाती है तब उसके मुंह की ग्रंथियाँ स्लाइवा उत्पन्न करती हैं। दूसरी बार, रोटी देखने पर ही उसके मुंह में स्लाइवा आ जाता है। अब यदि उसे रोटी देते हुए कुछ दिन घटी भी बजाई जाए, तब कुत्ते के लिए घटी-ध्वनि तथा सरल रीफ्लेक्स में स-सम्बन्ध स्थापित हो जाएगा और भविष्य मे केवल घटी-ध्वनि से ही कुत्ता उतनी ही मात्रा में स्लाइवा उत्पन्न करेगा जितनी मात्रा में उसने रोटी देने पर किया होता। और अब यदि अनेक बार घटी रोटी दिये बिना ही बजाई जाए तो धीरे-धीरे कुत्ता उस घटी के प्रति उदासीन हो जाएगा और सालिवा नही बनाएगा। प्रथम प्रतिक्रिया को पॉवलॉव सकारात्मक प्रतिक्रिया अथवा प्रोकसाहन (Exitation) कहता है और दूसरी को निरोध (Inhibition) अथवा नकारात्मक प्रतिक्रिया कहता है। निर्धारण अथवा कडीशनिग में इनका बडा महत्त्व है। परिवेश के प्रति हमारी प्रतिक्रियाएँ इन दो प्रकारो की ही होती हैं और पॉवलॉव ने इनके शारीरिक कारणो की खोज की है। पावलाव के बाद इस क्षेत्र में और भी पर्याप्त अनुसन्धान हुए हैं। पॉवलॉव ने किसी भी सन्देह से परे यह स्थापित कर दिया है कि ये (प्रोत्साहन और निरोध) शारीरिक प्रतिक्रियाएँ हैं, इन्हें ठीक मापा तोला जा सकता है और इनके सम्बन्ध में विपर्यय किया जा सकता है। प्रसिद्ध फ्रेंच मनोवैज्ञानिक पीयर जेनेट को एक पत्र में, जो कि उसकी 'पत्रिका' 'जर्नल दे साइकोलोजी' में प्रकाशनार्थ लिखा गया था, पॉवलॉव हमारे प्रत्यक्ष रूप से एक मानसिक व्यवहार की अपने प्रोत्साहन–निरोध (Exitation–Inhibition) सिद्धान्त के अन्तर्गत व्याख्या करता है, जिसे यहाँ उद्धृत करना

१ देखें हमारा निबन्ध-आलम चरित्रार्थता और संस्कृति (कल्पना अक्टूबर १९५६)

रोचक तथा उपयोगी होगा। वह लिखता है—"आपने अपने लेख (Emotions of the Persecution Delusion) के तीसरे भाग में अधिकार (Possession) की अनुभूति की व्याख्या करने का प्रयास किया है। इसका आधार भूत स्वरूप यह है कि रोगी अपनी कमियो को ऑब्जेक्टेवाईज़ (विषयगुणान्वित) करते हैं और उन्हें दूसरो पर आरोपित करते हैं। वे स्वतन्त्र रहना चाहते हैं, किन्तु वे अनुभव करते है कि लोग उन्हें ऐसे दास समझते हैं, जिनका कार्य केवल दूसरो की आज्ञा पालन करना है। × × × स्वय वताना और दूसरो द्वारा वताया जाना, यह एक युगल का निर्माण करते हैं और इन्हे आसानी से एक दूसरे से पृथक नही किया जा सकता। इसी प्रकार, अपमान करने तथा अपमानित होने की क्रियाएं अपमान की सामान्य धारणा से वँधी हुई हैं। किन्तु इनकी अव्यवस्था से यह स्पष्ट है कि इन्हे घपलाया जा सकता है। इसकी शरीर वैज्ञानिक व्याख्या निम्न होगी। मान लीजिए, मीट्रोनोम का एक विशेप स्वरानुक्रम (Frequency) भोजन-सम्वन्वी (Alimentry) एक निर्वारित सकारात्मक उकसाहट का कार्य करता है, क्योकि इसके साथ भोजन प्रस्तुत किया जाता है। अत यह स्वरानुक्रम भोजन के विना भी भोजन-सम्वन्वी सकारात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। मीट्रोनोम का एक अन्य स्वरानुक्रम नकारात्मक उकसाहट का कार्य करता है, क्योकि यह भोजन द्वारा प्रति पुष्टीकृत नही किया गया होता, और इसलिए नकारात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है—जव इस स्वरानुक्रम का प्रयोग किया जाता है तव परीक्ष्य पशु इससे दूर हटता है। मीट्रोनोम का यह स्वरानुक्रम एक शरीर वैज्ञानिक युगल वनाता है, जिसके घटक विरोधी होने पर भी परस्पर सम्वन्वित हैं और इसीलिए परस्परानुपोपक हैं, अर्थात एक स्वरानुक्रम दूसरे के व्यापार को उकसाता और प्रतिपुष्ट करता है। यह एक विल्कुल ठीक शरीर-वैज्ञानिक तथ्य है। यदि एक सकारात्मक स्वरानुक्रम ऐसे कोप पर व्यापारित होता है जो किसी कारण से निर्वल है (अथवा हिप्नोटिक अवस्था में है) तव यह स्वरानुक्रम, अधिकतम के सिद्धान्त (Law of Maximum) के अनुसार, जो कि पुन शरीर-वैज्ञानिक स्तर पर प्रतिष्ठित है, कोप को निरुद्ध कर देता है। यह निरोध रेसीप्रोकल इडक्शन (परस्पर कोप क्रिया प्रसार) के सिद्धान्तानुसार, युगल के दूसरे सम्वद्ध कोप में निरोध के वजाय सकारात्मक उकसाहट उत्पन्न करता है। इसीलिए दूसरे से सम्वद्ध उकसाहट निरोध के वजाय प्रोकसाहन उत्पन्न करती है[1]।

इस प्रकार पावलाव ने प्रमाणित किया है कि किस प्रकार ऐसे मानसिक रोगो में पूर्णत. शरीर वैज्ञानिक कारण ही होते हैं। उसने प्रोकसाहन-निरोध

1 Pavlov-Selected works (Mocow).

विपर्यय के सम्बन्ध में कुत्ती पर असख्य प्रयोग किए है, जो उसे इस सम्बन्ध में कुछ निश्चयात्मक रूप से कुछ कहने के योग्य बनाते हैं।

यहा पावलाव से एक अन्य उद्धरण देने का लोभ हम सवरण नही कर सकते, जिसके अनुसार वह सकारात्मक या नकारात्मक प्रक्रिया को शरीर में मापनीय रूप से सचरण करते प्रदर्शित करता है। "यह स्पष्ट है कि त्वचा के प्रत्येक विन्दु के लिए भेजे मे प्रतिनिधित्व है। जब हम कन्धे पर त्वचा के एक विन्दु को उकसा कर भेजे के सम्बद्ध विन्दु पर एक स्नायविक प्रक्रिया प्रजागरित करते हैं, तो यह प्रक्रिया उसी स्थान पर केंद्रित नही रहती, प्रत्युत् यह गति करती है। पहले यह भेजे में ही गति करती है, और तब यह उकसाये गये स्थान की ओर प्रसरण करती है और वहा केंद्रित हो जाती है। स्वभावत प्रत्येक गति अपने प्रसार में कुछ समय लेती है। जब मैंने मस्तिष्क में कन्धे के सम्बद्ध त्वचा विन्दु पर एक निरोध प्रक्रिया को मूलित कर जघा पर एक दूसरे विन्दु को तुरन्त उकसाने का प्रयास किया तब तक निरोध प्रक्रिया का वहाँ तक प्रसार नही हुआ था। प्रक्रिया के वहा पहुचने में २० मिनट लगते हैं, इसीलिए जघा बीस मिनट में, उससे पूर्व नही, पूर्णत निरोधाभिभूत हो जाती है। केन्द्रीकरण में ४० मिनट लगते है। इसलिए कन्धे पर शून्य उकसाहट के समाप्त होने के एक मिनट पश्चात् हम दूसरे विन्दु (जघा) पर रीफ्लेक्स को पूर्ण पाते हैं, किन्तु मूल स्थान (कन्धे पर) रीफ्लेक्स पाच, दस या पन्द्रह मिनट पश्चात् भी विद्यमान नही होता।"*

पावलाव के इन दो उद्धरणो से यह एक दम स्पष्ट है कि कडीशड रीफ्लेक्स) निर्धारित प्रतिक्रिया) को उसने सपूर्ण मानसिक क्षेत्र पर लागू करने का प्रयास किया है और तथा कथित मानसिकता के शारीरिकता मात्र से अधिक न होने में उसे पूर्ण विश्वास है। पावलाव ने अन्तर्दृष्टि (Insight), चिन्तन तथा भावना और कल्पना जैसी धारणाओ का अत्यन्त जोरदार भाषा में खडन किया है। यदि यह स्वीकार किया जाय कि प्रत्येक मानसिक घटना के लिए किसी उकसाहट की अनिवार्य आवश्यकता है, तब निर्धारितता एक अपरिहार्य तथ्य है क्योंकि प्रत्येक उकसाहट, यदि वह सरल रीफ्लेक्स नही है तो, वह केवल निर्धारिता द्वारा ही उस घटना को प्रेरित कर सकती है। किन्तु कुछ विद्वानो का विचार है कि निर्धारिता एक सीमित क्षेत्र में ही सफल व्याख्या है, अन्य उन्नत पूर्ण तथा नष्टिष्ट मानसिक व्यापारो में इसे घटित नही किया

---

1 Pavlove's Selected works, p 408

जा सकता। जैसे सुलिवान के अनुसार, भाषा के क्षेत्र में निर्धारितता बच्चे के शब्द सीखने की प्रक्रिया पर पूर्णत लागू होती है, किन्तु वाक्यो के निर्माण में मानसिक व्यापार की व्याख्या केवल निर्धारिता द्वारा नही की जा सकती। किन्तु वास्तव में हम कभी भी एक-एक शब्द नही सीखते, हम सदैव वाक्या द्वारा भाषा सीखते हैं। उदाहरणत पानी शब्द हम सदैव, यह पानी है, पानी ठडा है, मुझे पानी दो, इस प्रकार सीखते हैं और निर्धारितता इसी प्रकार घटित होती है। इसके अतिरिक्त शब्दो का स-सम्बन्ध भी बहुत महत्वपूर्ण है।

सम्भवत निर्धारितता को घटित करने में सब से अधिक कठिनाई नवीन परिस्थितियो में प्रक्रिया के विश्लेषण में तथा नवीन कल्पना अथवा नवीन विचार के विश्लेषण में है। नवीन परिस्थिति का अभिप्राय है, जिसमें वस्तुओ के अथवा सवेदो के सम्बन्ध उन सब सम्बन्धो से भिन्न हो जो व्यक्ति के जीवन में पहले घटित हुए हो। किन्तु ये नवीन सम्बन्ध पूर्णत नवीन नही होते, पहले विद्यमान सम्बन्धो के असख्य संस्थानो की कुछेक कड़ियाँ अनुपस्थित होती हैं और उनके स्थान पर नवीन कडियाँ होती हैं, जिनका शेष कड़ियो से सम्बन्ध नही बैठता। तब प्राणी एक अनवस्था अथवा शून्यता का अनुभव करता है और सम्बन्ध 'बैठाने का प्रयास' करता है। यहां 'बैठाने का प्रयास' का प्रयोग भ्रान्तिजनक हो सकता है, यदि इसमें निहित एक चैतन्य नियन्ता-मन की गन्ध का परिहार नही किया जाता। यहाँ कोट्लर के प्रसिद्ध वन्दर का उदाहरण देखना उपयोगी हो सकता है जो, उसके अनुसार, फलो के उनकी पहुँच से अधिक ऊँचा टंगे होने पर, पास पडे हुए बक्सो का तथा दो छडियो का, जो एक दूसरी में फँसाई जा सकती है, फल उतारने में उपयोग करता है। अब वन्दर के लिए यह एक नवीन परिस्थिति है। वह पहले उछल-कूद करता है, फिर पास पडे हुए बक्सो को एक दूसरे के ऊपर रखता है, उसके पश्चात् वह उन पर चढ कर एक छडी का उपयोग करता है। किन्तु तब भी फल तक वह नही पहुँच पाता और थक कर बैठ जाता है। इसके पश्चात् वह उठता है और एकदम एक छडी में दूसरी छडी लगाकर फल उतार लेता है।

यहाँ वन्दर का सम्पूर्ण व्यवहार एक अत्यन्त उलझन पूर्ण विकसित मस्तिष्क का परिचय देता है। किन्तु इस व्यवहार को हम निर्धारण से स्वतन्त्र नही कह सकते, और अन्तर्दृष्टि जैसे रहस्यमय शब्दो के प्रयोग से इस व्यवहार की व्याख्या में हमें कोई सहायता नहीं मिलती। स्वय पावलाव ने भी कोट्लर के

इस प्रयोग की व्याख्या की है और साथ स्वय भी एक बन्दर पर प्रयोग करके उसकी तुलना की है। उसके अनुसार, बन्दर का यह व्यवहार सर्वथा नवीन नही है, उसे जगल मे भी ऐसी परिस्थितियो का साम्मुख्य करना पडता है और वहाँ वह पत्थरादि रखकर ऊँचे स्थान से फलादि उतारता है। उसके अनुसार, कोट्लर का बन्दर इन बक्सो को आकार के क्रम से नही रखता, प्रत्युत् जो भी बक्स हाथ में आजाए उसे ही रख देता है। इस प्रकार, यदि ये एक दूसरे पर ठीक नही टिके और गिर पडें तो वह दोबारा भी उन्हे ठीक क्रम से नही रखेगा, केवल उन्हें किसी प्रकार दूसरे पर ठहराने का प्रयास करेगा। इस प्रकार, बन्दर के लिए यह स्थिति सर्वथा नवीन नही है। जहाँ तक दो छडियाँ एक दूसरे मे मिलाने का सम्बन्ध है, वह भी नवीन स्थिति नही है। सम्भवत बन्दर एक छडी से फल न उतार सकने पर दो छडियो से काम लेना चाहेगा, पहले वह दोनो छडियो को दोनो हाथो में पकड कर भी प्रयास कर सकता है, और फिर वह दोनो को एक दूसरे के ऊपर रखने का प्रयास भी कर सकता है। उस अवस्था मे अकस्मात भी एक छडी में दूसरी छडी डाली जा सकती है। थक-कर बैठ जाने और तब उठकर दो छडियाँ मिलाने में किसी प्रकार की अन्तर्दृष्टि की सभावना व्यर्थ है। बन्दर सोचने के लिए बैठा हो, यह गलत है। वास्तव मे थक कर सब स-सम्बन्ध अव्यवस्थित हो जाते है और प्राणी अव्यवस्थित व्यवहार करने लगता है। बन्दर के लिए भी यही सत्य है, और बैठने के पश्चात् उसके स-सम्बन्ध व्यवस्थित हो जाते है।

यहाँ नवीन परिस्थिति में पुराने स-सम्बन्धो के प्रयोग को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना उपयोगी होगा। एक बन्दर को इसी प्रकार की सहायता से फल उतारने दिया गया और वहाँ एक दूसरा बन्दर भी रखा गया, जो यह सब देखता रहा। उसके पश्चात् उसे एक कमरे में बन्द कर दिया गया और बाहर से कुडी लगा दी गई। इसमे कुछ ऐसा प्रबन्ध भी किया गया कि बन्दर हाथ डालकर बाहर से कुडी खोलने का प्रयास करे। बन्दर ने दरवाजा खोलने का बहुत प्रयास किया किन्तु असफल रहा। तब उसने वहाँ पडे बक्स को भी नीचे रखा यद्यपि वहा उसकी आवश्यकता नही थी। यह उसने केवल पहले बन्दर को इस प्रकार सफलता लाभ करते देखने के कारण किया था। उसके लिए बक्स नीचे रखने और सफलता प्राप्त करने में एक स-सम्बन्ध स्थापित हो गया था। (पावलोव) इससे यह प्रमाणित होता है कि किस प्रकार हमारे मस्तिष्क में स-सम्बन्ध स्थापित होते है। हम भी अनेक बार इसी प्रकार व्यवहार करते है। किन्तु यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है। फल उतारने में एक व्यवहार की सफलता एक सम्पूर्ण प्रक्रिया है, अर्थात् फल उतारना रूप सफलता

जिम प्रक्रिया से मिली है वह इस सफलता के माथ एक सम्पूर्ण सस्थान बनाती है। इस सस्थान (Pattern) के स-सम्बन्धो का लगभग इसी प्रकार किसी परिस्थिति में उपयोग होना स्वाभाविक है, जैसे यदि फल के बजाय रोटी ऊँची पडी हो और बक्सो के बजाय पीपे हो। यद्यपि यहा भी कुछ साधारणी-करण होता है, किन्तु फल उतारने रूप सफलता का सफलता मात्र की सभावना का पर्याय हो जाना साधारणी-करण की सीमा है। साधारणी-करण और विश्लेपण दोनो के लिए पर्याप्त विकसित 'मस्तिष्क' की आवश्यकता "है।" भाषा साधारणी-करण और विश्लेपण को बहुत सम्मुन्नत कर देती है, किन्तु यह उसका आधार नही है, क्योकि स्वय भाषा का आधार हमारा साधारणी-करण का स्वभाव है। स्पष्टत इसकी व्याख्या के लिए अन्तर्दृष्टि की कल्पना आवश्यक नही है, जिसके लिए और भी भयानक कल्पनाओ में उलझना पड़े।

प्रत्येक स-सबन्ध के लिए हमारे मस्तिष्क में तत्सबन्धी मोटर सिस्टम का होना आवश्यक है। जैसे कुत्ते के पर्याप्त बुद्धिमान होने के बावजूद वह इस प्रकार बक्सो आदि को एक दूसरे से ऊपर रखकर कुछ करने का प्रयास नहीं करेगा, न उसे ऐसा सूझेगा ही। बन्दर के अधिक योग्य हाथ, जिसकी अगुलियाँ पृथक् पृथक् और बडी है, अपना प्रतिनिधि मोटर-सिस्टम मस्तिष्क मे रखती है। अत न केवल वह हाथ मे अधिक कार्य ही कर सकता है, वह तत्सबन्धी नवीन स-सबन्ध भी रख सकता है।

किन्तु हम वाट्सन के साथ इस बात में सहमत नहीं है कि यदि वह प्रारभ से उकसाहटो का नियत्रण करसके, वह किसी भी प्रकार के मनुष्य का निर्माण कर सकता है। जैसा कि हमने प्रथम तथा चतुर्थ निबन्धो में देखा है उकसाहट एकदम मिट्टी पर व्यापारित नही होती और न स-सबन्ध जड कडियो में होता है, उकसाहटो को एक सजीव (Vital) और "विशिष्ट" पदार्थ पर क्रियाशील होना होता है। उकसाहटो का नियत्रण बहुत अधिक प्रभावशाली होता है, किन्तु यह प्रभाव केवल सापेक्ष है। इस प्रकार हम सरल उकसाहट-रीफ्लेक्स और कडीशनिंग के सिद्धान्त को मनोविज्ञान का आधार भूत और सार्वभौम सिद्धान्त स्वीकार नही करते। स्वयं पावलाव ने निर्धारित रीफ्लेक्स को इतना सरल उकसाहट-प्रतिक्रिया व्यापार नही माना था। कम से कम अपने अनुसन्धान के पिछले दिनो में वह सजीव अंग(Vital Factor)को भी महत्वपूर्ण मानने लगा था। उसने स्नायविक क्रिया प्रसार(Irradiation), प्रशस्तीकरण तथा निरोध (Facilitation and Inhibition)इत्यादि सजीव प्रक्रियाओ का महत्व पूर्णत स्वीकार किया था।

यहा वाट्सोनियन व्यवहारवाद के सबन्ध में थोडा और विचार करना हम आवश्यक समझते हैं। व्यवहारवादी केवल प्राणी के व्यवहार को ही मनोविज्ञान का एकमात्र विषय मानते हैं। उनका कथन है कि किसी दूसरे प्राणी के सम्बन्ध में हम इससे अधिक नही जान सकते, और एक वैज्ञानिक होने के नाते प्रत्यक्ष से आगे जाने का हमें अधिकार नही ह। सामान्यतः मानवेतर प्राणियो के मनोविज्ञान का अध्ययन हम केवल उनके व्यवहार के अध्ययन द्वारा ही कर सकते है। मनुष्य के मन के ज्ञान का साधन भी हमारे पास केवल उसका व्यवहार ही है। जहां तक अपने मन का सम्बन्ध है, वहां भी हमें अनुभव आदि को कल्पना करने का अधिकार नही है, शरीर के भीतर होने वाले भौतिक परिवर्तनो द्वारा हम अपने व्यवहार के ज्ञान को प्रत्यक्ष वाह्य व्यवहार के ज्ञान के साथ मिलाकर पूरा करते है। किन्तु यदि मुझे कोई कहे कि मेरा अपन पुत्र के प्रति स्नेह उसे देखने पर मेरे मुंह पर आने वाली चमक तथा उसे उठाकर चूमने आदि व्यवहार का समवाय मात्र है, तो मैं कभी भी यह स्वीकार नही करूंगा। यदि कोई मेरी सूई चुभने की पीडा को मेरे एकदम हाथ उठाकर चीख मारने का पर्याय कहे तो मैं उस मनोवैज्ञानिक को सन्देह की दृष्टि से देखे विना नही रह सकता। अव यदि मेरा अनुभव मेरे व्यवहार का पर्याय नही है तो स्वभावत यही वात मनुष्य तथा अन्य प्राणियो पर भी लागू होती है। किन्तु कोई भी व्यक्ति अन्य के अनुभवो को उसके व्यवहार के अतिरिक्त नही जान सकता, यह सत्य है। किन्तु यदि एक व्यक्ति कुछ सोच रहा है और हम उसके व्यवहार से यह वता सकें कि वह सोच रहा है, तो भी हम यह नही वता सकते कि वह क्या सोच रहा है। ऐसे प्रश्नो का उत्तर देने के लिए व्यवहारवादियो को हमारे शरीर के अन्त. प्रदेशो के व्यवहार अथवा क्रियाओ को भी अपने क्षेत्र में रखना पडा, यद्यपि हम उन क्रियाओ को नही देख सकते। जैसे, 'विचारना केवल धीरे धीरे शब्दोच्चारण करना है और जव हम स्पष्टत उच्चारण नहीं कर रहे होते तब भी हमारे कठ का अन्त प्रदेश(Sphynax) हल्की उच्चारण क्रियाए कर रहा होता है। जब कोई क्रुद्ध होता है, तब यदि हमारी आंखें उसे नहीं भी देख पाती तब भी उसके रक्त-भाडो में आन्दोलन तथा मस्तिष्क में हल्की मोलीक्यूलर प्रक्रियाए होती हैं।'

हम इससे इन्कार नही करते किन्तु इस व्याख्या को एक सिद्धान्त के रूप में अथवा पूर्ण विश्लेषण के रूप में हम स्वीकार नही कर सकते। इसे हम केवल एक प्रविधि के रूप में स्वीकार कर सकते है—व्याख्या की प्रविधि (Method of Explanation) के रूप में नही, अनुसधान की प्रविधि के रूप में।

व्यवहारवाद एक पूर्ण व्याख्या की प्रविधि के रूप में शायद सबसे अधिक अशक्त है, क्योकि यह जिस पूर्व धारणा को लेकर चला है उसी के अनुसार यह स्वय खडित हो जाता है। व्यवहारवाद केवल प्रत्यक्ष को विज्ञान का आधार स्वीकार करता है और अभ्युपगमो को उसके लिए अवैध समझता है। किन्तु जैसा कि हमने ऊपर अभी देखा है, इसे अनेक तथ्यो की व्याख्या के लिए अभ्युपगमेन अन्त' शारीरिक क्रियाओ को भी व्यवहार के अन्तर्गत रखना पडा है। किन्तु स्पष्टत हम उस मस्तिष्क में, जो सोच भी रहा हो, कोई तत्सम्बन्धी क्रिया नही देख सकते। किन्तु यदि अन्त शारीरिक क्रियाओ सम्बन्धी इन विचारो को मान भी लिया जाए तो भी वास्तविकता के साथ इन्हें सगत नहीं किया जा सकता। जब मैं लाल रङ्ग देखता हूं, तब व्यवहारवादी के अनुसार मेरे मस्तिष्क में कुछ मोलीक्यूलर प्रक्रियाएँ होती हैं, किन्तु मैं वे प्रक्रियाएँ देखे या कल्पित किये बिना भी लाल रग देखता हूँ, और यदि व्यवहारवादी किसी प्रकार से मेरे मस्तिष्क की मोलीक्यूलर गतियो को सम्यक् प्रकारेण देख भी सके तब भी वह मेरे सवेद को नही देख सकता। अधिक से अधिक वह यह कह सकता है कि जब ऐसी-ऐसी मोलीक्यूलर गति मेरे मस्तिष्क में होती है तब मुझमें लाल रग का सवेद घटित होता है, जिसे कि वह मेरे मुंह से निकले शब्दो से जानता है। यह एक अत्यन्त उपहास्पद स्थिति है। व्यवहारवादी यदि यह दावा करता है कि मोलीक्यूलर गति और सवेद एक ही बात है, तब उससे तर्क करने का कोई लाभ नही हो सकता। किन्तु व्यवहारवाद की असंगति तब और भी स्पष्ट हो जाती है जब हम ज्ञान की प्रकृति के सम्बन्ध में विचार करते हैं। जो भी मैं देखता हूं वह वास्तव में मेरे मस्तिष्क में घटित होने वाली घटना है। व्यवहारवादी भी यह स्वीकार करता है, क्योकि वह उसके लिए मेरे मस्तिष्क में होने वाली मोलीक्यूलर प्रक्रियाओ को देखता है, किन्तु वास्तव में, तथा कथित मोलीक्यूलर प्रक्रियाएँ, जिन्हें वह मेरे मस्तिष्क में होते देखता है, उसके अपने मस्तिष्क में घटित होने वाले सवेद हैं। इस प्रकार, व्यवहार-वादी जब किसी अन्य के व्यवहार को देखने की बात करता है तब वास्तव में वह अपने मस्तिष्क में घटित होने वाले सवेदो को जानता है। दूसरो के सम्बन्ध में हम केवल दो प्रकार के ज्ञान का दावा ही कर सकते हैं—सहानुभूतिक ज्ञान तथा आनुमानिक ज्ञान। सहानुभूतिक ज्ञान के सम्बन्ध में काफी मतभेद को गुंजाइश है और यहां हम उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहते। हमने इस पुस्तक के अन्तिम अध्याय में इसकी प्रामाणिकता के विरुद्ध अपना मत दिया है। किन्तु इडिंगटन के अनुसार, सहानुभूतिक ज्ञान आनुमानिक ज्ञान से अधि प्रामाणिक है। उसने इसे स्मृति-ज्ञान के समान बताया है। उसके **अनुसार, यदि**

मुझे अपने सुदूर शैशव की कुछ घटनाएँ बताई जाएँ, तब मुझे वे उतनी ही पराई प्रतीत होंगी जितनी किसी अन्य के जीवन की घटनाएँ। यह ठीक है, किन्तु यदि मुझे प्रत्यक्षत उनका स्मरण नही होता तो वे मेरे लिए केवल शब्द है और यदि मैं उनका स्मरण कर पाता हूँ तो वे पूर्णत सहानुभूतिक ज्ञान से भिन्न हैं, चाहे वे कितनी भी धुधली प्रतीत क्यो न हो। इस सम्बन्ध में हमने शरीर और मन निबन्ध में विस्तार पूर्वक विचार किया है। यदि हम स्मृति-ज्ञान का विश्लेपण रसल की स्मृति-कारणता (Mnemic Causation) के अनुसार भी करें तब भी स्मृति ज्ञान और सहानुभूतिक ज्ञान में कोई समता नही है।

इसका अर्थ यह नही कि हम सहानुभूतिक ज्ञान का निषेध करते है, किन्तु हम यह कहना चाहते है कि वह प्रत्यक्षज्ञान से भिन्न रूप में हमें नही होता, अत उसके लिए एक अन्य नाम रखने की आवश्यकता नही है। जब वह प्रत्यक्ष न होकर केवल शब्दादि के द्वारा हमे प्राप्त होता है तब वह अनुमेय ज्ञान के अन्तर्गत हो सकता है। इस प्रकार व्यवहारवाद एक भ्रान्त धारणा पर आधारित है।

(३)

मनोविज्ञान पर यह दोप लगाया जाता है कि वह एक अविभाज्य, सावयव रूप मे सघटित (Organic unity) मन का विश्लेपण कर उस विश्लिष्ट को ही वास्तविक समझ लेता है। स्वय मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी इस विश्लेपणवाद के विरुद्ध विद्रोह हुआ है। जेस्टेल्ट-मनोविज्ञान तथा मैक्डुगल की प्रवृत्ति-मनोविज्ञान (Instinct Psychology) का इस प्रसंग में नाम लिया जा सकता है। मैक्डुगल अपनी पुस्तक "An Out Line of Psychology" में इस दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए लिखता है—"किन्तु कुछ लोग (और मुझे आशा है कि यह पुस्तक उनकी संख्या में वृद्धि करेगी) इच्छाओं के भीषण ऊहापोह का, अथवा किसी आन्तरिक नैतिक संघर्ष का, किसी तीव्र वेदना का, किसी अतृप्त आकांक्षा का, सहानुभूति की किसी गम्भीर अनुभूति का, भीषण क्रोध अथवा भयपूर्ण आवेग का स्मरण कर (शरीर वैज्ञानिक मनोविज्ञान के प्रतिपादनों कौशल्य) स्वीकार करने में झिझकेंगे, वे अपने आप से पूछेंगे, क्या ऐसे सिद्धान्त में कुछ आधार भूत गलती ही नहीं जो यह कहता है कि इन अनुभूतियों का इस संसार में कोई अस्तित्व नहीं है? क्या इस विचार में कोई बड़ा

छिद्र नही रह गया है, अथवा यह भ्रान्त आधार (Premise) पर ही तो आधारित नही है कि इसके परिणाम इतने थोथे निकलते हैं, जो परिणाम कि सब युगो के सब नैतिक नेताओ के उपदेशो के विरोधी है, और जो मनुष्य को एक अत्यन्त क्षुद्र जीव से अथवा टेस्ट ट्यूब में पड़े स्फटिक से अधिक सृजन-शक्ति सम्पन्न अथवा आत्म निर्वारण में स्वतत्र नही मानते, जो कि बाइबल को, शेक्सपीयर, बीथोवन अथवा न्यूटन के शब्दो को परमाणुओ का संकलन मात्र मानते हैं ?" इत्यादि

किन्तु हमारे विचार में, यह समझना कठिन नही है कि इस प्रकार सब वस्तुओ को ज्यो का त्यो, केवल उनके सौन्दर्य के आधार पर स्वीकार करना सम्भव नही है, कम से कम वैज्ञानिक अनुसन्धान और दार्शनिक विश्लेषण इस प्रकार नही चल सकते। एक दार्शनिक के लिए, जिसे विभिन्न दृश्यो और प्रदत्तो (Data) का मूल्यांकन और समन्वय करना है, यह पद्धति और भी असम्भव है। यह कहा जा सकता है कि यह पद्धति ही भ्रान्त है, किन्तु जब कि आप उस पद्धति को स्वीकार करते हैं तो उसमें एक सुविधापेक्षी (Arbitrary) सीमा निर्धारित नही कर सकते। कोई कवि को अतर्क सम्मत नही कहता, जब वह अपनी अनुभूतियो को सच्ची कहता है, कोई धार्मिक व्यक्ति के अनुभवो को नही झुठलाता, यदि वह कहता है कि वैसा वह सचमुच ही अनुभव करता है, किन्तु एक वैज्ञानिक या दार्शनिक भी पूर्णत न्याय पर है यदि वह इन अनुभूतियो का विश्लेषण और वर्गीकरण करता है। हम सुन्दर रूप देखते हैं, अब यदि भूत वैज्ञानिक हमें बताता है कि वास्तव में यह केवल परमाणुओ का एक समवाय मात्र है और किरणें केवल ईथर में विशेष मापानुक्रम में लहर प्रसार मात्र है, तो वह कोई गलती नही कर रहा है, यद्यपि वह 'प्रसाद' को नही झुठलाता जब वह किरण से पूछता है कि वह इस प्रकार क्यो बिखरी है और वह किसके अनुराग में रँगी है? एक मनोवैज्ञानिक के लिए शेक्सपीयर कुछ सवेदों, अभ्यासो और सम्बन्धो आदि का सकलन ही हो सकता है। शेक्सपीयर की विशेषता शेक्सपीयर होने में है, किन्तु शेक्सपीयर क्या है? यदि मैक्डुगल का ही विचार माना जाए तो, कम से कम वह एक शरीर है जिसमें भय, प्यार, सदासद् की अनुभूतियाँ तथा तर्क, विचार और कल्पनाएँ इत्यादि हैं। इतना कहने में भी आप विश्लेपण और वर्गीकरण करते है, क्योंकि अन्यथा, उसकी प्रत्येक अभिव्यक्ति में उसके सम्पूर्ण नही तो, कम से कम, व्यक्तित्व के बड़े भाग का समावेश होता है। यदि उसकी एक उक्ति को अमुक प्रवृत्ति, प्रशिक्षण, अभ्यास, कडीशनिंग इत्यादि में विश्लेपित किया जा सकता है, जैसा कि मैक्डुगल करेगा ही, तो कोई कारण नही कि आगे विश्लेपण को आपत्ति

जनक क्यों समझा जाए। इस विश्लेषण में हम इस बात का निषेध नही करते कि शेक्सपीयर और न्यूटन सामान्य मर्त्य से भिन्न हैं, उनमें कुछ विशेष प्रतिभा है, अथवा ईसा को वास्तव में ही एक स्वर्गीय अनुभूति हुई थी, किन्तु हम निश्चित रूप से यह स्वीकार नही करते कि उनका सामान्य मर्त्य के स्वर पर विश्लेषण नही किया जा सकता।

वास्तव में विश्लेषण मे कुछ कठिनाइयाँ है, कभी-कभी विश्लेषण के पश्चात् यह जानना काफी कठिन हो जाता है कि परिणाम वास्तविक है या कि हमारा ही आविष्कार है। प्रस्तुत प्रसग में भी, सवेद आदि विश्लेषण के परिणाम वास्तविक है, याकि हमारे आविष्कार है? दूसरी कठिनाई यह है कि हम विश्लेषण में विश्लेष्य को समाप्त ही तो नही कर देते? प्रथम के उदाहरण रूप में हम (Spectrum) को प्रस्तुत कर सकते है इसके रग, जो कि हमारे विश्लेषण के परिणाम है, वे पहले से ही विद्यमान थे अथवा हम अपने यत्र मे किरणो के विभेद द्वारा उनका आविष्कार करते हैं? * दूसरा उदाहरण एक सुन्दर चित्र हो सकता है, क्या इसका विश्लेपण सभव है? यदि हम इसका नाक कुछ छोटा कर दें तो यह सुन्दर नही रहेगा, यदि इसके नाक में की एक रेखा थोडी सी और झुका दें तो यह और अधिक सुन्दर हो जाएगा, तो क्या यह कहा जा सकता है कि रेखाओ का यह गाणितिक अनुपात चित्र का सौन्दर्य है, और कि इस चित्र मे रेखाओ का अनुपात वदलने से सौन्दर्य भी वदला और कम-अधिक किया जा सकता है? प्रस्तुत प्रसग में, एक अनुभूति अथवा प्रतिभास (Intuition) अथवा एक विचार क्या विश्लेश्य हैं? क्या उन्हें केवल हमारे विश्लेपण के परिणाम कहा जा सकता है?

यहाँ प्रथम प्रश्न (आविष्कार सवधी) अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसका उत्तर उतना ही कठिन है। भूत विज्ञान में श्वेत किरणो को विस्खलित कर हरितादि किरणें प्राप्त की जाती है। भूत वैज्ञानिकों ने जव यह देखा कि "प्राकृतिक श्वेत प्रकाश पर्याप्त अनिश्चित विस्खलन है, जिसमें नियमितता हमारी परीक्षण की स्पेक्ट्रोस्कोपिक प्रणाली द्वारा उत्पादित है, तो उन्हें यह आशका होने लगी कि क्या हम अपने प्रयोगो द्वारा परीक्ष्य में इतना अधिक हस्तक्षेप तो नही कर रहे हैं कि हम जो खोजना चाहते हैं उसे विनष्ट ही कर देते है?" और "क्या स्पेक्टरोस्कोप विशेप नियमितता (Periodicity) की केवल छँटनी करता है अथवा उसे श्वेत प्रकाश पर आरोपित करता है, यह केवल

*. A S Eddington. The Philosophy of Physical Science, Chap. "Discovery or Manufacture?"

१--प्रक्रिया के स्रोत

विभिन्न प्राणियो में हम प्रक्रियाओ की असख्य विभिन्नताए देखते है। जो जातियां शरीर वैज्ञानिक स्तर पर एक दूसरे से जितना ही अधिक दूर होती है उनकी भिन्नता का नाप भी उतना ही अधिक होता है—जैसे इसका भी कोई निश्चित परिमाण होता हो। यद्यपि यह बात कुछ विचित्र सी जान पडती है किन्तु यदि हम शारीरिक-प्रकृति और प्रक्रिया के निश्चित कारण-कार्य सबध को जान सके तो इसमें कोई भी आश्चर्य की बात नही रह जाएगी। यह एक सामान्य सी बात है कि मनुष्य और चीटी दो भिन्न जातियां है और इन दोनो में 'असख्य युगो' का अन्तर है, जिसका नाप उनके शरीर निर्माण की भिन्नता के आधार पर ही हो सकता है, इसके विपरीत मनुष्य और बन्दर मे बहुत कम अन्तर है और इनसे भी कम अन्तर मनुष्य और शिपेंजी में है। ये अन्तर अनेक बाह्य और आन्तरिक स्तरो पर हो सकते है — मनुष्य और शिपेंजी मे हाथ की बनावट का अन्तर और टागो की आनुपातिक लबाई तथा बनावट का अन्तर अन्य आन्तरिक तथा गभीर अन्तरो की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है, और ये अन्तर भी निश्चित रूप से उनकी प्रक्रिया के स्तर को निश्चित करते हैं। किन्तु ये 'स्पष्ट' अन्तर महत्वपूर्ण होने पर भी 'प्रच्छन्न' अन्तरो की अपेक्षा कही कम महत्वपूर्ण और सुदूरगामी है क्योकि ये अग केवल प्राणी की उस अन्त प्रेरणा को क्रियान्वित करते है, जो अन्त प्रेरणा प्राणी के सुदूर भीतरी भागो के रासायनिक और स्नायविक प्रबन्धो मे रासायनिक और भौतिक स्तर पर जन्म लेती है। इस प्रकार हम अपने अगो की उपमा इजन से दे सकते है जो अपने भीतर के वाष्प या बिजली की लहरो से उत्पन्न शक्ति-सचयो को क्रियान्वित करते है। जैसा कि हम दूसरे निबन्ध में विस्तार से देखेंगे, प्रक्रियाओ में अन्तर के अन्य भी अनेक कारण हो सकते है, जैसे यदि इजन को रेल पर न चल कर पृथ्वी पर चलना पडे, अथवा कार को समतल सडक पर न चलकर पथरीली सम-विषम भूमि पर चलना पडे तो एक ही जैसी दो कारो या गाडियो में अपने आप में कोई अन्तर न होने पर भी उनके शक्ति-सचयो के क्रियान्वित होने में अन्तर होगा। इसे सामान्यत परिस्थितिक अन्तर भी कह सकते हैं। यह अन्तर स्पष्टत ही वासना प्रेरित प्राणी और परिवेश के सपर्क से उत्पन्न प्रक्रिया-गत अन्तर है। किन्तु एक ही जाति का एक ही परिवेश होने पर दो भिन्न प्रक्रियाए दो भिन्न वासनाओ का क्रिया-व्यापार होगी, जो कि दो भिन्न

हार्मन रस-स्रावक कोपो तथा उनके रसो के विपय मे विशेष ज्ञातव्य
तथा उनके प्रक्रिया पर प्रभाव का सिहावलोकन

ग्रथियाँ	हार्मन	हार्मन का क्रिया-व्यापार	सामान्य टिप्पणी
पृष्ट-पिच्यूइटरी (Interior Pituitary)	थाइरोट्रोपिक	थाइराइड कोप-रसो के स्राव को उत्तेजित करता है ।	रक्त मे थाइरोइड कोप-रसो की कमी होने पर यह प्रवाहित होता है ।
	ऐड्रेनोकोर्टिको-ट्रोपिक	ऐड्रेनल कोर्टेक्स के रस-स्रावन को उत्तेजित करता है ।	इस रस के विना ऐड्रेनल-कोप वहुत निवल और रस-प्रवाहित करने मे असमर्थ हो जाता है, किन्तु सर्वथा नि शेप नही होता ।
	ल्यूटोजेनिक हार्मन अथवा प्रोलैक्टिन	मैम्मरी कोपो से दूध के स्राव को उत्तेजित करता है ।	इस रस का स्राव शिशु दर्शन से अथवा वात्सल्य की अधिक उत्तेजना मे वहुत अधिक वढ जाता है ।
	ल्यूटीनाइजिंग हार्मन	यह रस अडकोप तथा ओवरी की आन्तरिक ग्रथियो के विकास तथा परिपाक मे सहायक होता है, इन कोपो के रसो के स्राव का कारण बनता है । यही रज कण या ओवा के परिपाक तथा	इससे विशेपत नर के गोनाड्ज प्रभावित होते है ।

	गर्भाशय में उसके प्रवेश का कारण होता है। यह मादा में कॉर्पुल्यूटम् या (स्तन पायियो में प्रोजेस्टेरोन को उत्तेजित करने वाले एक अचिरस्थायी कोपविशेष) के निर्माण का तथा नर में ऐंड्रोजन के स्राव का कारण होता है।	
फोल्लिकल स्टिमुलेटिंग हार्मन	गोनाड्ज को उत्तेजित करनेवाला रस, यह ओवरी मे एक विशेप अग फोल्लिकल को भी उत्तेजित करता है और वीर्य प्रवाहित करने वाली नलियो को भी पुष्ट करता है।	फ स. ह से व्यापारित ओवरी में ऐस्ट्रोजन का प्रवाह तीव्र हो जाता है। दोनो ही लिगो में ल ह और फ स. ह. विशेप क्रिया व्यापारो को व्यापारित करने के लिए अनिवार्य है।
(गोथ) अथवा अभिवृद्धि	हड्डियो को शक्ति और वृद्धि प्रदान करता है तथा प्रोटीन के सग्रह के लिए आवश्यक है।	बचपन में इसका अधिक स्राव व्यक्ति को असन्तुलित रूप से जिन्न के समान लबा-चौडा बना देता है, और बडी आयु में इसकी अधिकता मुख और हाथ की हड्डियो को बहुत बढा देती है।
डायाबेटोजेनिक	यह प्रोटीन और फैट्स को कार्बोहाइड्रेट में बदल देता है, तथा कार्बोहाइड्रेट के व्यय को रोकता है।	इसका अधिक स्राव रक्त म साड (Sugar) की मात्रा को बढा देता है, और कभी इस मात्रा को आवश्यकता से कम कर देता है।

ग्रंथियाँ	हार्मन	हार्मन का क्रिया-व्यापार	सामान्य टिप्पणी
अग्रपिच्यूइटरी	ऐंटीड्यूरेटिक	गुदा द्वारा शरीर के पानी को नष्ट होने से रोकता है।	इसकी कमी या अनुपस्थिति प्यास और यूराइन की अधिकता में परिणत होती है।
अग्रिम पिच्यूइटरी	पिट्रेसिन	यह रक्त के दबाव को, रक्त व रक्त वर्तन की पेशियो के सकोचन के द्वारा बढाता है।	
मध्य पिच्यूइटरी	इटर मेडिन	त्वचा के नीचे की ग्रथियो के मेम्ब्रेन (वाह्य पर्दा) मे के काले धब्बो के विस्तार को उकसाता है और मछली तथा मेढक इत्यादि प्राणियो में काले रग का कारण होता है।	इस हार्मन का स्राव यान्त्रिक पक्रिया (Reflex action) मे भी व्यापारित हो जाता है, जैसा कि हम विस्तार मे तीसरे निबन्ध मे देखेंगे।

	मेफड फेक्टर (हार्मन)	थाइराइड ओर ऐड्रेनल ग्रथियो के अपसारण के बाद यह प्राणी में प्रारम्भिक रासायनिक क्रियाओ को प्रेरित करता है।	इजेक्शन से इसका प्रभाव देखा गया है।
थाइराइड	थाइरोक्सिन तथा अन्य रस	कार्बोहाइड्रेट को खपाते है, हृदय की धडकन को नियमित रखते है तथा अगो के विकास और आकृति के परिवर्तन मे कारण होते है।	ये हार्मन अपने स्राव के लिए पृष्ठ-पिच्यूइटरी के रस स्राव पर निर्भर करते है। इनका स्राव अर्ध-जलचारी जन्तुओ-मेंढक इत्यादि मे विशेष रूप मे आकृति-परिवर्तन में कारण होता है। इस हार्मन की कमी किन्ही अज्ञात कारणो मे मनुष्य में मानसिक और शारीरिक निर्बलता उत्पन्न कर देती है।
पाराथाइराइड	पाराथोर्मोन	रक्त में केल्शियम और फास्फोरस के अनुपात को ठीक रखता है।	यह पिच्यूइटरी के अपसारण से प्रभावित नही होता। इसकी कमी रक्त में केल्शियम की कमी और फास्फोरस की अधिकता मे परिणत होती है।

ग्रंथियाँ	हार्मोन	हार्मोन का क्रिया-व्यापार	सामान्य टिप्पणी
एड्रेनल कोर्टैक्स	कोर्टिकोस्टेरन, हाइड्रोसाइ-कोर्टिकोस्टेरन	ये कार्बोहाइड्रेट के रासायनिक क्रिया व्यापार में सहायक होते हैं।	इनकी कमी से भोजन और पानी का ग्रहण कम हो जाता है, शरीर का तापमान बहुत कम हो जाता है, नाड़ी की स्पन्दन-गति कम हो जाती है, गुर्दों में नमक की कमी हो जाती है तथा मसल्ज निर्बल पड़ जाते हैं।
मध्य एड्रेनल	एड्रेनलिन	लिवर (Livor) अधिक शूगर निर्माण करने लगता है। रक्त का दबाव बढ़ जाता है और हृदय की गति तीव्र हो जाती है।	
मादा की यौनोत्तेजक रस-थियाँ अथवा गोनाड्ज	एस्ट्रोजन	यह मादा में कामोत्तेजना उत्पन्न करता है। इसी से मादा की सम्भोग-सम्बन्धी क्रियाएं निर्धारित होती हैं।	यह रस स्त्रियों में यौवनोदय के समय को निश्चित करता है। इसकी पर्याप्त मात्रा नर को देने पर उसमें यौवनोदय में देर हो जाती है।

	प्रोजेस्टेरोन	यह गर्भ को शिशु के धारण और पालन-पोषण (भोजन के द्वारा) के योग्य बनाता है।	
	प्लासेंटा	यह अण्डकोष और ओवरी के रस प्रवाह को उत्तेजित करता है।	इसे 'पृष्ठ-पिच्यूइटरी-हार्मन के समान' भी कहा जाता है क्योंकि इसका वही कार्य है जो ल्यूटिनाइजिंग हार्मन का होता है।
नर के गोनाड्ज	टेस्टोस्टेरोन, एण्ड्रोस्टेरोन, हाइड्रोएण्ड्रोस्टेरोन	प्राथमिक और उद्दिष्ट मैथुन प्रक्रियाओं को प्रेरित करते हैं।	इन्हें एण्ड्रोजन भी कहते हैं। इनमें टेस्टोस्टेरोन सब से अधिक प्रभावशाली होता है। यह टेस्टिस के अन्तरभाग में स्थित ग्रंथियों में प्रवाहित होता है।

Physiological Psychology से उद्धृत।

रासायनिक-भौतिक स्थितियो की परिणाम होती है, इसलिए उन दो वास-नाओ की तृप्ति का आनन्द भी सर्वथा भिन्न-भि न्न होगा जो उन दो भिन्न वासनाओ की धकेल (Push) की मात्रा और प्रकृति के अनुसार निर्धारित होगा—जैसे मैथुन वासना और वात्सल्य दो सर्वथा भिन्न, अन्त-शारीरिक रासायनिक स्थितियो की परिणाम है और इसी से इनकी सन्तुष्टि का आनन्द भी सर्वथा भिन्न-भिन्न रूप में ही होता है। प्राणी की इच्छा-अनिच्छा, वासना-वितृष्णा तथा सशक्तता-अशक्तता इत्यादि मुख्यत इन्ही पर निर्भर है। इसमे जीवन में मन की स्थिति को समझने के लिए इन अन्त शारीरिक रासायनिक द्रव्यो का तथा उन स्नायु-ततुओ का ज्ञान आवश्यक है जो इन प्रक्रियाओ के स्रोत है। इस निबध में हम केवल इन्ही को देखेंगे जब कि दूसरे निबध में इनसे प्रेरित प्रक्रियाओ के परिवेश मे सबध तथा उनकी सार्थकता को समझने का प्रयास करेगे।

वासना-प्रेरक रासायनिक रसो को हार्मन, विटेमन तथा ऐंजाइम* कहते है। ये यद्यपि तीनो ही महत्त्वपूर्ण है किन्तु मुख्य और सर्वाधिक महत्त्वपूण हार्मन ही है। ऐंजाइम्ज़ के प्रभाव को हम चतुर्थ निबध में देखेंगे।

हार्मन वे विशेष जीवन-रस है जो विभिन्न कोषो के ग्रथियो में बनते है, जैसा कि चित्र १ और हार्मन चार्ट में देखा जा सकता है। इनका शरीर को उन भीतरी रासायनिक प्रक्रियाओ में भी पर्याप्त महत्त्व है जो भोजन इत्यादि के परमाणुओ को तोडने और उन्हें विभिन्न भागो मे बॉटने से सबध रखती है, किन्तु हमारे इस निबध के प्रकरण से इसका कोई सबध नही है। हमारे लिए इनकी केवल उस प्रकृति का ही महत्व है जो प्राणी की प्रक्रिया को स्फूर्तित करती है। प्राणी हार्मन तथा ऐंजाइम्ज का निर्माण अपने शरीर के भीतर ही करता है जबकि विटेमन भोजन के रूप में बाहर से प्राप्त करता है। किन्तु ऐंज़ाइम्ज़ और हार्मज़ में भी बडा अन्तर है, जहाँ हार्मन ऐंज़ाइम्ज़ के समान ही ग्रथियो में उत्पन्न होने पर भी अपने प्रभाव में ग्रथियो तक सीमित नही रहते वहाँ एंज़ाइम्ज़ को क्रिया ग्रथियो तक ही सीमित रहती है—जिन ग्रथियो में वे उत्पन्न होते है। इसके अतिरिक्त ऐंजाइम्ज़ का सबध (सभवत) सीधा जेन्ज़ (Gens) से है जबकि हार्म एंज़ाइम्ज़ से निर्मित होते है (१)।

बहुत से हार्मज़ शरीर में भोजन इत्यादि के समीकरण तथा शरीर की अन्य रासायनिक क्रियाओ के सचालन का भी कार्य करते है और अपनी इन क्रियाओ मे ये प्राणी के स्वभाव इत्यादि को भी प्रभावित करते है, किन्तु हमें यहाँ

---

*Hormone, Vitamin and Enzimes

रासायनिक-भौतिक स्थितियो की परिणाम होती है, इसलिए उन दो वासनाओ की तृप्ति का आनन्द भी सर्वथा भिन्न-भिन्न होगा जो उन दो भिन्न वासनाओ की धकेल (Push) की मात्रा और प्रकृति के अनुसार निर्धारित होगा—जैसे मैथुन वासना और वात्सल्य दो सर्वथा भिन्न, अन्त-शारीरिक रासायनिक स्थितियो की परिणाम है और इसी से इनकी सन्तुष्टि का आनन्द भी सर्वथा भिन्न-भिन्न रूप में ही होता है। प्राणी की इच्छा-अनिच्छा, वासना-वितृष्णा तथा सशक्तता-अशक्तता इत्यादि मुख्यत इन्ही पर निर्भर है। इनसे जीवन में मन की स्थिति को समझने के लिए इन अन्त शारीरिक रासायनिक द्रव्यो का तथा उन स्नायु-ततुओ का ज्ञान आवश्यक है जो इन प्रक्रियाओ के स्रोत है। इस निवध में हम केवल इन्ही को देखेगे जब कि दूसरे निवध मे इनसे प्रेरित प्रक्रियाओ के परिवेश से सबध तथा उनकी सार्थकता को समझने का प्रयास करेंगे।

वासना-प्रेरक रासायनिक रसो को हार्मन, विटेमन तथा ऐंजाइम* कहते है। ये यद्यपि तीनो ही महत्त्वपूर्ण है किन्तु मुख्य और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हार्मन ही है। ऐंज़इाम्ज़ के प्रभाव को हम चतुर्थ निबध में देखेगे।

हार्मन वे विशेष जीवन-रस है जो विभिन्न कोषो के ग्रथियो में बनते है, जैसा कि चित्र १ और हार्मन चार्ट में देखा जा सकता है। इनका शरीर की उन भीतरी रासायनिक प्रक्रियाओ में भी पर्याप्त महत्त्व है जो भोजन इत्यादि के परमाणुओ को तोडने और उन्हें विभिन्न भागो मे बॉटने से सबध रखती है, किन्तु हमारे इस निबध के प्रकरण से इसका कोई सबध नही है। हमारे लिए इनकी केवल उस प्रकृति का ही महत्व है जो प्राणी की प्रक्रिया को स्फूर्तित करती है। प्राणी हार्मन तथा ऐंजाइम्ज़ का निर्माण अपने शरीर के भीतर ही करता है जबकि विटेमन भोजन के रूप मे बाहर से प्राप्त करता है। किन्तु ऐंजाइम्ज और हार्मज़ में भी बडा अन्तर है, जहाँ हार्मन ऐंजाइम्ज़ के समान ही ग्रथियो में उत्पन्न होने पर भी अपने प्रभाव में ग्रथियो तक सीमित नही रहते वहाँ एंजाइम्ज़ को क्रिया ग्रथियो तक ही सीमित रहती है—जिन ग्रथियो में वे उत्पन्न होते है। इसके अतिरिक्त ऐंजाइम्ज़ का सबध (सभवत) सीधा जेन्ज़ (Gens) से है जबकि हार्म एंजाइम्ज़ से निर्मित होते है (१)।

बहुत से हार्मज़ शरीर में भोजन इत्यादि के समीकरण तथा शरीर की अन्य रासायनिक क्रियाओ के सचालन का भी कार्य करते है और अपनी इन क्रियाओ मे ये प्राणी के स्वभाव इत्यादि को भी प्रभावित करते है, किन्तु हमे यहाँ

*Hormone, Vitamin and Enzimes

उन हार्मंज पर ही विचार करना है जो सीधे और गभीर रूप से प्राणी के स्वभाव तथा प्रक्रियाओ इत्यादि का निर्धारण कर सकते हैं। कुछ हार्मन तो प्राणी के अगो तथा आकृति तक को बहुत अधिक प्रभावित कर सकते हैं। जैसे गोनाडल (सेक्स) हार्मन, एड्रेनल हार्मन इत्यादि। ये हार्मन न केवल कर्मेन्द्रियो को ही प्रभावित करते हैं और प्राणी को तदीय प्रक्रियाओ में सशक्त या अशक्त बनाते हैं प्रत्युत उसकी आकृति, वासनाओ तथा भूख प्यास तक को बदल डालते हैं।

नर की काम-उत्पादक ग्रथि (टेस्टिस) तदीय रसो को शरीर के अन्त मार्गो मे प्रवाहित कर देती है जिससे कि सभी प्रकार की प्राथमिक और उद्दिष्ट (Secondary) काम-चेष्टायें तथा तदीय अग इत्यादि निर्मित होते हैं। मनुष्यो मे सामान्यत नर में चौदह से सोलह वर्ष की आयु में शरीर में टेस्टिस-ग्रथि के रसो मे निर्धारित परिवर्तन होते देखे जा सकते हैं—इन रसो से ही उसके अग पकते है, मुख पर श्मश्रु फूटने लगती है और वह 'युवक' होने लगता हैं। अन्य प्राणियो में तो परिवर्तन और भी गभीर होते है, जिन्हे विकासवाद के प्राचीन समर्थक सेक्सुअल-सिलेक्शन कहते थे। इन परिवर्तनो मे मुख्य, कुछ पक्षियो के पखो मे विशेष प्रकार के काटें से या सीगो की उत्पत्ति (चोट करने के लिए), मुकुट का आविर्भाव तथा पजो का काठिन्य इत्यादि है। यदि अपरिपक्वावस्था या कैशोर्य में ये ग्रथिया शरीर मे निकाल ली जाए तो जो जननेन्द्रिया शेप रहती है (जैसे वीर्य भाड इत्यादि, मूत्रेन्द्रिय नहीं) वे बहुत छोटी हो जाती है, इसी प्रकार उद्दिष्ट (secondary) मैथुन प्रक्रियाओ (सभोग त्यादि) के भी नर अयोग्य हो जाता है, कठ मे नरत्व सुलभ परिवतन नही होते, इसी प्रकार शेप शरीर में भी पुमत्व-जन्य अन्य परिवर्तन नही होते।

पशुओ में मनुष्य से अधिक परिवर्तन का कारण सभवत यही हो सकता है कि उनमे कामोत्पादक रस—गोनाडल हार्मन्ज़—अधिक प्रभावशाली होते है। कुक्कुट में इस ग्रथि का अपसारण मुकुट और पखो इत्यादि की वृद्धि को रोक देता है, इसी प्रकार हरिण में उनके शृगो की उत्पत्ति नही हो पाती। जिन जातियो मे दोनो लिगो में ही सीग होते हैं—जैसे गाय में, उनके नर में इस ग्रथि का अपसारण उसके सीगो की आकृति बदल देता है, जैसे कि हम बैलो और साडो के सीगो की बनावट में अन्तर देखकर सहज ही अनुमान कर सकते हैं। बैलो के सीग बहुत कुछ गाय के साथ मिलते-जुलते होते हैं।

प्रेरित भर करने के लिए हैं । वास्तव में ये सभी ग्रथिया एक-दूसरे के स्राव पर वहुत कुछ निर्भर करती है और एक दूसरे के कार्य को अत्यधिक प्रभावित करती है। इस प्रकार के रसो में पिच्यूइटरी रस सबसे अधिक प्रमुख है । यह अनेक रसो को प्रवाहित करती है, जिन्हें ट्रापिक हार्मन (Tropic Hormons) कहते है । ये रस शरीर की अन्य ग्रथियो के रस-प्रवाह को प्रेरित या निरुद्ध करते है, इसी से इस ग्रंथि को अधिष्ठाता ग्रथि भी कहा जा सकता है । किन्तु इन ग्रथियो के स्राव-निरोध केवल पिच्यूइटरी पर ही आश्रित नही हैं, और भी अनेक रासायनिक प्रक्रियाये शरीर मे होती है जो इन्हे प्रेरित या निरुद्ध करती है। अनेक ग्रथियो के अनेक स्राव तो स्नायु-केन्द्र अथवा मस्तिष्क केन्द्रो से आती हुई लहर (Impulse) से ही निर्धारित होते हैं । इसलिए ग्रथियो के रसो का क्रिया-व्यापार उनके पारस्परिक सबध, स्नायु-केन्द्र की स्थिति और उसके सबध तथा अन्य अनेक रासायनिक प्रक्रियाओ की सापेक्षता में निर्धारित होता है।

यद्यपि ग्रथि-रसो की प्रकृति और शरीर की सामान्य रासायनिक प्रक्रिया में उनका स्थान और प्राणी के व्यवहार या केन्द्रीय-स्नायु ततु तथा ज्ञानेन्द्रियो पर उनका प्रभाव, समझना अत्यन्त कठिन है, तो भी इन ग्रथियो के अपसारण से, या इनके रसो के इजेक्शन से उत्पन्न होने वाले अन्तरो से इनका कुछ सामान्यज्ञान (Workable knowledge) हो ही जाता है। किन्तु ये प्रयोग एक सीमा तक ही इस सम्वन्ध में कुछ बता सकते हैं । जैसे, किसी ग्रथि के अपसारण से शरीर में कुछ अन्तर उत्पन्न होगा जो उसके शरीर पर सीधे प्रभाव का परिणाम होगा, किन्तु इससे अन्य ग्रथियो की सापेक्ष स्थिति पर भी अन्तर पड सकता है और इस प्रकार वह परोक्ष रूप से भी शरीर में कितने ही परिवर्तनो का जन्मदाता हो सकता है। इसलिए वैज्ञानिक के लिए यह निर्णय देना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि उसके प्रयोग से उत्पन्न प्रभाव सीधा अपसारित ग्रथि का प्रभाव है या किसी अन्य सबद्ध ग्रथि के द्वारा अपसारित ग्रथि का परोक्ष प्रभाव है । यही समस्या इन रसो के इजेक्शन में भी उत्पन्न होती है। सभव है किसी ग्रथि-रस का इजेक्शन, जो प्रयोगकर्त्ता वैज्ञानिक करता है, प्रतीयमान प्रभाव को सीधे ही जन्म दे रहा हो और यह भी उतना ही सम्भव है कि उसने किसी अन्य ग्रथि के रस को स्रवित होने में सहायता दी हो और प्रतीयमान प्रभाव उसी का हो। इसलिए इस प्रकार के प्रयोगो के महत्व-पूर्ण होने पर भी भूल की सभावना वनी ही रहती है।

सभवत हार्मंज के निर्माण में, जो कि विशेष ग्रथियो के कोषो से होता है, जीवन के आधारभूत पदार्थ, जेंज (Genes) ही कारण होते है, जैसे वे

एजाइम्ज के निर्माण में होते है, किन्तु जेन्ज और हार्मज का सीधा सबध न हो कर सभवत ऐंजाइम्ज् के द्वारा ही है, इसलिए यदि कोई विशेप जेन गौण रह जाय या जेंज और हार्मज के बीच की कडी—किमी ऐंज़ाइम को समाप्त कर दिया जाए तो तत्सबधी हार्मन भी बन्द हो जायगा। इम प्रकार हार्मज के स्राव की मात्रा पर भी उत्तराधिकार का सबध किसी-न-किसी प्रकार मे सभावित है ही, और यह बात बहुत महत्वपूर्ण है। हार्मज और एजाइम्ज दोनो को ही रोकने वाले कुछ अन्य रासायनिक एजेंट भी हमारे शरीर में रहते हैं जिन्हे हार्मन-निरोधक कहा जाता है। किन्तु इम सबध में वैज्ञानिक अभी तक निश्चित नही हैं कि ये हार्मन-निरोधक कैसे कार्य करते है और इनकी रासायनिक प्रकृति क्या है, तो भी इतना तो ज्ञात हो सका ही है कि ये या तो उन ग्रथियो को ही पगु कर देते हैं जो हार्मज को उत्पन्न करती है, अथवा उन एजाइम्ज को रोक देते हैं जो हार्मज के कारण होते है, इसी प्रकार ये हार्मज की रक्त इत्यादि मे रासायनिक क्रिया को भी प्रभावित करते है,—उदाहरणार्थ, एक रासायनिक द्रव्य-विशेप, एल्लोक्सन (Alloxan) इसुलिन ग्रथि के रसो को निरुद्ध कर देता है। यदि यह रस पर्याप्त हो जाए तब तो यह इसुलिन-ग्रथि के सेलो तक को नष्ट कर डालता है। इसी प्रकार थाइराइड ग्रथि के हार्मज का भी निरोध किया जाता है—सल्फागुआनेडाइन (Sulfaguanadine) तथा अन्य भी सल्फा के विभिन्न रस इस ग्रथि के रसो को निरुद्ध करते है। कुछ हार्मन भी ऐसे होते है जो दूसरे के प्रभाव को क्रियान्वित होने से रोकते हैं—पिच्यूइटरी ग्रथि एक विशेप हार्मन, थाइराइड्रोपिक (Thyroitropic) को प्रवाहित करती है जो थाइराइड के स्राव को रोकता है। इसी प्रकार एस्ट्रोडियल (Estrodiol) टेम्टोस्टेरोन (Testesterone) के स्राव और प्रभाव को रोकता है यद्यपि ये दोनो हार्मज गोनाड्ज से ही प्रवाहित होते है और रासायनिक प्रकृति में बहुत कुछ समान भी है। सभवत इसका कारण यह हो सकता है कि ये दोनो रस प्राय समान होने से एक ही रासायनिक प्रक्रिया के लिए स्पर्धा करते है।

विभिन्न ग्रथियो के इन रासायनिक द्रव्यो को देखने के पश्चात् अब हम प्राणी के व्यवहारो पर इनके प्रभाव को भी सक्षेप में देखेंगे क्योंकि इन दोनो के पारस्परिक सबध को समझना अत्यन्त कठिन होने पर भी अत्यन्त उपयोगी है। यद्यपि प्राणी की प्रक्रियाओ का निर्णय करने मे ये एकमात्र निर्णायक तत्त्व नही है, प्राणी के मस्तिष्क ततुवाय तथा 'प्रदेशो' का प्रबध, केन्द्रीय तथा अन्य स्नायविक प्रबध (Central Nervous System and Motor Nervous System) तथा विटामिन और एजाइम भी बहुत अधिक निर्णायक

यहाँ हम केवल 'वासनाओं' (Appetites) के लिए ही कह रहे हैं, और इसके लिए यही सत्य है।)

इसलिए प्रक्रिया के स्रोत प्राणी के अन्त शरीर में ही निहित माने जा सकते हैं। जहाँ तक उसकी वासना-व्ययी प्रक्रिया(Consummatory act) अथवा अन्तर्वासिना की तृप्ति के लिए परिवृत्ति से सपर्क, जैसे भूख की वासना होने पर भोज्य-पदार्थ से सपर्क) का सबध है, उसे किसी भी प्रकार से विचारित अथवा किसी भी प्रकार से अपने लाभ की चेतना से स्वीकृत नही कहा जा सकता। इसी प्रकार यह केवल सयोग है कि प्राणी के शरीर का निर्माण, उसके अगो का गठन इत्यादि उसके लाभ के लिए हो, जैसा कि हम दूसरे और विशेषत तीसरे निबध में देखेगें।

अनेक वैज्ञानिक प्राणियो की प्रक्रिया और यहाँ तक की शारीरिक विकास तक को मानसिक चुनाव-जन्य मानते हैं। उनके विचार में एक सजीव प्रक्रिया (Vital act) उनके शक्ति-स्रोतो को उनके लाभ में परिवर्तित कर दे सकती है। इस मत के वैज्ञानिको के प्रतिनिधि के रूप में E. S Russell को उद्धृत किया जा सकता है। वह कहता है कि "इन (सजीव) प्रक्रियाओ को विशुद्ध भौतिक रासायनिक प्रक्रियाएँ कहना और सदैव इनकी एक ऐसी ही व्याख्या खोजना तथा इन्हे निरुद्देश्य समझना एक अत्यन्त उलझनपूर्ण और भ्रामक ब्योरे (Detail) में भटकना है, तथा इन प्रक्रियाओ की जीव-वैज्ञानिक (Biological) सार्थकता को और प्राणी के आत्म-निर्भर, आत्म-जननात्मक तथा विकासशील जीवन के साथ उसके सबध को भूल जाना है।" रसल सभवत इस सजीव प्रक्रिया की सोद्देश्यता का समर्थन करने में बहुत दूर तक जाता है। प्राणी-व्यवहार की इस प्रकार व्याख्या करने वालो की सख्या सौभाग्यवश, आज बहुत कम है, किन्तु इनका समन्वय करने वाले आज भी बहुत काफी हैं, और विकास तक की व्याख्या करते हुए वे किसी न किसी प्रकार के प्रयास और सोद्देश्यता तक को स्वीकार कर लेते है, जैसे, सेक्सुअल सिलेक्सन, एडेप्टेशन और आत्मरक्षा इत्यादि को। सेक्सुअल सिलेक्शन अथवा एडेप्टेशन इत्यादि भी यद्यपि आज बहुत कम समर्थित है तो भी एडेप्टेशन इत्यादि को सेक्सुअल सिलेक्शन से काफी अधिक मान्यता प्राप्त है। प्रवृत्ति का अध्ययन करने वाले समन्वयवादी वास्तव में कभी-कभी अन्तर्वासना को घपला भी देते है, वे रासायनिक-भौतिक अन्तर्वासनाओ को मानसिक अन्तर्वासनाओ से पृथक करना भूल जाते है।

इसका अर्थ यह नही कि हम एडेप्टेशन या आत्म-रक्षा की प्रवृति को बिल्कुल

स्वीकार ही नही करते, हम स्पष्ट रूप से देखते और जानते है कि प्रत्येक प्राणी अपकारक परिवृत्ति मे बचता है और सुखद-परिवृत्ति में रहना पसद करता है, किन्तु यह केवल एक प्रतिक्रिया है और उतनी ही मानसिक या यात्रिक है जितनी लज्जा से लाल हो उठने की प्रक्रिया। इसके अतिरिक्त सबसे बडी बात यह है कि दुख या दुखद अनुभूति का परिणाम चाहे प्राणी के अस्तित्व-रक्षा (Adaptability) के स्तर को उन्नत कर देता हो, किन्तु न तो इस अनुभूति (Reflex) का उद्देश्य ही यह होता है और न कारण ही जैसा कि हम दूसरे निबध मे देखेंगे। किन्तु यह हमे इस निबध में ही देखना है, और यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्राय सभी प्रकार की क्रियाओ के लिए प्राणी के शरीर में तदनुकूल योग्यता (Capacity) होनी अत्यन्त आवश्यक है और वही योग्यता (Capacity) प्राणी के परिवृत्ति के साथ सपर्क होने पर अथवा आवश्यकता होने पर, व्यवहार-विशेष में अभिव्यक्त होती हैं। इस प्रकार, जिस प्राणी के दो टागें है, वह कभी भी चार टांगो वाले प्राणी के समान व्यवहार नही कर सकता, चाहे अन्तर्वासना और वाह्य परिवृत्ति सर्वथा एक सी ही क्यो न हो, और क्यो कि वह उस प्रकार व्यवहार नही कर सकता इसलिए उसके तदर्थ प्रयास का, उसकी अकाक्षा का भी प्रश्न उत्पन्न नही होता। मनुष्य में मानसिक 'प्रयास' का कारण उसका दैशिक और कालिक विषयो में सबध-सूत्र (Relations) खोजना या स्थापित कर सकना है, जो कि पशु में नही होता। यह केवल विचारणा (Intellect) की ही विशेषता है, प्रवृत्ति की नही, जैसा कि हम पांचवे निबध मे देखेंगे।

विकसित प्राणी (वन्दर, शिपेंजी इत्यादि) सीखने की योग्यता अपेक्षाकृत अधिक रखते है और उनकी क्रियाएँ यान्त्रिक होने पर भी उस प्रकार जन्मजात नही होती जिस प्रकार कम विकसित (मछली इत्यादि) प्राणियो की होती है, जैसे बिल्ली और चूहे का प्रक्रियात्मक सबध इस प्रकार भी बन सकता है कि वह चूहे को खाने के बजाय उससे डरे या प्यार करे। यह बिल्ली की शिक्षा पर या अनुभव पर आधारित है, जो अनुभव न तो प्रवृत्यात्मक है, न विचारणात्मक और न समझदारीपूर्ण— यह प्रवृत्यात्मक प्रक्रिया अथवा प्रक्रियात्मक प्रवृत्ति पर आवृत है। इसे पाव्लोव (Pavlov) के शब्दो में निर्धारित प्रभाव (Conditioned effect) भी कहा जा सकता है (यद्यपि प्रक्रिया और निर्धारित प्रभाव मे बहुत अधिक अन्तर है) और सब मे बडी बात जो यहाँ समझने की है और जिसके लिए हमने आगे दो निबध और लिखे है, वह यह है कि चूहा बिल्ली

के अहेर की वासना का कारण नही है, यह केवल बिल्ली की भौतिक रासायनिक अन्त परिस्थिति तथा परिवृत्ति के साथ उसका प्रक्रियात्मक सबध ही है जो उसे अपनी तृप्ति के लिए उकसाती, बाध्य करती और एक विशेष विषय के साथ अपने विकास का सबध जोडती है। विषय के साथ प्रक्रियात्मक सबध में सयोग (Chance) और सुविधा को ही कारण समझा जा सकता है, यद्यपि अपनी शारीरिक प्रकृति भी कुछ कारण हो सकती है—जैसे स्वाद बेस्वाद में। किन्तु यह स्वाद सबधी निर्धारण वस्तु-विशेष पर निर्भर न होकर वस्तु के विशेष गुण और अपनी शारीरिक परिस्थिति की विशेष स्थिति पर निर्भर करता है। यह केवल सयोग ही है कि बिल्ली भूख में किसी विषय के सपर्क मे आए और वह विषय उसकी उस वासना का ठीक उत्तर (Response) दे और इस प्रकार उसका प्रक्रिया-केन्द्रीकरण उससे सबद्ध हो जाए। मिसपिट (एक वैज्ञानिक) की बिल्ली यदि चूहे को स्नेह करती है और यदि महादेवी (हिन्दी की कवियित्री) की बिल्ली केवल मद्रासी पापड खाती है तो इसका कारण प्रक्रिया-केन्द्रीकरण को ही कहा जायगा।

यद्यपि इस प्रकार प्राणी बहुत कुछ 'स्वतन्त्र' हो जाते है और अपने व्यवहार में अपेक्षाकृत अधिक 'अवसरवादिता' (Adaptability) लाने में कुछ समर्थ हो जाते है, किन्तु उनकी यह अवसरवादिता उन्हे अपनी वासना को नियमित करने और परिवृत्ति के यान्त्रिक प्रभाव (Reflex Action) को रोकने में भी समर्थ नही करती। इसे हम विशेष विस्तार से अगले निबध में देखेंगे। यहाँ तो हमे अब केवल यही देखना है कि ये भौतिक-रासायनिक परिस्थितियाँ किस प्रकार प्राणी के व्यवहार या प्रकृति को निर्धारित करती है और उनकी कारण हैं।

प्राणी-व्यवहार और शरीर-विज्ञान का स्वतत्र अध्ययन बहुत देर से होता है, किन्तु इन्हे बहुत देर तक एक-दूसरे पर घटित नही किया गया। प्राणी-व्यवहार का अध्ययन केवल व्यवहार के सामान्य वर्णन और कभी-कभी कल्पित कारणो के आरोपण तक सीमित रहा है और शरीर-विज्ञान का अध्ययन केवल शरीर की वृद्धि तथा तत्सबन्धी शारीरिक स्थिति के ज्ञान को ही महत्त्व देता रहा है। किन्तु पिछले कुछ वर्षों मे इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है और व्यवहार को सामान्यत शरीर-वैज्ञानिक स्तर पर प्राय सभी प्रकार से देखा जा रहा है। इससे यह प्रमाणित हो गया है कि प्राणी-व्यवहार के मुख्य स्रोत अन्त शारीरिक ही है, जिनमें हार्मंज

का सवसे अधिक महत्त्व है। वैसे तो प्राय सभी प्रक्रियाओ में हार्मंज का किसी न किसी प्रकार से हाथ रहता ही है, किन्तु मैथुन तथा मातृत्व इत्यादि मे तो ये पूर्ण रूप मे ही अधिष्ठाता है। अन्य प्रक्रियाओ, जैसे घोसला वनाना, प्रवास करना तथा रग वदलना इत्यादि में भी यद्यपि ये वहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होते है किन्तु यहाँ या तो यह सवध नकारात्मक है अथवा परोक्ष, किन्तु यह प्राय निश्चित ही है कि इनमें भी यही अद्वितीय महत्त्व की नियामक शक्ति है।

इन द्रव्यो को प्रवाहित करने वाली ग्रथियाँ कुछ तो ऐसी है जो एक विशेष समय पर और विशेष परिवृत्ति में ही स्रवित होती है और शेष समय वन्द रहती है और इस प्रकार प्राणी की प्रक्रियाओ का एक चक्र वाँध देती है और दूसरी ग्रथियाँ या तो इन ग्रथियो की प्रेरणा से ही रस स्राव करती है अथवा परिवृत्ति के प्रकाश और तापमान इत्यादि से नियमित होती है। किन्तु प्राणी व्यवहार में ये रस एकमात्र कारण नही है, सावेदनिक उकसाहट (Sensory stimuli) और अन्य आन्तरिक परिवर्त्तन, जो मुख्यत इन रसो मे ही सवन्ध रखते है, कभी-कभी एक साथ ही केन्द्रीय स्नायु-ततुवाय (Central Nervous System) को उकसाते है जो कि प्रवृत्यात्मक व्यवहार के लिए उत्तरदायी होता है, और कभी-कभी अकेली सावेदनिक उकसाहट (Sensory stimuli) भी स्नायु ततुवाय को उकसाने के लिए पर्याप्त रहती है। सावेदनिक उकसाहट (Sensory stimuli) की प्रकृति को हम अगले निवन्ध मे विस्तार से देखेंगे। यहाँ हमारे लिए केवल इतना समझ लेना ही काफी है कि हार्मंज के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रक्रिया-स्रोत भी शरीर मे विद्यमान है जो प्राणी को प्रेरित करते है।

हार्मंज—प्रक्रिया के स्रोत

मातृत्व—जैसा कि हार्मंज की सूची मे देखा जा सकता है, पिच्यूइटरी ग्रथि के अन्तर्भाग मे प्रवाहित होने वाले रसो में एक प्रोलैक्टिन रस भी है जो छाती की मैम्मरी ग्रथियो में दुग्ध-स्राव को प्रेरित करता है, तथा प्राणी मे मातृत्व-स्नेह को जन्म देता है। 'हार्मन-युग' से पूर्व इस सम्बन्ध में पर्याप्त विवाद रहा है कि मातृ-स्नेह का स्रोत क्या है। फ्रायड इत्यादि ने मातृत्व स्नेह को काम-तृप्ति का ही एक प्रवचना-मूलक पहलू वताया था जव कि धार्मिक और पवित्रतावादी क्षेत्र इसका तीव्र विरोध करते थे। किन्तु सभवत, सभी समयो में, यदि कोई दार्शनिक की 'ऊँची-दृष्टि' से नही सोचता तो, यह

अनुभव किया जाता रहा होगा कि इन दो वासनाओ की, तथा इनकी तृप्ति की अनुभूति सर्वथा भिन्न रूप की ही होती है। कहा जा मकता है कि, इनमें कही भी कोई समता नही। फ्रायड ने सभवत अपनी यह वात इसलिए भी कही होगी, क्योकि मातृ-स्नेह की तीव्रता स्त्री को काम-वासना की तीव्रता से रहित करती है, और सभवत उसने समझा कि यह केवल एक ही वासना के दो पहलू भर है जो एक दूसरे को स्थानान्तरित करते है। इसके अतिरिक्त उसने अनेक ऐसी रोगी लडकियाँ भी देखी जो विवाह न चाहकर केवल पुत्र चाहती थी। वे पुरुष से डरती भी थी। उसने इसका कारण भी वही समझा जो वह पुरुष से डरने वाली अन्य रोगी स्त्रियो के केस में समझता था। यद्यपि हम उसके उलझनपूर्ण मानसिक स्थिति के रोगियो के वारे मे कुछ भी कहने में अपने आपको अयोग्य पाते है, किन्तु आज हम यह अवश्य निश्चित रूप से जानते है कि प्रोलैक्टिन न केवल मैम्मरी ग्रथियो में दुग्ध-स्राव को ही प्रेरित करता तथा मातृ-स्नेह का कारण होता है, प्रत्युत् गोनाड्ज के रस-स्राव को रोक कर काम-वासना को क्षीण करने का कारण भी होता है।

यह वात प्रयोग-सिद्ध है कि हार्मज़ का शरीर में अनुपात मातृत्व-वासना की उत्पत्ति में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रोलैक्टिन की कमी या अधिकता इसमें सवसे अधिक महत्व रखती है। नर कवूतरो में इस रस का इजेक्शन उनमें मातृत्व-स्नेह को उत्पन्न कर सकता है। वे अपने शिशुओ से न केवल मादा कवूतर (माता) के समान स्नेह ही करने लगते है प्रत्युत उनके लिए मादा के समान धान्यकणो से दूध भी वनाते हैं। पक्षियो की उन जातियो में, जो वच्चो से विशेष-स्नेह नही करती, इस रस का इजेक्शन विशेप स्नेह उत्पन्न कर देता है। पालतू मुर्गे इस रस के इजेक्शन से वच्चो से मादा के समान ही स्नेह करने लगते है, उसी के समान वे उन्हें चोगे के लिए साथ ले जाते है, वच्चो के भय-क्रदन सुनने पर उसी प्रकार आक्रमणशील हो उठते है और उसी प्रकार उनकी रक्षा करते है। किन्तु कितनी भी प्रोलैक्टि-रस की मात्रा उन्हें अडो पर वैठने के लिए तैयार नही करती। इसी प्रकार चहो में भी। नर चूहो और अक्षत मादाओ में यद्यपि मातृ-स्नेह के कुछ आसार इस रस के विना भी पाए जा सकते है, किन्तु इस रस का इजेक्शन उनमे इस प्रवृत्ति की तीव्रता को वहुत अधिक वढा देता है। वे छोटे वच्चो को देर-देर तक चाटते रहते है, उन्हे खिलाते है और दुलराते हैं। यह प्रक्रिया उनमें और भी तीव्र की जा सकती है यदि उनमें प्रोलैक्टिन के साथ कुछ अन्य हार्मज भी, जो कि गर्भिणी मादा में पाए जाते है, इजेक्ट कर दिये जाए तो। ये

हार्मन गोनाडोट्रोपिक (Gonadotropic) हार्मन कहे जाते है जिन्हें प्रोलैक्टिन के इजेक्शन मे कुछ पूर्व देने पर प्रभाव की तीव्रता बहुत अधिक बढ जाती है ।

ये हार्मन मातृत्व-स्नेह के एकमात्र उत्पादक हार्मन नही है। अन्य भी कुछ हार्मन इसकी उत्पत्ति में सहायक हो सकते है, यद्यपि उनका प्रभाव इस ओर बहुत कम होता है। प्रोजेस्टेरोन (Projesterone) और डेसोक्सार्डकोर्टि कोस्टेरोन (Disoxycorticosteron) इसी प्रकार के हार्मन है। रिड्ल के अनुसार, जो हार्मन मातृत्व-स्नेह को उत्पन्न करते है, वे आशिक रूप से इसलिए भी अपने प्रभाव को इस रूप में क्रियान्वित करते है क्योकि वे मैथुन-वासनाजनक हार्मज़ को रोकते है। इसका प्रमाण यह भी है कि ओवरी (ovary) या टेस्टिस का अपसारण नर और मादा चूहो में मातृत्व स्नेह को बढा देता है जब कि प्रोजेस्टेरोन और फोल्लिकल प्रेरक हार्मन की अधिक मात्रा इसे घटा देती है। इसी प्रकार पिच्यूइटरी-ग्रथि का अपसारण भी नर या मादा चूहो में मातृत्व-स्नेह का कारण हो सकता है, जो कि आश्चर्य की बात है, किन्तु इसका कारण स्पष्ट है, पिच्यूइटरी ग्रथि के अपसारण से गोनाड्ज़ का स्राव भी रुक जाता है और इस प्रकार इसका परोक्ष रूप से यह प्रभाव पडता है।

जो भी हो, इन प्रयोगो से स्पष्ट है कि मातृत्व-स्नेह के उत्पादन में केवल प्रोलैक्टिन ही विशेष रूप से प्रभावशाली होता है। सभवत इसका मुख्य कार्य गोनाड्ज के स्राव को रोकना भी है यद्यपि मैम्मरी ग्रथियो के रस-स्राव का कारण होने से यह मातृत्व स्नेह का अपरोक्ष कारण भी है। प्रोलैक्टिन सभवत गर्भधारण के समय से ही प्रवाहित होने लगता है और तभी से गोनाड्ज़ इत्यादि के रस-प्रवाह को रोकना भी प्रारभ कर देता है। किन्तु सभवत , जैसा कि मैम्मरी ग्रथियो को प्रभावित करने से भी स्पष्ट है, इसका एतत्सबधी व्यवहार पर सीधा प्रभाव भी पडता ही होगा ।

अभी विज्ञान सभवत यह बताने में असमर्थ है कि मातृ-स्नेह के प्रेरक हार्मन तथा अन्य प्रेरक परिस्थितियाँ(Stimulating factors)स्नायु-ततु-वायको किस प्रकार प्रभावित करती है, यद्यपि इन अनुभूतियो को क्रियान्वित करने वाले ततुवाय के विषय में कुछ अनुमान किया जा सकता है। बीच (Beach) के अनुसार (Cortex) के किसी भी भाग का २० प्रतिशत के लगभग काट देने से चूहे में घोसला बनाने, बच्चो को दुलराने, उनका

पालन करने तथा रक्षा करने की प्रक्रियाएँ गभीरता से प्रभावित होती है, और समाप्त तक हो जाती है। चूहे के इन्ही केन्द्रो पर गभीर घाव करने से यद्यपि वे इन प्रक्रियाओ को निभा तो लेते है किन्तु ठीक तरह से नही। यहाँ तक कि उनके बच्चे ठीक पालन-पोषण के अभाव मे मर तक जाते है। वे वास्तव में घातक परिस्थितियो में अपने आप को उपयुक्त बनाने मे तथा अपने बच्चो की रक्षा करने मे असमर्थ रहते है। अपसारित कोर्टेक्स वाले चूहे अपने नवजात शिशुओ को साफ तक नही कर पाते, और यदि उनको घोसले से बाहर रख दिया जाय तो भीतर उठा कर भी नही ले जाते।

केन्द्रीय स्नायु ततुवाय एक और प्रकार से भी प्राणी की प्रक्रिया में निर्णायक होता है, जिसमें इसका कार्य केवल विनियम केन्द्र (Exchange Centre) का ही नही होता। टिवर्जन के अनुसार ऐसी प्रक्रियाओ में न तो हार्मंज को ही कारण कहा जा सकता है और न आन्तरिक उकसाहट (Internal Stimuli) को ही, उसके अनुसार, पालतू कुत्ते कभी-कभी बिना किसी आन्तरिक कारण (भूख इत्यादि) और बाह्य उकसाहट (शिकार का विषय) के ऐसे ही दौडना प्रारम्भ कर देते है, जैसे शिकार के पीछे दौड रहे हो, और शिकार के व्यवहार को पूर्णत प्रकट करते है। इसमें हम जानते है कि उनके पेट के भरे होने से उनके उदर की सकोच क्रिया (Contraction) को उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता, किन्तु अहेर-सबधी दौड की आत्मव्ययी प्रक्रिया (Consumatory act) जन्य थकान बताती है कि यह प्रक्रिया क्रमश घनीभूत होते हुए आन्तरिक कारणो की ही परिणाम हो सकती है, जो केन्द्रित होने के लिए समय चाहते है। उसके अनुसार, इस प्रकार की प्रक्रियाओ का उत्तरदायित्व केन्द्रीय स्नायुततुवाय पर ही है जो स्वय ही इन प्रक्रियाओ को जन्म देते है।

उक्त उद्धरण में यह कहना पर्याप्त कठिन है कि सतुष्ट कुत्ते की शिकार के लिए दौड एकान्त रूप से स्नायविक ततुवाय से ही प्रेरित है, क्योकि उदर पूर्ण होने पर तज्जन्य-शक्तिस्रोतो की उष्णता, जो कि भोजन पचने की रासायनिक और मसलसबधी प्रक्रिया से उत्पन्न होती है, भी इस प्रकार की दौड का कारण हो सकती है, जो अपने व्यय के लिए प्राणी को आत्मव्ययी प्रक्रिया में नियोजित कर सकती है। उस समय कुत्ते का उद्देश्य शिकार करना न होकर सभवत आत्म-व्यय मात्र हो सकता है, जिसका प्रमाण यह भी है कि वह आगे किसी लक्ष के न होने पर भी अनेक बार तेजी से दौडने लगता है और आश्चर्यजनक रूप से स्वामी से दूर और स्वामी की ओर दौड में अपने आप को थकाने लगता है। इसका अर्थ यह नही

है कि हम केन्द्रीय स्नायु ततुवायजन्य प्रक्रिया से इन्कार कर रहे है। हम केवल यही कहना चाहते है कि इस उदाहरण में यह कहना, सभवत इसी प्रकार अन्य प्रक्रियाओ में भी, काफी कठिन हो सकता है। शायद हमारे पेट के मसल्ज की और शायद अन्य मसल्ज की लय-बद्ध क्रियाएँ शक्ति-सचय के रूप में केन्द्रीय स्नायु-ततुवाय में तथा रक्त भाडो में सगृहीत होती रहती हैं। किन्तु इनके लिए हमारे पास कोई प्रमाण नही है। इस प्रकार इस केन्द्रीय ततुवाय के लिए हम अभी तक केवल यही निश्चित रूप से जानते है कि यह हार्मज की, उदर की दीवारो की तथा अन्य ऐंजाइम्ज और विटामिज इत्यादि के क्रिया-व्यापारजन्य-शक्ति-सचय की उकसाहट या वासना को क्रियान्वित करने वाला केन्द्र है। वास्तव में अभी इस ओर काफी कार्य की आवश्यकता है।

घोसला—जैसा कि हम अगले निवध में विस्तार से देखेंगे, किसी भी प्रक्रिया का स्रोत किसी प्रकार का उद्देश्य नही है, यह केवल शरीर के अन्त स्रोतो की अथवा वाह्य विषय की यत्र-क्रिया-केन्द्रो (Reflexive System) पर भौतिक क्रिया है जो किसी आत्मव्ययी की अथवा प्रतिक्रियात्मक प्रक्रिया (Reaction Response) का जन्म देती है। इस प्रकार घोसला वनाना भी पक्षी के किसी निहित उद्देश्य के कारण नही होता, प्रत्युत् उसकी आन्तरिक और वाह्य तापमान सबधी परिस्थितियो का ही परिणाम होता है। इसी प्रकार घोसला वनाने की प्रक्रिया यद्यपि मैथुन और मातृत्व-वासना के साथ सवद्ध हैं, किन्तु ये सवध मानसिक न होकर शरीर-वैज्ञानिक ही है, ऐसा मेरा व्यक्तिगत विचार है। एक विशेष शरीर-वैज्ञानिक परिस्थिति उत्पन्न होने पर, जो अप्राकृतिक रूप से भी उत्पन्न की जा सकती है, पक्षी घोसला वनाना प्रारम्भ कर देता है, जैसा कि हम पीछे प्रोलैक्टिन हार्मन के इजेक्शन से मातृत्व-स्नेह और तज्जन्य व्यवहार की उत्पत्ति के उदाहरणो मे भी देख आए हैं। किन्तु यहाँ आश्चर्य की वात यह है कि विशेष जाति का व्यक्ति, जो कि अपनी जाति की मादाओ के एक विशेष व्यवहार से अपरिचित है, जैसे नर-कुक्कुट मादा-कुक्कुट के तदीय व्यवहारो से, हार्मन के इजेक्शन किये जाने पर उसी प्रकार व्यवहार करेगा जैसे उसके अन्य सजातीय करते हैं। एक जाति के सभी व्यक्ति उसी प्रकार घोसला वनाए, यह उनकी शिक्षा के कारण हो सकता है, किन्तु जो व्यक्ति उस शिक्षा से सर्वथा अनभिज्ञ है, वह भी उसी प्रकार यदि व्यवहार करे तो इसका केवल यही अर्थ हो सकता है कि वह जाति-विशेष उस प्रकार के व्यवहारो को क्रियान्वित करने के लिए भी एक

विशेष शारीरिक यन्त्र रखती है जो एक ही समान प्रेरित होता है और एक ही समान क्रियान्वित होता है। जैसा कि हम आगे प्रवास की प्रवृत्ति पर विचार करते हुए देखेंगे, यह समता और अधिक आश्चर्यजनक रूप मे व्यापक और मनोरजक होती है।

अस्तु, घोसला बनाने की प्रवृत्ति अन्य प्रवृत्तियो के समान ही एक स्वतत्र प्रवृत्ति है, इसीलिए यह मातृत्व और मैथुन से सर्वथा स्वतन्त्र अस्तित्व के रूप में भी आ सकती है। इसलिए हम इस प्रक्रिया की उत्पत्ति के भी उन विशेष कारणो का अवलोकन करेंगे, जो उसके प्रेरक है। इसके लिए सौभाग्यवश ऐसे प्रमाण उपलब्ध है जो प्रयोगाश्रित है और जिनमें कल्पना और अतएव मत-भेद को कम सभावना है। इसमें तापमान, हार्मन और शरीर की विशेष तापमान को आवश्यकताएँ इत्यादि अनेक कारण हो सकते है जिन्हे हम अब देखेंगे।

रजस्राव और गर्भधारण--घोसला बनाने की प्रवृत्ति का रजस्राव और गर्भधारण के समय की तापमान की आवश्यकता से बहुत बडा सम्बन्ध है, जो कि घोसले की उष्णता-सरक्षण की योग्यता पर आश्रित है। रजस्राव के दिनो में प्राणी की रासायनिक प्रक्रियाओ का स्तर बहुत ऊँचा होता है और उसके शरीर में बडी उष्णता होती है। वह उस उष्णता से शक्ति-सचय के व्यय के लिए तीव्रता से भागती-दौडती है। इससे रज-स्राव के दिनो में घोमला बनाने की प्रवृत्ति प्राय बिल्कुल ही नही होती। इसके विपरीत गर्भधारण के बाद, शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओ का स्तर बहुत घट जाता है और शरीर की उष्णता समाप्त हो जाती है। इसलिए इन दिनो मादाए विशेष रूप से गर्म तापमान और विश्राम चाहती है। इसी से ये दिन घोसला बनाने तथा उसमें विश्राम करने में बीतते हैं। यह प्राय सभी जानते है कि गर्भधारण के पश्चात् रज-स्राव बद हो जाता है और उष्णता-उत्पादक हार्मन भी बन्द हो जाते हैं और शरीर के शक्ति-स्रोत गर्भस्थ शिशु के पालन-पोषण में ही व्यय हो जाते है। यह अवस्था गर्भधारण के अन्तिम दिनो में और भी गम्भीर हो जाती है और शिशु-जन्म के कुछ दिन बाद तक रहती है। उसके बाद घोसला समाप्त कर दिया जाता है। कुछ जातियो में, विशेषत स्तनपायियो की—पुन रज-स्राव शिशु-जन्म के एकदम बाद ही फिर प्रारम्भ हो जाता है और उष्णता बहुत अधिक मात्रा में बढ जाती है, किन्तु थोडे दिनो के बाद ही यह लम्बे समय के लिए बद हो जाता है। यदि इस उष्णता के काल में उसे कोई नर प्राप्त हो सके और गर्भाधान हो जाये, तो पुन वही चक्र उसी समय प्रारम्भ हो जाता है।

तापमान—जैसा कि हम ऊपर भी कह आए है, घोसला बनाने का कारण उष्णता-संरक्षण ही है। यदि रज-स्राव के दिनो में मादा (या नर जो भी जाति-विशेष में घोसला बनाने का कार्य करता हो) को ऐसे तापमान में रखा जाय जिसमें इसकी उष्णता-सरक्षण की आवश्यकता पूरी हो जाय, तो वह घोसला बनाने में बहुत कम ही रुचि लेगा और उसके निर्माण में बहुत कम सामग्री का प्रयोग करेगा। यह प्रयोग चूहो पर सफलता से किया गया है। यदि उन्हे कमरे के सामान्य तापमान में रखा जाय तो भी वे घोसला बनाने में बहुत कम कागज और अन्य सामान का प्रयोग करते है और उनका वह घोसला बडा ढीला-ढाला होता है। किन्तु कम तापमान में उनकी घोसला बनाने की प्रक्रिया बहुत अधिक बढ जाती है और वे घोसला बनाने में कई-सौ फुट कागज का प्रयोग करते है। ये कागज बहुत व्यवस्थित और बहुत कसकर घोसले में प्रयुक्त किये जाते हैं। (morgon) इससे सहज ही यह अनुमान किया जा सकता है कि घोसला बनाने की प्रक्रिया सीधे शरीर के अन्त स्रोतो और परिवृत्ति के तापमान की सापेक्षता से बधी है। यदि गर्भधारण के दिनो में पक्षियो में उनकी उष्णता-सरक्षण की आवश्यकता को पूर्ण करने वाले विटामिन और हार्मन इजेक्ट कर दिये जाएँ तो भी वे उसी प्रकार घोसला बनाने में कम रुचि लेंगे, जैसे बाहरी तापमान के ऊँचा करने पर वे कम रुचि लेते हैं। उनके शरीर की आवश्यकता चाहे जैसे भी पूर्ण हो, उनकी प्रक्रिया का स्तर घट जाएगा।

किन्तु सभवत यह भी कारण सार्वभौम नही है, नर थ्रीस्पाईडस्टिकलबैक उष्णता-सरक्षण की आवश्यकता के कारण शायद घोसला नही बनाता क्योकि उसमें रज-स्राव नही होता और न गोनाड्ज का स्राव उन दिनो बद होता है। इसके अतिरिक्त, वह मादा के अडे देने से और मादा के साथ मैथुन से भी पहले ही घोसला बनाता है, उस समय उसके शरीर का रासायनिक क्रिया-व्यापार भी अधिक तीव्र होने से उसके शरीर की उष्णता बहुत अधिक होती है। सभवत उसकी घोसला बनाने की प्रक्रिया का सबन्ध उसके गोनाडल हार्मज से है, उष्णता-सरक्षण से नही। किन्तु यह भी पूरे निश्चय से नहीं कहा जा सकता, क्योकि घोसला बनाने के पश्चात् यदि उसके अडे उठा लिए जाएँ तो वह पहिले को तोडकर पुन घोसला बनाता है और मादा की प्रतीक्षा करता है। इसलिए घोसला बनाने की प्रक्रिया का कारण केवल गोनाड्ज के स्राव को भी नहीं कहा जा सकता। अन्य क्या कारण हो सकता है, यह कहना कठिन है। हम केवल उसकी प्रक्रिया का वर्णन-मात्र कर सकते है।

नर थ्रीस्पाईंडस्टिक्कलबैक मैथुन ऋतु प्रारभ होने पर घोसला बनाता है और उसके पश्चात् उसके वाह्य क्षेत्र (इसकी सीमा प्राय निश्चित होती है) में खडा उसकी रक्षा करता है। यदि कोई नर, अन्य प्राणी, अपनी ही जाति की अपक्व आयु की मादा अथवा भुक्त मादा उस क्षेत्र में प्रवेश करते है तो वह उन पर आक्रमण करता है। यदि कोई योग्य मादा आती है तो वह उसके सम्मुख वक्रनृत्य (Zigzag dance) करता है और उसकी ओर से स्वीकृति का सकेत पाकर वह उसे अपनी थूथनी से घोसले की ओर धकेलता है, यहाँ वह अडे देती है, और दूसरी ओर से निकल जाती है, नही तो नर उसे आक्रमण से भगा देता है। तब वह बाहर आकर एक विशेप प्रकार से पख मार कर अडो के समीप से पानी की लहर फेंकता है जिससे उन्हे वायु मिलती है, यह उनके पकने के लिए आवश्यक होती है। यदि वे अडे खराब हो जाए तो नर उस घोसले को तोड डालता है और नया घोसला बना कर उसी प्रकार पुन मादा की प्रतीक्षा करता है।

इस विवरण से सामान्यत यही प्रतीत होता है कि स्टिक्कलबैक केवल अडो के लिए ही घोसला बनाता है और उसकी यह प्रक्रिया सोद्देश्य है, किन्तु जब हम देखते है कि बच्चे उत्पन्न हो जाने पर वह उन्हें खा तक जाता ह यदि वे बच कर भाग न जाएे तो, तब यह कल्पना केवल कवि-कल्पना ही कही जा सकती है। सभवत ऐसी किसी मधुर-कल्पना के लिए प्रकृति में कोई स्थान नही है। इसका कारण सभवत हार्मन-रसोदय तथा प्रक्रिया केन्द्री-करण को ही कहा जा सकता है। यहाँ प्रक्रिया केन्द्रीकरण स्टिक्कलवक के सम्पूर्ण बाह्य व्यवहार की सार्थकता की व्याख्या करने के लिए प्रयुक्त किया गया है—नरो पर आक्रमण, मादा को अडे देने के बाद धकेल देना, अँडे खराब होने पर दूसरा घोसला बनाना, इत्यादि, सभी कुछ। इस का प्रमाण यह भी है कि थ्रीस्पाईंड की आक्रमण-प्रवृत्ति को उकसाने के लिए किसी भी वस्तु का लाल रग का होना ही पर्याप्त है फिर चाहे उसकी आकृति कैसी भी हो जब कि ठीक आकृति की मूर्ति भी रग लाल न होने पर उसे आक्रमण के लिए आकर्षित नही कर सकती। इस प्रकार की बाह्य उकसाहट-जन्य क्रियाओ की व्याख्या सभवत हमारे 'प्रक्रिया-केन्द्रीकरण' से ही ठीक हो सकती है-जैसा कि हम अगले निबध में विस्तार से देखेंगे। यहाँ हमारे लिए केवल इस बात का ही अधिक महत्त्व है कि यह प्रक्रिया केन्द्रीकरण अपने अस्तित्व के लिए हार्मंज पर किस प्रकार और कितना अधिक आधारित है। थ्रीस्पाईंडस्टिक्कल-बैक के इस मैथुन-सबधी व्यापार में वही एकमात्र कारण है, इसका प्रमाण यह भी है कि गोनाड्ज के प्रस्रवण की ऋतु मे ही उसकी ये क्रियाएँ प्रारम्भ

होती है और तभी पृष्ठ पिच्यूइटरी मे स्राव के कारण शरीर के पृष्ठ रग निर्माण के कारणभूत मेलानोफोर्ज के पृष्ठ भूमि में चले जाने से उनका रग भी लाल होता है जो कि उनके लिए अपने प्रतिस्पर्धी की भी पहिचान है। नर प्रतिस्पर्धियो का द्वद्व किस प्रकार हार्मज मे निर्धारित होता है, यह हम आगे मैथुन-हार्मज का अध्ययन करते हुए देखेंगे।

घोंसला और हार्मज—इस प्रकार हम घोसला बनाने मे भी हार्मज के प्रभाव को समझ सकते है। चाहे ये कारण पक्षियो, स्तनपायियो और मछलियो में सदैव एक से न भी हो।

पीछे हम रजस्राव और गर्भ धारण कालो मे घोसला बनाने की प्रक्रिया की स्तर-भिन्नता के विषय में देख आए है, यद्यपि यह भी स्तर-भिन्नता हार्मज से सम्बन्ध रखती है, तो भी इस महत्त्व पूर्ण शरीर वैज्ञानिक पहलू का
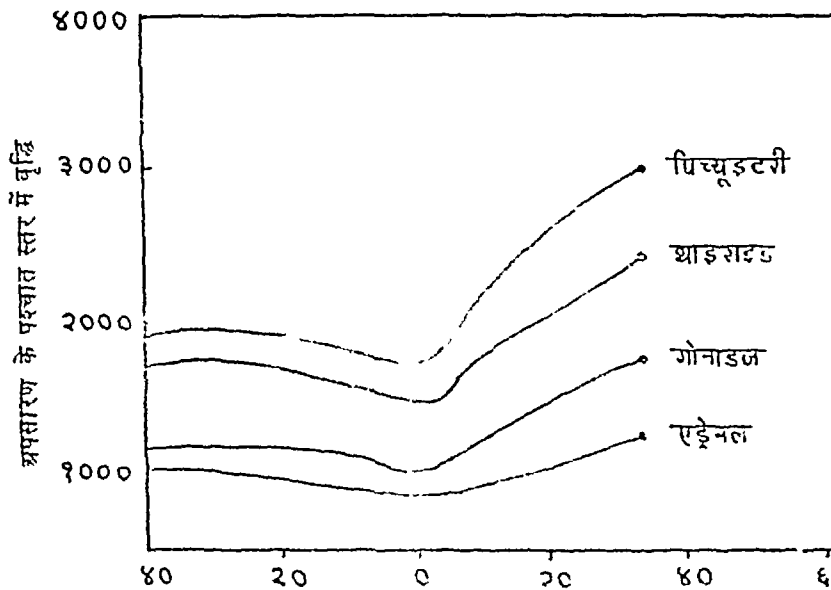
अपसारण से पूर्व और पश्चात् दिनो मे समय

(ग्रंथियों के अपसारण का प्रभाव)

पृथक् मे अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में रज-स्राव और गर्भ धारण की प्रक्रिया के स्तर के समान ही अन्य हार्मज का भी सम्बन्ध अधिकतर नाप-मान के स्तर के साथ ही है। पिच्यूइटरी ग्रंथि के अपसारण के पश्चात् घोसला बनाने की प्रक्रिया का स्तर दो-सौ प्रतिशत तक घट जाता है। इसी प्रकार

एड्रेनल ग्रथि का अपसारण २४ प्रतिशत तक प्रक्रिया को बढा देता है, थाइराइड सौ प्रतिशत तक तथा गोनाड्ज ५० प्रतिशत तक प्रक्रिया के स्तर को बढा देते हैं। पिच्यूइटरी ग्रथि का अपसारण यद्यपि सब मे अधिक प्रभाव छोडता है तो भी इसका प्रभाव सीधा प्रक्रिया पर न होकर अन्य ग्रथियो पर होता है, जो कि प्रक्रिया पर प्रभाव डालते है और शरीर के तापमान को घटा देते है। इसका प्रमाण यह भी है कि पिच्यूइटरी अपसारण के कई दिन बाद तक भी प्राणी के शारीरिक तापमान पर, कोई प्रभाव एकदम से लक्षित नही होता जैसा कि हम पीछे भी देख आए है। पिच्यूइटरी के हार्मन थाइराइड, एड्रेनल और ओवरी या टेस्टिस इत्यादि सभी ग्रथियो के रस-स्राव के स्तर को प्रभावित करते है। वास्तव में केवल एक ग्रथि के प्रभाव को ही यदि नापा जाए तो थाइराइड शायद इस प्रभाव में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण होगा। इसके अपसारण से किन्ही विशेष कारणो से, जिन्हे हम नही जानते, प्राणी का शरीर दुर्बल और मन अशक्त हो जाता है।

स्नायविक प्रबध—घोसला बनाने की प्रक्रिया मे यद्यपि हार्मज का बहुत अधिक महत्त्व है, किन्तु जैसा कि हम ऊपर भी देख आए है, तदीय आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाने पर भी प्राणी घोसला बनाते ही है, फिर चाहे उसमें कम रुचि ही क्यो न लें। इसी प्रकार अनेक बार घोसला तैयार हो जाने पर भी घोसला-निर्माण की प्रक्रिया चलती रहती है, जैसे अभी तृप्ति ही न हुई हो। बिना शिक्षा के भी अपनी जाति के अन्य व्यक्तियो के समान ही टिपिकल घोसला बनाना इत्यादि भी यही प्रमाणित करते है कि इसमें स्नायविक प्रबध एक महत्त्वपूर्ण कारण है, चाहे आज हम निश्चित रूप से यह न भी जानते हो कि ऐसा किस प्रकार होता है। तो भी, तापमान के सापेक्ष-स्तर में अन्तर का प्रभाव-ग्रहण स्नायुओ द्वारा ही होने से भी घोसला बनाने में हम उनके महत्त्वपूर्ण भाग को समझ सकते है। यदि किसी प्रकार से स्नायुओ मे तापमान के स्तर को ठीक रखा जा सके तो हार्मन इत्यादि के अपसारण का कोई भी प्रभाव प्रक्रिया पर नही होगा। बाह्य तापमान की कमी या अधिकता से प्रक्रिया के स्तर मे निम्नता या उच्चता भी इसके प्रमाण है। इसके अतिरिक्त स्नायविक प्रबध में कुछ निश्चित केन्द्र भी है जो कि शरीर के तापमान का नियत्रण करते है। इनमे से दो हाइपोथालामस (मस्तिष्क का अन्तर्मध्य) में है—एक गर्म तापमान के लिए और दूसरा ठडे के लिए। इनमे अगला ठडे के लिए है और पिछला गर्म के लिए। तापमान मे परिवर्तनो के ज्ञान के लिए एक पृथक् केन्द्र मस्तिष्क के गोलार्ध (Cerebral Hemisphere) के पृष्ठ

ाग में है। क्योकि हाइपोथालामस के अग्रभाग के अपसारण से शरीर के ापमान का नियत्रण नही हो सकेगा, अथवा कहे कि सर्दी का नियत्रण नही हो नकेगा, इससे प्राणी में घोसला बनाने की क्रिया की तीव्रता बहुत अधिक बढ जायगी जबकि इसके विपरीत प्रदेश के अपसारण से अत्यधिक घट जायगी, अथवा समाप्त हो जाएगी।

तापमान-नियत्रण के अतिरिक्त भी स्नायविक प्रबध का घोसला बनाने में, जैसा कि अन्य सब प्रक्रियाओ में भी, बहुत अधिक महत्त्व है। इसी प्रकार प्रक्रिया को क्रियान्वित करनेवाला धमनि-यत्र (Motor nervous system) भी इस में कम महत्त्वपूर्ण नही है, क्योकि इनके बिना कोई भी प्रक्रिया क्रियान्वित नही हो सकती। सभवत इनका इससे कुछ अधिक महत्त्व भी है,। घोसला किस प्रकार का बने, यह सभवतः मस्तिष्क-प्रबध के अतिरिक्त केन्द्रीय और व्यापारित करने वाले स्नायुततुवाय पर भी निर्भर करता है, यद्यपि इसके लिए हम कोई विशेष प्रमाण नही दे सकते।

एकान्तवास—प्रवास और घोसला-निर्माण के समान ही शीत में एकान्तवास भी सामान्यत तापमान से ही सबध रखता है। शीत-ऋतु में यह व्यवहार उष्ण रक्त जाति के स्तनपायियो मे देखा जा सकता है। इन दिनो भोजन की उपलब्धि बहुत कम होती है और रासायनिक क्रिया-व्यापार का स्तर शरीर में बहुत नीचा हो जाता है। इसलिए प्राणी प्रक्रिया-सचालन में असमर्थ हो जाता है। स्वभावत ही इसमें वह क्षीणतम शेष शक्ति के अपव्यय से बचता है। इस विपत्ति-पूर्ण काल यापन के लिए वह ऐसा स्थान खोजता है जिसमें सर्दी और शत्रुओ से आत्म-रक्षा कर सके। यहाँ वह शीत के दिन गम्भीर मूर्छा की विस्मृति मे बिताता है। जब सर्दी की ऋतु समाप्त हो जाती है और भोजन की उपलब्धि की सभावनाएँ भी बढ जाती है, तब एकान्तवास की मूर्छा समाप्त हो जाती है और प्राणी जीवन की सामान्य प्रक्रियाओ को क्रियान्वित करने के लिए बाहर आता है।

तापमान और हार्मोन सबधी परिवर्त्तन—तापमान में परिवर्त्तन सभवत इस एकान्तवास का सबसे प्रमुख कारण है, इसीसे ग्रथियो के क्रिया-व्यापार में भी अन्तर पडता है, किन्तु शरीर पर प्रभाव के लिए दोनो की ही सापेक्ष-स्थिति उत्तरदायी होती है। ग्रथियो में आर्तव-परिवर्तन को हम यदि इस व्यवहार का प्रत्यक्ष कारण कह सकते है तो तापमान को परोक्ष। एकान्त में प्रवास करने वाले प्राणी सामान्यत उष्ण-रक्त होते है, जो कि अपने शारीरिक तापमान को अपनी परिवृत्ति से ऊचा रखते है।

किन्तु शीत-ऋतु में ये अपने शरीर के इस तापमान को ठीक नही रख पाते, जैसे शीत-रक्त प्राणी रखते हैं। इसका एक मात्र कारण यही है कि ये अपने शरीर के रासायनिक क्रिया-व्यापार को ठीक नही रख सकते, जिसका कुछ उत्तरदायित्व भोजन-प्राप्ति की कमी पर भी है। किन्तु इसका प्रमुख कारण शायद यह है कि ये प्राणी इस ऋतु मे अपने उष्णता-सरक्षण के आन्तरिक साधनो को ठीक नही रख पाते। यदि इन्हे सर्दियो में सामान्य कमरे के तापमान में भी रखा जाय, जो कि बाहर के तापमान से कुछ उच्च होता है, तो भी उनकी पिच्यूइटरी, थाइराइड और एड्रेनल ग्रथियो का रस-प्रवाह बुरी तरह से क्षीण हो जाता है (Woodward)। किन्तु ग्रथियो के रस-प्रवाह में ये परिवर्तन केवल तापमान से ही सबध नही रखते क्योकि यदि इन प्राणियो को गर्मी की ऋतु में, जब कि इनका ग्रथि-रस-प्रवाह अपने पूर्ण वेग पर होता है, शीत तापमान में भी रखा जाय तब भी इनकी ग्रथियो के स्राव में प्राय कोई कमी नही आती और वे एकान्तवास में नही जाते, फिर चाहे सर्दी कितनी भी क्यो न हो। सच तो यह है कि इनका ग्रथि-स्राव सर्दियो में बहुत अधिक बढ जाता है।

प्रवास—ऊपर वर्णित सभी प्रवृत्तियो से अधिक आश्चर्यजनक और आकर्षक प्रवृत्ति प्रवास की है। यह प्रवृत्ति सामान्यत पक्षियो और मछलियो में ही पाई जाती है, स्तनपायियो, रीढधारियो और कृमियो में शायद ही किसी जाति में इस प्रवृत्ति को पाया जा सके। यह प्रवृत्ति अभी बहुत अधिक अध्ययन की अपेक्षा रखती है। इसके कारणभूत शरीर वैज्ञानिक प्रबधो और सस्थानो को बता सकना अभी तक उतना निर्विवाद नही हो सका है जितना होना चाहिए। वास्तव में इसके कुछ एक पहलू तो अत्यन्त रहस्यमय और मनोरजक है। सामान्य मनुष्य के लिए यह 'ईश्वर की महिमा है,' या फिर 'यह उनका स्वभाव ही है', किन्तु एक वैज्ञानिक या विचारक को इसका कोई प्रयोगाश्रित और कारण-कार्य-सम्मत-सगत उत्तर देना होगा। इससे उसे उन सब तथ्यो का विवेचन करना होगा जो किसी प्रक्रिया के आधार में कार्यशील होते है। उससे पूछा जा सकता है कि कोई प्रवृत्ति क्यो क्रियान्वित होती है? उसकी प्रेरणा क्या है? पक्षी जिस ओर को प्रवास करते है, वह क्यो?—इत्यादि।

प्रवासी पक्षी—पक्षियो का प्रवास एक प्रसिद्ध बात है। भारत में भी, जैसे अन्य देशो में, पक्षी सर्दियो मे उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवास करते है। कोयल बसन्त ऋतु मे उत्तरी मैदानो में प्रवास करती है। हस शीत ऋतु में

हिमालय से उतरते देखे जाते है। कालीदास के मेघदूत मे भी ऐसे प्रवासशील पक्षियो का अत्यन्त सुन्दर वर्णन मिलता है। किन्तु कालीदास का यक्ष उस वर्णन मे मेघ को ललचाना चाहता था जिससे वह उस एकान्त और सुदीर्घ पथ को पार कर उसकी प्रेयसी तक सदेश ले जाने में हिचकचाए नही। किन्तु हम वह कार्य करने को नही बैठे हैं, हमें इस प्रकाश में एक निश्चित कारण-कार्य-सबध की शृखला खोजनी है, और निश्चित रूप से यह बडे सौभाग्य की बात है कि हम आज इस कारण-कार्य-सबध को कुछ दूर तक जानते है और आगे प्रयोग कर रहे है। हम चाहे उस सौन्दर्य की अनुभूति न भी कर सके जिसकी महाकवि ने की थी, किन्तु हम आज कम सौभाग्यशाली नही हैं, क्योंकि हम आरोपित कल्पना के बजाय उस यथार्थ को जानते है जिसका पक्षियो के जीवन-मृत्यु के कटु सघर्ष से सबध है।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि प्रवास की ऋतु मे गोनाड्ज (Gonads) में बडा परिवर्तन होता है। सम्भवत यह परिवर्तन परोक्षरूप मे पिच्यूइटरी ग्रथि पर प्रकाश के प्रभाव से प्रवाहित होने वाले रसो के द्वारा होता है। यद्यपि इसके अन्य कारण, जैसे तापमान में अन्तर और आर्तव-चक्र भी होने ही चाहियें। किन्तु प्रकाश इसमे प्रमुख कारण प्रतीत होता है। एक प्रयोग में दो पहाडी पक्षी एक जैसे ही तापमान, एक जैसे ही भोजन पर पिंजरो में रक्खे गये। किन्तु एक पक्षी के सामने प्रकाश के उचित प्रबध मे उसी प्रकार दिन छोटे किये गये जैसे पतझड मे क्रमश होते हैं, जब कि दूसरे के सम्मुख बढते हुए दिनो का क्रम उपस्थित किया गया, जैसे बसत में होता है। प्रयोग के अन्त में देखा गया कि प्रथम वर्ग के गोनाड्ज में बिल्कुल ही कोई अन्तर नहीं आया था जब कि दूसरे वर्ग के गोनाड्ज मे बहुत अन्तर पड गया था। इसके अतिरिक्त पहले वर्ग के पक्षियो मे किसी ने भी प्रवास की उत्कठा प्रकट नहीं की जबकि दूसरे झट तीव्रता से उड गए। क्योंकि पहाडी पक्षी बसन्त में उत्तर की ओर प्रवास करते है, इससे हम सहज ही अनुमान कर सकते है कि गोनाड्ज उनकी रासायनिक क्रिया (Metabolism) को बहुत बढा देते है और इससे उनके शरीर की उष्णता बहुत बढ जाती है। ऐसी अवस्था मे वे शीतल परिवृत्ति की खोज करते हैं। यद्यपि यह एकदम निर्विवाद नही है कि प्रकाश के समय मे परिवर्तन और हार्मन के तीव्रस्राव इसके एकमात्र कारण है, किन्तु यह एकदम निश्चित है कि ये प्रमुखतम कारणो में से हैं।

किन्तु कुछ ऐसे भी पक्षी है जिनमें प्रकाश तथा गोनाड्ज के परिवर्तन प्रवास से कोई सबध नही रखते, प्रवास इन परिवर्तनो के बिना भी होता है (Morgan)। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि न तो गोड्ज इत्यादि

प्रवास के एकमात्र कारण ही और न सार्वभौमिक कारण ही, किन्तु इसका अर्थ यह नही कि इनके प्रवास में कोई हार्मन कारण नही है। यद्यपि बीच (Beach) के अनुसार, कुछ पक्षी गोनाड्ज अपसारित कर दिये जाने पर भी प्रवास करते ही है किन्तु कुछ वैज्ञानिको का विचार है कि इनके प्रवास मे पिच्यूइटरी ग्रथि के स्राव कारण हो सकते है, जिनके स्राव का उद्गम ऋतुचक्र ही है। यह हम जानते ही हैं कि पिच्यूइटरी के स्राव थाइराइड और गोनाड्ज के प्रवाह को भी प्रेरित करते है। किन्तु, सम्भवत इस कल्पना का कोई विशेप आधार नही है। तो भी अन्य किसी अधिक पुष्ट और सर्व-सम्मत कारण के आभाव मे हम इसे काम-चलाऊ कल्पना (Warkable Hypothesis) के रूप में स्वीकार करके चल सकते है। ऐसा करने का औचित्य यह है कि अन्य सभी जातियो में हम पिच्यूइटरी को ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस प्रक्रिया का कारण पाते है। इससे यह माना जा सकता है कि इस प्रक्रिया को महत्वपूर्ण कारण पिच्यूइटरी ग्रथि ही है। यह ग्रथि, जैसा कि हम पीछे भी कह आए है, शरीर में की अधिकाश ग्रथियो के रस-स्राव का या तो नियत्रण करती है या कम से कम उनके स्राव में महत्व-पूर्ण तथा आवश्यक है। जैसा कि हम आगे भी देखेंगे, सालमेंडर (Salmendor) मछली में भी पिच्यूइटरी ग्रथि ही प्रवास की कारण है। यदि पक्षियो या मछलियो मे छोटी आयु में भी परिपक्व पिच्यूइटरियो को लगा दिया जाय तो ये व्यक्ति बडी आयु के व्यक्तियो के समान ही व्यवहार करने लगते है।

पक्षियो के प्रवास का सबसे अधिक आकर्षक और उलझनपूर्ण पहलू है उनके प्रवास की दिशा का एक निश्चित और अन्त प्रेरणा मे निहित होना। यह एकदम आश्चर्य की बात है कि कैसे नवजात शिशु भी, बदी-जीवन में युवा होने पर बिना किसी शिक्षा के और सहायता के ठीक दिशा की ओर ही प्रवास करते है। इसी प्रकार प्रवास-काल में उत्पन्न बच्चे भी स्वत ही, और अकेले ही कही छोडे जाने पर भी, अपने ठीक घर की ओर लौट चलते है और वही पहुँच जाते है जहाँ उनके अभिभावक और जनक पहुँचे होते हैं। सभव है पक्षियो की प्रवास-यात्रा और लौटने की यात्रा में उनका पीछा करने पर कुछ ज्ञात हो सके, किन्तु न तो यह सहज ही है और न शायद बहुत उप-कारक ही, जैसा कि वायुयान से पीछा करने के कुछ प्रयासो से प्रमाणित हो चुका है। यह प्राय निश्चित ही है कि पक्षी बिना किसी पूर्व शिक्षा या नेतृत्व के भी अपने निश्चित जातीय पथ का अनुसरण कर सकते है चाहे उन्हे सजातीयो के लौट जाने के काफी समय पश्चात् भी क्यो न छोडा जाय और चाहे किसी एकदम अनजाने स्थान पर ही क्यो न छोडा जाय। एक बार अमे-

रिका में कुछ नवजात शिशु पिंजरों में रोक लिए गये जबकि शेष प्रवास कर गए। सबके चले जाने के एक मास पश्चात् भी उन्हें जब छोड़ा गया, उनमें से आधे से अधिक पक्षी ठीक उसी रास्ते से, उसी स्थान पर पहुँच गये जहाँ उनके अन्य सजातीय पहुँचे थे। दूसरे भी अनेक प्रयोग पक्षियों की इस जन्म-सिद्ध 'प्रतिभा' को प्रमाणित करते हैं, क्योंकि प्रवास का यह पथ हजारों मील लंबा तक भी हो सकता है। किन्तु प्रश्न किया जा सकता है कि शेष क्यों ठीक दिशा की ओर नहीं जा सके जबकि आधे से अधिक ठीक दिशा की ओर लौट सके? इस के अनेक कारण हो सकते हैं किन्तु उनका तब तक अनुमान करना कठिन है जब तक हम यह नहीं जान लेते कि उन पक्षियों को कैसे छोड़ा गया। तो भी हम समझते हैं कि किसी प्रकार से भी उनके भटकने का कारण केवल संयोग (Chance) ही है, क्योंकि संभव है कि वे ठीक दिशा में उड़ते हुए अचानक भटक गए हों और किसी अन्य वायु की लहर में पड़ गए हों, यह भी संभव है कि प्रारम्भ में ही उन्हें ठीक लहर न मिली हो। इनमें सूर्य की दिशा और नदी-पर्वत इत्यादि की स्थिति का कोई हाथ नहीं है, क्योंकि इन्होंने पहले कभी इस रास्ते को तो देखा ही नहीं। जिन पक्षियों ने रास्ता देखा होता है, वे किसी अनजाने स्थान पर छोड़े जाने पर कभी तो अपने ठीक रास्ते पर आ जाते हैं और कभी भटक भी जाते हैं, किन्तु अनभिज्ञ पक्षियों के लिए ऐसी कोई बात नहीं है। इसका कोई कारण सर्वसम्मत नहीं है और संभवतः मनुष्य के लिए यह सदैव कठिन रहेगा कि इसके ठीक कारण को जान सके और उस संबंध में निश्चित प्रमाण दे सके। किन्तु हम कुछ अनुमान तो कर सकते ही हैं। मेरे विचार में ५० प्रतिशत या इससे कुछ कम या अधिक पक्षियों के ठीक स्थान पर पहुँच जाने से यह सिद्धान्त प्रमाणित हो जाता है कि शेष भी ठीक उसी प्रकार ठीक स्थान पर पहुँच सकते थे जैसे उनके अन्य साथी, और इससे यह निश्चित है कि पक्षियों का ठीक दिशा की ओर लौटना सकारण और स्वाभाविक ही है और कुछ के न लौट सकने का कुछ अज्ञात कारण है। इस कारण को हम मछलियों की प्रवास-प्रवृत्ति के अध्ययन से समझने में शायद अधिक सफल हो सकेंगे।

सालमोन मछली नदी के शीतल पानी में उत्पन्न होती है और अपने शैशव का प्रथम वर्ष वहीं बिताती है। दूसरे वर्ष में वह सागर के गंभीर जलों की ओर प्रयाण करती है और दो वर्ष इसी प्रवास में बिताती है। इसके पश्चात् वह पुनः नदी में प्रवेश करती है और प्रायः उन्हीं जलों में लौट आती है जिनमें उसने आयु का प्रथम वर्ष बिताया था। यहाँ वह अब गर्भ-धारण करती है, बच्चे देती है और मर जाती है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि उसी

मछलियाँ अपने इस प्रवास में बिल्कुल निश्चित और नियमित हो। कभी-कभी कोई मछली या मछलियाँ भटक भी जाती है और आयु का एक वर्ष इधर या उधर अधिक विताती हैं, किन्तु ऐसा केवल अपवादात्मक रूप से ही होता है।

नदी से सागर की ओर प्रवास का कारण मछली की आँखो में परिवर्तन है। शैशव में सालमोन की आँखे त्वचा मे गहरी गई होती है और उन पर एक विशेष झिल्ली-सी पडी रहती है। किन्तु धीरे-धीरे यह झिल्ली ममाप्त हो जाती है। तह हट जाने पर उसकी आँखें चुँधियाने लगती है और वह इससे वचने के लिए गहरे जलो में 'प्रच्छाय निवास' खोजती है। इन जलो में जव उसकी आयु वडी हो जाती है और उसकी ग्रथियाँ पक जाती है, तव इनके रस-प्रवाह मे उसके शरीर का रासायनिक क्रिया-व्यापार वहुत तीव्र हो उठता है और शक्ति-स्रोत खुल जाते है। इससे उसमें शीतल जल से घर्षण की वासना जागती है और शक्ति-स्रोतो से धमनियो में गुदगुदी होने के कारण उसमें दौडने-भागने की भी इच्छा उत्पन्न है। तव वह नदी में प्रवेश करती है और उस के शीतल जलो के तीव्र प्रवाह के विरुद्ध तैरना प्रारभ करती है। इस प्रकार वह सहज ही अपने जन्म-स्थान पर लौट आती है।

यह सब विवरण वहुत सीधा-सा है, किन्तु पक्षियो के प्रवास को समझने में उलझन का कारण उनका आकाश से सम्वन्ध है। हम अभी तक वायु की लहरो से उतने परिचित नही हो सके है और न हमारे पास अभी इतने विकसित साधन है कि पक्षियो के साथ उनके प्रवास की पूरी यात्रा कर सके। किन्तु जितना वैज्ञानिकों को आज इस बारे में पता है, उससे यह अनुमान किया जा सकता है कि मछलियो और पक्षियो के प्रवास के कारण एक-से ही है। मछली अपरिचित और भिन्न लहरो में पड कर उसी प्रकार भटक जाती है जैसे पक्षी, किन्तु उसका यह भटक जाना उसके प्रवास के कारणो का अपवाद नही है। इस प्रकार पक्षियो के प्रवास की यह क्रिया एक दम यान्त्रिक और कारण-कार्य-सबघ में बधी है।

कमोत्तेजना, मैथुन-प्रक्रिया और लिंग-निर्धारण

मैथुन-प्रक्रिया प्राय कुछ अपवादो को छोड कर, सभी प्राणियो में समान रूप से पाई जाती है। इस प्रक्रिया के क्रियान्वित होने के लिए दो भिन्न प्रकृति के व्यक्तियो—नर और मादा का होना आवश्यक है। किन्तु नर और मादा उस प्रक्रिया के केवल दो पहलू भर है, जो प्राणी की धमनियो और ग्रथियो में रासायनिक परिवर्तन जन्य शक्ति-स्रोतो के खुलने के रूप में जन्म लेती हैं। इससे इन रासायनिक क्रिया-व्यपारो को ही मैथुन-प्रक्रिया का

प्राथमिक और एकमात्र कारण कहा जा सकता है। किन्तु यह केवल विकास स्तर पर निम्न श्रेणी की जातियों के लिए ही कहा जा सकता है। विकास स्तर पर उच्च श्रेणियों में क्रमश 'मनोवैज्ञानिक' कारण भी महत्वपूर्ण होते जाते हैं। मनुष्य में मनोवैज्ञानिक कारण अन्य किसी भी प्राणी से बहुत अधिक महत्वपूर्ण होते हैं, किन्तु सभवत. उन्हे शरीर वैज्ञानिक कारणो से कदापि अधिक महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता। इसके दो प्रमाण दिये जा सकते हैं—प्रथम तो यह कि यदि मनुष्य की कामोत्तेजक ग्रथियां अपसारित कर दी जाए तो उनमें कामोत्तेजना प्राय समाप्त हो जाएगी और यदि तत्सवधी वमनि-यत्र भी अपसारित कर दिये जांय तब तो यह पूर्णत ही समाप्त हो जायगी। दूसरा प्रमाण लिंग परिवर्त्तन-जन्य मानसिक परिवर्त्तन हो सकता है। यदि नर को मादा में और मादा को नर में बदल दिया जाय तो उनकी मानसिक अनुभूतियाँ और आकाक्षाएँ तथा व्यवहार भी तदनुसार बिल्कुल बदल जाएँगे। इतना ही नही, मनुष्य भी प्रत्येक हार्मन, विटामिन और ऐंजाइम इत्यादि से अपनी मानसिक योग्यता-अयोग्यताओ में उसी प्रकार प्रभावित होता है जैसे पशु। इसमें अन्तर केवल इतना ही है कि निम्न श्रेणी के पशुओ में हार्मन अधिक प्रधान होते हैं और मनुष्य में केन्द्रीय ततुवाय और मस्तिष्क-ततुवाय इत्यादि भी पर्याप्त महत्व रखते हैं। यह ठीक है कि मनुष्य की प्रत्येक प्रक्रिया में उसकी 'मानसिकता' भी अनुस्यूत रहती है, जिसमें उसकी सामाजिक परिवृत्ति का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है, और यह भी ठीक है कि मनुष्य का यह मानसिक सस्थान अपनी इच्छानुसार भी कुछ शारीरिक परिस्थितियाँ उपस्थित कर सकता है, किन्तु यह सामान्यत शारीरिक प्रवृत्तियो को उकसाने की ओर ही अधिक सत्य है, उन्हे सयमित करने की ओर उतना नही। तभी ब्रह्मचर्य इत्यादि को इतना कठिन कार्य समझा जाता है।

वास्तव में यह बात उत्तेजना से अधिक उसकी व्ययजनित सन्तुष्टि के लिए और भी अधिक सत्य है। यद्यपि एक बार उत्तेजना के अस्तित्व में आ जाने पर उसकी तृप्ति के लिए पहले शारीरिक तृप्ति—स्पर्श और व्यय—जन्य सन्तुष्टि का हो लेना भी अनिवार्य है, किन्तु यह सन्तुष्टि केवल मानसिक स्तर पर भी रह सकती है यद्यपि वह सन्तुष्टि वास्तविक नही होती। यदि कोई व्यक्ति किन्ही सामाजिक कारणो से अपनी प्रेयसी को प्राप्त नहीं कर पाता, और यदि उसका 'सास्कृतिक स्तर' कुछ ऊँचा है तो उसकी सन्तुष्टि अपनी प्रेयसी की मधु-स्मृति से भी एक सीमा तक हो जायगी, तो भी कामवासना और तदीय तृप्ति की परिभाषा केवल शरीर वैज्ञानिक स्तर पर ही की जा सकती है, मनोवैज्ञानिक स्तर पर नही।

मनुष्य मे प्यार की अनेक श्रेणियाँ है, जो पशु से कुछ अधिक हैं, जैसे माता-पिता, बहन-भाई और प्रेयसी इत्यादि से प्यार। सामान्यत प्रेयसी से प्यार और माता-बहन इत्यादि से प्यार में अन्तर किया जा सकता है और उनमे सीमा-रेखाएँ, जो बिल्कुल स्पष्ट है, लगाई जा सकती है। किन्तु इन सीमा-रेखाओ को न केवल मनोवैज्ञानिक स्तर पर स्पष्ट ही नही किया जा सकता, प्रत्युत् देखा तक नही जा सकता। इन्हे केवल सन्तुष्टि की शरीर-वैज्ञानिक परिभाषा से ही स्पष्ट किया जा सकता है। नैतिकता के अधिक बोझ के कारण अनेक भावुक युवक और युवतियाँ आपस में प्यार करते हुए भी भाई-बहन का सबध स्थापित कर लेते हैं, और सभी प्रकार से एक-दूसरे की आकाक्षा करते हुए भी केवल मैथुनकी लैंगिक प्रक्रिया (सभोग) सबधी कल्पना से घबराते है। मै ऐसे कुछ व्यक्तियो को निकट से जानता हूँ और उनकी व्यथाओ को सुनता रहा हूँ, उनके दिवा और रात्रि-स्वप्नो का विश्लेषण भी, जहाँ तक मै कर सका हूँ, किया है। वे अपनी 'बहन' के विरह में उसकी नयनो के सौन्दर्य पर कविता लिखते हैं, चादनी रातो में नदी के किनारे हाथ में हाथ डालकर प्यार की कथाएँ कहना-सुनना चाहते है, नौका मे एक-दूसरे के सम्मुख बैठकर चप्पू की छप-छप ध्वनि में अपने प्राणो की वेदना को डुबा देना चाहते हैं। वे चाहते है कि वे अपनी 'बहन' की प्यारी कजरारी आँखे चूम लें, उसकी मधु-स्मिति का पान करलें, इत्यादि। उन्हे कितना भी कहा जाय, वे कभी भी यह स्वीकार नही करते कि वे उसे बहन के अतिरिक्त भी कुछ समझते है, यह भ्रान्ति केवल मानसिक घपला ही उत्पन्न करती है, किन्तु ऐसे किसी भी घपले को सन्तुष्टि की शरीर-वैज्ञानिक व्याख्या से दूर किया जा सकता है। इस परिभाषा को हम इन शब्दो मे रख सकते हैं—प्रेयसी के दर्शन-स्पर्शन या स्मरण से शरीर में जो वासना-स्रोत खुल जाते है, और उसके पश्चात् किसी भी प्रकार के सम्पर्क से, चाहे वह सपर्क आखो और स्मृति का ही क्यो न हो, जो उस वासना का व्यय होता है उसमें शरीर के वे हार्मन और धमनियो के वे केन्द्र व्यापारित होते हैं जो विशुद्ध रूप से मैथुन प्रक्रिया के लिए बने है—जैसे नर-चूहे को मादा-चूहे के चुम्बन में जो आनन्द आता है, वह इसी प्रकार के व्यय का आनन्द है, और इस आनन्द में उस व्यय से सर्वथा भिन्न शरीर-वैज्ञानिक व्यय होता है जो मादा-चूहे में मातृत्व-वासना के पश्चात् पुत्रो को दूध पिलाने या प्यार करने से होता है। सामान्यत चुम्बन या दर्शन वासना-व्यय के साधन न होकर वासनोद्रेक के साधन होते है, वासना-व्यय केवल सभोग का अनुसरण करता है, मनुष्य के लिए भी यही सत्य है, किन्तु मनुष्य में 'प्रवचक-तृप्ति' (Decep-

tive satisfaction) का भी पर्याप्त महत्व है जो विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसे समझने के लिये हमें वासनोद्रेक (Appetitive push अथवा Tumescence) और आत्म-व्ययी प्रक्रिया (Consumatory act or Detumescence) की प्रवृत्ति को अच्छी प्रकार से समझ लेना चाहिए। यद्यपि अगले निबंध मे इसकी विस्तृत व्याख्या की गई है, फिर भी यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि वासना की वकेल उन हार्मंज के रासायनिक क्रिया व्यापार का परिणाम है जो भाफ के समान शक्ति-सचय के रूप में प्रयुक्त होते है और प्रक्रिया के रूप में व्यय होकर प्राणी को सन्तुष्टि प्रदान करते है।

अस्तु, हमारे लिए यहाँ इस बात का अधिक महत्व नही है कि मनुष्य में प्यार की कितनी श्रेणियाँ हो सकती हैं, हमें तो यहाँ उन तथ्यो को देखना है जो इस वासना के उत्कर्ष या उद्रेक के कारण और स्रोत हैं। यह तो सभी जानते ही हैं कि मैथुन-व्यापार की क्रिया प्रत्येक प्राणी में कुछ विशेष ढग और अनुक्रम से होती है, किन्तु यह केवल उस वस्तु का खोल है जिसे वासना और व्ययजन्य-सन्तुष्टि कहा जा सकता है, और शायद तज्जन्य सुख और आनन्द की अनुभूति सभी मे समान रूप से और समान ही होती होगी। सभव है नर और मादा की सन्तुष्टि में कुछ अन्तर हो, किन्तु अन्तर यह मौलिक तो कभी भी नही हो सकता।

नर और मादा को मैथुन प्रक्रिया के दो पूरक कहा जा सकता है। ये पूरक यद्यपि ऐसे दो विरोधी तत्व—ऋण और धन—समझे जाते हैं जो एक दूसरे से मौलिक भिन्नता रखते है, किन्तु वास्तव में यह भिन्नता उतनी मौलिक नही है, जितनी समझी जाती है। ऋण-धन पदार्थो में जो आकर्षण शक्ति सापेक्षता में होती है, वही यद्यपि नर-मादा में भी पाई जाती है, किन्तु नर को मादा में और मादा को नर में परिवर्तित किया जा सकता है और परिवर्तित होने की यह क्रिया अत्यन्त सरल और सीधी है। नर-मादा के इस अन्तर के कारण जर्म सेल और उनमें निहित जेन होते है जिनको सुविधा के लिए x और y जर्म कहा जाता है। स्तनपायियो में प्राय नर में जब कि x और y जेन होते है, मादा में x x जेन होते है। इसके विपरीत पक्षियो में नर मे x x और मादा में x y जर्म होते है (विशेष तीसरे और चौथे निबधो में)। मैथुन के पश्चात् स्तनपायियो में यदि मादा के अडे मे नर का y स्पर्म (शुक्र) प्रविष्ट होकर गर्भाधान करे तो परिणाम नर पुत्र होगा और यदि x शुक्र प्रवेश करे तो मादा होगा। पक्षियो में इसके विपरीत निर्णय मादा के हाथ में रहता है। कृमियो की कुछ जातियो में और

भी अधिक आश्चर्यजनक रूप से सूक्ष्म विभाजन रेखा पायी जाती है, उदाहरणार्थ मधुमक्खी के अडे में क्रोमोसोम सख्या x=2N होती है जब कि शुक्र में क्रोमोसोम सख्या x=1n होती है। यदि मादा शुक्र के वपन के बिना ही बच्चा दे दे तो विभाजन (Reduction Division) के द्वारा क्रोमोसोम सख्या x=1n रह जाने से बच्चा नर होगा और यदि शुक्र वपन से बच्चा दे तो विभाजन के बाद क्रोमोसोम सख्या x=2n होगी और बच्चा मादा होगा। मधुमक्खियो में x=8 होता है। मादा में क्रोमोसोम सख्या 2x=16 होती है तो नर मे यह सख्या 1x=8 होती है।

इस प्रकार बीज-वपन के एकदम साथ ही भावी शिशु के लिग का निर्णय हो जाता है किन्तु गर्भ में बच्चा बनने के काफी देर बाद तक भी उसमें किसी लिग के चिन्ह प्रकट नही हुए होते। किसी भी प्राणी का लिग-निर्णय उसके गोनाड्ज के निर्णय पर निर्भर करता है, क्योकि ये ही लैंगिक इद्रियो को बनाने में कारणभूत तत्व हैं। अनेक बार तो केवल वाह्य अग-निर्माण से कुछ निर्णय कर लेना काफी भ्रामक भी हो सकता है, क्योकि हो सकता है कि तब तक उसकी गोनाड्ज ग्रथि ने अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति ही न की हो। कभी-कभी किसी में दोनो ही ग्रथियाँ भी हो सकती हैं जब कि उसका वाह्य अग-निर्माण केवल एक ही ओर का होता है।

मनुष्य में गर्भधारण के लगभग ६ या ७ सप्ताह पश्चात् बच्चे मे कुछ ऐसे कोषो के प्रारभिक चिन्ह बनने लगते है जो बाद में टेस्टिस या ओवरी में परिणत होते है। किन्तु क्योकि अभी तक ये सेल या भावी ग्रथियाँ लैंगिक भिन्नता से स्पष्ट होती है इसलिए तब भी लिग के विषय में कुछ नही कहा जा सकता। वास्तव में इसके बाद की अवस्था में भी काफी देर तक बच्चा दोनो लिगो के प्रारभिक चिन्ह और नालियाँ इत्यादि रखता है। पश्चात्, यदि उसका झुकाव नरत्व की ओर होता है तो उसकी आन्तरिक नालियाँ और वाह्य इन्द्रियाँ उसी ओर विकास करने लगती है और दूसरी ओर के अग अविकसित ही रह जाते हैं, और यदि मादा की ओर तो नरत्व के पोषक अग अविकसित रह जाते हैं।

प्रश्न किया जा सकता है कि जब बच्चे में पहले किसी भी लिग की ओर कोई झुकाव नही होता और वह बहुत देर तक दोनो के ठीक बीच मे होता है तो क्यो वह एक ओर न जाकर दूसरी ओर जाता है? इसका उत्तर इतना कठिन नही है। हम पहले ही जैसा कि कह आये हैं, नर या मादा में सदैव जर्म x y और x x या x x और x y तथा 1x=1n और 2x=

2n होते है और जर्मज का यह भेद ही लिग-भिन्नता का कारण है। यद्यपि इन जर्मज मे तो कोई भी अग और कोई भी ग्रथि नही होती, किन्तु प्रतीकात्मक रूप से कहा जा सकता है कि, ये सब बीज रूप मे उसमें निहित रहते है। पश्चात, जब यह बीज आत्मोद्‌घाटन करता है तो प्राणी के शरीर का निर्माण होता है। जैसा कि हम चतुर्थ निबंध मे देखेंगे, जर्म के भीतर क्रोमोसोम्ज में रहने वाले जेन ही हमारे शरीर के रासायनिक क्रिया-व्यापारो, जैसे एजाइम, सहायक ऐंजाइम तथा हार्मन इत्यादि—के आधार और सूत्रधार होते है। इससे ग्रथियो में से स्रवित होने वाले हार्मंज के द्वारा ये जेन प्राणी के लिग निर्णय मे कारण बनते है। यद्यपि स्नायु-तन्तु-वाय का भी इस में कम महत्त्व नही है, किन्तु ये स्नायु और तन्तु (Tissues) किस ओर विकास करेंगे, यह सभवत ग्रथियो पर ही निर्भर करता है। इसके अनेक प्रमाण दिये जा सकते है, यदि किसी व्यक्ति में से टेस्टिस ग्रथि को समाप्त कर दिया जाय तो उसमें मादापन के चिन्ह प्रकट होने लगेंगे, वास्तव में स्तनपायियो (नर x y, मादा x x) में मादापन केवल नरत्व की अनुपस्थिति ही है जब कि पक्षियो में (नर x x और मादा x y) इसके सर्वथा विपरीत नरत्व मादापन की अनुपस्थिति है। वहाँ यदि मादा से ओवरी ग्रथि अपसारित कर दी जाय तो उसमें नरत्व के चिन्ह, तीव्र नख, कठोर पख और मुकुट इत्यादि प्रकट होने लगतेहै। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पक्षियो में मुकुट इत्यादि नर-ग्रथि-रसो के परिणाम न होकर मादा ग्रथियो की अनुपस्थिति के परिणाम है। पोल्ट्री फार्मों (Poultry Farms) में प्राय ही लिंग-परिवर्त्तन के केस होते रहते है। जब किसी कारण से मादा की ओवरी ग्रथि अयोग्य हो जाती है तो उसमें नरत्व के चिन्ह प्रकट हो जाते है, किन्तु वह पूर्णत नर तभी बन सकती है यदि उसमें टैस्टिस भी विकसित हो जाएँ। अनेक बार ऐसा होता है कि कुछ व्यक्तियो में टेस्टिस और ओवरी दोनो ही पर्याप्त विकास कर लेते हैं किन्तु एक कुछ गौण पडी रहती है, यदि बाद में प्रधान ग्रंथि किसी कारण से गौण हो जाये तो वह दूसरे लिग में प्रविष्ट हो जाती है। किसी-किसी में दोनो ही ग्रथियाँ काफी प्रभावशाली रहती है, उस अवस्था में व्यक्ति न पूरी तरह से नर होता है और न मादा। सभव है इसका कारण यह भी हो कि पहले x या y जेन में से एक प्रधान रहे और बाद में दूसरा।

किन्तु लिग-परिवर्त्तन के लिए केवल इतना ही काफी नही है कि ग्रथि-रसो को ही बदल दिया जाए, इसके लिए व्यक्ति के शरीर में उनकी प्रेरणा

को क्रियान्वित करने की योग्यता भी होनी चाहिए। यद्यपि इनमें दोनो का ही बहुत महत्व है, किन्तु क्योकि प्रत्येक व्यक्ति मे दूसरी योग्यता होती ही है (अर्थात वह नर और मादा दोनो के समान क्रिया-व्यापार कर सकता है) इसलिए पहिली योग्यता (ग्रथि-रसो की) मे ही परिवर्त्तन आवश्यक है। फिर ये ग्रथि-रस भी उस योग्यता को प्राप्त करने में बहुत सहायक होते है। किन्तु शरीर के भीतर कुछ और भी योग्यताएँ होनी आवश्यक है जो कि कभी कभी हार्मज से नही आ पाती, जैसे अनेक स्त्रियो में भग और गर्भ का ठीक विकास नही हो पाता, इसी प्रकार अनेक पुरुषो में लिग पूरा विकसित नही हो पाता, यद्यपि लिग और भग के विकास में हार्मन बहुत प्रभावशाली तत्व है किन्तु सभवत गर्भ का विकास होना उनसे सभव नही होगा।

इससे स्पष्ट है कि हार्मजकाम-वासना और वासना की प्रकृति में कितने महत्वपूर्ण कारण हो सकते है। इसके सवध मे अन्य ज्ञातव्य वातो को भी हम सक्षेप में यहाँ देखेंगे।

यह प्राय सर्वसम्मत ही है कि ओवरी के अपसारण के पश्चात् प्राय सभी प्रकार के प्राणी मैथुन-प्रक्रिया के अयोग्य हो जाते है। यदि ओवरी का अपसारण शैशव में ही कर दिया जाए तव तो तदीय वासना और आचरण तक का विलय हो जाता है, किन्तु यदि यौवन में भी इस ग्रथि का अप-सारण कर दिया जाय तो भी बहुत शीघ्र ही प्राणी में ये वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं, किन्तु आकृति में विशेष परिवर्तन लक्षित नही होते। और यदि यह अपसारण रज-स्राव के दिनो में किया जाय तो काफी दिन इसके प्रभाव को क्रियान्वित होने में लग सकते है, क्योकि उन दिनो ओवरी-रस पर्याप्त मात्रा में रक्त में विद्यमान रहते है। मनुष्य जाति में स्त्री पर ओवरी के अपसारण का प्रभाव इतनी गभीरता और शीघ्रता से लक्षित नही किया जाता, तो भी वहाँ धीरे-धीरे मैथुन-वासना समाप्त होती जाती है। सभवत मनुष्य में हार्मंज या तो कम प्रभावशाली होते है अथवा गोनाड्ज के अतिरिक्त अन्य हार्मंज का भी इसमें हाथ रहता है। यह भी सभव है कि गोनाड्ज का अपसारण पूर्ण रूप से न होता हो। इसलिए पिच्यूइटरी को अपसारित कर देखना चाहिए कि मनुष्य की यह वासना कितनी और किस प्रकार प्रभावित होती है। सभवत हार्मंज के अतिरिक्त, मनुष्य में उसके स्नायु-ततुवाय का भी महत्वपूर्ण भाग रहता है।

नर में टेस्टिस के अपसारण का प्रभाव मादा में ओवरी के अपसारण से कुछ भिन्न रूप में होता है। यदि नर में टेस्टिस का अपसारण किशोरा-

वस्था से पूर्व ही कर दिया जाए तो उसमें इस वासना और प्रक्रिया का विकास ठीक तरह से नहीं हो पाता, किन्तु यदि यह अपसारण कैशोर्य के पश्चात् किया जाए तो मादा से भिन्न नर में मैथुन-योग्यता समाप्त होने में और भी अधिक दिन लग जाते हैं। उदाहरणार्थ, चूहो में अपसारण के पश्चात् ३२ प्रतिशत चूहे एक मास के पश्चात् असमर्थ हुए, ४५ प्रतिशत दो महीनो पश्चात् असमर्थ हुए और शेष को चार मास तक लग गए (Stone)। इस असमर्थता में पहले वीर्य-स्खलन की शक्ति का ह्रास हुआ और पीछे मैथुन-प्रक्रिया का। अधिक विकसित प्राणियो में हार्मंज का नर की मैथुन योग्यता पर प्रभाव और भी कम होता है। कुत्तो में टेस्टिस का अपसारण जब कि कुछ को शीघ्र असमर्थ कर देता है, शेष दो-अढाई वर्ष तक अपनी मैथुन योग्यता को बचाए रख सकते हैं (Beach)। शिम्पेंज़ी में तो हार्मंज का यह प्रभाव और भी कम देखा जाता है। वे तो कैशोर्य से पूर्व भी अपसारित ग्रथि होने पर यौवन में उसी उत्तेजना से मादा से मैथुन की उत्सुकता प्रकट करते हैं। मनुष्य में यद्यपि इसका निश्चय नही किया जा सका है, किन्तु सभवत उसमें भी शिपेंजी के ही समान हार्मंज का मैथुन प्रक्रिया पर प्रभाव होगा (Beach)। इस प्रकार विकास-पथ में हार्मंज का प्रभाव क्रमश कम होता जाता है।

जैसा कि हम पीछे भी अनेक स्थलो पर कह आए हैं, पिच्यूइटरी ग्रथि के अपसारण का भी प्रभाव मैथुन योग्यता पर बहुत गभीर होता है। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि इसका नर पर भी वैसा ही गभीर प्रभाव होता है जैसा मादा पर। दोनो ही में मैथुन-प्रक्रिया अपसारण के शीघ्र पश्चात् समाप्त हो जाती है। इसका अर्थ यह नही कि पिच्यूइटरी इस प्रक्रिया में प्रत्यक्षत प्रभावशाली है, जैसा कि हम जानते हैं इसके हार्मन दूसरी ग्रथियो के हार्मंज को व्यापारित करते हैं। सभव है कि एंड्रेनल ग्रथि के हार्मन या ऐंड्रोजन टेस्टिस के अपसारण के पश्चात् विकसित प्राणियो में मैथुन प्रक्रिया और वासना को बचाए रखते हो, किन्तु पिच्यूइटरी के अपसारण से वे भी स्रवित नही होते। मादा में ओवरी अपसारण और पिच्यूइटरी अपसारण का प्रभाव सामान्यत एक-सा ही होता है, किन्तु विकसित प्राणियो में ओवरी का प्रभाव उतना गभीर नही होता जितना पिच्यूइटरी का होता है। सभवत ओवरी और टेस्टिस के अपसारण के पश्चात् भी विकसित प्राणियो में मैथुन-वासना और प्रक्रिया का ऐंड्रोजन इत्यादि रसो से जारी रहना इस बात का सूचक है कि इनकी धमनियो की योग्यता कम सशक्त

रासायनिक द्रव्यो से भी लाभ उठा सकती है। पिच्यूइटरी के अपसारण का गभीर प्रभाव यही सूचित करता है।

ग्रथि-अपसारण के इन प्रयोगो से स्पष्ट है कि हार्मंज का मैथुन-व्यापार पर कितना गभीर प्रभाव हो सकता है। किन्तु इसमे अधिक आकर्षक अध्ययन हार्मंज या ग्रथियो का नर से मादा और मादा मे नर मे वदलना है। इसके लिए हमने पीछे भी कुछ थोडा-सा लिखा था, किन्तु इसका और अधिक अध्ययन हार्मंज के प्रभाव को समझने के लिए आवश्यक है।

यह तो सहज ही समझा जा सकता है कि ओवरी या टेस्टिस के अपसारण के प्रभाव को तदीय रसों के इजेक्शन से कम किया जा सकता है, फिर चाहे वह नर पर प्रयोग किया जाय या मादा पर। उसके प्रभाव मे कोई अन्तर नही पडता। यदि पिच्यूइटरी या गोनाड्ज को कैशोर्य से पूर्व भी अपसारित किया हो तो भी इन रसों के इजेक्शन उन व्यक्तियो मे वासनोद्रेक उत्पन्न कर सकते है। अपसारित नर में इन रसो के इजेक्शन से क्रमश मैथुन की सामर्थ्य पहले और स्खल की बाद में लौटती है, जो कि अपसारण से उत्पन्न होने वाले प्रभाव से ठीक उलटा है। दुर्भाग्यवश नर मनुष्य में इस प्रकार के प्रभाव समान परिणाम नही लाते (Beach)। मोर्गन के अनुसार जैसे अपसारण का परिणाम नर मे समान नही होता, वैसे ही इजेक्शन का प्रभाव भी समान नही होता। उसके अनुसार इसका कारण मनोवैज्ञानिक है। किन्तु हमारे विचार में यह ठीक नही है। हमने पीछे भी कहा था कि टेस्टिस-अपसारण के पश्चात् नर में मैथुन-योग्यता का बने रहना बताता है कि उसकी उस योग्यता में सभव है अन्य रस भी उत्तरदायी हो, और फिर हमने पिच्यूइटरी के अपसारण से समान रूप से सभी के असमर्थ होने की सूचना देते हुए बताया था कि सभव है नर में ऐंड्रोजन भी मैथुन योग्यता में निर्णायक होता हो। इसलिए इसमें मनोवैज्ञानिक कारणो को उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता। यदि पिच्यूइटरी का अपसारण मनुष्य में वही प्रभाव डालता है जो ओवरी का अपसारण चूहे में, तो टेस्टिस या ओवरी का उतना गभीर प्रभाव न होने पर भी इसका कारण मानसिकता को सभवत नही कहा जा सकता।

अपसारित ओवरी और अपसारित टेस्टिस मादाओ और नरो मे एस्ट्रोजन हार्मन का प्रभाव समान ही होता है। मादा में एस्ट्रोजन के इजेक्शन से रज-स्राव और मैथुन-वासना की शक्ति लौट आती है। किन्तु रज-स्राव और वासना के चक्र की नियमितता, जो अनपसारित व्यक्तियो में पाई जाती है, वह इनमें नही होती।

एस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरोन का सम्मिलित इंजेक्शन और भी गभीर प्रभाव डालता है। मादा सूअर (Female Guinia Pig) में ऐस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरोन के आनुक्रमिक इजेक्शन उत्तेजना की तीव्रता और रज-स्राव को, तथा तज्जन्य अन्य शारीरिक प्रभावो को भी लौटा लाते है। किन्तु विभिन्न जातियो पर इनके प्रभाव भी विभिन्न होते है। शशक, खरहा इत्यादि (Rabbits) में तथा बदरो में प्रोजेस्टेरोन का इजेक्शन उत्तेजना को प्राय बिल्कुल ही समाप्त कर डालता है। विभिन्न हार्मंज़ के इजेक्शन प्राणियो में ऋतु न होने पर भी अथवा यौवनोदय से पूर्व भी कामोत्तेजना उत्पन्न कर सकते हैं।

अनेक जातियो में, जो विशेष ऋतु में ही उत्तेजना में आती है, यह उत्तेजना गोनाड्ज़ के इजेक्शन से, तथा अन्य उपायो से भी, ऋतु के विना ही उत्पन्न की जा सकती है (Beach)। जैसा कि हम पीछे भी देख आए हैं, प्रकाश के समय को वढा देने से पिच्यूइटरी ग्रथि से रस-स्राव होने लगता है, यह भी हम जानते हैं कि यह ग्रथि गोनाड्ज़, थाइराइड तथा ऐड्रेनल इत्यादि ग्रथियो के स्राव की कारण है। इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि प्रकाश के समय का वढा देना मात्र ही कामोत्तेजना को वढाने में कितना वडा कारण हो सकता है। दूसरा ढग गोनाडल रसो का इजेक्शन हो सकता है। आयु ढलने पर निम्न स्तर के प्राणियो में हार्मंज पुन कामोत्तेजना और यौवन के चिन्ह लौटा सकते है। यह उत्तेजना मनुष्य तक में लौटाई जा सकती है, किन्तु वाद में सभवत इसका परिणाम घातक थकन और व्यय होता है। एक फ्रेंच डाक्टर ने एक वार कुत्ते के गोनाड्ज को नमकीन पानी में मिलाकर अपने आप में इजेक्शन किया और इससे उस पर जादू का सा प्रभाव हुआ। इस पर उसने अपने को पुन युवक हो उठने की पत्रो में घोषणा कर दी, किन्तु एक मास के पश्चात् ही वह वुरी तरह से निर्वल हो गया। उसने इसके जो कारण दिये है, उनकी चर्चा हम यहाँ नही करेंगे, क्योकि वे पर्याप्त प्रामाणिक नहीं है, किन्तु यह प्रयोग अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग अवश्य है। मनुष्य में मनोवैज्ञानिक कारणो को भी कुछ महत्त्व दिया जा सकता है, ऐसे वहुत से व्यक्ति हो सकते हैं जो पर्याप्त हार्मंज और शक्ति होने पर भी इस ओर से पर्याप्त उदासीन रहें। यद्यपि उनके उस मानसिक विकास में भी उनकी शरीर-वैज्ञानिक-परिस्थितियो का वहुत अविक महत्त्व है, और सभवत इस प्रकार की उदासीनता या अनुरक्ति वहुत कुछ व्यक्ति के ग्रथि-रसो के अनुपात पर भी निर्भर करती है। इस प्रकार के व्यक्तित्त्व निर्माणमें सभी रस-स्रावक ग्रथियाँ उत्तरदायी होती हैं। सभवत मनुष्य का भी,

जैसा कि अन्य प्राणियो का चरित्र दो आतरिक कारणो मे निर्धारित होता है—प्रथम, उसके क्रोमोसोम्ज़ के उत्ताराधिकार के रूप मे, और दूसरा इन रस-स्रावक ग्रथियों से। पिछले २२ वर्ष से व्यक्तित्त्व पर इन रसो के प्रभाव का अध्ययन बहुत आगे वढ सका है। यद्यपि इस ओर अभी वहुत कम निश्चित परिणाम प्राप्त हो सके है तो भी कुछ अनुमान तो किये जा सकते ही है। उदाहरणार्थ, कीट्स में थाइराइड-ऐड्रेनल रस प्रधान थे, शेली में थाइराइड और पिच्यूइटरी प्रधान थे और एकदम शान्त और विचारशील वुडरो विल्सन में पिच्यूइटरीग्रथि (K Walker)। सामान्यत कवि और गायक, अथवा अन्य कलाकार भावुक होते है और उनमें अधिक कामुकता होती है। इसका श्रेय अधिक एड्रेनल और गोनाड्ज को ही दिया जा सकता है। इसी प्रकार वैज्ञानिक, दार्शनिक और व्यापारी इत्यादि कम भावुक और स्थित-प्रज्ञ होते है, इससे उनमे सहज ही इन ग्रथियो का प्रभाव अपेक्षाकृत गौण होना चाहिए। यद्यपि इनमें आगे और भी सूक्ष्म-भेद होने अनिवार्य है, किन्तु वह सव हम यहाँ नही देखेंगे। हमारे लिए यहाँ केवल इतना ही प्राकर्णिक है कि ये ग्रथियाँ और विशेषत कामोत्तेजक ग्रथियाँ कैसे कार्य करती हैं और प्राणी के व्यहार को प्रभावित करती हैं। इसके लिए (Beach) की पुस्तक "हार्मंज और विहेवियर" से एक रेखा-चित्र देना उपयोगी रहेगा—
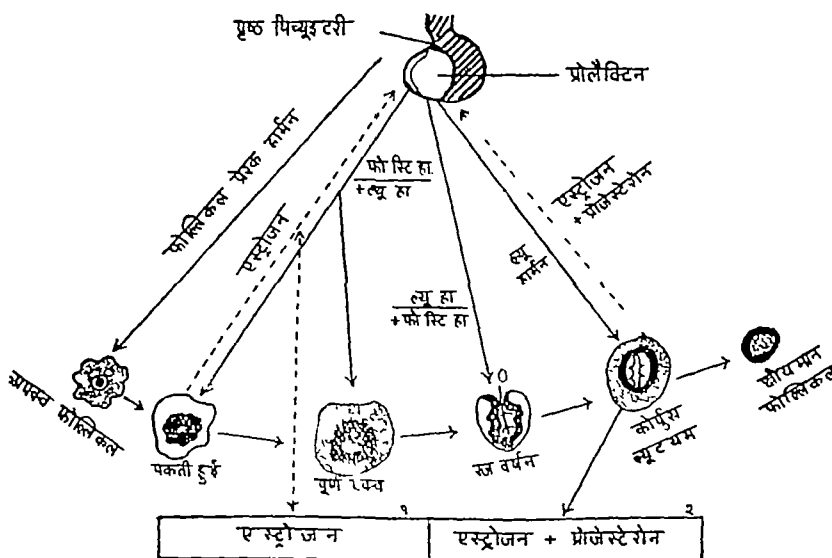
गर्भ	वाह्य दीवार में परिवर्तन	शिशु-ग्रहण के लिए प्रस्तुत		मासिक धर्म का प्रारम्भ
रज	फोल्लिकल में	ट्यूब में	गर्भ में	वपित होने पर गर्भ-धारण
मरीढधारियो में कामनोदय	शून्य	उच्चतम स्तर पर		शून्य
मानव से निम्न रीढधारियो में	वहुत कम	उच्चतम स्तर पर		निम्नतम स्तर पर

ये हार्मन विभिन्न प्राणियो में विभिन्न प्रकार की मैथुन-प्रक्रियाओ को जन्म देते हैं। इन्हे मुख्यत प्राथमिक और उद्दिष्ट (Secondary) दो भागो में वांटा जा सकता है। प्राय सभी प्राणी अन्तिम या उद्दिष्ट मैथुन-प्रक्रिया (सभोग) से पूर्व प्राथमिक (चुम्वन, कडूयन, इत्यादि) क्रियाएँ करते हैं। पक्षियो में प्राय कूजन और चचुमेलन-नृत्य प्राथमिक क्रियाएँ कही जा सकती हैं। कुछ जातियो में तो इन प्राथमिक क्रियाओ के लिए विशेप अग ही वने हुए है, जैसे कस्तूरी मृग की नाभि की कस्तूरी अपनी प्रेयसी को आकर्पित करने के काम आती है। कुछ कृमियो में भी इसी प्रकार सुगंधित अग मैथुन-ऋतु में उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ कृमि विशेप प्रकार की आवाज करते हैं जो सभवत उनका मैथुन-गीत होता है, कुछ अन्य ऐसे यत्रो का प्रयोग करते है जिससे अपनी प्रेयसी को आकर्षित कर सकें, उनकी प्रेयसियाँ विना उन टिपिकल गीत-ध्वनियो के नर के समीप नही जाती। इसके अतिरिक्त गायन, नृत्य और कडूयन-चुवन इत्यादि की क्रियाएँ अन्य भी प्राय सभी प्रकार के प्राणियो में वहुत अधिक विकसित हैं। थ्रीस्पाईडस्टिक्कल-वैक अपनी प्रेयसी के आगे नृत्य करता है और उसे अपने घोसले की ओर मादा के भग पर अपनी थोथनी के चुम्वन-घर्षण से धकेलता है। हरिण प्रेयसी के भग के समीप वडी मधुरता और मादकता से कडूयन करते हैं। हाथी एक दूसरे के सूड में लपेट कर अपनी नथुनी एक दूसरे के मुँह में डालते हैं। साँप और सँपनी एक दूसरे से रस्सी के समान लिपट जाते है और नर मादा के मुँह को अपने मुँह में ले लेता है। पुस्कोकिल के गीतो की मधुरता और तीव्रता को तो सभी जानते ही है, वह वडी विकलता और अधीरता मे अपनी प्रेयसी के लिए धरा से व्योम तक स्पन्दित गीतो का वितान छा देता है। इसी प्रकार वुडपैक्कर (Woodpecker) अपनी प्रेयसी के लिए मृदग की सी एक विशेप ध्वनि

करता है। ग्रासहोप्पर वायलिन के समान एक यत्र से मधुर सगीत उत्पन्न करता है और उसकी प्रेयसी मधुर गीतो में उसका उत्तर देती है। ये सब प्रक्रियाएँ है जो एक तीव्र वासना की वाह्य अभिव्यक्तियां-मात्र हैं। ये अपनी इच्छा से स्वीकृत नही है प्रत्युत अन्तर्वासना की वाध्यता की परिणाम है। इस को हम काफी विस्तार से पीछे देख ही आए हैं।

विशेष भूख

ऊपर अध्ययन-किए गए विशेष व्यवहारो के समान ही भूख और प्यास का अध्ययन भी मनस्प्रक्रिया के स्रोतो को समझने के लिए आवश्यक है। भूख के विषय में यह तो प्राय निर्विवाद सिद्ध ही है कि इसकी उत्पत्ति मे मानसिक प्रयासो (Psychological desires) या मानसिक प्रवृत्तियो को (जिनका निर्धारण परिवृत्ति से हुआ समझा जाता है), कुछ भी लेना देना नही है, अथवा इसमें उनका न के बराबर ही हस्तक्षेप होता है, इसकी उत्पत्ति में तो हमारे शरीर में के परिवर्त्तन ही उत्तरदायी हैं। इस लिए यहाँ हम इसके विषय में कुछ कहना आवश्यक नही समझते। हमारे लिए यहाँ केवल उसी प्रक्रिया का विशेष महत्व है जो प्रत्यक्षत मानसिक प्रतीत होती है। भूख में भी प्रतीयमान मानसिक पहलू विद्यमान है—जिसे वस्तु-विशेष की भूख, किसी भोजन का समय-समय पर स्वाद या बे-स्वाद लगना इत्यादि में देखा जा सकता है। किन्तु इससे पहले कि हम इसके शरीर वैज्ञानिक कारणो को देखें, हम भूख के कारणभूत हार्मज का सक्षिप्त-सा विवरण देंगे।

प्रयोगो से यह सिद्ध हो चुका है कि भखे व्यक्ति का रक्त सन्तुष्ट व्यक्ति के रक्त से रा-ायनिक प्रकृति में भिन्न होता है—इसमें कुछ रासायनिक द्रव्यो का अभाव और कुछ की अधिकता होती है। यद्यपि अभी तक यह निश्चित रूप से ज्ञात नही हो सका है कि यह भिन्नता क्या है, किन्तु कुछ भिन्नता है, इसमें कोई सदेह नही। इसका प्रमाण यह है कि यदि भूखे व्यक्ति का रक्त सन्तुष्ट व्यक्ति में इजेक्ट कर दिया जाए तो वह पुन खाने के लिए व्याकुल हो उठेगा, उसे भूख लग आएगी। इसी प्रकार भूखे व्यक्ति में सन्तुष्ट व्यक्ति का रक्त-सचार उसके पेट की सिकुडन को कम कर देगा (Beach)। इससे स्पष्ट है कि भूख में और सन्तुष्टि में रक्त की कुछ भिन्न रासायनिक स्थितियाँ होती हैं। हाइड्रोक्लोरिक एसिड भोजन पचाने में बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लेता है, सभव है और भी कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ हो जो कि पेट की किसी ग्रथि से स्रवित होते हो और इस प्रकार अज्ञात हार्मन हो। एक

प्रयोग में कुत्ते के पेट का एक भाग काटा गया और रक्त को ठीक सचार के साथ त्वचा में शरीर के अन्य किसी भाग में सी दिया गया। वह भाग सामान्य पेट के समान ही सिकुडता था और एक विशेष रस को प्रवाहित करता था, जिससे भोजन पचने मे सहायता मिलती थी—ऐसा अनुमान है। सभवत भूख के कई अन्य भी रासायनिक कारण हो सकते है, जिनमे रक्त में इन रसो के मेल से ही नही, भोजन के अभाव से भी रासायनिक परिवर्तन की सभावना एक कारण हो सकती है।

ये रस और अन्य रासायनिक कारण ही शायद विशेष भूख और भोजन में किमी वस्तु के पसन्द-नापसन्द के कारण होते हैं। ये न केवल यही निर्धारित करते हैं कि व्यक्ति विशेष कब और कितना भोजन ग्रहण करे प्रत्युत् यह भी कि वह क्या चाहे। सामान्यत यदि एक व्यक्ति एक विशेष भोजन अपने रासायनिक परिवर्तनो के कारण अथवा अपने सामान्य भोजन में उसकी अनुपस्थिति के कारण चाहता है तो हम कहेंगे कि उसने अपनी एक विशेष भूख विकसित कर ली है। यह भूख केवल पेट पोशियो की के सकोच से ही सवध नही रखती, क्योकि अनेक वार व्यक्ति पेट भर लेने पर भी और अधिक खाना चाहता है। इसलिए अनिवार्य रूप से कुछ दूसरे भी रासायनिक और स्नायविक कारण होगे जो विशेष भूख का निर्धारण करते होगे। मेरे विचार में यदि किमी विशेष भूख से भूखे एक व्यक्ति का रक्त दूमरे सन्तुष्ट व्यक्ति में डाला जाय तो शायद उसे भी वही विशेष भूख लग आएगी। मान लीजिए, एक चूहे ने एक महीने में कभी नमक ग्रहण नही किया जव कि दूसरा उपयुक्त मात्रा में नमक ग्रहण करता रहा है, और उसके वाद नमक के भूखे चूहे का रक्त यदि सन्तुष्ट में इजेक्ट कर दिया जाय तो सभवत वह चूहा भी नमक चाहने लगेगा।

यदि किसी व्यक्ति के आगे उसकी जाति के समान सभी प्रकार के भोजन रख दिये जाएँ तो वह ठीक चुनाव करने में, यदि वह मनुष्य नही है तो, काफी से अधिक सफल रहेगा और वडे सन्तुलित रूप से अपनी आवश्यकता के अनुसार चुनाव कर लेगा, और हम देखेंगे कि किन्ही भी दो व्यक्तियो का चुनाव ठीक एक-सा-ही नही होगा। इस प्रकार के चुनाव में मनुष्य के असमर्थ रहने का कारण उसकी मानसिक अभिरुचियो का विकास है। उसमें मनोवैज्ञानिक कारण उसकी प्राकृतिक रुचि को घपला देते है। किन्तु यदि वहुत छोटे वच्चो के सम्मुख सभी आवश्यक भोजन प्रस्तुत किये जायें तो वे चुनाव में वहुत काफी सफल रहेगे। किसी दिन तो वे मक्खन और अडे या विस्कुट इत्यादि पसद करेंगे और किसी दिन मक्खन को या अडो को चखना भी नही

चाहेगे। यदि उन्हें काफी दिन अपर्याप्त मीठा दिया जाए तो वे उसे प्राप्त करने पर उस की बहुत अधिक मात्रा ग्रहण करेंगे, इसी प्रकार मक्खन इत्यादि के लिए भी। इस प्रकार कभी एक वस्तु को अधिक खाते हुए और कभी दूसरी को, वे अपने आवश्यक भोजन का अनुपात ठीक रखेंगे। इसी प्रकार अन्य प्राणिग्रो में भी देखा जा सकता है। यदि चूहे को विभिन्न पदार्थ एक साथ दिये जाँय और ये पदार्थ भिन्न-भिन्न तश्तरियो में रखे गए हो तो वे अपनी आवश्यकता के अनुसार ठीक मात्रा में इनमें से अपना भोजन ले लेंगे। यदि किसी व्यक्ति को कोई पदार्थ किसी दूसरे रूप में दे दिया गया हो, फिर चाहे वह इजेक्शन से ही उसके शरीर में क्यो न पहुँचाया गया हो, तो भी वह उसे अपने भोजन में ग्रहण नही करेगा। यदि प्रत्येक व्यक्ति का हिसाब रखा जाए तो सामान्यत सभी ने एक-सा-ही प्रत्येक पदार्थ को ग्रहण किया होगा। यह बात दूसरी है कि एक, किसी विशेष दिन नमक अधिक ग्रहण करता है तो दूसरा, उस दिन उसकी कम मात्रा भी ग्रहण कर सकता है, इस लिए कई दिनो का परिणाम जानना आवश्यक है।

किन्तु यह मामला इतना सीधा नही है जितना प्रतीत होता है, उसमें आदत का भी बहुत महत्त्व है। उदाहरणार्थ, यदि चूहो को निरतर मीठे पर ही रखा जाए और वे इसके प्रयोग के अभ्यस्त हो जाएँ तो दूध का पनीर की आवश्यकता होने पर भी, और उसके प्रस्तुत किये जाने पर भी वे उसे ग्रहण नही करते। बहुत धीरे-धीरे वे उसका प्रयोग आरम्भ करते हैं (young)। सामान्य नियम का यह विरोधाभास इतना उलझन-पूर्ण नही है। यद्यपि प्राणी उसी भोजन का प्रयोग अधिक करता है जिसकी उसे आवश्यकता हो, किन्तु विशेष कारणो से आवश्यकता आदत भी बन सकती है और यह आदत उसके स्नायुततुवाय में अपना स्थान निश्चित कर लेती है। इसके अतिरिक्त उसका उस भोजन और उस परिवृत्ति से कुछ सापेक्ष सबध भी स्थिर हो जाता है। यदि चूहे को पुरानी परिवृत्ति में ही रखा जाय जिसमें उसे खाँड मिलती रही है और वहाँ उसे पनीर दिया जाय तो वह उसकी आवश्यकता होने पर भी बहुत कम मात्रा में और झिझक के साथ ग्रहण करेगा, किन्तु यदि उसकी परिवृत्ति बदल दी जाय तो वह खाड के बजाय पनीर को ही ग्रहण करेगा जो उसकी प्राकृतिक आवश्यकता है। इसी प्रकार और इसी रूप में विटामिन और हार्मन इत्यादि भी भोजन में, विशेष भूख में, बहुत महत्त्व रखते हैं। विशेष हार्मंज के प्रवाह के साथ जो शरीर में रासायनिक परिवर्तन होते है उनसे शरीर की भोजन-सबधी आवश्यकताओ में भी अन्तर पडता है। मनुष्य में हम इसका एक अप्रत्यक्ष

प्रमाण पा सकते है। प्राय ही अधिक प्रशान्त, विचारशील और कम भावुक व्यक्ति हल्का नमक, मिर्च इत्यादि अपने भोजन में पसद करेंगे जबकि इनसे विपरीत स्वभाव के व्यक्ति अधिक मीठा या अधिक नमकीन भोजन चाहेंगे। स्त्रियाँ प्राय अधिक चटपटी वस्तुएँ खाना पसद करती हैं। अधिक (Broody), मक्कार और निम्न बौद्धिक स्तर के व्यक्ति भी प्राय तीव्र भोजन पसद करते हैं और कभी-कभी तामसिक भोजन भी। इन सब का भी कारण हमारे शरीर का रासायनिक और स्नायविक स्थिति ही होनी चाहिए।

इस प्रकार अनेक प्रवृत्तियो के स्रोतो के सक्षिप्त अध्ययन में हमने देखा कि, प्राणी क्या करता है, क्या करता है और वह क्या करेगा। इसके निश्चित जवा और भौतिक कारण होते है। उसकी इच्छा-अनिच्छा का बहुत महत्त्व हो सकता है, किन्तु वह इच्छा-अनिच्छा कोई स्वतन्त्र चेतना-विलास नही है। इस प्रकार प्राणी एक ऐसा यन्त्र-मात्र रह जाता है जिसका प्रत्येक कार्य उसकी अपनी अतिप्राकृतिक इच्छा से नही, प्रत्युत् निश्चित कारण-कार्य-सबध से निर्धारित होता है। किन्तु बहुत से वैज्ञानिक इसे स्वीकार नही करना चाहते। पीछे हम रसल से एक उद्धरण दे आए है, यहाँ एक और उद्धरण हम उसकी दूसरी पुस्तक से देंगे। वह कहता है कि "इससे यह प्रमाणित होता है कि सवेद Perception को केवल शारीरिक उकसाहट-मात्र कहना भ्रान्ति है। सवेद का वास्तविक अर्थ है आकृतियो का, विभिन्नताओ को, खडो को और सपूर्ण को तथा सम्बन्धो को 'देखना'। 'सम्बन्धो' में केवल दैशिक ही नही कालिक सम्बन्ध भी सम्मिलित हैं।

"उकसाहट शब्द का बहुत अधिक अनर्थ किया गया है। जब नर-पक्षी मादा को देखकर एक विशेष व्यवहार करता है तो मादा को केवल एक उकसाने वाली वस्तु कहना या नर के दृष्टि-व्यापार को केवल एक उकसाहट कहना पूर्णरूप से गलत है, क्योंकि उकसाहट का अर्थ केवल एक ही होता है, और वह है मादा के शरीर से प्रक्षेपित होती हुई किरणो का नर की रेटिना नाडी, केन्द्रीय स्नायुतन्तुवाय और मस्तिष्क केन्द्रो पर भौतिक प्रभाव। किन्तु वास्तव में देखना क्या है ?—वह है उसकी आवश्यकताओ (या वासनाओ) की सापेक्षता में मादा पर क्रियाशील होने की सम्भवना।" हमें इससे कोई मतभेद नही है, शायद किसी को भी नही होगा, हमने स्वय प्रक्रिया की परिभाषा इससे कुछ मिलती-जुलती ही की है, किन्तु इससे यह प्रमाणित नही होता कि नर का यह व्यवहार शारीरिक-प्रक्रिया (Biological or Physiological act) नही है। यदि रेटिना के द्वारा प्राणी के मस्तिष्क

व्यवस्थित व्यवहार
लेखन
स्पर्शज्ञान
दृष्टि विषय स्मरण
दृष्टि विषय का सबंध ज्ञान
पढ़ना
शब्द स्मृति
संगीत निर्माण
भाषा निर्माण
संगीत की पहचान
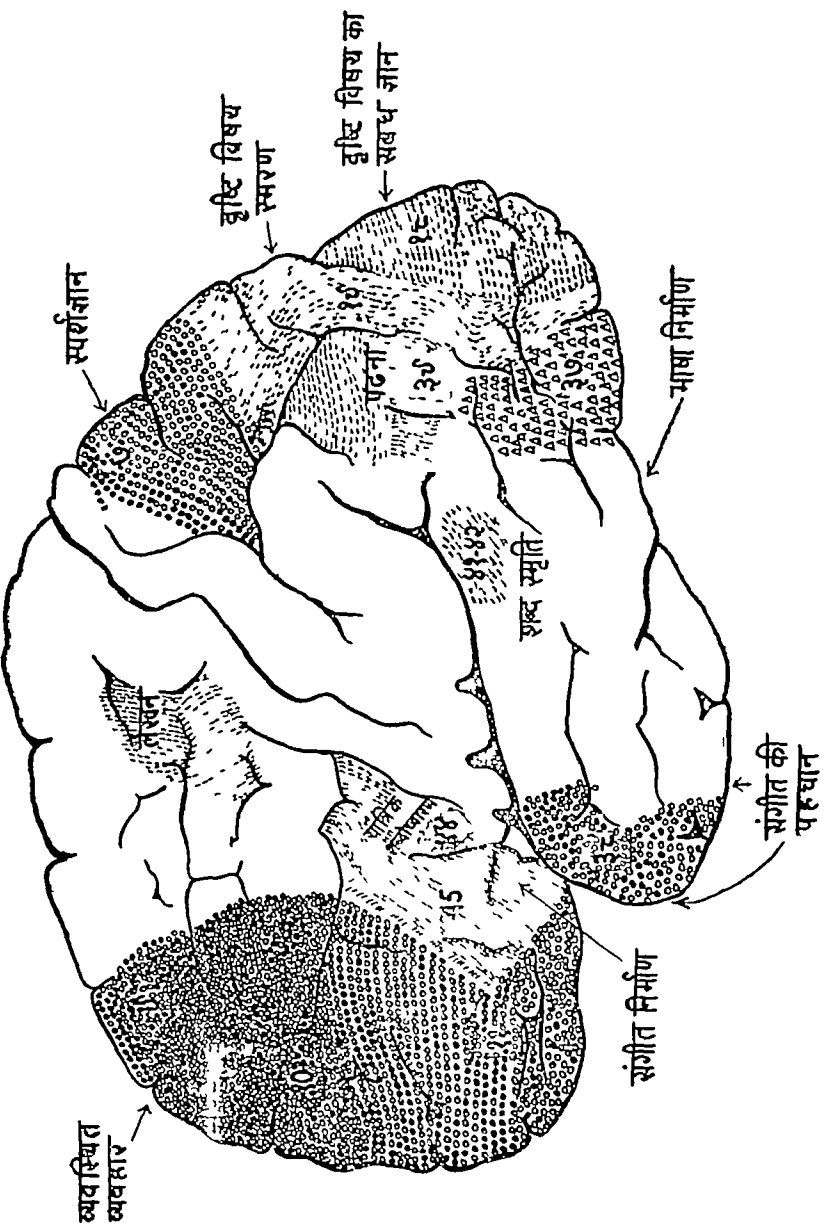
ततुओ पर होते हुए दृष्टि-विषय के शरीर से प्रतिविवित किरणो के भौतिक प्रभाव को किसी प्रकार रोक दिया जाए तो क्या वह प्राणी किसी प्रकार से भी मादा के दैशिक और कालिक सबध (Relation) को जान सकेगा ? यदि मस्तिष्क से (Pare Striatic Aria) को आपसारित कर दिया जाए तो नर के लिए मादा की सार्थकता की और उसके सम्बन्ध-ज्ञान की कोई सम्भावना ही न रह जायगी। पीछे दिए हुए मस्तिष्क के रेखा-चित्र में मस्तिष्क के विभन्न प्रदेशो की योजना से स्पष्ट है कि मस्तिष्क-प्रदेश के ये विभाग किसी भी सबध-ज्ञान के लिए आवश्यक है। जैसा कि हम सातवें निवन्ध में देखेंगे, स्मृति या विषयो के दैशिक और कालिक सम्बन्ध पूर्णत शरीर वैज्ञानिक स्तर पर ही विकसित होते हैं। एक पक्षी के लिए अपना अडा केवल एक ऐसी गोल वस्तु है जिसकी सार्थकता उसके लिए एक विशेष परिवृत्ति में घिरे होने पर केवल सेने की प्रक्रिया के विषय के रूप में है, इस प्रकार वह उसको किसी विशेष कालिक तथा अन्य सम्बन्ध में नही जानता। केवल एक सीमित से दैशिक 'सवध' के साथ जानता है। यदि उसके अडे को उसके घोसले की सीमा (जो निश्चित रहती है) के वाहर उठाकर रख दिया जाए तो वह उसे या तो खा लेगा अथवा उससे उदासीन ही वैठा रहेगा। इसी प्रकार, यदि एक चूहे के घोसले के दोनो ओर की दीवारो में से एक का रग वदल दिया जाए तो वह अपने घोसले और बच्चो तक को शायद न पहचान पाए। इससे भी अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव यह है कि चीटी आँखें होने पर भी केवल इसलिए नही देख सकती क्योकि उसके मस्तिष्क-ततु उसके लिए प्रस्तुत नही है। इससे यह समझना सहज ही है कि जिसे हम वुद्धि की सवसे वडी करामात (सवध-विधान की योग्यता) समझते हैं, वह भी विशुद्ध शरीर वैज्ञानिक प्रक्रिया-मात्र है। यद्यपि प्रक्रिया के कुछ और पहलू भी हो सकते हैं, किन्तु वे शारीरिकता से उस प्रकार स्वतत्र नही हैं जिस प्रकार समझा जाता है, जैसा कि हम अगले निवध में देखेगे।

— o —

REFERENCES

1 *Beach F A* — Hormons and Behavior, 1944, Hoeber, New York

2 *Coward* — The Migration of Birds, 1929 3rd Ed Cambridge University Press

3 *Kruif P D* — The Male Hormons, 1st Ed 1948 Perma Books, New York

4 *Madwoall* — General Physiology and Bio-Chemistry, 3rd Ed 1946 John Murray, London

5 *Morgon and Stillar* — Physiological Psychology, 2nd Ed 1951 Mac Graw Hill Book Co, New York

6 *Russell E S* — Behavior of Animals, 2nd Ed 1938 Edward Arnold Co, London

7 *Tinbergen* — The Study of Instinct Ed 1st 1951 Oxford University Press

8 *Walker K* — The Physiology of Sex, 6th Impression 1944 Panguin Books L T D, London

२—मनस्प्रक्रिया और विकास

पिछले निवध में हमने प्रक्रिया के स्रोतो या हेतुभूत यत्रो को और प्रक्रिया के साथ उनके सवध को देखने का प्रयास किया। इस निवध में हम प्रक्रिया-वासना और व्यय—को पिछले निवध के पूरक के रूप में देखेंगे। इस निवध में हमने प्रक्रिया के साथ ही विकास (वाद) की समस्या को भी उठाया है और वह भी इस निवन्ध का महत्वपूर्ण भाग है। वास्तव में हम समझते है कि प्रक्रिया की यान्त्रिकता (Mechanical Process) को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

हमारे शरीर में प्रक्रिया की सवाहक विविध धमनियाँ हैं जो परिवृत्ति के प्रभाव को मस्तिष्क-केन्द्र तक ले जाती है और जो प्राणी को परिवृत्ति पर क्रियात्मक होने के उपयुक्त वनाती हैं। यह स्नायुततु ही है जिनके द्वारा शरीर के सम्पूर्ण भागो और स्थलो का निर्धारण होता है, जिससे कि व्यक्ति परिवृत्ति का लाभ उठाने की ओर और सम्भावित हानियो से वचने की ओर प्रवृत्त होता है। स्नायुततुवाय के सयोजको को सामान्यत Somatic (सोमैटिक—शरीर की वाह्य परिवृत्ति सवधी) और Splanchnic or Visceral (विस्सेरल—उदरस्थ धमनि गुच्छ तथा आँत-सवधी) नाम दिया जाता है। स्नायुततुवाय के ये दोनो ही सयोजक वहुत सी सामान्य विशेपताएँ रखते हैं, जैसे प्रभाव ग्रहण करने वाले ततु और प्रभाव को प्रक्रियात्मक रूप देने वाले ततु। प्रभाव को प्रक्रियात्मक अगो में अनूदित करने वाले इन ततुओ का जाल इतना उलझनपूर्ण और विस्तृत है कि उसका विवरण यहाँ देना अनावश्यक और असभव भी है। सोमैटिक सयोजक, सामान्यत उस उकसाहट की, जो सोमैटिक ततुओ के प्रभाव-ग्राहक सूत्रो में उत्पन्न होती है और प्रक्रिया-चालक (Locomotor) यत्र में स्पदन के रूप में परिणत होती है, सप्राप्ति, अनुवाद और सवाहन की व्यवस्था करते हैं। इन सयोजको को हम केन्द्रानुसारिणी (Centripetal) और केन्द्रापसारणी (Centrifugal) धमनियो में विभक्त कर सकते हैं। सोमैटिक सग्राहक हमारी त्वचा में, जोडो में और मसल्ज इत्यादि में विखरे रहते हैं। त्वचा से सवद्ध सग्राहक (Receptors) वाह्य उकसाहट को ग्रहण करते हैं। जिन विभिन्न उकसाहटो को वे वाहर से ग्रहण करते है उन्हे वाह्य सग्राहक (Exteroceptive) कहते है। इसके विपरीत जो सग्राहक मसलो में, जोडो में या Tendons (पुट्ठे—मसलो के विशेपस्नायु गुच्छ) में पाये जाते

हैं, वे अपना कार्य-क्षेत्र शरीर के भीतरी भागो में बनाते है, बाह्य प्रभाव के साथ उनका कोई सबध नही रहता। इन विभिन्न उकसाहटो को ग्रहण करने वाले ततुओ को अन्तर सग्राहक या (Proprioceptive) कहते है। अन्तर-अनुभूति के ये सग्राहक, वहिरनुभूति के सग्राहको के समान ही अपना प्रतिनिधित्व Cerebral Cortex (मस्तिष्क का अग्रभाग) या Thalamus (मस्तिष्क का पृष्ठभाग) में रखते है। किन्तु कुछ अन्तर-अनुभूति के सग्राहक ऐसे भी है जो हमारे चैतन्य-व्यापार में कोई हस्तक्षेप नही करते। वे तो हमारे मसलो की व्यवस्था में सहायक होते है, जो मसल हमारे प्रत्येक अग-चालन के लिए अनिवार्य है।

सोमैटिक केन्द्रापसारी—धमनि-सयोजक शरीर के प्रक्रियात्मक यत्रो का प्रबध करते हैं। ये यत्र अन्तर-अनुभूति-सबधी किसी भी उकसाहट को क्रियात्मक रूप देते है, उन्हे केन्द्रानुसारी धमनि-यत्र केन्द्र तक पहुँचाते है।

इसके विपरीत विस्सेरल (उदरस्थ स्नायुतत्र) के सयोजक 'स्नायु ततुवाय' के वह विभाग है जो रक्त, रस-स्रावक ग्रथियो और रक्त-वर्त्तन आदि की क्रियाओ का निर्धारण करते है। सोमैटिक सयोजको के समान ही इस यत्र को भी केन्द्रानुसारिणी और केन्द्रापसारिणी धमनियो में विभक्त किया जा सकता है। केन्द्रानुसारणी धमनियो के विशेष विभाग उकसाहट का अनुभव ग्रहण कराने के लिए रक्त वर्त्तन की दीवारो के साथ सबद्ध रहते है जबकि केन्द्रापसारणी धमनियों का प्रक्रिया यत्र (Glandularal Epithalialcells) और विस्सेरा तथा रक्त बर्तनो की मसलो के द्वारा अन्तर-अनुभूति (उकसाहट) को क्रियान्वित करता है। सामान्य अवस्थाओ में स्नायुओ का यह उदरस्थ-स्नायु-गुच्छ सबधी* प्रबध निरन्तर क्रियाशील रहता है, किन्तु उसकी यह क्रियाशीलता प्राणी के चैतन्य-व्यापार से स्वतन्त्र ही चलती रहती है। जब सम्पूर्ण viscera (अन्तर-प्रदेश) सुव्यवस्थित रूप से अपना कार्य कर रहा होता है उस समय हम एक विचित्र स्फूर्ति और स्वास्थ्य-सुख का अनुभव करते है। यद्यपि अभी यह निश्चित रूप से जाना नही जा सका है कि इस यत्र का प्रतिनिधित्व मस्तिष्क के ज्ञान-ततुओ में है या नही, तो भी विशेष अवस्थाओ में यह अपने केन्द्रो की गम्भीर परिस्थिति का परिचय सोमैटिक धमनियो के माध्यम से तो देता ही है।

स्नायुततुवाय के ये दो बड़े सयोजक यत्र हमारे चेतना-व्यापार और प्रक्रियात्मक व्यवहार को जन्म देते है। Impulses (अन्त -प्रेरणाएँ) जो

---

*Splancnic

कि केन्द्रापसारिणी धमनियो के द्वारा शरीर के प्रक्रियात्मक सचालन में परिणत हो जाती है, पूर्णरूप से केन्द्रापसारिणी धमनियो के ही व्यापार पर निर्भर है और इनके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारण करती है।

किन्तु ये स्नायु-ततुवाय केवल टेलीफोन की उन तारो के समान ही है जो ध्वनि-लहरो के सवाहन का साधन वनती है, प्राणी के शरीर के क्रिया-व्यापार को प्रेरित करने में तो शरीर की विभिन्न ग्रथियो से वहने वाले रासायनिक रस और कोप तथा मस्तिष्क ततु ही प्रभावशाली होते हैं, जो न केवल हमारे शरीर की प्रेरणाओं के ही कारण होते हैं, प्रत्युत् प्राणी की प्रकृति या स्वभाव के निर्धारण में भी वडा महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। यद्यपि विभिन्न ग्रथियो के हटाने से उत्पन्न होने वाले प्रभाव के वारे में विभिन्न वैज्ञानिको में मतभेद है, किन्तु इनके सामान्य महत्व के विषय में किसी को भी सदेह नही है।

ये ग्रथिया या इनके रस हमारे शरीर की व्यवस्था में कितना महत्वपूर्ण स्थान रखते है, यह हम उनको शरीर से अनुपस्थित करके देख सकते हैं। ओवरी ग्रथि के रस, जो मैथुन प्रवृत्ति का निर्धारण करते हैं, व्यक्ति की क्रियात्मक शक्ति के भी महत्वपूर्ण विधायक है। यदि इन्हे प्राणि विशेष मे से निकाल दिया जाए तो उसका प्रक्रियात्मक स्तर सामान्यत पाँचगुणा तक कम हो जाता है, और मैथुन-प्रवृत्ति तो विल्कुल ही समाप्त हो जाती है। किन्तु यदि, जैसा कि रिचर और हर्टमैन कहते हैं, इन अपसारित ओवरी प्राणियो में Estrone (एस्ट्रोन) रस का इजेक्शन कर दिया जाए तो इनका प्रक्रियात्मक स्तर फिर प्राय सामान्य हो जाता है। किन्तु जो प्राणी इस अपसारण से पूर्व ही निष्क्रिय हो, उन्हे इन रसो की कितनी भी मात्रा सामान्य स्तर पर नही ला सकती। गोनाड्ज के समान ही, जैसा कि हम अगले अध्याय में भी देखेंगे, ऐड्रेनल ग्रथि-रस भी प्रक्रिया के निर्धारणमें वहुत महत्वपूर्ण भाग लेते है। इनका अपसारण प्रक्रिया के स्तर को ६० प्रतिशत तक घटा देता है। मसलो की क्रियाशक्ति क्योकि ऐड्रेनल रसो पर ही आश्रित है, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि इस रस का अभाव शरीर पर इतना गभीर प्रभाव छोडे। किन्तु इन सवसे अधिक प्रभाव पिच्यूइटरी ग्रथि के अपसारण का होता है। यदि इस ग्रथि को हटा दिया जाए या इसका हाइपोथालमस (मस्तिष्क का एक अग्रिम भाग) के साथ सवध विच्छिन्न कर दिया जाए तो क्रियाशीलता वहुत अधिक घट जाती है। इसका कारण यह भी है कि पिच्यूइटरी ग्रथिके रस अन्य ग्रथियों के रस-स्राव को भी नियन्त्रित करते है और इस प्रकार शरीर की सामान्य रासायनिक प्रक्रिया का निर्धारण करने में सर्वाधिक प्रभावशाली वनते हैं। पिच्यूइटरी के अपसारण के पश्चात ऐड्रेनल, थाइराइड और गोनाड्ज आकार में लघु और

क्षीण हो जाते है, और ये ग्रथियाँ, जैसा कि हम आगे देखेंगे, शारीरिक प्रक्रिया और प्रवृत्ति के निर्धारण में बहुत अधिक महत्वपूर्ण भाग लेती है।

इस ग्रथि के अपसारण का प्रभाव केवल प्रक्रियात्मक-स्तर को बदलने के रूप में ही नही, प्रत्युत् प्रक्रिया के आवृत्ति-चक्र (Cycle) को भी बदलने मे, विशेषत मादा मे, देखा जाता है। जहाँ पिच्यूइटरी ग्रथि से युक्त चूहा चार मे पाँच दिन का मैथुन-प्रक्रिया-चक्र प्रदर्शित करता है, वहाँ अपसारित-पिच्यूइटरी-ग्रथि वाले चूहे में १४ से १८ दिन का क्रिया-चक्र देखा जाता है।

इसी प्रकार मस्तिष्क-ततु भी प्रक्रिया के निर्धारण में बहुत अधिक प्रभावशाली देखे जाते है। वास्तव मे शारीरिक प्रक्रिया का कारण किसी एक ही यत्र को नही कहा जा सकता। यह ठीक है कि Biochemicles (रासायनिक जीवन रस) हमारी प्रक्रिया का निर्धारण करते है, किन्तु, जैसा कि हम पीछे कह आए है, ये अपने आप को स्नायु-ततुवाय के माध्यम से ही क्रियान्वित करते है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि इस ततुवाय को शरीर की आन्तरिक परिस्थितियाँ बहुत अधिक प्रभावित करती है। मस्तिष्क के स्नायु-ततुओ के विशेष भागो को काट देने पर तो शरीर की प्रक्रियात्मक-योजना इस प्रकार बिखर जाती है कि प्राणी—विशेष या तो असबद्ध प्रक्रियाओ की दौड में मर ही जाता है या फिर किसी भी प्रक्रिया को उचित और सुनियोजित ढग से करने के सर्वथा अयोग्य हो जाता है। बिल्लियो पर प्रयोग करते हुए मस्तिष्क के श्वेत धमनि-गुच्छ में एक घाव किया गया, जिससे कि उनकी सम्पूर्ण प्रक्रिया की प्रकृति में ही एक गुणात्मक अन्तर लक्षित किया गया। (Bailey Davis)। ये बिल्लियाँ निरन्तर सीधी चली जाती, जब तक कि कोई वस्तु रास्ते में आकर उन्हे गिरा नही देती थी, किन्तु तब भी ये ठहरती नही थी, प्रत्युत् किसी दूसरी दिशा की ओर अग्रसर हो जाती थी। यह व्यवहार इन दुर्भाग्यशाली प्राणियो में तब तक जारी रहता है जब तक ये पूर्ण रूप से निश्शक्त होकर गिर नही पडते। इसी प्रकार मटलर ने भी बिल्ली पर प्रयोग करते हुए Corpus striatum (मस्तिष्क में स्नायु-गुच्छो के विशेष कोषो) पर घाव किये और इस प्रकार आहत-प्राणियो में पूर्ण रूप से अव्यवस्थित तथा अत्यन्त प्रवृद्ध प्रक्रिया को परिणाम में प्राप्त किया। Muttler सुझाव देता है कि Striatum सामान्यत प्रक्रियात्मक धमनियो के निम्न केन्द्रो पर नियत्रण करता है और जब इसे हटा दिया जाता है तो ये स्नायु-केन्द्र स्वतन्त्र हो जाते है। रिचर और हाइज ने बन्दर के स्ट्रेटम (अग्रिम मस्तिष्क-ततुओ के सैल) और Cortex (मस्तिष्क के अग्र भाग में एक विभाग) के कुछ भाग को घायल करके देखा कि उसमें क्रियाशीलता

बहुत अव्यवस्थित और प्रवृद्ध हो गई थी जब कि Beach ने चूहे में स्ट्रेटम को अपसारित करके कुछ भी विशेष अन्तर नही पाया। पाँच चूहो पर एक-से प्रयोग करके उसने पाया कि केवल एक में दौडने की क्रिया बढी थी, दो में सामान्य से अपेक्षाकृत कम हो गई और दो में कोई भी परिवर्त्तन लक्षित नही हुआ। इसी प्रकार का एक उदाहरण हम पिछले अध्याय में भी दे आए है कि कैसे Frontal poles का अपसारण चूहे में असम्बद्ध रूप मे इधर-उधर भागने की प्रवृत्ति को इतना अधिक बढा देता है कि वह थककर मर जाता है।

इसका क्या कारण है, यह अभी तक निश्चित नही हो पाया, किन्तु सभव है कि ये अपसारित-प्रदेश गोनाड्ज तथा अन्य ग्रथियो के प्रवाह को रोकते हो और इस प्रकार प्रक्रिया को व्यवस्थित रखते हो और इनके अपसारण से इन ग्रथियो का रस-प्रवाह बढ कर प्रक्रिया को असबद्ध रूप से बढा देता हो। (T Morgan) जैसा कि हम पीछे भी देख आए हैं, गोनाड्ज का या अन्य ग्रथियो का अपसारण प्रक्रिया को कम कर देता है। मस्तिष्क प्रदेश के विभिन्न प्रदेशो से रहित किये हुए प्राणियो में Ovary ग्रथि का बढ जाना इसकी पुष्टि करता है। (Morgan) किन्तु हमने पीछे यह भी देखा था कि यदि इन प्राणि-विशेषो को अधिक हॉर्मन भी पिला दिये जाएँ तो भी इनकी प्रक्रिया-शक्ति में गभीर अन्तर देखा जाता है, तब भी, यदि इनकी ग्रथियाँ अपसारित कर दी गई हो। इससे यही अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि मस्तिष्क के ये विभिन्न प्रदेश स्नायु ततुवाय के विभिन्न यत्रो में सन्तुलन स्थापित करते है, सम्भव है ग्रथियो के रस-प्रवाह मे भी ये प्रभावशाली होते हो। किन्तु, जैसा कि Beach के भी बाद के अनुसधान प्रमाणित करते हैं, यह आवश्यक नही है कि मस्तिष्क ततुओ के ये प्रदेश अपसारित होने पर प्रक्रियाओ को बढाते ही हो, कभी-कभी ये इन्हे कम भी कर देते है, यद्यपि अग्रिम भाग अपसारित होने पर प्राय प्रक्रिया को बढावा ही देते है। फिर सभी प्राणियो में भी इस अपसारण का प्रभाव एक-सा ही नही देखा जाता। इससे स्पष्ट है कि अभी इस ओर और अधिक अनुसधान की आवश्यकता है, जिससे यह ज्ञात हो सके कि क्यो सभी प्राणियो में एक ही प्रदेश का अपसारण एक ही परिणाम प्रदर्शित नही करता।

इस विषय में सम्भवत किसी को भी सदेह नही होगा कि इन प्रक्रिया-यन्त्रो के बिना हम न तो कुछ ज्ञान या अनुभूति प्राप्त कर सकते है और न क्रियाशील ही हो सकते है। Emotional (इमोश्नल) व्यवहार की शरीर-वैज्ञानिक व्याख्याएँ यद्यपि अनेक है, और यद्यपि इस विषय में किसी निश्चित

सिद्धान्त पर नही पहुँचा जा सका, तो भी इन सभी व्याख्याओ से इस विषय में कोई सदेह नही रह जाता कि हमारा यह व्यवहार हमारे स्नायु-ततुओ और रासायनिक ग्रथि-रसों की ही प्रक्रिया है। यद्यपि प्रत्येक प्राणी विभिन्न रुचिया और विभिन्न प्रवृत्तियाँ रखते है, किन्तु यह सब मस्तिष्क की स्नायविक योजना और ग्रथि-रसो के आनुपातिक विभाजन का ही सुपरिणाम है। यदि इस योजना को विघटित कर दिया जाए, या इस अनुपात को बिगाड दिया जाए तो प्राणी की मानसिक योजना भी बिखर जाएगी—उसकी वाह्य उकसाहट की प्रतिक्रिया अव्यवस्थित और अनर्गल हो जाएगी। इस ओर जेम्ज और लैंग्ज की व्याख्या सर्वाधिक मान्य समझी जाती ह। उनके अनुसार आवेगात्मक प्रतिक्रिया (Response) हमारे रक्तवर्त्तनो में और विभिन्न ग्रथियो में तथा विशेष मस्तिष्क केन्द्रो में एक गति ला देती है, और यह गति केन्द्रापसारिणी धमनियो के द्वारा उकसाहट की प्रतिक्रिया के लिए प्राणी को प्रेरित कर देती हैं। ये प्रतिक्रियाए हमारे आन्तरिक सग्राहको (Visceral Receptors) को उकसा देती है, और ये उकसाहट को केन्द्रापसारिणी स्नायुओ में स्थानान्तरित कर देते हैं, और इस प्रकार आवेग Emotion का अनुभव अथवा ज्ञान प्राप्त करते है। इस तरह जेम्ज के अनुसार, हम क्योकि डरते है, इसलिए नही भागते, बल्कि भागते हैं, इसलिए डरते है। इस सिद्धात की विशेषता इसमें है कि इसके अनुसार आवेगात्मक अनुभूति सोमैस्थैटिक (शरीर की वाह्य परिवृत्ति सबन्धी) धमनियो और मसलज के खिचाव द्वारा ग्रथियो और गम्भीर मस्तिष्क ततुओ आदि के केन्द्रो से आती है, न कि वाह्य उकसाहट के केन्द्रानुसारी यन्त्रो के द्वारा मस्तिष्क-केन्द्र तक आने और वहाँ रुके बिना केन्द्रापसारी ततुओ के द्वारा प्रक्रिया में अनूदित होने के रूप में। जेम्ज के अनुसार "शारीरिक परिवर्तन एकदम उकसाहट तत्वो की अनुभूति से अनुधावित होते है, इसलिए हमारी यह अनुभूति शारीरिक परिवर्त्तन की अनुभूति है न कि बाह्य उकसाहट की"—इस सिद्धान्त को आज भी एक सीमा तक सर्वमान्य समझा जाता है, यद्यपि अनेक वैज्ञानिक इसे अव्याप्ति दोष से दूषित मानते है। इनमें Sherrington का स्थान सर्व प्रमुख है। उसने कुत्ते पर अपने प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया है कि आवेगानुभूति वह मानसिक प्रक्रिया है जो कि प्रत्यक्ष रूप से वाह्य उकसाहट से सम्बद्ध है। उसने गर्दन के निचले भाग से स्पाइनल कॉर्ड को घायल कर दिया, Vitscera (आँतो के गुच्छ) को भी मस्तिष्क से तथा अन्य सभी सम्पर्कों से पृथक कर दिया। इस पर भी, उसके अनुसार कुत्ते में आवेग की अभिव्यक्ति उतनी ही सजीव थी

जितनी सामान्य कुत्तो में देखी जाती है। उसके अनुसार, इसलिए विस्सेरल परिवर्तनो को आवेग का प्रत्यक्ष कारण नही कहा जा सकता, प्रत्युत् यह कि ये आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन मस्तिष्क तन्तुओ से सबद्ध इस अनुभूति के प्रवर्धन में सहायक भर हो सकते हैं। (Cannon) के प्रयोग ऐड्रेनिन रसो के प्रभाव को इमोशनल अनुभूति में और भी अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध करते है। उसके अनुसार यदि ऐड्रेनल ग्रथि रसों का इजेक्शन कर दिया जाए तो उस व्यक्ति-विशेष में क्रोध और भय की शारीरिक अभिव्यक्ति सहज ही देखी जा सकती है। हम पिछले अध्याय में विभिन्न ग्रथि रसो के शरीर पर प्रभाव को देख ही आए है कि किस प्रकार ये ग्रथि-रस और विशेपत ऐड्रेनल ग्रथि-रस डर, क्रोध जैसी प्रवृत्तियो को बहुत अधिक बढा देते हैं। इससे एक सीमा तक तो यह कहा जा ही सकता है कि जेम्ज का सिद्धान्त ठीक है यद्यपि Sherring-ton) के प्रश्न का उत्तार यह सिद्धान्त नही दे सकता। हमारे विचार मे (यद्यपि हम इस अवस्था में नहीं हैं कि अपने विचार को महत्त्व दे सकें) सामान्यत जेम्ज का सिद्धान्त निरपवाद रूप से ठीक कहा जा सकता है, किन्तु क्योकि प्राणी के पूर्वानुभव भी उसके व्यवहार में महत्त्व रखते है, इसलिए यह भी कहना युक्तिसगत प्रतीत होता है कि इमोश्नल अनुभूति के जागरण मे मात्र अन्त शारीरिक परिवर्तन को ही प्राथमिक नही कहा जा सकता। इसे यदि कुछ इस प्रकार कहा जाए कि इमोशन या आवेग केन्द्रानुगामिनी धमनियो से मस्तिष्क में पहुँचकर एक ओर बिना मस्तिष्क के व्यवधान के ही केन्द्रापसारिणी धमनियो में पहुँच कर (प्रतिक्रियात्मक व्यवहार Reflex-action) उत्पन्न कर देता है, वहाँ उसी लहर से प्रेरित मस्तिष्क ततुओ के प्रदेश व्यक्ति को उस आवेग का ज्ञान भी करा देते है, तो ठीक होगा। और भी ठीक शब्दो में, यदि कहे तो कहना होगा कि यह आवेग एक साथ ही शरीर के विभिन्न केन्द्रो को प्रेरित कर देता है, इसके लिए न तो यही कहा जा सकता है कि क्योकि हम दौडते है इसलिए डरते हैं और न यही कि क्योकि डरते हैं, इसलिए दौडते है, और न यह कि यह आवेग हमारे भीतरी प्रक्रिया-केन्द्रो की अशान्ति की चेतना है। सामान्यत भय और क्रोध में शरीर की बाह्य अभिव्यक्तियाँ और उदरस्थ स्नायु प्रक्रियाएँ एक ही सी देखी जा सकती हैं, ऐड्रेनल ग्रथि-रसो के इजेक्शन के प्रभाव में भी क्रोध और भय दोनो की अभिव्यक्तियाँ एक ही सी देखी जाती हैं। इससे कहा जा सकता है कि शरीरिक अभिव्यक्ति एक होने पर भी दो भिन्न आवेगो का होना एक स्वतन्त्र मानसिक अस्तित्व की सम्भावना को बढा देता है। किन्तु यह युक्ति वास्तव में अनुपयुक्त है, क्योकि इन दोनो आवेगों की शारीरिक

अभिव्यक्तियो में अनेक असमानताएँ भी देखी जा सकती हैं। तो भी Sherrington की युक्ति का उत्तर जेम्ज का सिद्धान्त नही दे सकता, यह स्पष्ट ही है।

यद्यपि हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने की स्थिति मे नही है तो भी हम आवेगात्मक व्यवहार में किसी स्वतन्त्र मानसिक प्रक्रिया के पक्ष मे अपना मत देना नही चाहते। इसमें भी हमारे स्नायुततुओ और विशेषत मस्तिष्क के पिछले और निचले भाग बहुत अधिक योग देते हैं। यदि मस्तिष्क-ततुओ को अपसारित भी कर दिया जाय तो भी प्राणी कुछ सामान्य आवेग अनुभव करते हुए देखे जा सकते हैं। जैसे स्पाइनल पशु (जिनका सम्पूर्ण मस्तिष्क काट दिया गया है) चुभन इत्यादि की प्रतिक्रिया करते है, किन्तु क्रोध भय इत्यादि के लिए मस्तिष्क-ततु आवश्यक है।

कभी यह विवाद का विषय था कि मस्तिष्क के मध्य भाग मे भी कही आवेग केन्द्र है या नही? किन्तु कैलर ने अपने प्रयोगो में मध्य मस्तिष्क को अपसारित करके भी बिल्ली में क्रोधात्मक प्रक्रिया प्रदर्शित की है। पर बहुत से विद्वानो का विचार है कि Hypothalamus (मस्तिक का पृष्ठ-भाग) के ठीक होने पर ही क्रोध की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप में प्राप्त की जा सकती है। इस विषय में इनका कथन है कि हाइपोथालमस के अपसारित कर देने पर भी यद्यपि क्रोधाभिव्यक्ति के विभिन्न पहलू हम प्राणी में प्राप्त कर सकते है, जैसे गुर्राना, पूछ पटकना, जबडे खोलना इत्यादि, किन्तु ये पूर्ण और सुश्रृखलित अभिव्यक्तियाँ न हो कर विश्रृखलित और खण्ड अभिव्यक्तियाँ है। मस्तिष्क के विभिन्न भागो में विभिन्न विद्वानो ने घाव करके कुत्ते बिल्ली इत्यादि के व्यवहारो का अध्ययन किया है। इनसे अनेक आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त किये जा सके है। मस्तिष्क के अग्रिम भाग के अपसारण के पश्चात् देखा गया कि क्रोध पर नियत्रण या रुकाव बहुत कम हो गया, अब अपसारित मस्तिष्काग्र प्राणी को थोडी सी उकसाहट से ही इतना क्रोधाभिभूत किया जा सकता था कि वह थक कर ही चैन लेता। इससे यह अनुमान करने के लिए कि अग्रिम-मस्तिष्क-प्रबध प्रक्रिया-क्षेत्रो पर नियत्रण का कार्य करता है, हमारे पास काफी ठोस प्रमाण हैं। इसके विपरीत मध्य भाग के प्रदेश क्रोध की उकसाहट का उदात्तीकरण और सयोजन करते है। यदि इन प्रदेशो को किसी प्रकार बिजली की लहरो से उकसा दिया जाय तो (Unesthatized) बिल्ली भी क्रोध के व्यवहार के पूर्ण प्रक्रिया खडो की [illegible] ती है। इसी प्रकार अग्रिम मस्तिष्क रहित बिल्ली भी

यद्यपि क्रोध की अखड और प्रवृद्ध अभिव्यक्ति करती है किन्तु आक्रमण की दिशा का उसे ज्ञान नही रहता। इतना ही नही, अपसारित कॉर्टेक्स विल्ली यह भी नही जान सकती कि उसको तग करने वाली वस्तु किस ओर और कौनसी है। जैसे, यदि कोई उसकी पूछ को छेडता है तो सम्भव है विल्ली सामने की ओर ही या किसी अन्य ओर आक्रमण करे।

इस प्रकार हमने देखा कि कैसे मौलिक प्रवृत्तियो और सामान्य व्यवहारो तथा प्रतिक्रियाओ के लिये जीवन में शरीर-यत्रो का सुयोजनापूर्ण सकलन किया है। किन्तु प्राणी का व्यवहार कहाँ तक वाह्य उकसाहट पर निर्भर है और कहाँ तक आन्तरिक आवश्यकताओ से प्रेरित, दूसरे शब्दो मे कहाँ तक यात्रिक है और कहाँ तक सोद्देश्य—यह एकदम विवाद का विषय है, यद्यपि वहुत अधिक महत्वपूर्ण है। Behaviorist (प्राणी-व्यवहार का अध्ययन करने वाले) जहाँ वाह्य उकसाहट पर वल देते है वहाँ मनोवैज्ञानिक उसकी आन्तरिक आवश्यकताओ-मानसिक अभावानुभूतियो-की प्रेरणा को प्राथमिक मानते है। इनके अतिरिक्त एक और वर्ग है जो मनुष्य की मनोवैज्ञानिकता को साक्षी रखकर पहले दोनो से पृथक एक अपदार्थिक तत्व (मन) की सम्भावना पर वल देता है।

यह एक वहुत पुराना विवाद है, जो अव भी उसी प्रकार अनिर्णायक अवस्था में है। यह कहना वहुत कठिन है कि व्यवहार को आन्तरिक (Spontaneous) कहा जाए या वाह्य उकसाहट (External Stimuli) का परिणाम मात्र ? प्राणी-व्यवहार का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के लिए सवसे वडी कठिनाई अध्ययन के प्रारम्भ के साथ ही उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि न केवल प्राणियो की विभिन्न जातियो के व्यवहार की प्रकृति में ही वहुत वडा अन्तर है, प्रत्युत् उनकी ज्ञानेंद्रियो की शक्ति और प्रकृति में भी वहुत अधिक अन्तर पाए जाते है, इसलिए कौन-सा प्राणी परिवृत्ति के किस गुण के प्रति प्रतिक्रिया करता है, यह जानना अत्यन्त कठिन हो जाता है। तो भी वैज्ञानिको ने इन परीक्षणो के अनेक उपायो का आविष्कार किया है; किन्तु परिवृत्ति की जिस वस्तु को वे पसद या नापसद करते है—वह क्यो, यह अभी तक निश्चित रूप से कह सकना सम्भव नही हो सका है। इसका ज्ञान या तो सम अनुभूति से ही हो सकता है, या फिर (सभवत) समृद्ध शरीर—वैज्ञानिक ज्ञान से अनुमान किया जा सकता है। जहाँ तक सम अनुभूति का प्रश्न है, जव तक हमारे वही ज्ञानेंद्रियाँ और शरीर की वही स्थिति नहीं है, अथवा, जव तक हमारा ठीक वही इतिहास और वर्तमान नही है, जिसका

हम अध्ययन कर रहे हैं, तब तक यह सभव ही नही, और शरीर-विज्ञान अभी तक इस स्थिति मे नही है कि वह हमें किसी सर्वमान्य निश्चय पर पहुँचने मे समर्थ कर सके। प्राणी-व्यवहार के सावधान निरीक्षण से सहज ही यह जाना जा सकता है कि किन्ही भी दो जातियो की ज्ञानेन्द्रियां समान नही है, फिर अन्तर-शरीर स्थिति की भिन्नता का तो कहना ही क्या। इसलिए इस ओर अध्ययन करने वाले के लिए प्रथम आवश्यकता इस तथ्य को समझने की है, क्यो कि इसे जाने बिना अध्ययन का प्रारम्भ ही गलत आधार पर होगा।

Vonfrisct के अनुसार सबसे अधिक अन्तर रासायनिक ज्ञानेन्द्रियो मे पाया जाता है। उसके अनुसार, मधुमक्खी शहद में मिठास के लिए जिन वस्तुओ का उपयोग करती है, उनमें अधिकाश यद्यपि मनुष्य के लिए भी मीठी ही है, किन्तु कुछ वस्तुएँ उनमें ऐसी भी है जिनका मनुष्य की जिह्वा के लिए कोई स्वाद नही होता, दूसरी ओर मधुमक्खियाँ ऐसे कुछ रसो को बिल्कुल ही ग्रहण नही करती जो मनुष्य के लिए मीठे है। इतना ही नही, विभिन्न जातियो की आँखो में भी बहुत अन्तर पाया जाता है—Papaver phoeas फूल, जो मनुष्य को गहरे लाल रग के दिखाई पडते है, वही मधु-मक्खी को गहरे नीले रग के प्रतीत होते हैं। (यह भूत वैज्ञानिक के लिए भी मनोरजक अध्ययन का विषय है)।

इसी प्रकार दिशा और देश ज्ञान की शक्ति भी पशुओ में विभिन्न स्तरो पर पाई जाती है। कुछ प्राणी जहाँ स्पर्श से दिशा-ज्ञान प्राप्त करते है, वहाँ दूसरे घ्राण से, जब कि सामान्यत आँख को इसका सब से अच्छा साधन समझा जाता है, या कम से कम मनुष्य का दिशा ज्ञान आँख पर आश्रित है।

Waterbug या Notonecta glano, दिशाज्ञान स्पर्शेन्द्रिय से प्राप्त करता है। वह हल्की से हल्की लहरो से भी अपने शिकार की दिशा और देश का निश्चय कर लेता है। कभी-कभी तो कुछ प्राणी स्पर्श और रासायनिक इद्रियो की सहायता से आँख के बिना भी देश की तीनो दिशाओ या विस्तारो का ज्ञान प्राप्त कर लेते है। Marine मछली गर्दन के निचले भाग में लटकती हुई तीन रस्सियो में स्वाद ग्रहण करने की शक्ति रखती है। मछली इन्हे यथेच्छया किसी ओर भी फैला सकती है और इस प्रकार आस-पास के जल में भोजन की विद्यमानता का ज्ञान प्राप्त कर सकती है (Tinbergen)।

कृमियो में भी चक्षु-इन्द्रिय के स्थान पर घ्राण इन्द्रियाँ ही देश-ज्ञान का कार्य करती हैं। कृमियो के व्यवहार का सूक्ष्म अध्ययन करने पर हम निश्चित

रूप से जान सकते है कि अधिकाश कृमियो में घ्राण-शक्ति अत्यधिक विकसित होती है। चीटियो की प्राय सभी जातियाँ अधी या अर्ध-अधी होती हैं। जिनके आखें होती भी है, वे भी आखो के विना उसी प्रकार कार्य करती है जैसे आखो वाली चीटियाँ, जब कि घ्राण-शक्ति से रहित कर देने पर उनका कार्य-सचालन विश्रृखलित हो जाता है। घ्राणेन्द्रिय से रहित कर देने पर वे घोसले के पास रखी जाने पर भी उसको नही जान पातीं, इतना ही नही, वे खा-पी भी नही सकती और न अपने शत्रु-मित्रो को ही पहचान सकती है। यदि उनके घोसले से उनके वच्चे भी उनके सम्मुख लाकर रख दिए जाए तो भी वे उन्हे नही पहचानती। इससे स्पष्ट है कि चींटियो की घ्राणेन्द्रिय ही एक मात्र विकसित इन्द्रिय है, क्योकि दास चीटियो के लिए घोसले के वच्चों से अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु और कुछ नही हो सकती।

इन सव प्रक्रियाओ के लिए चीटियाँ घ्राण-शक्ति पर ही निर्भर करती है। जैसा कि हम अगले अध्यायो मे भी देखेंगे, चीटियाँ दूर-दूर तक विना भटके चली जाती है और पूर्ण विश्रव्ध भाव से अपने घोसले की ओर लौट आती है, इसका श्रेय उनकी घ्राणशक्ति को ही दिया जा सकता है, क्योकि चक्षुरिन्द्रिय से तो वह घोसले के पास पडी भी उसे नही जान पाती। उनकी यह इन्द्रिय उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी मनुष्य के लिए चक्षु-श्रोत्र और घ्राण इन्द्रियाँ, क्योकि चीटी इसी से अपने घोसले की सदस्याओ से दूसरो को पृथक् करती है, इसीसे अपने शत्रु और मित्र का ज्ञान करती है, इसी पर उनकी स्मृति—शक्ति आश्रित है और यही उनके दिशा ज्ञान की साधन है (Cheesman)।

इसी प्रकार अन्य कृमियो में चक्षु-इन्द्रिय प्रधान या एकमात्र इन्द्रिय है। किन्तु सवसे विचित्र इन्द्रिय है कुछ कृमियो की श्रोत्र इन्द्रिय। अनेक कृमि, विशेषत रोमिल चर्म वाले कृमि, इन रोमो से शव्द-ज्ञान प्राप्त करते है। इनके ये रोम चिटिन chitin (एक पदार्थ जो विशेष कृमियो के शरीर के सख्त भाग के निर्माण में प्रयुक्त होता है) में से होकर विशेष धमनियो से जुडे रहते है, जिससे कि जो भी कुछ उन पर प्रभाव डालता है, इन धमनियो के द्वारा धमनि-केन्द्र तक पहुँचा दिया जाता है, जो कि कृमियो का मस्तिष्क है। इससे कोई भी शव्द, जो इनमें लहरों से प्रभाव डाल सके, इन्हे ज्ञात हो जाता है। फिर भी यह कह सकना कठिन है कि इन रोमो के द्वारा उन्हें शव्द-ज्ञान ज्ञान के रूप में होता है या स्पर्श-ज्ञान के रूप में अथवा किसी अन्य रूप में ? एक वैज्ञानिक का कथन है कि कुछ विशेष प्रकार की सगीत ध्वनि इन रोमो में लेहर उत्पन्न कर देती है। उसने एक विशेष प्रकार

से एसी सगीत-ध्वनि करके, जो उस जाति की मादा करती है, पाया कि नर के वे रोम उन लहरो को ग्रहण कर रहे थ। जब मादा नर के पर्याप्त समीप से शब्द करती है तो वह इन्हे इन रोमो मे ग्रहण करता देखा जा सकता है। ग्राम-होप्पर्ज की श्रोत्र-इन्द्रिय उसकी टाँग मे होती है। इसी प्रकार विभिन्न कृमि जातियो में यह इन्द्रिय विभिन्न स्थानो पर देखी जाती है।

ये कृमि और अन्य प्राणी भी सामान्यत इन इन्द्रियो का प्रयोग यत्रो के समान करते है, जैसा कि हम पिछले अध्याय में अनेक उदाहरणो से दिखा आए है। किन्तु क्यो इन उदाहरणो को एक मनोवैज्ञानिक योजना का परिणाम नही कहा जा सकता, यदि मन को शारीरिक स्थिति की अन्तर-निहित प्रक्रिया का यत्र समझा जाए तो ? जैसा कि हमने पीछे अन्तर-सग्राहको और अन्तर्-प्रेरणा यत्रो के विषय में बताते हुए देखा था—हमारी प्रक्रिया योजना में उनका बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँ तक बाह्य सग्राहको का सबध है, उनके लिए भी यह नही कहा जा सकता कि वे हमारी आन्तरिक आवश्यकताओ से निर्धारित नही है। मधुमक्खी अपने शहद की मिठास के लिए ऐसे पदार्थों का सग्रह करती है जो मनुष्य के लिए कोई स्वाद नही रखते, उन पदार्थों को देखते ही उसमें सग्रह की यात्रिक आवश्यकता-अनुभूति उत्पन्न होगी—यह निर्विवाद है, किन्तु इसका कारण उस पदार्थ और बाह्य सग्राहको के यात्रिक सबध को ही एकदम कैसे कहा जा सकता है ? उस स्वाद के पीछे निरन्तर आन्तरिक प्रेरणा और आवश्यकता से प्रेरित शारीरिक विकास और एक जर्म से दूसरे जर्म में निहित होती हुई प्रवृत्ति को क्यो नही कहा जा सकता ? यह नही कहा जा सकता कि क्योकि यह एक प्रक्रिया विशेष है जो कि व्यक्ति या जाति की आवश्यकता और बाह्य पदार्थ के गुण की सामयिकता की समन्वित योजना का परिणाम है ? यह हम अगले अध्याय में विस्तार से देखेंगे। नर थ्रीस्पाइड स्टिक्कल बैक का रग सामान्यत काला होता है, किन्तु वसन्त-ऋतु में उसका रग लाल हो जाता है। यह उसकी मैथुन की ऋतु है। इस ऋतु की समाप्ति के पश्चात् वह अपने रग को फिर (कहा जाएगा) बदल लेता है। इसका उद्देश्य स्पष्ट रूप से प्रबल शत्रुओ से आत्म रक्षा ही होना चाहिए, जैसा कि बहुत से वैज्ञानिक कहेगे। किन्तु हम इससे सहमत नही हैं, जैसा कि हमारे हार्मन सबधी निबध से भी स्पष्ट है। टिन्बर्जन भी, जो कि बहुत सावधानी से अपना निर्णय देता है, इसे मानसिक या वासनात्मक (Spontaneous) व्यवहार के अन्तर्गत रखता है। मैं भी इसे बाह्य उकसाहट (External Stimuli) का परिणाम नही कहता, किन्तु वासनात्मक-व्यवहार से जो अर्थ प्राय समझा जाता है, हम उससे

सहमत नही है । टिवर्जन तथा हैंव्व या रसल इत्यादि इस प्रकार के व्यवहार में एक प्रकार की चतुराई (Trick) और प्रयास को स्वीकार करते है, वे इसे एक ऐसी यात्रिक प्रक्रिया नही मानते जो प्राणी-विशेष में स्वत ही उसी प्रकार यत्रवत् क्रियान्वित हो जाती है, जैसे वाह्य उकसाहट उसे यत्रवत किसी निश्चित प्रक्रिया मे नियोजित कर देती है। यह इससे भी स्पष्ट है कि यदि नर थ्रीस्पाईड को अप्राकृतिक रूप से भी वसन्त का तापमान और दिनमान दिया जाए तो भी उसका रग लाल और व्यवहार मैथुन-वासनायुक्त हो उठता है। इसका कारण केवल उनके उन हार्मन रसों का प्रवाह मात्र है जो एक ही साथ बिलकुल यात्रिक रूप से उनकी मैथुन वासना और लाल रग को उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार वाह्य या आन्तरिक उकसाहट में केवल इतना ही अन्तर है कि आन्तरिक उकसाहट केवल रासायनिक या ग्रथि-रसो का परिवृत्ति निरपेक्ष प्रभाव होता है जब कि वाह्य उकसाहट अन्तर में विभिन्न परिवर्तनो के रूप में अनूदित होकर प्रक्रिया में क्रियान्वित होती है। किन्तु अपनी उत्पत्ति में दोनो एकदम यात्रिक है।

सच पूछा जाए तो ये दोनो ही पहलू किसी भी प्रक्रिया की अभिव्यक्ति और विकास के लिए आवश्यक है। आन्तरिक शारीरिक आवश्यकताए, जो कि हॉर्मन रस, आन्तरिक ज्ञानेन्द्रियो (Viscera and Blood vessels) और स्नायुततुवाय पर निर्भर है, विभिन्न स्तरो की हो सकती है। ये यद्यपि एकदम यात्रिक है किन्तु इन्हे वाह्य उकसाहट मात्र कहना अनुपयुक्त होगा। जैसे विशेष तापमान और प्रकाश भिन्न ऋतु में भी मैथुन आकाक्षा और अन्य पूरक प्रक्रियाओ और अभिव्यक्तियो को उत्पन्न कर सकते है, यह अकांक्षा पुन प्राणी में दौडने, लडने और मैथुन साथी खोजने की प्रक्रियाओ को उत्पन्न कर देती है, किन्तु इस आकाक्षा को आकाक्षा-सतुष्टि की वास्तविक प्रक्रिया से भिन्न ही कहा जाएगा। इसका प्रमाण यह है कि जब तक इस प्रकार की आन्तरिक आकांक्षा से अभिभूत प्राणी को इसकी सन्तुष्टि का साधन-विषय प्राप्त नही हो जाता तब तक उसकी इस प्रक्रिया को क्रियान्वित होते नही देखा जा सकता, दूसरे यह आकांक्षा इस दूसरी प्रक्रिया की विभिन्न अभिव्यक्तियो (जैसे लडना, मैथुन करना, घोसला बनाना, इत्यादि) के उसी रूप में क्रियान्वित होती देखी जा सकती है जिस अभिव्यक्ति का साधन सामने प्राप्त हो सके। इन दो प्रक्रियाओ को क्रमश वासनात्मक प्रक्रिया और आत्मव्ययी प्रक्रिया* कहा जा सकता है। टिन्बर्जन के अनुसार पशु के अधिकांश व्यवहारो मे ये दोनो पहलू कारण होते

---

*Appetitive Behaviour or and Consumatory Act

हैं। वह कहता है कि पशु के सामान्य व्यवहार लडना, काटना, मैथुन करना इत्यादि भी, जिनमें निम्नतम शारीरिक केन्द्रो की धमनियो की क्रिया ही अपेक्षित होती है, अपनी उत्पत्ति के लिए उन गम्भीर, उलझनपूर्ण और सुदूरगामिनी प्रक्रियाओ के अन्तिम छोर-मात्र हैं जो अपनी सन्तुष्टि या सप्राप्ति के लिए प्राणी को वाध्य कर देती हैं। लडना, प्रहार करना और मैथुन करना इत्यादि वास्तव मे आत्म-विश्रान्ति या व्यय (Self exhaustion) मात्रके लिए हैं। इन प्रक्रियाओ के ये केन्द्र स्वय ही, प्रक्रिया को आन्तरिक आवश्यकता से स्वतन्त्र क्रियान्वित करने मे समर्थ नही हो सकते। वे अपनी प्रेरणा आन्तरिक आवश्यकताओ (Appetites) के केन्द्रो से ही ग्रहण कर सकते है। वास्तव मे प्राणी के 'आवश्यकता पूर्ति के लिए किये गए हुए 'सोद्देश्य प्रयास' को समझने के लिए आन्तरिक आकांक्षा या वासना और आत्मव्ययी प्रक्रिया के सम्वन्ध को समझना आवश्यक हैं। यह प्राय ही कहा जाता है कि पशु अपनी आकांक्षा-पूर्ति के लिए सघर्ष करते हैं—वे अपनी आकाक्षा का ज्ञान रखते है। लोरेंज के अनुसार, आकांक्षा पूर्ति के लिए यह प्रयास अन्तर् वासनाओ (Appetites) का ही कार्य है न कि (Consummatory act) आत्मव्ययी प्रक्रिया का, जव कि अन्तर्वासना प्रेरित व्यवहार का उद्देश्य स्वय विषय की प्राप्ति न होकर आत्मव्ययी प्रक्रिया ही होता हैं जो कि प्राणी को उपयुक्त उकसाहट (Stimuli) प्राप्त होने पर क्रियान्वित हो जाता हैं। इसलिए कहा जा सकता हैं कि भूखा पशु भोजन के लिए नही प्रत्युत् अपनी वासना के व्यय के लिए दौडता हैं और जब तक भोजन उसकी आत्मव्ययी प्रक्रिया को क्रियान्वित करने के लिए उपस्थित नही होता वह भोजन की चेतना नही रखता। इसी प्रकार पक्षी घोसला किसी निहित उद्देश्य से नही बनाते, प्रत्युत् यह घोसला बनाने की यात्रिक प्रवृत्ति ही है जो विशेष परिवृत्ति में पक्षी में एक वासना के रूप में जागृत हो उठती हैं, और पक्षी तिनके इत्यादि सम्मुख पाते ही उसे क्रियान्वित कर देता हैं। घोसला बनाते हुए उसमें न तो निर्मित होने वाली वस्तु के फल का लोभ है और न स्वय निर्मित होने वाली वस्तु से मोह, वह केवल एक वासना की धकेल से बाध्य उसके व्यय के लिए क्रियाशील होता है। इसका अर्थ यह नही कि घोसला बनाने की प्रवृत्ति उसके हॉर्मंज और धमनि यत्रो की विशेष यांत्रिक स्थिति का ही परिणाम है—प्रत्युत् यह कि यह एक आवश्यकता—अनुभूति की प्रक्रियात्मक योजना है जो कि एक जर्म से दूसरे में निहित होती हुई एक यांत्रिक प्रक्रिया के रूप में विकसित हो गई है। यदि हम ऐसे पक्षियो के वच्चे प्राप्त करे जिन्हें घोसला नही बनाने दिया गया और इस क्रम को कुछ सन्तानो तक चलने दे तो हम सहज ही एक दिन ऐसे पक्षी प्राप्त कर सकेंगे

जिनमें घोसला बनाने की वासना ही उत्पन्न नही होगी । तब उन्हें पुन उन्ही परिस्थितियो में, जिनमें उन्हे घोसला बनाने की आवश्यकता हो, रख कर देखा जा सकता है, सम्भवत शीघ्र ही हम पुन उनमें उस प्रवृत्ति को विकसित होते देख सकेंगे । McDougall ने कुछ चूहो पर प्रयोग करके पाया कि शिक्षित चूहो के ३४ वी पीढी के बच्चे दूसरे चूहो से उस विशेप कार्य में कही अधिक चतुर थे जिनका उनके पूर्वज अभ्यास करते रहे थे । प्रवृत्ति सबधी निबध में हम कितने ही ऐसे उदाहरण देंगे जिनमें हम देखेंगे कि किस प्रकार प्राणी सहज ही ऐसे व्यवहार करते है जो आश्चर्यजनक रूप से रहस्यमय प्रतीत होते हैं—जैसे चींटियो का सर्वथा दो भिन्न जातियो के बच्चे देना, जिसके लिए हम कह सकते हैं कि यह सामाजिक सगठन की प्रक्रिया ही है जो चीटी के जर्म में अन्तर्निहित होकर उक्त व्यवहार को सहज करती है। किन्तु ये केवल अटकलें है, क्योकि इस सम्बन्ध में हम कभी भी कोई निश्चित प्रयोगात्मक प्रमाण नही दे सकते और फिर जेनेटिक्स के अध्ययन से यह सिद्ध किया जा सकता है कि ये प्रवृत्तियाँ न तो जर्म में निहित हैं और न चिन्तित ही ।

विभिन्न प्राणियो के विभिन्न व्यवहार और एक ही प्राणी के विभिन्न व्यवहार, जिन्हे हम सामान्यत आत्म व्ययी प्रक्रिया (consummatory act) के अन्तर्गत रख सकते हैं, विभिन्न अन्तर्वासनाओ की धकेल Appetitive push के परिणाम ही कहे जा सकते हैं किन्तु यह अन्तर्वासना अपनी उत्पत्ति में इतनी यात्रिक है और यह आत्मव्ययी प्रक्रिया अपनी अभिव्यक्तिमें इतनी स्टिरियोटाइप्ड है कि इन्हे किसी प्रकार की ऐसी मानसिक प्रक्रिया समझना, जिसका अर्थ किसी प्रकार की इच्छा हो, भारी भूल होगी। जैसा कि मर्फी कहता है "यह निर्विवाद सत्य है कि अन्तर्वासना अथवा आन्तरिक धकेल (Internal push) बहुत दूर तक शरीर के रासायनिक परिवर्तनो और अन्य अनेक बाह्य और आन्तरिक कारणो—जैसे तापमान भोजन, रासायनिक पदार्थों, हार्मंज इत्यादि से निर्धारित होती है। और यह भी निर्विवाद है कि प्रवृत्यात्मक प्रक्रिया को उत्तेजित करने में अथवा अन्तर्वासना की अवरुद्ध शक्ति का द्वार खोलने में आत्म-व्ययी (consummatory) प्रक्रिया के विपय (External Stimuli) की आवश्यकता है ।" यदि इस वासना को एक बर्तन में बद गैस की उपमा दी जाए तो आत्मव्ययी प्रक्रिया के विपय को विस्फोटक चोट की उपमा दी जा सकती है । यदि इस वासना-प्रेरित प्राणी को उस गैस की धकेल को व्यय करने का साधन प्राप्त नही होता तो बहुत सम्भव है कि वह उसे सहन न कर पाकर मर जाए या फिर इसके निकास के

ऐसे साधन खोजे जो उसे थका कर निष्क्रिय बना दें—जैसे मैथुन-वासना से प्रेरित प्राणी निकास का विषय प्राप्त न करके सोने या खाने मे आत्म-व्यय करने लगता है।

यह स्वाभाविक भी है, क्योकि उसकी अन्तर्वासना की अभिव्यक्ति का प्रक्रियात्मक सबध अपने स्वाभाविक विषय से हटकर एक अन्य अस्वाभाविक विषय मे स्थानान्तरित हो जाता है। यह प्रक्रिया-योजना पशु के यान्त्रिक जीवन में कितनी महत्वपूर्ण है, यह हम एक उदाहरण से देखेंगे—नर थ्रीस्पाईंड-स्टिक्कल बैक दूसरे नर के लाल पेट को देखकर उस पर अनिवार्य रूप से आक्रमण करता है जैसा कि हम पीछे भी देख आए है, स्टिक्कलबैक का पेट मैथुन-ऋतु में लाल हो जाता है, जो चेतन चुनाव न होकर भी मैथुन का प्रतीक तो है ही। नरो का लडना भी मैथुन-वासना का ही एक पहलू है। इस प्रकार एक नर स्टिक्कल बैक दूसरे के लाल पेट को देख कर सहज ही 'समझ' लेता है कि यह उसका प्रतिद्वद्वी है, इससे उसका लाल पेट वाले स्टिक्कल बैक पर आक्रमण करना स्वाभाविक ही है। किन्तु रोचक और विशेष तथ्य यहाँ यह है कि यदि नर के आगे हम एक ऐसा लाल पेट वाला स्टिक्कल बैक भी बना कर रख दें जिसकी आकृति बिल्कुल ही स्टिक्कल बैक-सी न हो, तो भी वह उस पर उतनी ही उत्कटता से आक्रमण करेगा जैसे वह वास्तव स्टिक्कल बैक ही हो, जब कि बिल्कुल ठीक आकृति के लाल रग के बिना उपस्थित करने पर उसे सघर्ष के लिए प्रस्तुत नही किया जा सकता। स्पष्ट है कि उसे सघर्ष के लिए केवल लाल रग ही प्रेरित करता है, जब कि वह परिवृत्ति की दूसरी वस्तुओ के देखने में भी उतना ही समर्थ है। लाल पेट के प्रति सघर्षोन्मुख होने का कारण बडी सुविधा से समझा जा सकता है, यद्यपि अन्य पहलुओ—आकृति इत्यादि—की ओर एकदम उपेक्षा-वृत्ति का कारण विवदास्पद हो सकता है। किन्तु हम इसका कारण प्रक्रियात्मक योजना को समझते है—सैक्सुअल-सघर्ष की प्रक्रिया थ्रीस्पाईन्ड स्टिक्कल बैक में प्रतिद्वद्वी के लाल पेट पर इस प्रकार केन्द्रित हो गई रहती है कि उसके लिए लाल पेट-मात्र उसकी सघर्ष-वृत्ति के आह्वान का पर्याय हो उठता है—जब कि अन्य पहलू सर्वथा उपेक्षित ही रह जाते है। इसी प्रकार प्राणी की अन्य प्रवृत्तियो के अनुसार भी उसके लिए विश्व का प्रक्रियात्मक विषयो के रूप में निर्धारण हो गया रहता है। मादा स्टिक्कल बैक के लिए नर का वक्र नृत्य ही उसकी सैक्सुअल प्रवृत्ति के जागरण में प्रभावशाली हो सकता है अन्य कुछ नही। यदि कोई विद्रूप आकृति भी मादा के सम्मुख zig-zag नृत्य करने लगे तो भी वह उतनी ही उत्कटता से मैथुन के लिए उद्यत हो जाएगी जब कि बिल्कुल ठीक आकृति भी इस

नृत्य के विना मादा की मैथुन-वासना के व्यय का विपय नही हो सकती। मुर्गी अपने वच्चो की करुण पुकार सुनकर एकदम भयानक रूप से आक्रमणशील हो उठती है चाहे वे विलकुल भी दिखाई न पडते हो जब कि उसके सामने भूख से तडपते उसके वच्चे किसी भी प्रक्रिया को उत्पन्न नही कर सकते। एक मनुष्य एक व्यक्ति को देखकर प्राय उपहास ही करता है जब कि दूसरे के सम्मुख आते ही उसके व्यवहार में एकदम परिवर्तन आ जाता है, वह उससे केवल एक विशेप ढग की ही वातचीत करता है। इसी प्रकार प्यार के लिए भी, वह एक विशेप व्यक्ति से प्यार करता है, उसके सौंदर्य की सराहना करता है जव कि अन्य कोई भी उससे कितना भी अधिक सुन्दर व्यक्ति उसकी स्नेह-प्रक्रिया को उत्तेजित नही कर सकता। ये सब व्यवहार महज है और प्रक्रिया-केन्द्रीकरण के स्पष्ट प्रमाण हैं।

इसका अर्थ यह नही कि यह प्रक्रिया अपनी परिवृत्ति में स्वतन्त्र है—प्रत्युत् यह है कि यह अन्तर की मांग और प्ररिवृति की स्थिति दोनों से निर्धारित होती है। नर स्टिक्कलवैक में मैथुन-प्रवृत्ति (Searial instinct) अन्तर की मांग है जव कि सघर्प की प्रक्रिया और उसका केन्द्रीकरण परिवृत्ति की वाघकता और उस वाधकता के रूप पर निर्भर है। स्टिक्कलवैक 'जानता' है कि केवल लाल पेट का स्टिक्कलवैक ही उसका प्रतिद्वद्वी हो सकता है और इस प्रकार प्रतिद्वद्विता की यह प्रक्रिया परिवृत्ति की माग और अन्तर की प्रेरणा दोनो से ही निर्धारित होती है, किसी एक से नही। कहा जा सकता है कि नर स्टिक्कल वैक जिस प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पेट का रग काले से लाल करता है, उसी प्रवृत्ति की महज प्रेरणा से वह यह भी जानता है कि लाल पेट युक्त का अर्थ है मादा को आकर्पित करने की उत्कण्ठा, जो कि उसकी आकाक्षा पूर्ति में वाघक है, और इस प्रकार प्रक्रिया का केन्द्रीकरण परिवृत्ति के लाल रग से निर्धारित न हो कर उस अन्तर्-प्रेरणा से ही निर्धारित होता है जिससे यह प्रक्रिया प्रेरित होती है। इसके प्रमाण और भी कितने ही दिये जा सकते हैं जिनमें हम देखते है कि वाह्य विपय प्राणी की प्रक्रिया शृखला मे उसकी अन्तर्वासना से ही निर्धारित होते है। एक ही वस्तु एक ही प्राणी के लिए विभिन्न वासनाओ में विभिन्न स्तरो की और विभिन्न गुणो की प्रक्रियाओं का विपय वनती देखी जा सकती है। (E S. Russell) के अनुसार नर थ्रीस्पाईड स्टिक्कल वैक अपना घोसला तैयार करके उसके समीप पहरा देता है और जो भी वस्तु उसकी ओर आती है उसको वह दूर हटा देता है। कोई भी प्राणी यदि उस घोसले के एक विशेप निर्धारित क्षेत्र में प्रवेश करता है तो वह उस पर भीपण आक्रमण करता है फिर चाहे वह अपरिपक्व या उपयुक्त मादा ही क्यो न हो। किन्तु कोई भी मैथुन के

लिए उपयुक्त मादा, जो विशेप प्रकार के गति चिन्ह प्रदर्शित करती है, वहाँ स्वागत पाती है। वह उसके साथ सभोग करता है तथा उसके अडे देने तक उसे घोसले मे स्थान देता है। वह घोसले और मादा के बीच के स्थान में वक्र (zig zag) नृत्य करता है, एक विशेप प्रकार का रस गुर्दो Kidney से प्रवाहित करता है और फिर मधुर दश से उसे घोसले की ओर प्रेरित करता है। तव मादा उस घोसले में प्रवेश करती है, अडे देती है और तीव्रता से दूसरी ओर से वच निकलती है। नर उसके बाहर निकल आने पर उसे दूर भगाने के लिए उस पर आक्रमण तक कर देता है। उसकी प्रक्रियात्मक योजना अव अपनी वासना, आत्मव्ययी प्रक्रिया और विपय (विषय की अर्थाभिव्यक्ति Significant property) सभी के साथ वदल जाती है—मादा नर के लिए मैथुन-साथी के स्थान पर आक्रमण का विपय हो उठती है।

रसल और मैक्डुगल इस अन्तर्प्रेरणा पर वहुत वल देते हैं, मैक्डुगल के अनुसार "भूख और प्यास अन्तर-वासना-जन्य-प्रक्रियाएँ ही हैं," जैसा कि शब्द का सामान्य प्रयोग भी वताता है, किन्तु यह भी स्पष्ट ही है कि सम्पूर्ण प्रवृत्यात्मक व्यवहार एक सीमा तक अन्तर-वासना की अवस्था पर निर्भर करते है। शिकारी पशु केवल तभी शिकार करते है जब वे भूखे होते है, एक सन्तुष्ट विल्ली चूहे की, अपनी पूछ पर वैठने पर भी उपेक्षा कर सकती है। इसी प्रकार कबूतरो की मैथुन-प्रक्रिया का चक्र भी विशेष अन्तर-वासना पर ही निर्भर करता प्रतीत होता है। मैथुन की लालसा उनमें वन्सत-ऋतु में उत्पन्न होती है और इसी प्रकार ग्रीष्म-ऋतु में भी प्रत्येक चक्र की समाप्ति के पश्चात् पुनरुद्‌भूत होती है। अन्य अवस्थाओ में मादा को नर का कोई भी व्यवहार मैथुन के लिए प्रस्तुत नही कर सकता। अव उसमें एक दूसरी वासना उत्पन्न होती है—वच्चो के पालन की और घोसला-निर्माण की, जो पुन प्रक्रियात्मक-योजना में परिवर्तन की द्योतक है। रसल के अनुसार प्रत्येक प्राणी अपने एक विशेष ससार में रहता है। वह प्राणी के विशेष व्यवहार और प्रक्रिया के विषय के साथ सम्बन्ध को एक विशेष शब्द (valence) के द्वारा प्रकट करता है, जिसकी व्याख्या वह कुछ इस प्रकार करता है कि प्रत्येक विषय अपने आप में जीव के लिए कुछ महत्त्व न रख कर उसकी वासना की अभिव्यक्ति का साधन भर है। इस वासना और विषय के सवध को वह इस शब्द द्वारा शायद प्रकट करता है।

हम सामान्यत इससे सहमत है, किन्तु प्राणी-व्यवहार के अनेक पहलू ऐसे भी है जो इसके अन्तर्गत नही आ सकते, ये अधिक यान्त्रिक और

धमनि-यत्र के निम्न स्तरीय विभागो के कार्य कहे जा सकते है। जैसे नर थ्रीस्पाइड स्टिक्कलबैक अडो के घोसले से बाहर एक विशेष सीमा मे पडे होने पर उन्हे उठा कर घोसला मे रख लेता है, जब कि उस सीमा से बाहर पडे अपने घोसले के अडो को भी खा जाता है। इसी प्रकार वह घोसले मे पडे अडो के गल जाने पर घोसले को भी तोड देता है और पुन सपूर्ण प्रक्रिया की आवृत्ति करता है। इसी प्रकार गल भी अपने या अन्य किसी के अडो को घोसले से बाहर एक विशेष सीमा में पडे होने पर अपने घोसले मे उठा लाती है जब कि उस सीमा से बाहर पडे अपने अडो की वह बिल्कुल भी परवाह नही करती, मानो वे उसके लिए कुछ भी नही। सभवत इन प्राणियो के लिए अडो, घोसलो और बच्चो इत्यादि का कोई स्वतत्र अस्तित्व नही है, वे एक विशेष प्रकार की परिवृत्ति को ही देखते और जानते है। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है जैसे इस प्रक्रियात्मक योजना के निर्धारण मे न तो परिवृत्ति को ही कारण कहा जा सकता है और न प्राणी की किसी अन्तर-प्रकृति को ही, प्रत्युत यह एक विशुद्ध प्रक्रियात्मक योजना प्रतीत होती है, अर्थात् प्राणी के एक विशेष-व्यवहार और उसके एक निश्चित विषय का एकपक्षीय सबध जिसमें विषय के शेष पहलू उपेक्षित रहते है। यह सबध ऐसे ही क्यो बना, अथवा प्रक्रियात्मक योजना का विकास इस तरह ही क्यो हुआ, इसका कोई कारण आकस्मिक प्रतीत होता।

इस सब से यह स्पष्ट है कि प्रक्रिया-केन्द्रीकरण के लिए यह आवश्यक नही है कि प्रकिया-केन्द्र या प्रक्रियात्मक-योजना प्राणी की अस्तित्व रक्षा में उपकारक ही हो। सच पूछा जाए तो अस्तित्व-रक्षा के उपकारक अपकारकत्व की 'उद्देश्य-कल्पना' अत्यारोपण मात्र प्रतीत होती है। मैं नही जानता कि प्राणी की प्रक्रियात्मक योजना को Appetitive-Behavior और Consumatory Act) वासनात्मक और आत्मव्ययी प्रक्रिया की सज्ञा देने वाले कहाँ तक इन व्यवहारो को अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति में उपकारक या अपकारक समझते हैं, अथवा कहाँ तक वे विकासवाद के इस सिद्धान्त के निर्वाह का ख्याल रखते हैं, किन्तु हम समझते है कि प्रक्रिया का पर्याय (Consumatory act) आत्मव्ययी प्रक्रिया शब्द अस्तित्व-रक्षा और प्रक्रिया के सबधो को अच्छी तरह से स्पष्ट कर देता है। आत्मव्ययी प्रक्रिया के लिए यह कोई शर्त नही है कि वह अस्तित्व-रक्षा की सापेक्षता में ही विकसित हो अथवा अस्तित्व-रक्षा की साधन बने, प्रत्युत् यह कि वह अन्तर-प्रेरणा की धकेल 'poush को निकास दे सके। अन्तर वासना (Appetitive urge) और अस्तित्व रक्षा की प्रवृत्ति में भी सच पूछा जाय तो कुछ सामान्य नही है, इन्हे एक

दूसरी से सर्वथा स्वतन्त्र कहा जा सकता है। अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति को Appetitive Behavior नही कहा जा सकता और न अस्तित्व-रक्षा-सबधी व्यवहार को किसी वासना की धकेल के निकास का साधन (Consumatory act) ही कहा जा सकता है, यह केवल एक प्रतिक्रियात्मक व्यवहार है जिसे सामान्यत Reflexive या Emotional Behavior (आवेगात्मक व्यवहार) कहा जा सकता है। अस्तित्व-रक्षा को अब तक जीवन की आधारभूत प्रवृत्ति समझा जाता रहा है, किन्तु जैसे स्वादिष्ट भोजन के परमाणुओ के स्पर्श से हमारी जिह्वा के नीचे की ऍंडोक्राइन ग्रथियाँ हमारी इच्छा और ज्ञान के विना ही सालिवा छोड देती है, उसी प्रकार किसी प्रहार या अन्य अस्तित्व-अपकारक सम्भावना के साथ ही हमारे शरीर के अग स्वत ही सुरक्षात्मक-कार्यवाही करते है। इसके विपरीत मैथुन प्रक्रिया एक आन्तरिक वासना-भूख-से प्रेरित होती है, जिसका विस्फोट यद्यपि विपय के सम्मुख आने पर ही होता है किन्तु जिसकी उत्पत्ति के लिए हमारे ग्रथिरस या अन्य शरीर-वैज्ञानिक पहलू ही उत्तरदायी होते है। इसी प्रकार भूख इत्यादि के लिए भी। किन्तु अस्तित्व-रक्षा के लिए कोई स्वतन्त्र आन्तरिक प्रेरणा नही होती, प्रत्युत यह कि यह हमारा सहज प्रक्रियात्मक शरीर-धर्म ही है, जैसे गर्मी या सर्दी लगना, दर्द या चुभन का अनुभव होना इत्यादि। मैथुन की वासना और मैथुन-साथी या निकास-साधन के लिए विवश दौड के उत्तरदायी हमारे कुछ ग्रथिरस है, यद्यपि मनुष्य या वन्दर जैसे विकसित प्राणियो में मस्तिष्क-तन्तु तथा अन्य ज्ञान ततु और (viscera) भी काफी महत्वपूर्ण होते है, जैसा कि अगले निबध में हम देखेंगे। इनके बिना यह वासना प्राणी में उत्पन्न ही नही होती, दूसरे, इसकी उत्पत्ति के लिए किसी भी बाह्य विषय या उकसाहट की आवश्यकता नही है। आत्म-व्ययी प्रक्रिया यद्यपि विषय सापेक्ष है किन्तु यह केवल उस धकेल की, विषय अथवा निकास-साधन प्राप्त होने पर, उपभुक्ति का प्रसार भर है—अपने आप में स्वतन्त्र प्रक्रिया नही। इसी प्रकार भूख-नीद इत्यादि के लिये भी, किन्तु क्रोध, चुभन या बचाव की प्रक्रिया की उत्पत्ति-मात्र के लिए किसी बाह्य विषय की अनिवार्य अवश्यकता है, इसके बिना ये प्रक्रियाएँ उत्पन्न ही नही हो सकती और न दूसरा कुछ ऐसा व्यवहार ही देखा जा सकता है जिसे अस्तित्व-रक्षात्मक प्रक्रिया कहा जा सके।

प्राय सभी विकास-वादी दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक (आज विकासवाद उनसे आगे बढ चुका है) सभी प्रवृत्तियो के विकास का कारण अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति (हम कहेंगे आवेग—भय की आवेगात्मक Emotional प्रक्रिया)

पर आधारित सहज चुनाव को मानते है, किन्तु हम नही समझते कि ऐसा कहने के लिए क्या उपयुक्त कारण दिया जा सकता है। यदि यह कहा जाए कि प्राणी के प्राय सभी व्यवहारो और आकाक्षाओ का परिणाम अस्तित्व-रक्षा होता है, तो इसके गलत होने पर भी, इसे एक सीमा तक समझा जा सकता है, किन्तु यह कुछ अधिक सगत नही जान पडता कि सभी व्यवहारो के मूल मे आस्तत्त्व रक्षा की प्रवृत्ति एक धकेल Push के रूप में स्वीकार की जाए। जैसे, मैथुन-प्रक्रिया और आकाक्षा दोनो को ही अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति Push का परिणाम कहा जाता है, किन्तु हम नही समझते इसे क्योकर स्वीकार किया जाए ? उनका तर्क है कि प्राणी सन्तानो के रूप में अपने अस्तित्व को सुरक्षित करता है और इसीलिए मैथुन की प्रक्रियात्मक धकेल भी इसी उद्देश्य से विकसित हुई है। डारविन 'ओरीजन ऑफ स्पेसीज़' में इसके कितने ही उदाहरण देता है, जैसे, अधिक देश को अधिगत करने के लिए अधिक सन्तानोत्पत्ति करना, वृक्षो का ऐसे वीज उत्पन्न करना जो पक्षियो से वच सकें, पखदार वीज होना, जिससे वे अन्य वृक्षो की प्रतिद्वद्विता से वचकर हवा के द्वारा सुरक्षित स्थान पर पहुँच सकें इत्यादि। किन्तु सन्तानोत्पत्ति और सतति-रक्षा की इस प्रवृत्ति को हम व्यक्तिगत अस्तित्त्व-रक्षा का परिणाम समझें या जातिगत अस्तित्व रक्षा का ? यदि इसे व्यक्तिगत अस्तित्व-रक्षा का परिणाम कहा जाए तो इसमें व्यक्ति को अपनी शरीर-रक्षा का पहिले ध्यान होना चाहिए न कि सन्तति-रक्षा का, किन्तु हम देखते है कि प्राय सभी प्राणी अपने वच्चो पर सकट पडने पर अपने जीवन को पूरी तरह से सकट में डाल कर भी अपने वच्चों की रक्षा का प्रयत्न करते है। तो भी यदि आग्रह किया जाए और कहा जाए कि इससे स्थिति में कुछ अन्तर नही पडता तो सन्तति-रक्षा के विरोधी भी कितने ही उदाहरण दिये जा सकते है—जैसे, सँपनी अपने वच्चो को खा जाती है। प्राय ९० प्रतिशत जीवो में नर को सन्तानो की कोई चिन्ता नही रहती। विल्ला तो नर-वच्चो को मार ही डालता है। इन सव से स्पष्ट है कि अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति ही मैथुन-वासना और सन्तति-स्नेह का कारण नही है। नही तो सन्तान-रक्षा में केवल मादाओ को ही क्यो रुचि हो, नर को क्यो न हो ? विल्ले में तो मैथुन-वासना सन्तति-रक्षा से प्रधान और उसकी अपकारक हो कर आती है। इसी प्रकार थ्रीस्पाईड स्टिवकलवैक का मादा को आकर्षित करने के लिए अपने रग लाल, श्वेत और चमकदार वनाना उसके लिए अस्तित्व-रक्षा की दृष्टि से घातक हो उठता है। अनेक कृमियो और मछलियो में मादा **प्रथम-प्रसूति** के ही कुछ

बड़े होने पर मर जाती है। कुछ कैटर-पिल्लर जातियो के व्यक्ति एक विशेष अवस्था के पश्चात् (यौवन अवस्था) सन्तानोत्पत्ति और मैथुन-सभोग के नाम पर द्विधा या त्रिधा विभक्त हो जाते हैं और तितलियो के रूप में विकसित हो जाते है। इसी प्रकार एक और भी आश्चर्यजनक सुन्दर शाखाओ वाला समुद्री पौधा कोरोलाइन पोलियस के साथ चिपटा हुआ समुद्र के भीतर की एक शिला से स्पर्श करते ही फूलो में खिल उठता है, कुछ समय के पश्चात् उसके फूल विभक्त होकर तैरने वाले बड़े-बड़े चोचदार जीव बन जाते है, फिर ये जीव अडे देते है जिनसे छोटे-छोटे जीव उत्पन्न होते है जो अपने आपको फिर इन समुद्री शिलाओ के साथ जोड देते हैं और कोरोलाइन पौधे बन जाते हैं। इसी प्रकार यह व्यापार पुन प्रारम्भ होता है। इनमें कुछ उदाहरणो को जहाँ व्यक्ति के अस्तित्व-नाश का प्रमाण कहा जा सकता है, वहाँ कुछ को व्यक्तित्व का विघटन और अन्यो को सर्वथा भिन्न योनि में प्रवास कहना उपयुक्त प्रतीत होता है। यदि मैथुन-प्रक्रिया को जाति-रक्षा के उद्देश्य से विकसित कहा जाए तो उपर्युक्त उदाहरणो के साथ प्रश्नावली में अन्य उदारहण भी रखे जा सकेंगे, जैसे एक ही जाति के किसी व्यक्ति के घोसले में यदि दूसरे व्यक्ति के अडे ला कर रख दिये जाएँ तो वह पहचान लेने पर उन्हे तोड देता है, उपर्युक्त कृमियो के अतिरिक्त अनेक ऐसे कृमि और पशु-पक्षी है जो मैथुन-प्रक्रिया के पश्चात् मर जाते हैं या विघटित हो जाते है। इन सब उदाहरणो से स्पष्ट है कि मैथुन प्रक्रिया और सन्तानोत्पत्ति तथा सन्तति-रक्षा की प्रक्रियाएँ अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति से प्रेरित नही है प्रत्युत् स्वतन्त्र प्रक्रियाएँ है।

मैथुन—वासना और प्रक्रिया का परिणाम यद्यपि सन्तानोत्पति होता है किन्तु सन्तति-रक्षा की वासना और मैथुन-वासना सर्वथा भिन्न और स्वतन्त्र वासनाएँ है। इन दोनो के लिए हमारे शरीर में सर्वथा भिन्न hormones और इनकी सुखानुभूति की प्रवृति भी सर्वथा स्वतत्र है। सच तो यह है कि ये दोनो वासनाएँ एक सीमा तक एक दूसरी की अवरोधक भी है, जैसे, सन्तति–स्नेह के जनक *prolectin* रस (hormone) मैथुन-वासना के रसो के स्राव को कम कर देते है और इस प्रकार मैथुन-वासना की तीव्रता को बहुत कम कर देते है। मनुष्य-जाति में भी ऐसी बहुत-सी स्त्रियाँ देखी जाती है जिनमें यह वासना बहुत कम होती है, जबकि सन्तति-वासना बहुत अधिक होती है। कभी-कभी तो कुछ स्त्रियाँ मैथुन प्रक्रिया से घबराती तक देखी जाती है, और यदि उन्हे कोई अधिक मैथुन रुचि पति मिल जाए तो वे बीमार हो जाती है, जबकि इसके सर्वथा विपरीत उदाहरण बहुत अधिक प्राप्त किये जा सकते है। इसी प्रकार पशुओ में भी ये वासनाएँ विभिन्न स्तरो की देखी

जाती हैं। इस लिये भूख, नीद, मैथुन-वासना इत्यादि सभी वासनाएँ अस्तित्व रक्षा से भिन्न प्राणी के शरीर की कुछ ऐसी प्रवृत्ति-जन्य आवश्यकताएँ हैं जिन्हे केवल push (धकेल) या Appetite (लालसा) ही कहा जा सकता है और जिनका अस्तित्व रक्षा से कोई सबध नही है।

इस प्रकार प्रवृति का शरीर-वैज्ञानिक और व्यवहार-सबधी अध्ययन हमें इस परिणाम पर पहुँचाता है कि प्रत्येक जीव कुछ सामान्य और कुछ निर्धारित प्रवृत्तियो से युक्त है और प्रत्येक प्रवृत्ति धमनि-केन्द्र की प्रक्रिया (Activity) से नियोजित होती है।

जैसा कि हम पीछे देख ही आए है, प्रवृत्ति क्रियान्वित होकर प्राणी में एक निश्चित वासना, अभावानुभूति, उत्पन्न कर देती है, जो कि अन्तत उसे तृप्ति खोजने की ओर प्रेरित कर आत्म-व्ययी प्रक्रिया के द्वारा शान्त होती है। इसलिए कहा जा सकता है कि यह धमनि-केन्द्र पशु को प्रत्येक प्रक्रिया के लिए वाध्य करता है। टिन्बर्जन इसे 'ठीक समय पर ठीक प्रक्रिया' कहकर इसका कुछ अस्तित्व-रक्षात्मक मूल्य वताना चाहता है, जिसकी, जैसा कि हम पीछे विस्तार से देख आए है, तथ्य से कोई सगति नही वैठती। वह कहता है कि प्राणी इस प्रकार धमनि-यत्र के प्रयोग और क्रमश उसकी प्रक्रियात्मक योग्यता के चुनाव के द्वारा परिवृत्ति में अपने आप को उपयुक्ततम वनाने की ओर अग्रसर होता है।

किन्तु कुछ ऐसे उदाहरणो के द्वारा, जिनमें अटकल लग सके, जीवन की सामान्य प्रक्रिया पर सहज-चुनाव को ठोसना युक्ति-सगत प्रतीत नही होता। यद्यपि सघर्ष और 'अस्तित्व रक्षा एकदम वहिष्कृत नही किये जा सकते, किन्तु यह जीवन की सामान्य प्रक्रिया और अन्तर्निहित प्रवृत्ति नही है। सिम्पसन के शब्दो में, जीवन के ऐतिहासिक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जो कुछ सम्भाव्य है, अथवा कहना चाहिए, जो कुछ हो सकता है, वह होता है। इस कथन में, कि, जो होता है वह होना ही था, कि इसमें कोई निश्चित योजना है कोई तथ्य प्रतीत नही होता। जीवन केवल उन अवसरो का अनुसरण करता है, जो उसे अपनी यात्रा में प्राप्त होते हैं। इस प्रकार, विकास की मूल प्रवृत्ति, अवसर वादिता कही जा सकती है। 'अवसरवादिता' शब्द का प्रयोग यहाँ कुछ खतरनाक हो सकता है क्योकि इसमें एक चेतन प्रयास की भावना निहित है, जैसे जीवन प्राप्त-अवसर को एक्सप्लायट करता हो। किन्तु पाठको को विज्ञान में ऐसे शब्दो के प्रयोग को सावधानी से समझना चाहिए और किसी भी मानवीय अत्यारोपण से वचना चाहिए। यहाँ किसी प्रकार के चेतन प्रयास से अभिप्राय नहीं है, वास्तव में किसी 'फलाप्ति के लिए अचेतन प्रयास भी' यहाँ सार्थक

नही हो सकता। यह शब्द केवल विकास की इस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का ही द्योतन करता है, कि 'जो होता है सामान्यत वही हो सकता था, परिवर्तन होते हैं, जैसे वे हो सकते है, जैसे वे उन परिस्थितियो में सम्भावित है, ये परिवर्तन किसी सबसे अच्छे की प्राप्ति के लिए या 'सबसे अच्छे' की सम्भावना के रूप में नही होते। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया अवसर का अनुसरण करती है, किसी योजना का नही। जैसा कि हम प्रवृत्ति सवधी अध्याय में वार-वार कह आए है, किसी प्रकार की भी प्रक्रिया, प्रवृत्ति और चुनाव परिस्थितियो की, जिनमें प्राणी भी एक अग है, यान्त्रिक योजना के परिणाम है। प्राणी में प्रत्येक परिवर्तन उसकी सारी परिवर्तनो की सम्भावनाओ को भी वदल देता है। इसमे भौगोलिक परिस्थितियो का भी वडा हाथ रहता है। इसी प्रकार शरीर की अपनी प्रकृति भी उसमें उतनी ही, और विकास में आगे वढ़े हुए प्राणियो के लिए कही अधिक, प्रभावशाली होती है। कोषो की शरीर में वृद्धि, अथवा अधिक कोपोवाले प्राणियो की उत्पत्ति ने उनके लिए वे सव प्रक्रिया विस्तारो के और शारीरिक परिवर्तनो के द्वार बन्द कर दिये जो एक कोष वाले प्राणियो के लिए खुले थे। किन्तु अब उनके लिए दूसरी ओर कितनी ही सम्भनाए वदनवार बनाने लगी। इस प्रकार किसी भी प्राणी के जीवन में किसी भी घटना के घटित होने के लिए उसकी शरीर-वैज्ञानिक स्थिति और परिवृत्ति उत्तरदायी होती है। इसे हम और भी विस्तार से अगले अध्याय में देखेंगे।

इसका अर्थ यह नही कि विकास में सहज-चुनाव का कोई हाथ ही नही। हमने अगले अध्यायो में इसके कितने ही उदाहरण देकर इसका समर्थन किया है, किन्तु न तो विकास में सहज चुनाव को एक प्रधान तत्व कहा जा सकता है और न एक ऐसी प्रक्रिया जो शरीर-वैज्ञानिक और परिवृत्ति की प्रकृति से स्वतत्र हो। प्राणी की सहज वासनाएँ (Appetites) उसे अपनी तृप्ति के लिए बाध्य कर देती हैं और इस तृप्ति के लिए उसे किसी निश्चित विषय से सम्पर्क स्थापित करना होता है। वासना और विषय का यह सम्पर्क न तो केवल शरीर वैज्ञानिक कारण मे निर्धारित कहा जा सकता है और न परिवृत्तिसे, यद्यपि इसमें परिवृत्ति अधिक प्रभावशाली तत्व है किन्तु इसे आवश्यकता और अवसर (Opportunity) दोनो का सयुक्त फलित ही कहना उपयुक्त हो सकता है। वासना और परिवृत्ति तथा इन दोनो का फलितप्र—क्रिया विकास को निर्धारित नही करते, जैसा कि आज भी बहुत से वैज्ञानिक समझते हैं, प्रत्युत वासना, शरीर और परिवृत्ति की सापेक्ष प्रकृति और तदनुसार निर्धारित प्रक्रिया एक ऐसे यान्त्रिक और आधार भूत तत्र से निर्धारित होते

है, जिसमे इनका प्राय कोई भी हस्तक्षेप नही है। इसलिए जो वैज्ञानिक यह कहते हैं कि शरीर यत्र प्रयोग के द्वारा, लाभ के ग्रहण और हानि के परित्याग में शिक्षित होता हुआ परिवृत्ति के अनुसार ढलता है, और अपनी बदली हुई परिवृत्ति में उपयुक्त होने के लिए बदलता है, केवल भूल करते है जैसा कि हमारे अगले अध्याय मे और भी विस्तार से स्पष्ट किया गया है।

इस प्रकार विकास का न तो मनस्तत्त्व एक मात्र कारण ही है और न अनेक कारणो में से एक कारण, यह केवल प्रक्रिया की प्रेरणा और निर्धारण में कारण है, जब कि यह स्वयं विकास से निर्धारित है। इसमें जेनेटिकल सिस्टम की उलझन पूर्ण रासायनिक स्थिति और रासायनिक परिवर्तन ही प्रधान कारण कहे जा सकते हैं। जैसा कि हम अगले निबन्ध में देखेंगे एक शरीर की प्रकृति, एक अविभाज्य इकाई के रूप में, एक अथवा दूसरे जेन के प्रभाव अथवा परिवर्तन से निर्धारित नही होती, प्रत्युत् सम्पूर्ण जेन्ज की क्रिया-प्रतिक्रिया के द्वारा विकसित होती है। कुछ (स्त्री-पुरुष के) सम्मिलन बहुत हीन कोटि के शरीर का निर्माण करते हैं जब कि कुछ बहुत उत्कृष्ट कोटि के शरीर को सम्भव करते है। और वास्तव में इन जेन-सबधो की एक ही जाति में अरबो सम्भावित प्रकृतियाँ हो सकती हैं, जिनमें प्रत्येक उपयुक्त शरीर का सृजन करने में समर्थ है। इन विविधताओ की सम्भावनाएँ वास्तव में वर्तमान और अतीत विविधताओ से कही अधिक हो सकती हैं। इन सम्भावनाओ का क्रियान्वित होना न होना मैथुन प्रक्रिया में सबद्ध नर-मादा के जेन्ज की रसायनिक परिणतिपर निर्भर करता है। अनेक वैज्ञानिको का विचार है कि सहज चुनाव इस सम्मिलन की प्रकृति को निश्चित करता है, जो, हमारे विचार में गलत है। इसके दो प्रमाण दिये जा सकते है, प्रथम तो यह कि यदि इस चुनाव का सबन्ध व्यक्तियो की तात्कालिक मनोवैज्ञानिक परिस्थिति पर निर्भर होना मानलिया जाए तो यह कभी भी सम्भव नही कि उनकी यह परिस्थिति कभी भी एक जैसी हो सकती है, दूसरे, इस प्रकार की क्षणिक परिस्थिति को जर्म में निहित मानना वैसे भी सगत प्रतीत नही होता। यदि एक अन्तर्निहित मनोवैज्ञानिक परिस्थिति को इसका कारण माना जाए तो वह सम्पूर्ण जाति में सामान्य रूप मे निहित होने से किसी भी सम्भावित विविधता के लिए अवसर नही रहने देगी। दूसरा और बडा प्रमाण यह है कि ऐसी अनेक प्रवृत्तियाँ अनेक प्राणियो में देखी जा सकती है, जो न तो किसी प्रकार की अन्तरवासना की तृप्ति के प्रयास के कारण उत्पन्न हुई प्रतीत होती है और न अस्तित्व-रक्षा मे उन्हें उपकरण कहा जा सकता है।

कुछ तो स्पष्ट रूप से इन दोनो की अपकारक है। जैसे John Y Beaty के अनुसार, एक विशेप मधुमक्खी किसी के डक मारने के एक दम पश्चात् मर जाती है क्योकि इसका डक चुभ जाने के पश्चात् निकल नही सकता। यह डक मक्खी के जीवन-तन्तुओ के साथ अच्छी तरह से सम्बद्ध रहता है और ज्यो ही मधु-मक्खी इसे वाहर खीचती है, उसके वे जीवन-ततु वाहर खिच आते है, और इन तन्तुओ के विना यह मक्खी जीवित नही रह सकती। इस मक्खी का यह डक वना ही कुछ इस तरह से होता है कि वह उसे वाहर नही खीच सकती। स्पष्ट रूप से यह एक ऐसी अवस्था है जिससे किसी लाभ या वासना-तृप्ति की कल्पना नही हो सकती। किन्तु Beaty, अखड सत्य के ज्ञाता के समान, कहता है कि "यह एक विचित्र अनियमितता है कि मधु मक्खी, जिसे डक जीवन-रक्षा के लिए प्राप्त हुआ, इसका उपयोग करके इसे खो बैठती है। वह और भी निश्चय से कहता है—फिर भी आखिर, मधु-मक्खी ने अपना मिशन पूरा किर लिया। यह उसका कार्य नही कि वह अपनी रक्षा करे, प्रत्युत् यह कि वह अपने साथियो की रक्षा करे। जव वह किसी आक्रमक को वाहर धकेल देती है, वह अपने साथियो के लिए अपने जीवन का त्याग कर देती है।" सम्भवत इस नैतिकता का तो उसे ज्ञान न होगा, किन्तु स्पष्ट रूप से यह जर्म से जर्म में निहित होते हुए सहज-चुनाव के सिद्धान्त के लिए वहुत वडी समस्या उत्पन्न कर देता है। यह एक और भी वडे आश्चर्य की वात है कि रानी मक्खी का डक भिन्न प्रकार से बना होता है, वह जितनी बार चाहे उसका प्रयोग कर सकती है, किन्तु वह उसका प्रयोग केवल रानियो पर ही करती है, न तो अन्य मक्खियो पर ही वह इसे प्रयुक्त करती है और न किसी अन्य प्राणी पर,। इससे प्रतीत होता है जैसे चीटियो में सामाजिक प्रक्रिया अपनी पूर्ति के लिए दो भिन्न-जाति की दास चीटियो को जन्म देती है, उसी प्रकार-यहाँ भी वही प्रक्रिया इस भिन्नता को उत्पन्न कर रही हो सकती है, किन्तु स्पष्ट रूप से यह मधु-मक्खियो के किसी भी स्वार्थ की, जो हम समझ सकते है, पूर्ति में सहायक नही होती। इसे सम्भवत जेन्ज में रासायनिक परिवर्तन का परिणाम ही कहा जा सकता है। और रानी मधु-मक्खी का भिन्न होना इसका खडन नही करता क्योकि सभव है जिस जेन के कारण वह अन्य से भिन्न है उसी के कारण उसका डक भी भिन्न हो। जहाँ तक उस के प्रयोग की विशेषता का सम्बन्ध है वह पूर्णत किसी प्रकार के चुनाव और उसके कारण भूत अपनी प्रकृति और परिवृत्ति पर निर्भर हो सकता है। कृमियो की किसी प्रवृत्ति और प्रक्रिया की व्याख्या करना अत्यन्त कठिन कार्य है, क्योकि वे हम से वहुत

ही अधिक भिन्न है । इसलिए उनकी वासना और उसकी सन्तुष्ट की व्याख्या करते हुए हम निश्चित नही हो सकते । इसका हम एक और उदाहरण प्रस्तुत करेंगे—एक विशेष कृमि मैंटिस जीवित मास के भक्षण की ऐसी वासना रखती है कि वह अपने मैथुन साथी तक को खा जाती है । नर मैथुन के लिए उसके समीप आता है और शीघ्र ही वह उसकी पकड मे पहुँच जाता है । वह उसे तब निगलना प्रारम्भ कर देती है । यह कृमि प्राय सवा तीन इच लम्बा होता है । इसी प्रकार एक और कृमि मादा अपने मैथुन-सखा को मैथुन क्रिया के बाद एक विशेष स्थान पर काट कर उसे आगे किसी भी मैथुन क्रिया के अयोग्य कर देती है । इसमें मादा का कुछ स्वार्थ हो सकता है, जो हमारे लिए समझना कठिन है, किन्तु नर क्यो सहज चुनाव के द्वारा अपनी रक्षा नही करता ? फिर पहले उदाहरण में मादा की जीवित मास की भूख इस अत्याचार की कारण समझी जा सकती है किन्तु दूसरे उदाहरण में इसमें किसका स्वार्थ समझा जाए ? हमारे विचार में इन दोनों उदाहरणो को सामान्यत सहज चुनाव के अन्तर्गत नही रखा जा सकता है, किन्तु इन्हे किन्ही अज्ञात रासायनिक प्रक्रियाओ द्वारा उत्पन्न अज्ञात वासनाएँ कहा जा सकता है । वास्तव में कृमि-समष्टियो या जातियो मे ९० प्रतिशत प्रक्रियाएँ सामान्य रासायनिक परिवर्तनो का परिणाम ही कही जा सकती है । वे (कृमि-जातियाँ) प्रवृत्ति के विशेष उपकरणो की सीधी उपज है, उनमें किसी प्रकार की मनोवैज्ञानिक कल्पना सगत नही जान पडती । यदि हमारे इन दो उपर्युक्त उदाहरणो को किसी उपयोगी वासना का परिणाम भी कहा जाए तो हमें कुछ विशेष आपत्ति न होगी, किन्तु हम जो पीछे अनेक उदाहरण ऐसे दे आए है जिन में ऐसी किसी वासना या जीवन-रक्षा की प्रवृत्ति को नही पाया जा सकता, उन्हे ध्यान में रखकर ही ऐसी विचित्र प्रवृत्तियो की व्याख्या की जानी चाहिए । सामान्यत हम एक ही जाति के दो वर्गों में, जिनमें किसी कारण से कुछ भिन्नता आ गई रहती है, दो भिन्न प्रवृत्तियो को देखते हैं । इन भिन्नताओ का कारण हम सहज चुनाव को नहीं समझ सकते । इसी प्रकार भिन्न जातियों की प्रवृत्तियो की भिन्नता के लिए भी । इसका कारण भी हम जर्म या जेन में होते हुए आकस्मिक रासायनिक परिवर्तन को ही समझते है । जैसे, हम हरिणो के अनेक वर्गों में सीगो की बडी भिन्नता को पाते है, वास्तव में यही मुख्य भिन्नता उनके वर्गीकरण की आधार है । किन्तु इन सीगो की भिन्नता स्पष्ट रूप से सहज चुनाव की परिभाषा नही है । सीगो की विद्यमानता का कारण आत्म-रक्षा कहा जाता है, किन्तु स्पष्ट **रूप से** इनमें अनेक वर्गों के सीग, जो बाद में भिन्न हुए है, आत्म-रक्षा **में सहायक**

आँख के विकास का, जिसका वह बिल्कुल भी लाभ नही उठाती (क्योंकि उसके मस्तिष्क ततु उतने विकसित नही हो सके) इस प्रकार विकास क्यो हुआ। इस प्रकार के हम कुछ और उदाहरण भी देंगे, जिनका अब तक के प्रचलित सिद्धान्तो से कोई मेल नही बैठता। जैसे एक स्तन-पायी प्राणी आरमा-डिल्लो एक बार में चार बच्चे देता है और ये चारो अनिवार्य रूप से या तो नर होते है या मादा, मिले जुले ये कभी नही होते। एक कृमि डूडलवग आठ टाँगो से युक्त होने पर भी पेट के विशेष सकोच-विस्तार से ही चलता है और इसके चलने की दिशा आगे न होकर पीछे की ओर होती है। नर आइ-लिडी इतना सुस्त होता है कि वह अपने स्थान से हिलना भी नही चाहता और यदि मादा समीप न हो तो पेट भरने के लिए दूर जाने से बचने के लिए, अपने बच्चे तक खा जाता है। एक जल-जन्तु हाइड्रा बच्चा या अडा देने की बजाय एक डाली के समान वस्तु उत्पन्न करता है जिसपर फूल होता है। समय आने पर यह फूल हाइड्रा बन कर तैरने लगता है। ऐसे और भी कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनकी ऐसी कोई व्यख्या नही दी जा सकती जैसी हम अपनी कल्पनाओ को प्रकृति पर आरोपित करके करते है।

इन विभिन्न प्रवृत्तियो के और अगो के विकास के मुख्यत दो कारण दिए जा सकते है--प्रथम जेनेटिकल और दूसरा प्रक्रियात्मक। जैन्ज में होने वाले आकस्मिक परिवर्तन प्राणी के लिए लाभ कर हो या हानिकारक, कभी-कभी उस जाति के एक वर्ग में और कभी सम्पूर्ण जाति में ही स्थायी हो जाते हैं। यह भी एक बडा कारण है कि क्यो विकास पूर्ण रूप से 'उपयुक्त तम' की ओर ही नही होता, और अव्यवस्थित तथा अनिर्धारित परिवर्तन प्रदर्शित करता है। चुनाव वास्तव में, होते हुए परिवर्तनो मे प्रक्रियात्मक प्रयास के द्वारा प्रभाव-शाली होता है अवश्य, किन्तु ये परिवर्तन उसकी अधिक चिन्ता नही करते। फिर प्राणी की प्रक्रिया का 'लाभ' के साथ भी केवल इतना ही सबन्ध है कि उनकी प्रकृति ने उनको जो विशेष वासनाए दी है, उनकी पूर्ति के लिए सुविधाए जुटा सकें।' इस प्रकार स्वय लाभ की प्रकृति उनके आकस्मिक परिवर्तनो के साथ बदलती रहती है, और एक बडे चुनाव का विषय न होकर, अथवा यो कहे, कि मुख्यत चुनाव से प्रेरित न होकर स्वय निर्धारित होते हुए चुनाव से निर्धारित होती ह।

यह समझ लेने पर, ऐसी वासनाओ को, जो स्पष्ट रूप से अस्तित्व रक्षा की प्रवृत्ति की अपकारक है—जैसे पतगो का दीपक पर मरना, थ्रीस्पाईन्ड स्टिक्कल बैक का अपने रगो का निखार कर हिंसक शत्रुओ के लिए सुलभ होना इत्यादि, भी हम सहज ही उसी प्रकार एक सामान्य वासनात्मक प्रक्रिया

के अन्तर्गत रख सकते हैं जैसे मैथुनवासना और भूख को। कुछ प्राणियो मे मैथुन-प्रक्रिया भी वास्तव में मृत्यु का सदेश है, जैसे कृमियो की अधिकाश जातियो मे नर ज्यो ही मैथुन-योग्य अवस्था का होता है त्योही वह समय के अपव्यय के बिना अपने मैथुन-साथी की ओर दौडता है और मैथुन-प्रक्रिया के शीघ्र ही पश्चात् वह मर जाता है। (Cheesman) इसी प्रकार, मोर्गन के अनुसार, साल्मोन मछली अडे देने के पश्चात् मर जाती है। टिवर्जन के अनुसार, सामान्यत अनेक प्राणी जीवन में केवल एक ही बार मैथुन प्रक्रिया करते हैं और उसके पश्चात् मर जाते हैं। नर मैंटिस कृमि मैथुन के पश्चात् मादा से खा लिया जाता है, यूरोपियन मादा फील्ड—क्रिक्कट मैथुन प्रक्रिया के पश्चात् नर के पखो को फाड कर उनमें से मैथुन के लिए मादा को उकसाने वाले एक विशेष अग को काट देती है। इस सबसे स्पष्ट है कि मैथुन प्रक्रिया का उद्देश्य अस्तित्व-रक्षा कभी भी नही हो सकता—अन्यथा ऐसे प्राणियो को भी अपनी ही जाति के अन्य प्राणियो के समान जीवन के पूर्ण विकास में से बीतना चाहिए, फिर चाहे वह कितना भी अल्पकालिक क्यो न हो। मैंटिस और फील्ड—क्रिक्कट जाति के नरो को या तो मैथुन-क्रिया ही छोड देनी चाहिए या फिर कोई ऐसा उपाय खोजना चाहिए जिससे वे मादाओ के पजे से छुटकारा पा सकें। कृमियो में ही अनेक वर्ग ऐसे भी हैं जो पूरा जीवन जीते है जब कि प्रथम मैथुन के पश्चात् ही मर जाने वाले कृमि अधूरी आयु का उपयोग करते हैं। इनके विपरीत छत्ता-मक्खियो की जातियो में बच्चो के बडे हो जाने पर रानी अपने दासों के साथ निकल जाती है और आमरण अनशन करके आत्म-हत्या कर लेती है जिसे हम आत्म-हत्या की वासना कह सकते है? प्रकृति में कोई ऐसा आध्यात्मिक प्राणी नही है जो यह सोचे कि उसने कर्तव्य कर्म कर लिए है, इसलिए अब उसकी कोई आवश्यकता नही, वे जो कुछ करते हैं वह केवल इसलिए क्योंकि वे वैसा करने के लिए वासना की धकेल से या अपनी शारीरिक परिस्थियो से बाध्य हैं। इसलिए यह कहना बहुत कठिन है कि अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति ही जीवन मे प्रक्रियाओ की एक मात्र प्रेरक शक्ति है। कुछ वैज्ञानिक जीवन के लिए सघर्ष को अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति का पर्याय मान कर उसी के एकमात्र प्रेरक और आधार-भूत प्रवृत्ति होने पर बल देते है, जैसे डारविन कहता है—"क्योंकि मिस्टलिटो (एक लता) पक्षियों द्वारा नष्ट की जाती है इसलिए इसका अस्तित्व उन पर निर्भर है, और इस प्रकार वह, आलकारिक रूप से ही सही, दूसरे फलदार अपने साथी पौधों से सघर्ष निरत कही जा सकती है, जो आत्म-रक्षा के लिए पक्षियो को उसके

बीज खाने के लिए उकसाते हैं।" कितनी बडी सूझ है, इसे पूर्ण रूप से प्राणी शास्त्र के अध्ययन का मानवीकरण कहा जा सकता है। यद्यपि डारविन 'आलकारिक रूप से' कहते हैं, किन्तु मैं नही समझता, यह कहने की आवश्यकता ही क्यो पडी यदि यही न मान लिया जाए कि वे इस शब्द का अर्थ विस्तृत करके अनर्थ करना चाहते हैं ? जिन वृक्षो के मीठे फल हम तोड कर खाते हैं और इस प्रकार उनकी सख्या वृद्धि को हानि पहुँचाते हैं, वे वृक्ष क्यो सहज चुनाव के द्वारा अपने आप में कोई परिवर्तन नही लाते ? इसका उत्तर डारविन 'मनुष्य द्वारा चुनाव' कह कर दे देगा, किन्तु तब उन जगली वृक्षो के लिए क्या कहा जाए जिनके फल बन्दर खाते हैं ? डारविन के ही ऊपर दिये उदाहरण में यह सदेहास्पद बात है कि किसी वृक्ष को अन्य वृक्षो से इस प्रकार आलकारिक सघर्ष में क्यो पडना चाहिए, जिसका अर्थ केवल हमारे द्वारा ही आरोपित हो, क्यो न वह अपने मे ही ऐसा परिवर्तन करे जिससे उसे खाने वाले कृमि-पक्षी उसका उपयोग ही न कर सकें ? वास्तव में कृमियो में, निम्न स्तर के रीढ धारियो में और वृक्षो मे विकास या परिवर्तन का मूल कारण परिवृत्ति में परिवर्तन के कारण जेन मे परिवर्तन या मैथुन प्रक्रिया में जेन सम्मिलन के द्वारा कोई विशेष रासायनिक परिवर्तन हो सकता है, जब कि वासना-पूर्ति और उसमें आने वाली बाधाओ के अपसरण का प्रयास केवल इन परिवर्तनो के परिणाम हैं, कारण नही।

डारविन कहता है—"अनेक सामान्य परिवर्तन, जो एक ही दम्पति की विभिन्न सन्तानो में पाए जाते हैं, छोटे होने पर भी महत्व पूर्ण होते हैं। वह कहता है कि ये व्यक्तिगत परिवर्तत उत्तराधिकार में प्राप्त किये जाते हैं, जिनका कि प्राकृतिक चुनाव Natural Selection में बहुत महत्व है।" उसके अनुसार, इन परिवर्तनो में बीतते हुए व्यक्तियो में उपयुक्ततम ही शेष रह पाते हैं और अन्य समाप्त हो जाते हैं। यदि यह बात इसी प्रकार ग्रहण की जाए—तब सभवत किसी को भी आपत्ति नही होगी, किन्तु डारविन इस उत्तराधिकार को भी सहज चुनाव mental selection या Adaptation से निर्धारित मानता है, जो एकदम ज्यादती प्रतीत होती है। इसके खडन के लिए हम उसी का दिया एक उदाहरण लेंगे। वह कहता है—"मैं उस जाति को उदाहरण रूप में स्वीकार करता हूँ जिसे बहु-रूपिणी कहा जा सकता है, जिसमें प्रत्येक वर्ग अनेक रूप की सन्तानो को जन्म देता है। इन रूपो को लेकर बहुत मतभेद है, बडी कठिनाई से कोई दो वैज्ञानिक इनके वर्गीकरण में सहमत हो सकेंगे। हम पौधो में से र्‌यूबस, रोजा और हीराशियम को और जीवो में से कुछ कृमि-जातियो को उदाहरण रूप मे रखेंगे।

सबसे अधिक विभिन्न आकृतियो वाली जाति में छ वर्ग निश्चित और स्थिर रूप और चरित्र होते हैं। जो जातियाँ एक देश में विभिन्न आकृतियो वाली हैं वे दूसरे देश में भी कुछ अपवादो के साथ विभिन्न आकृतियो वाली होती हैं। वह आगे कहता है कि कुछ प्राणियो में बहुत से अग न लाभ कर होते हैं और न हानिकारक और ये अग उनमें स्थायी हो जाते हैं, क्योकि सहज चुनाव उन पर प्रभावशाली नही होता।"

इन दो उदाहरणो को डारविन उलझन पूर्ण बताता है, क्योकि सहज चुनाव इन पर सीधे से लागू नही होता। पहले उदाहरण में जहाँ यह प्रमाणित होता है कि सर्वथा भिन्न परिवृत्ति और बाधाए भी सहज चुनाव के द्वारा उत्तराधिकार को प्रभावित नही कर सकी वहाँ दूसरा उदाहरण यह भी प्रमाणित करता है कि अगो की विद्यमानता-अविद्यमानता सहज चुनाव पर निर्भर नही करती। इसका कारण हम केवल यही समझते है कि जेन्ज में का अन्तर्निहित inertia (इनर्शिया—एक ही स्थिति में बने रहने की प्रवृत्ति) परिवृत्ति के प्रभावो को निष्प्रभाव करता रहता है, और जो विभिन्न, और विभिन्न परिवृत्ति में भी समान वर्ग देखे जाते हैं वे यह घोषित करते हैं कि जेन्ज के विभिन्न सम्मिलन यद्यपि असख्य सम्भावित रूपो को जन्म दे सकते हैं किन्तु इनके विकास में, यदि यह अब चलता रहे तो, एक नियमित शृखला होनी सम्भव है। किन्तु हम सदैव विभिन्न परिवृत्तियो में विकसित होते एक ही जाति के प्राणियो में कुछ भिन्नता पाते हैं, जो कभी कभी काफी गम्भीर होती है और व्यक्तिगत-भिन्नता से अधिक स्थायी होती है, इस भिन्नता का कारण हम परिवृत्ति-जन्य भिन्नता को समझते है जो जेन्ज के इनर्शिया में छिद्र खोज लेती है। किन्तु यह जेन्-इनर्शिया उतना ही अधिक सशक्त होता है जितना ही विकसित प्राणी हो, नही तो कृमियो और वनस्पतियो में इतना इनर्शिया नही होता, अथवा, उनके जेन उत्तराधिकार को सुरक्षित रखने में इतने समर्थ नही होते।

जेन्ज में वासना भी परिवर्तन सम्भव कर सकती है, जैसा कि हम पीछे कह आए हैं, किन्तु यह परिवर्तन किसी ऐसे सुक्ष्मतत्त्व के जेन्ज में प्रवेश से नही होता जिसे हम वासना या भावना कह सकते है प्रत्युत् वासनाए और प्रक्रियाए जिस धकेल से उत्पन्न होती है, वह उन रासायनिक परिस्थितियो की ही परिणाम होती है जो उत्तराधिकार और जीवन की परिवृत्ति (भौगोलिक और रासायनिक) की परिणाम होती हैं। किन्तु एक बार जब यह वासना स्थिति में आ चुकी रहती है उस समय उसकी धकेल को व्यय करने के लिए प्राणी निकास खोजता है और इस प्रकार

प्रक्रिया का जन्म होता है। यह प्रक्रिया अपनी उत्पत्ति के लिए शरीर के रासायनिक परिवर्तनो से कितनी निर्धारित होती है यह इसीमे अनुमान किया जा सकता है कि यदि भूखे प्राणी का खून पूर्ण तृप्त प्राणी मे डाल (इजेक्ट कर) दिया जाए) तो वह भी भूख से व्याकुल हो उठता है। (Mc-dougal) इस प्रकार यह वासना मौलिक है और प्रक्रिया आवश्यक है, क्योंकि वासना की धकेल अपने व्यय के लिए प्राणी को वाधित कर देती हैं। और यदि यह धकेल अपना उपयुक्त निकास नही कर पाती तो इमका प्राणी के लिए घातक होना अनिवार्य है, सम्भव है वह कभी उसके जनन कोपो पर प्रभाव डालकर उसमें जेन म्यूटेशन की कारण हो उठे। इसका दूसरा प्रभाव जेन्ज के चुनाव पर होना भी सम्भव है क्योंकि यह शरीर में ऐसे रासायनिक तत्वो को उत्तेजित कर सकता है जिससे विशेप कोपो का और अगो का प्रतिनिधित्व करने वाले क्रोमोसोम (Chromosome) अधिक क्रियात्मक हो उठें और इस प्रकार दूसरे मैथुन साथी के विशेष क्रोमोसोम के साथ मिलकर शरीर-प्रकृति पर प्रभाव डालें। किन्तु परिवर्तन या विकास के इन कारणो में से किसी को भी वहुत दूर तक नही खीचा जा सकता, जैसा कि अनेक वैज्ञानिक किसी एक को ही आधार भूत मान कर अन्य से निषेध करते आए है। फिर चुनाव सबधी ये कल्पनाएँ प्रयोग सिद्ध न होकर केवल अटकलें ही है।

डारविन ने सहज-चुनाव पर बहुत बल दिया है, सहज चुनाव में 'एप्पी-टाइटिवविहेव्यर और कज्यूमेंटरी ऐक्ट' जन्य चुनाव भी सम्मिलित होने चाहिए, किन्तु वह सहज-चुनाव को जीवन-सघर्ष तक ही सीमित रखता है जो अन्तत अस्तित्व रक्षा की प्रवृत्ति का ही पर्याय है। सैक्सुअल-चुनाव को भी वह एक सीमा तक महत्त्व देता है, किन्तु यह वास्तव में अपवादो की व्याख्या करने के लिए। फिर उसके अनुसार, सैक्स भी अन्तत अस्तित्व-रक्षा के ही अन्तर्गत है, क्योंकि सन्तानोत्पत्ति का यह साधन है और ज्यामितिक अनुपात Geome tnical Ratio वढाने में सन्तान की वहुत अधिक आवश्यकता है। इस प्रकार सहज ही यह देखा जा सकता है कि डारविन तथा अन्य विकासवादी बलात् उन प्रक्रियाओ पर एक ऐसे उद्देश्य को ठोसते है जो वास्तव में हमारी अपनी कल्पना है। सन्तानोत्पत्ति सैक्सुअल प्रवृत्ति का उद्देश्य नही परिणाम है, इसी प्रकार ज्यामितिक अनुपात-वृद्धि भी सन्तानोत्पत्ति का उद्देश्य न हो कर परिणाम मात्र है।

× वासनात्मक और अतमव्ययी प्रक्रिया।

जैसा कि हम इस निवन्ध के प्रारम्भ मे देख आए है, हमारे व्यवहारो को दो मुख्य वर्गों में बाँटा जा सकता है— (१) वासना प्रेरित क्रियाशीलता और उसका प्रक्रियात्मक व्यय तथा (२) आवेगात्मक प्रतिक्रिया Emotional Response) । प्रथम यद्यपि अन्त प्रेरणा और शारीरिक-प्रक्रिया जन्य व्यवहार है, किन्तु यह शारीरिक-प्रक्रिया परिवृत्ति के जिस विषय (Object) पर क्रियाशील होती है उसके अनुसार अपने प्रक्रियात्मक व्यवहार को निर्धारित करना उसके लिए आवश्यक है, किन्तु आवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ—भय, क्रोध, विस्मय, और घ्राण तथा स्पर्शानुभूति आदि इन्द्रिय विषय प्रतिक्रियाएँ—मामन्यित हमारा शरीर-धर्म ही है, यद्यपि ये भी एक सीमा तक विशेष से चिपटी रहती है, और कुछ उन पूर्वानुभवों पर, जिनमें उत्तराधिकार में प्राप्त अनुभव भी सम्मिलित है, अवलवित है । चूहे का विल्ली को देखते ही भय-कम्पित हो उठना पूर्वानुभवो पर आश्रिति है और इसी प्रकार विल्ली का चूहे को देखते ही आक्रमण-प्रवृत्ति से अभिभूत हो उठना पूर्वानुभव-प्रेरित आवेगात्मक व्यवहार है । किन्तु यदि विल्ली को प्रारभमें ही खाने को कुछ दूसरी वस्तु दी जाए तो उसकी आवेगात्मक प्रक्रिया उस पर केन्द्रित हो जायगी × इसी प्रकार यदि चूहे को प्रारम्भ में ही ऐसी विल्ली के पास रखा जाए जो अहिसक है तो उसकी आवेगात्मक प्रक्रिया—केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति वदल जाएगी । इसी प्रकार अन्य भी कितने ही उदाहरण दिए जा सकते है । अस्तु, इन दोनो व्यवहारो में न केवल वाह्य अन्तर है प्रत्युत्, जैसा कि हम पीछे भी कह आए है, शरीर वैज्ञानिक—शरीर की अन्त प्रकृति में निहित, अन्तर भी है । सामान्त अस्तित्व-रक्षा का सघर्ष इन दोनो से वँधा है—पहले में जहाँ उदर पूर्ति के लिए प्राणी अनेक साधनो का आविष्कार करता है वहाँ दूसरे में वह वाह्य खतरो से अपनी रक्षा करने में समर्थ होता है । किन्तु अस्तित्व-रक्षा इन दोनो मे से किसी भी व्यवहार को पूर्ण रूप से व्याप्त नही कर सकती । कहा जा सकता कि अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति जीवन की अन्तर्निहित प्रवृत्ति है—यह जीवन-रचना और जीवन-विकास की प्रकृति में ही निहित है, और आवेगात्मक प्रतिक्रिया अपकारक परिवृत्ति से वचने की और इस प्रकार अस्तित्व-रक्षा की साधन है ।

मै नही समझता कि इसमे कुछ मौलिक अन्तर पडता है, इसमें शब्दो का चक्कर ही अधिक है, क्योकि प्राय प्रत्येक आवेग, विशेषत स्पर्श-सुख या चुम्बन और पीडा इत्यादि भी, शायद अधिक स्पष्ट और निश्चित् रूप मे, जीवन

× महादेवी जी की विल्ली केवल पापड खाती है, चूहा तो विल्कुल भी नही खाती ।

की किसी भी अभिव्यक्ति (शरीर) में पाई जा सकती है। और सच तो यह है कि यदि कहा जाए कि वासनात्मक धकेल (Appetitive Push) और आवेगात्मक प्रतिक्रिया (Emotional Response) ही वास्तव में परिवृत्ति के सघर्षण में अपनी आवश्यकतानुसार प्राणी के व्यवहार और प्रक्रिया में कारण भूत होती है तो यह अधिक उपयुक्त जान पडता है (यद्यपि इनसे स्वतन्त्र जेनम्यूटेशन भी इसमें बहुत महत्व रखता है)। आवेगात्मक प्रतिक्रिया यद्यपि अस्तित्व-रक्षा में बहुत अधिक सहायक है किन्तु यह कैसे कहा जा सकता है कि ये विभिन्न प्रतिक्रियाए अस्तित्व-रक्षा की ही पर्याय है?—अर्थात् जीवन ने अपनी रक्षा के लिए ही इनको जन्म दिया है? भय अपने बलवान् शत्रु से भी होता है और छोटे से ही पीडा जनक प्रहार से भी, यद्यपि इन दोनो मे अन्तर मात्रात्मक है किन्तु प्रभाव में तो गुणात्मक अन्तर ही है न कि मात्रात्मक, और इन दोनो में शरीर-यत्र की एक ही प्रक्रिया-योजना प्रयुक्त होती है। सामान्यत पशु यह अनुभव से जानता है कि अमुक प्रहार उसे केवल कम या अधिक पीडा पहुँचाएगा जब कि दूसरा उसके अस्तित्व तक को मिटा सकता है, किन्तु तब भी उसकी आवेगात्मक प्रतिक्रिया में कुछ अन्तर नही देखा जाता। सर्दियो में पशु गर्म स्थानो की खोज करते है, चाहे उस सर्दी से उनकी मृत्यु की कोई भी सम्भावना न हो। फिर एक सीमा तक सर्दी में स्वय हमारा शरीर अपना इस प्रकार प्रबन्ध करता है कि सर्दी का प्रभाव कम किया जा सके, किन्तु यह क्रिया एकदम भौतिक है न कि प्रयास जन्य। यह ठीक है कि अधिक सर्दी या अधिक गर्मी मृत्यु का कारण हो सकती हैं किन्तु वे इससे इसलिए नही बचते कि इससे उनके अस्तित्व को कोई खतरा है बल्कि इसलिए कि परिवृत्ति की प्रतिकूल परिस्थिति से जो भौतिक परिवर्तन उनके शारीरिक-सस्थान में होते हैं वे उनको असुविधा पहुँचाते है, वे उनको पीडित करते हैं, उनके शरीर की शक्ति का अपव्यय होता है और इस प्रकार उनको इससे थकावट और तगी अनुभव होती है। इसी प्रकार भूख की सन्तुष्टि न होने से प्राणी की मृत्यु अनिवार्य है, किन्तु प्राणी उसकी सन्तुष्टि के लिए इसलिए प्रयास नही करता कि यह उसके अस्तित्व के लिए खतरा है बल्कि इसलिए कि वासनात्मक धकेल उसको इसके लिए बाध्य कर देती है, उसकी नाडियाँ उस धकेल से तन जाती है और उस तनाव का व्यय करने के लिए व्याकुल हो उठती हैं, नही तो यह तनाव स्वय समाप्त हो जाता है और उसका यह अस्वाभाविक व्यय उसमें थकन और दौर्बल्य छोड जाता है, उन नाडियो में उत्पन्न शक्ति शरीर को ही खाने लगती है। सम्भवत भूख की

वासनात्मक धकेल उसे उसी प्रकार वाध्य करती है जैसे शलभ की जलने की वासना उसे अग्नि पर जलने को वाध्य करती है, या मैथुन वासना प्राणी को मैथुन साथी खोजने के लिए वाध्य करती है या कुछ कृमियो में यह जीवन-नाशक-मैथुन–प्रक्रिया के लिए धकेलती है। इसी वासनात्मक धकेल, वासना–व्ययी प्रक्रिया तथा आवेगात्मक प्रतिक्रिया के परिवृत्ति के साथ सम्वन्ध के आधार पर ही सहज-चुनाव की प्रवृत्ति का भी निर्धारण होता है। सहज-चुनाव शब्द हमारे अर्थ को विलकुल भी ठीक प्रकट नही करता, क्योकि यह कुछ सीमा तक मनोवैज्ञानिक पहलू पर अधिक वल देता है, इसलिए हम प्रक्रिया शब्द का प्रयोग, जैसा कि हम पीछे भी करते आए ह, करेंगे। प्रक्रिया शब्द में न केवल प्राणी की क्रिया शीलता ही अभिप्रेत है प्रत्युत् परिवृत्ति के विपय (object) भी समवेत ह, क्योकि प्राणी-व्यवहार में प्राणी की प्रकृति और परिवृत्ति की प्रकृति दोनो ही समान रूप से प्रभावशाली होते हैं। इसमें न केवल प्राणी का शारीरिक विकास ही प्रत्युत् प्राणी का व्यवहार भी अन्तर्हित हो जाता है। डारविन सहज चुनाव की जो व्याख्या करता है वह वहुत कुछ निर्दोष अवश्य है किन्तु उसमें हमारी प्रक्रिया और जैन-म्यूटेशन तथा अधिक मनोवैज्ञानिक तत्वो का घपला कर दिया गया है। नर थ्रीस्पाईंड स्टिक्कल वैक का लाल पेट इसका वहुत ही स्पष्ट उदाहरण है—एक नर थ्रीस्पाइड की दूसरे थ्रीस्पाइड के लाल पेट को देखकर आक्रमण करने की प्रवृत्ति एक ऐसा व्यवहार है जिसमें मादा को आकर्पित करने की प्रवृत्ति, मादा का लाल रग के प्रति आकर्पण और प्रतिद्वदी का तुष्टि में वाधक होना सभी कुछ सम्मिलित है, फिर भी यह एक सहज प्रक्रिया है जो लाल पेट पर इस प्रकार केन्द्रित हो गई है कि उसे अन्य किसी पहलू की अपेक्षा ही नही है। यह प्रक्रिया-केन्द्रीकरण जहाँ स्टिक्कल वैक को शस्त्र-सज्जित होने के लिए प्रेरित करता है वहाँ इसमें अन्तर्निहित दूसरा प्रक्रिया-केन्द्रीकरण (मादा को आकर्पित करने की वासना) उसे और अधिक आकर्पक होने के लिए उत्तेजित करता हैं, और इस विकास में प्रक्रिया केवल Internal inspiration (अन्त प्रेरित वासना) के रूप में ही नही External stimuli (वाहय आवेगात्मक उकसाहट) के द्वारा भी समान रूप से निर्धारित होती है, इसे यदि इस प्रकार कहा जाए कि प्रक्रिया की प्रकृति या 'चुनाव' में अन्त प्रेरणा और वाहय उकसाहट की अन्विति कारण भूत है तो अधिक उपयुक्त होगा, और इस प्रक्रिया-केन्द्रीकरण को अस्तित्व रक्षा के उपकारक तत्वो का समूह न कहकर वासनात्मक धकेल और उसकी वासना-व्ययी क्रिया की प्रक्रियात्मक अन्वित कहा जा सकता हैं। इस अन्विती के दोनो पहलू प्रक्रिया-विकास के

लिए कितने आवश्यक है यह हम वनस्पतियो और पशुओ के प्रक्रिया यत्रो और प्रक्रियात्मक व्यवहारो की तुलना करके सहज ही देख सकते हैं। वनस्पतियो की शारीरिक निर्माण की प्रकृति ही कुछ इस प्रकार मे विकसित हुई है कि वे अपना भोजन वायु और पृथ्वी से ही प्राप्त कर सकते है और उनकी मैथुन-वासना की सन्तुष्टि वायु के द्वारा अथवा कृमियो या पक्षियो के द्वारा लाए गए हुए विरुद्ध लिंगी फूलो इत्यादि के रज वीर्य को प्राप्त करके ही हो जाती है। इसी प्रकार उनकी त्वचा और स्नायु तंतु भी बहुत कम चेतन है। यही कारण है कि उन्हे न तो चलने फिरने की आवश्यकता है और न गर्मी-सर्दी से बचाव की। किन्तु जिन वनस्पतियो को अपनी वासनाओ की सतुष्टि के लिए उपयुक्त वातावरण नही मिला, उन्हे अपने प्रक्रिया केन्द्रो को बदलना पडा, वे अपने आहार की प्राप्ति के लिए दूसरे विषय खोजने को बाध्य हुई। वनस्पतियो का जन्तुओ से भिन्न प्रक्रिया-विकास इसलिए हुआ हो सकता है कि उनकी शरीर-रचना ही इस प्रकार की थी या फिर इसलिए कि उनकी परिवृत्ति ही इस प्रकार की थी कि उनके प्रक्रिया-यत्र इस प्रकार से विकसित हो गए। स्पष्टत इसमें कारण प्रयास न होकर विकास ही हो सकता है। बर्गसा के विचार में जीवन का एक ही स्रोत है इसलिए वनस्पतियो और जन्तुओ के भिन्न विकास का कारण उनकी अस्तित्व-रक्षा की आवश्यकताएँ ही कही जा सकती है। उन्होने बहुत विस्तार से इसका वर्णन किया है और उनकी काव्यमयता ने उसे बहुत आकर्षक बना दिया है, किन्तु क्यो एक ही उत्स से उत्पन्न जीवन एक ही स्थान पर एक ही परिस्थिति में इतनी विभिन्न दिशाओ की ओर बढ गए—इसका सतोषजनक समाधान हम बर्गसा के पास से नही पा सके। यदि एक ही प्रकृति के दो व्यक्तियो को एक ही परिस्थिति मे रखा जाए तो कोई कारण नही कि वे भिन्न और इतने भिन्न क्यो हो।

यदि यह मान लिया जाए कि जीवन की उत्पत्ति प्रारभ से ही कुछ भिन्न रूपो में हुई होगी तो यह आपत्ति-जनक क्यो समझा जाए? यह ठीक है कि ऐसे अनेक जीव आज भी विद्यमान है जो वनस्पतियो और प्राणियो के अन्तर के केन्द्र बिन्दु पर है, किन्तु इससे कुछ मौलिक अन्तर नही पडता।

सम्भवत इसमें किसी को भी आपत्ति नही होगी कि जीवन पृथ्वी की अपनी प्रकृति और सूर्य की किरणो की शक्ति—पूर्ण उष्णता के एक विशेष रासायनिक सघर्षण का परिणाम होगा जो कि प्रोटोप्लास्मिक (Protoplasmic) रासायनिक तत्व के रूप मे उत्पन्न हो गया, इसलिए जीवन की वासना Push या Impetus पदार्थ की सकलयिता न होकर स्वय सकलन की परिणाम है, इसीलिए जीवन और सकलित रासायनिक

पदार्थ भी अभिन्न है,—इसे दूसरे शब्दो में ऐसे भी कह सकते है कि प्राणी परिवृत्ति का विशेष सकलन है, जिसमें पृथ्वी के तत्व, सूर्य की किरणें इत्यादि ही नही, सर्दी-गर्मी इत्यादि सभी सम्मिलित हैं, जो कि इस रसायनिक द्रव्य की प्रकृति का निर्धारण करते हैं—या स्वय उसमें एक तत्व है। यह स्वीकार कर लेने पर अव यह सुविधा से कहा जा सकता है कि प्रत्येक जीव परिवृत्ति के विशेष रासायनिक सकलन का ही परिणाम होगा और इस प्रकार वह प्रकृति में भी प्रत्येक अन्य सकलनो से भिन्न होगा। सम्भवत यही कारण है कि जीवन इतनी दिशाओ में विभक्त मिलता है। इसका यह अर्थ नही कि प्रत्येक प्राणी प्रारम्भ से ही कुछ आधार भूत भिन्नताओ के साथ उत्पन्न होकर आगे होनेवाले परिवर्तनो में विकसित होता रहा है। सम्भव है चावल पहले कुछ भिन्न रग के भिन्न प्रकार के भिन्न स्वाद के और भिन्न ऋतु में होते हो, किन्तु चावल और पीपल का उत्स एक ही हो, यह न तो अवश्यक ही है और न असभव ही। इसी प्रकार मच्छर और मनुष्य का एक ही उत्स से उत्पन्न होना या न होना समान रूप से सम्भाव्य है, तो भी मच्छर और मनुष्य का वहुत एक जैसी अथवा एक ही रासायनिक अन्विति से विकसित होना वहुत सम्भव है।

किन्तु जीवन का उत्स क्या है, यह हमारे लिए यहाँ उतना महत्वपूर्ण नही है, हमारे लिए महत्व इस वात का है कि परिवृत्ति प्राणी पर कहाँ तक प्रभाव डालती है अथवा वह कहाँ तक परिवृत्ति से निर्धारित होता है। इसके लिए हमारा सहज और सामान्य यही उत्तर हो सकता है कि जिस जाति के जैन्ज पर परिवृत्ति का जितना अधिक प्रभाव पडता है, अथवा जिस जाति के जेन् जितने अधिक वाह्य प्रभाव के लिए खुले हैं वह जाति उतनी ही अधिक परिवृत्ति से निर्धारित होती है, जैसा कि हम आगे और भी विस्तार से देखेंगे।

किन्तु एक वार जीवन के किसी भी रूप में अस्तित्व में आ जाने पर उसका परिवृत्ति के साथ प्रक्रियात्मक-सम्पर्क स्थापित होता है और एक के वाद दूसरी सन्तति में आवश्यकतानुसार कुछ न कुछ सम्भावित परिवर्तन होते रहते हैं—जिसके लिए हम पीछे कुछ लिख आए हैं और आगे एक निश्चित सैद्धान्तिक स्तर पर और भी देखेंगे। पीछे हमने देखा था कि कैसे प्रवृत्तिया विकसित होती हुई या तो प्राणी की शरीर रचना में, या फिर उसके स्नायविक प्रवन्ध की प्रकृति में अपना स्थान वनाकर व्यवहार के विकास का या परिवर्तन का कारण होती हैं। इसी प्रकार हमने शिक्षित और अशिक्षित चूहो का उदाहरण भी दिया था कि कैसे ३४ वी पीढी में परीक्षित

चूहो में काफी वडा अन्तर पाया गया था। जैन्ज मे जो अधिक इनर्ट Inert जेन भी है, वे यदि नही भी वदलते तो भी ऐलैल्ज़ (शीघ्र परिवर्तित अथवा प्रभावित होने वाले जेन) निरन्तर प्रभावित होते रहते है और वे इस प्रकार प्राणी की परिवृत्ति को उसके शारीरिक सस्थान में निहित करते रहते है। Somesthetic System (जर्म के अतिरिक्त जीवन-पदार्थ) जो इन क्रोमोसोम्ज़ (जैन्ज़ को धारण करने वाले लम्वे डव्वे जिनका स्नायुओ से भी सबध है) से विकसित होता है, इस प्रकार उत्ताराधिकार में प्रक्रिया को और परिवृत्ति को एक विशेष और भिन्न शारीरिक सस्थान के रूप में ग्रहण करता रहता है। इस प्रकार घनीभूत होते हुए प्रवृत्ति या प्रक्रिया और परिवृत्ति (भौतिक) के प्रभाव हमारे विकास में कारण वनते है।[1] किन्तु वर्गसा इस विकास में मनोवैज्ञानिक विकास को अधिक मुख्य समझता है, यद्यपि वह एक ऐसी जीवन की लहर की कल्पना करता है जो अभौतिक है और अविभाज्य है। इस प्रकार उसका मन भी एक सीमा तक अभौतिक और अविभाज्य है। वह कहता है—"इस प्रकार हम Eimer से तब सहमत नही हो सकते जब वह कहता है कि भौतिक और रासायनिक कारणो का सकलन ही इसके लिए काफी है। इस के विपरीत, हमने आँख के उदाहरण से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यदि जर्म से जर्म में सीधे विकास क्रम को स्वीकार किया जाए तो मनोवैज्ञानिक कारणो को स्वीकार करना आवश्यक हो जाता है। एक उत्तरोत्तर होता हुआ निश्चित दिशा की ओर परिवर्तन, जो निरन्तर पुजीभूत होता हुआ अधिक से अधिक उलझन पूर्ण यत्र को सम्भव करता है, निश्चित रूप से प्राणी के प्रयास का परिणाम है, क्योकि बाह्य परिस्थितियो से स्वतत्र यह प्रयास ही, जो कि एक जाति के सभी प्रतिनिधियो के लिए सामान्य है और जो उनके शरीर के बजाय जर्म में निहित है, और जो उनकी सन्तानो में और भी विकसित होता रहता है, विकास की ठीक व्याख्या दे सकता है।" इस प्रकार वर्गसा जीवन को एक मौलिक प्रवृत्ति या निरन्तर विकास शील मौलिक शक्ति के रूप में देखता है, जो अपनी अभिव्यक्ति या विकास के लिए पदार्थ को सहायक रूप में स्वीकार करती है। वह कहता है "यदि यह बात न होती तो विभिन्न दिशाओ में प्रगति शील प्राणियो में आँख का एक ही समान यत्र कैसे सम्भव होता ?" इसलिए, उसके अनुसार, "इससे यह परिणाम निकलता है कि विभिन्न दिशाओ में विकासशील

---

१ जर्म सेल और शरीर-विकास के सबध की ठीक व्याख्या के लिए तृतीय और चतुर्थ निबध देखें।

जीवन के आधार में एक मौलिक प्रवृत्ति या शक्ति की सम्भावना आवश्यक हो जाती है जो विकास की विभिन्न दिशाओ में उलझती हुई विभक्त हो गई है। ये विभिन्न जातियाँ इस मौलिक शक्ति-स्रोत मे ज्यो-ज्यो आगे वढती गई त्यो-त्यो इनकी विभिन्नताएँ भी वढती गई, किन्तु कुछ पहलुओ में उनमें अव भी समता पाई जा सकती है, और यह समता होनी अनिवार्य है, नही तो हमारी यह मौलिक शक्ति की कल्पना निराधार हो उठेगी।" किन्तु यह अभौतिक शक्ति-स्रोत[1] क्या है, उनकी Creative Evolution से यह समझना कठिन है, और यदि हम उनकी दूसरी पुस्तको की इसे समझने में सहायता लें तो यह कठिनाई और भी वढ जाएगी क्योकि Matter and Memory में वह एक प्रकार की आत्मा की कल्पना करते है, किन्तु वह आत्मा और Time and Free will का सहजमन (Intuition) इस समस्या को सुलझाने के वजाय और अधिक उलझा देते है। वह वास्तव में आत्मा की व्याख्या नवीन विज्ञान (१६ वी शताब्दि का) के और नवीन वैज्ञानिक दर्शन के प्रकाश में करता है, इससे वह न पूरी तरह से आत्मा रह जाती है और न भौतिक मन। फिर यदि वर्गसा की कल्पना को हम एक वार पूर्णरूप से स्वीकार भी कर लें तो प्रश्न किया जा सकता है कि क्यो सम्ता अन्यत्र विल्कुल न होकर केवल आँख तक ही सीमित रही ? फिर आख भी सव प्राणियो में समान नही है। Infusoria में आख के नाम पर केवल आँख का चिन्ह है, जिसे वर्गसा प्रकाश का प्रभाव स्वीकार करता है। यहाँ दो प्रश्न किये जा सकते है, प्रथम तो यह कि Infusoria की आँख का विकास, जो वाद की वात है, उन दो भिन्न श्रेणियो में एक समान ही कैसे हुआ जो अन्य पहलुओ में पहले एक समान रह कर भी वाद में भिन्न हो गए ? यह सचमुच ही आश्चर्य की वात है कि एक प्राणी जिन पहलुओ में पहले एक समान ही थे उनमें वे भिन्न हो जाएँ और उस भिन्नता की प्राप्ति के वाद उनमें विकसित होने वाली आँख समान हो। दूसरा और अधिक उपयुक्त प्रश्न यह है कि प्रकाश Infusoria (इन्फ्यूजोरिया) के एक विशेप स्थल पर ही आँख के चिन्ह वना सका, वे चिन्ह अन्यत्र क्यो नही वने ? फिर वे चिन्ह ही आगे आँख के रूप मे क्यो विकसित हुए ? यह सभव है कि प्राणी ने प्रयास भी किया हो किन्तु केवल प्रयास ही कैसे इस उलझन पूर्ण यत्र को सम्भव कर सका ? सम्भव है वर्ग सा का Common-Stuff से अभिप्राय Common Physiology (समान शारीरिक सस्थान) और

[1]Vital Impetus

इस प्रकार Common Heredity (समान उत्तराधिकार) से हो, जो जीवन के एक उत्स के कारण सम्भाव्य है। किन्तु हम शीघ्र ही देखेंगे कि इसके लिए भी कोई वास्तविक आधार नही है। वर्गसा स्वय ही एक श्वेत बिल्ली का उदाहरण देता है जिसकी आंखो में देखने की शक्ति नही रहती, और वह स्वीकार करता है कि इसका केवल शरीर वैज्ञानिक कारण ही समझा जा सकता है। तो हम नही समझते कि यही कारण सार्वभौमिक रूप से क्यो न स्वीकार किया जाए ? इफ्यूज़ोरिया के चक्षु-चिन्ह को प्रकाश का परिणाम स्वीकार कर लेना और मनुष्य या पक्षी की अत्यन्त विकसित आँख को किसी मनोवैज्ञानिक प्रयास से विकसित और जीवन की अन्तर्गत एकता से समान कहना ऐसा ही है जैसे कोई केवल प्रोटोप्लास्म (सजीव रासायनिक द्रव्य) के जीव अमोयवा को तो केवल रासायनिक सकलन का परिणाम कहे और मनुष्य में आत्मा की ज्योति के जगमगाने की बात करे। मोल्लुस्क और मनुष्य की दो सर्वथा भिन्न जातियो में विभाजित वह 'मौलिक जीवन शक्ति' यदि किसी मनोवैज्ञानिक कारण से विभाजित हुई है तो उसकी यह भिन्नता आँख पर भी प्रभाव शाली होनी ही चाहिए। इस प्रकार वर्गसा जिस सुविधा के लिए मनोवैज्ञानिक शक्ति और किसी रहस्यमय जीवन-स्रोत की कल्पना करता है वह समस्या को और भी अधिक उलझा देती है।

फिर, मोल्लुस्क और मनुष्य की आँख में आश्चर्य जनक समता दिखा-कर जो ज़ीवन की एक सार्वभौम योजना या सार्वभौम जीवन-शक्ति की सम्भावना को सिद्ध करते है वे आँखो की अनन्त विभिन्नताओ को भूल कर केवल एक उदाहरण चुन लाते हैं। ये सब आँखें एक ही ढग से कार्य करती है किन्तु एक ही ढग से बढती (Develop) नही होती और न एक ही समान विकसित होती हैं। रीढ धारियो की आँख में रेटिना (विशेष स्नायु-गुच्छ) और इसके प्रकाश ग्राहक कोष प्रकाश से भिन्न दिशा में उद्दिष्ट है जब कि मोल्लुस्क में प्रकाश की ओर अभिमुख है। यही गम्भीर अन्तर कुछ चित्र न ग्रहण करने वाली, अरीढधारी प्राणियो की आँखो में पाया जाता है। इसलिए वास्तव में यह जीवन की प्रकृति और परिवृत्ति है जो एक ही कार्य के लिए करोडो भिन्नताओ को जन्म देती है। असख्य रीढधारी और अरीढ-धारी प्राणियो में स्पष्ट रूप से बाह्य विषयो को देखना अथवा प्रकाश के प्रति प्रतिक्रिया शील होना एक सामान्य व्यापार है। कुछ प्राणियो में, जिनके हम आगे उदाहरण देंगे, यह किसी भी विशेष महत्व से रहित है, जब कि कुछेक में, यद्यपि ऐसे बहुत कम प्राणी होगे, यह व्यापार हानिकारक भी हो सकता है। किन्तु यह परिवृत्ति से लाभ उठाने में एक स्वभावत लाभप्रद व्यापार

है। कुछ प्राणियो में तो यह व्यापार केवल प्रकाश की उपस्थिति या अनु-पस्थिति की सूचना देने भर तक सीमित है, जब कि दूसरो में यह आकृति का पूर्ण चित्र ग्रहण करने मे समर्थ है, जो आकृति प्रकाश को प्रतिभासित करती है। यहाँ तक कि ये आखें विषय की दूरी, गति और रग तक को ठीक ठीक बता सकती है।

प्रकाश-ग्रहण करने की क्रिया अधिक विशेष और निर्धारित है। यह कल्पना की जा सकती है कि इस प्रक्रिया के विकास का केवल एक ही मार्ग था, कम से कम केवल एक ही सब से अच्छा ऐसा यन्त्र हो सकता था जो बाह्य प्रकाश विषयो का सवेद कर सके। तो भी वास्तव में प्राणियो की आँखो (Photoreceptors) की असख्य विभिन्नताए देखी जा सकती है। कुछ एक कोष वाले प्राणियो में शरीर विभिन्न कोषो में विभाजित न होने से, सारा का सारा ही प्रकाश-किरणो की उकसाहट के प्रति प्रतिक्रिया शील (sensitive) है, जब कि दूसरो में एक विशेष प्रकाश-सग्राहक बिन्दु प्रोटोप्लास्म में उत्पन्न हो गया है। किन्तु चित्र-ग्राहिणी आँखें भी, साधारण प्रकाश-ग्रहण के प्रकार की दृष्टि से भी, जिसके अनुसार ये कार्य करती है, किसी प्रकार से भी समान नही हैं। इस दृष्टि से सामान्यत चार प्रकार की आँखे देखी जा सकती है लैंजयुक्त, केवल सूक्ष्म सुराखो वाली, अनेक ट्यूबो वाली और गुम्बदाकार या गोल आँखें। पहली सामान्यत रीढ धारियो में, दूसरी नाॅटिलुस (विशेष जल जन्तु) में और तीसरी मक्खियो में पाई जा सकती है जब कि चौथी अनेक कृमियो में विभिन्न स्तरो पर देखी जा सकती हैं। (Simpson)

अकेले कृमियो में ही आँखों की असख्य विविधताए देखी जा सकती है। कुछ कृमियो में जहाँ केवल एक लैंज ही आँख के लिए पर्याप्त है वहां दूसरो में हजारो लैंज एक ही आंख में प्रयुक्त होते हैं। इतना ही नही, कुछ कृमियो में आश्चर्य जनक रूप से विकसित आँखो के साथ एक या अधिक ऐसी आँखें भी होती है जो नितान्त साधारण हैं और जिनसे वे कुछ भी काम नही लेते। ये आँखें सामान्यत उन्ही कृमियो के होती है जिनके नितान्त विकसित आँखें भी पाई जाती है। ये आँखें (ocelli) दूसरी आँखो से भिन्न दिशा की ओर उन्मुख होती हैं, कभी कभी सिर के ऊपर और कभी मस्तक के आगे की ओर, इसलिए ये वास्तविक आँखो से भिन्न दिशा में ही देखती हैं। कृमियो की वास्तविक आँखें सिर के दोनो (दाहिने—बाए) ओर

लगी होती है । सम्भवत ocelli दूसरी दिशाओ से (ऊपर या सामने से) आने वाले शत्रुओ को, प्रकाश और छाया के ज्ञान द्वारा, देखने मे सहायता देती है, किन्तु यह भी प्रयोगो से सिद्ध नही हो सका है । एक विशेष मछली की प्रत्येक भुजा पर एक आँख होती है । (Beaty)

इन सब उदाहरणो से स्पष्ट है कि बर्गसाँ जिस एकता की ओर इस प्रकार एक जीवन लहर (Elen vital) की कल्पना करता है उसमें कोई सत्यता नही है । अपने तर्क के प्रमाण में वह एक और उदाहरण देते हुए कहता है—यदि crystalline lens को अपसारित कर दिया जाए तो Iris (इरिस) स्वय ही पुन उसे उत्पन्न कर देती है, जब कि इरिस का कार्य और निर्माण लैंज से सर्वथा भिन्न हुआ है । उसके अनुसार, इस प्रकार भिन्न कारण से भिन्न कार्य का होना पुन किसी आन्तरिक और सप्राण प्रेरणा की ओर सकेत करता है। जब कि यह उदाहरण वास्तव में बर्गसा के तर्कों का दुहरा खडन करता है, क्योकि यहाँ यह प्रमाणित होता है कि मोल्लुस्क और मनुष्य की आँख का समानान्तर विकास—Law of coordinated development (दो घटनाओ का समानान्तर कारण नियम द्वारा होना अथवा हेतु हेतु मद् सबध) के अनुसार हुआ है वहाँ यह भी सिद्ध होता है कि यह उसी प्रकार शरीर-वैज्ञानिक प्रकृति का है जैसे नीली आँखो वाली सफेद बिल्ली का बहरी होना शरीर-वैज्ञानिक है। वास्तव में यह कार्य-कारण-सबध ही है जो कि इस प्रकार हेतु हेतुमद् सम्बन्ध-विकास के द्वारा बिल्कुल भिन्न दिशामें विकसित प्राणियो में भी समान आँख को सम्भव कर सका और बिल्कुल एक ही जाति Genera के प्राणियो में भिन्न आँखो का कारण बना । बर्गसा बिल्ली के जिस उदाहरण में Co-ordinated Development (हेतु हेतु मद्-प्रगति) को स्वीकार करता है उसमें भी वह हेतु हेतु मद् प्रक्रिया केवल रग के द्वारा कानो पर प्रभाव तक सीमित नही है, क्योकि, जैसा कि Tait बताता है, यह बहरापन केवल नर में ही पाया जाता है, मादा में नही, जिसका अर्थ है कि इस बहरे पन पर Sesxual determination का प्रभाव भी पडता है और इस प्रकार इसकी जडें बहुत गहरी हैं। इसी प्रकार, डारविन के अनुसार प्राणी का रग तक शरीर में गहराई तक प्रभाव डालता है । वह बताता है कि सफेद भेडो और सूअरो पर अनेक पौधे घातक प्रभाव डालते है । कुछ पौधो की जडो (Lachnanthes) को खा लेने पर इन सूअरो की हड्डियाँ और खुर पीले पड जाते हैं और गलने लगते हैं । खुर तो झड तक जाते है, जिससे सूअरो की अवश्यम्भावी मृत्यु हो

जाती है। किन्तु काले रंग के सूअरो पर वनस्पतियाँ ऐसा कोई प्रभाव नही डालती। इस उदाहरण से केवल यही प्रमाणित होता है कि ये सूअर अस्तित्व रक्षा की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के रहस्यमय प्रभाव से प्रेरित होकर भी इन जडो को खाना नही छोडते प्रत्युत् यह भी कि शरीर में प्रत्येक परिवर्तन प्राय ही दूसरे भागो पर भी अनिवार्य प्रभाव डालता है और इस प्रकार Coordinated development के सिद्धान्त को पुष्ट करता है।

वास्तव में इस तथ्य को कि यह शारीरिक प्रकृति और परिवृत्ति की सापेक्ष स्थिति ही है जो जेन म्यूटेशन की प्रकृति को निर्धारित करती है अथवा जो कुछ भी घटित होता है वह इसीलिए क्योकि वही उस समय घटित हो सकता था, समझना और धारण करना बहुत कठिन है, क्योकि हम अपनी विशेष मानसिक स्थिति के कारण प्रत्येक प्रक्रिया और घटना के उद्देश्य और योजना की कल्पना करते हैं। E.S. Russell थ्रीस्पाइंड स्टिक्कल बैक की आँखो के बारे में कहता है जहाँ तक मेरी कल्पना जाती है, स्टिक्कल-बैक अपना भोजन खोजने में अपनी आँखो से बहुत अधिक सहायता नही लेता, ये उसके सिर के प्राय ऊपर होती है और प्राय आते हुए शत्रु की सूचना देती है।" इसमे फिर यही बात प्रमाणित होती है कि न तो किसी अग विशेष का होना प्रयास पर निर्भर है और न जीवन की एकत्व योजना या उद्देश्य-विस्तार पर, यह केवल एक यान्त्रिक शरीर-योजना है जो अगो को, शरीर की, अन्तर प्रकृति को और प्राणी की वासना और आत्म-व्ययी प्रक्रिया को निर्धारित करता है।

इसका अर्थ यह नही कि हम प्रयत्न और मनोवैज्ञानिक पहलू से एक दम निषेध कर रहे है, पीछे प्रकिया की व्याख्या करते हुए हमने इसके महत्व को पूर्णरूप से स्वीकार किया है। जीवित और जड पदार्थ में निश्चित रूप से बहुत बडा अन्तर है, इसे कौन स्वीकार नही करेगा? और जीवन की सार्थकता यही है कि वह एक बार ज्यो ही अस्तित्व में आ जाता है, अपनी परिवृत्ति में से भोजन के रूप में कुछ ग्रहण करके आत्मसात करता है, उसकी कुछ वासनाए होती है, जिनके लिए वह प्रयास करता है और परिवृत्ति के विषयो परकेन्द्रित अपनी अभिरुचियोके अनुसार प्रक्रियाशील होताहै। उसकी ये प्रवृत्तिया और प्रक्रिया--केन्द्रीकरण एक सीमा तक अभौतिक भी कहा जा सकता है किन्तु ये उसी प्रकार अभौतिक है जैसे आग और पानी मे बनी भाफ की धकेल से इजन की क्रियाशीलता अभौतिक कही जा सकती है। किन्तु क्योकि

जीवन की यह क्रिया-शीलता स्वय उस रासायनिक द्रव्य की प्रकृति है जो प्राणी का शरीर है, अथवा यह कि क्योकि क्रिया प्राणी के शरीर में प्रयुक्त द्रव्यो के रासायनिक सघर्षण के कारण होने वाले शक्तिशाली विस्फोट की परिणाम है, इसलिए इसकी प्रत्येक प्रक्रियात्मकता जहाँ भीतरी धकेल को निकास देती है वहाँ इसमें कुछ अनिवार्य परिवर्तनो को भी सम्भव करती है। यह विस्फोट प्राणी में क्रमश वासना, क्रियाशीलता और प्रक्रियात्मक व्यय को जन्म देता है। यदि इस विस्फोट से उत्पन्न वासना और तज्जन्य क्रियाशीलता को निकास का साधन न मिले तो प्राणी के लिए जीना ही कठिन हो जाए, इसी से वह असीम व्याकुलता से अपनी वासनात्मक धकेल से प्रेरित हुआ अपने निकास का साधन खोजता है। और यही क्रिया शीलता तथा अनुक्रम में प्राप्त प्रक्रियात्मक व्यवहार विभिन्न अगो के विकास का मनोवैज्ञानिक कारण कहा जा सकता है। जब एक वासना है, अवश्य ही उसकी कोई अभिव्यक्ति भी होगी ही, जब मैथुन वासना है तव उसकी अभिव्यक्ति के प्रक्रियात्मक अग भी होगे ही। किन्तु हम एसा कहने में इस प्रकार जल्दी नही करते, नही तो अमोयवा भी बिना किसी अंग के ही अपनी वासनाओ की सन्तुष्टि करता ही है। शायद कहा जाए कि बडी वासना के लिए बडी तृप्ति चाहिए, किन्तु यह बडी वासना आई कहाँ से ? क्या यहाँ विकास की मूल प्रेरणा, जो स्वय जीवन पदार्थ की अन्तर्निहित प्रकृति ही है, इन दोनो का मूल स्रोत नही कही जा सकता ?

इन वासनाओ के अतिरिक्त भी ऐसा बहुत कुछ है जिसे हम प्रक्रियात्मक योजना के अन्तरगत रख सकते है किन्तु जो सर्वथा यान्त्रिक है, इसे हम पीछे Reflexive behavior के प्रकरण में देख आए हैं। इस प्रकार यह विकास और प्रक्रिया इतने विभिन्न स्तरो पर और इतने विभिन्त तत्वो से निर्धारित होती है कि हम सहज ही एक को देखते हुए दूसरे के महत्व को भूल जाते है। पालतू मुर्गो के पँखो की अस्थिया जगली मुर्गे के पखो की अस्थियो से शरीर के शेष पिजर के अनुपात में छोटी होती है जब कि पैर और टागो की अस्थिया अधिक भारी और सशक्त होती हैं, इसे हम परिवृत्ति के द्वारा यान्त्रिक ढग से निर्धारित जेनेटिक विकास—व्यवहार का परिणाम कह सकते हैं ? जब कि श्वेत बिल्ली के बहरेपन का कारण शरीर वैज्ञानिक सयोजन को कहा जा सकता है।

किन्तु वासना या तज्जन्य प्रक्रिया से उत्पन्न परिवर्तन, उन्हे परिवर्तन ही कहा जाए तो, मौलिक और महत्वपूर्ण नही होते, ये केवल प्रक्रिया—केन्द्रो में आवश्यकतानुसार सामान्यव्यवस्थात्मक परिवर्तन होते हैं। जैसा कि हम पिछले अध्याय में भी देख आए हैं, ये परिवर्तन जेन में उस प्रकार 'निहित' नही होते जैसे म्यूटेशन-जन्य अन्तर, प्रत्युत ये उनसे एक दम भिन्न है। जहां तक हेतुहेतु मद् अभिवृद्धि (Law of co-ordinated development) का सबंध है, वह पूर्णत जेन की प्रकृति में केन्द्रित योजना उद्घाटन भर होता है। इन सबको हम और भी विस्तार से अगले अध्यायमें देखेंगे।

REFERENCES

1. *Beaty John Y* — Nature is Stranger than Fiction 1943 George G Harrap and Co., London
2. *Bergson* — Creative Evolution, 1944 2nd Impression The Modern Library, New York
3. *Do* — Matter and Memory 6th Impression 1950, Library of Philosophy, London
4. *Do* — Time and Free Will 6th Impression 1950, Library of Philosophy, London
5. *Cheesman* — Every Day Doings of Insects 1st Ed 1924, Georg G Harrap and Co, London
6. *Darwin* — Origin of Species 1948 3rd Impression, Thinker's Library, London
7. *Hebb D O* — Organization of Behavior, 1949 New York
8. *Macdougal* — Psychology, sixth Impression 1933, London
9. *Madowall* — General Physiology and Bio Chemistry, 3rd Ed. 1946, Johan Murray, London
10. *Morgon T and Stillar* — Physiological Psychology 2nd Edition MacGraw Hill Co New York
11. *Murphy* — General Psychology, 2nd Ed 1938 New York
12. *Russell E S* — Behaviour of Animals 2nd Ed 1938, Edward Arnold and Co, London
13. *Sympson* — Meaning of Evolution, 1st Ed 1949, Yale University Press
14. *Tinbergen* — The Study of Instinct 1st Ed 1951 Oxford University Press London

३—जेनेटिक्स विकास की यांत्रिक प्रक्रिया

पिछले अध्याय में हमने विकास का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करन का प्रयास किया। यह स्पष्ट है कि हमारी स्थापना और निर्णयो पर कुछ आपत्तियाँ उठाई जा सकती है, किन्तु फिर भी हम इस विषय को काफी दूर तक समझने में सफल हो सके हैं। इसमें एक मुख्य वाधा यह भी थी कि इस ओर वैज्ञानिको का अभी पर्याप्त ध्यान नही गया, प्रवृत्ति का अध्ययन यद्यपि काफी प्रामाणिक स्तर पर हो रहा है किन्तु उसका विकास के साथ क्या संबंध है, यह विषय अभी तक अध्ययन का विषय नही बनाया गया।

वहाँ हमने देखा था कि प्राणी की कोई भी प्रक्रिया या तो यान्त्रिक व्यापार मात्र है अथवा वासना की धकेल (Appetitive Push) के उपभोग (consumption) का वाच्यता जन्य व्यवहार। किन्तु इस व्यापार या व्यवहार के निर्धारण में परिवृत्ति का भी वहुत वडा हाथ है क्योकि प्राणी की प्रक्रिया के विषय परिवृत्ति से ही उपलब्ध होते है।[१] किन्तु परिवृत्ति न तो क्रिया की धातृ है और न विधायक, वह केवल उसके क्रियान्वित होने के उपकरण जुटाती है। इससे सुरक्षात्मक व्यवहार (Adaptive-Behavior) प्राणी के व्यवहार का प्रेरक और प्रत्यक्ष निर्धारक न होकर केवल परोक्ष रूप से संशोधक (Modifier) है। जहाँ तक परिवृत्ति के अधिक उत्तम उपयोग का संबंध है, वहाँ भी हम प्राणी की 'मन स्थिति' या वासना को ही उसका पदार्थ कह सकते है, परिवृत्ति केवल उसकी आत्मव्ययी प्रक्रिया की आकृति—उसके घटित होने के प्रकार का एक सीमा तक निर्धारण मात्र करती है, यद्यपि अधिक उत्तम उपयोग का कौशल इस दिशा या प्रकार से ही अधिक संबंध रखता है।

किन्तु इस अध्याय में हम विकास के उन मूल कारणो को समझने का प्रयास करेंगे जो स्वय जीवन-पदार्थ की प्रकृति और उसके परिवर्तन से संबंध

---

[१]यश देव 'शल्य'—पन्त का काव्य और युग 1951, किताब महल, इलाहाबाद। इस पुस्तक में हमने परिवृत्ति को वहुत अधिक महत्व देते हुए संबंध का विवेचन किया है।

रखते है, जब कि अगले अध्याय में वासनात्मक प्रक्रिया और मनस्थिति के मूलतत्वो के विवेचन का प्रयास किया जाएगा ।

'विकास' मे हम पहले से ही एक ऐतिहासिक प्रक्रिया और क्रम (chronological order) को स्वीकार कर चलते है। हम यह स्वीकार करते है कि प्रतीयमान भिन्नताओ का कोई एक स्रोत है और इस शृखलता में कोई नियम और शृखला विद्यमान है जिसका एक इतिहास है। मनुष्य प्रारभ से ही विभिन्न जीवो की आश्चर्य जनक भिन्नता और समता को देखता और अनुभव करता आया है, जैसाकि "धर्मोहि तेषामधिको विशेष, धर्मेण-हीना पशुभि समाना" से भी स्पष्ट है। किन्तु इस 'ज्ञान' में किसी प्रकार की वैज्ञानिक दृष्टि न थी, जिसका उद्भव १९वी शताब्दि में हुआ। उस युग में केवल मनुष्य और पशु इसी अर्थ में समान समझे जाते थे कि दोनो समान रूप से पीड़ा या सुख अनुभव करते है, किन्तु मनुष्य ईश्वर की ओर से ही वर प्राप्त कर अवतीर्ण होता था, जैसा कि "का जाने कछु पुन्न प्रगटे, मानुसा अवतार" से प्रकट होता है । इन लम्बे युगो में बड़ी श्रद्धा और आश्वस्तता से यह स्वीकार किया जाता रहा कि ससार ईश्वर की कृति है और मनुष्य को ईश्वर ने विशेष रूप से इस सृष्टि रचना के उद्देश्य को समझने के लिए बनाया है। यह आश्चर्य की बात है कि एक भी ऐसा दार्शनिक इन हजारों वर्षों की अथाह परम्परा में नही उत्पन्न हुआ जो जीवन में ऐतिहासिक शृखला को देख सकता। सौभाग्य से १८वी शताब्दि के उत्तरार्ध में (1744--1829) लामार्क ने इस ओर महत्वपूर्ण कदम उठाया। लामार्क यद्यपि ऐतिहासिक क्रम को अच्छी प्रकार से समझता था किन्तु उस पर उस युग का प्रभाव होना भी आवश्यक था। दूसरे, उस समय जेनेटिक्स, आकृति विज्ञान (Morphology) शिलाओ के नीचे दबे अवशेष या फोस्सिल (Fossile) तथा शरीर विज्ञान physiology — Anatomy के तथ्यो का उतनी दूर तक ज्ञान नही था। वह समझता था कि मनुष्य इस विकास-प्रक्रिया की चरम् सीमा है और जो शृखला मानव की ओर विकास शृखल से टूटकर दूसरी ओर बढ गई है इसका कारण जीवन की सामयिक परिवृत्ति की बाध्यता है। वह समझता था कि सामयिक परिवृत्ति प्राणी के व्यवहारो का और उसके तथा अन्य स्रोतो के द्वारा विकास का निर्धारण करती है। उसके अनुसार परिवृत्ति के उपभोग के लिए उचित प्रवृत्तियो की आवश्यकता है और प्रवृत्तियो के प्रयोग और अप्रयोग Use and Disuse के द्वारा यह प्राणी की

आकृति और प्रकृति को निर्धारित करती हैं। डारविन लामार्क से बहुत आगे बढ़ा और उसने प्राकृतिक चुनाव, उत्तराधिकार का प्राणी की शरीर रचना पर सीधा प्रभाव (परिवृत्ति से निर्धारित होकर) तथा प्रयोग और अप्रयोग को विकास के कारण रूप मे अपने प्राणी—व्यवहार के अध्ययन के बाद प्रस्तुत किया।

इससे जीव-विज्ञान लामार्क और डारविन का बहुत आभारी रहेगा, किन्तु वे दोनो अपने युग की सीमाओ से बँधे थे, इसलिए उन्होने जो कुछ कहा, आज उसका ऐतिहासिक महत्व ही अधिक है। आज प्राणियो की भिन्नता और एकता के कुछ दूसरे ही स्रोत समझे जाते है। यह तो स्पष्ट ही है कि भिन्नता आश्चर्य जनक रूप से बहुत अधिक है—एक ओर विशाल-काय हाथी और ह्वेल मछलियाँ है तो दूसरी ओर अनुवीक्षण यत्र से भी कठिनाई से दीख पडनेवाले कीटाणु। इसी प्रकार प्राणी अपने व्यवहारो और जीवन के प्रकारो में भी असीम भिन्नता लिए हुए हैं। पिछली, लगभग अढाई शताब्दियो से आकृति वैज्ञानिक (Morphologist) और शल्य वैज्ञानिक (Anatomist) वर्तमान जीवो का अध्ययन कर उनके शारीरिक निर्माण के नियमो को जानने का प्रयास करते रहे हैं और उनकी शिला-अवशेषो से तुलना करते रहे हैं, किन्तु अभी तक उसकी कोई सीमा दिखाई नही पडती। शिला अवशेषो को अध्ययन करने वाले वैज्ञानिको (Paleontologists) ने अथक परिश्रम से शिलाओ के नीचे दबे-छिपे या अन्यत्र भीषण वनो में पडे करोडो वर्ष पुराने जीवो की जातियो को खोजा है, किन्तु इनका समन्वय डारविन से पूर्व बिलकुल भी नही हो सका था और इनके समन्वय का रहस्य जेनेटिक्स के वर्तमान अध्ययन से पूर्व, जिसका प्रवर्तन मुख्यत मैंडल (Mendal) से हुआ, नही जाना जा सका था।

डारविन ने जीव विज्ञान में एक अभूतपूर्व और अकल्पनीय रूप मे महत्वपूर्ण युग का प्रारम्भ करते हुए जिस अन्तर्निहित एकसूत्रता की ओर सकेत किया और जिस योग्यता से उसको प्रमाणित किया, वह उसे सभी युगो के महानतम और प्रथम श्रेणी के प्रतिभाशाली व्यक्तियो में प्रतिष्ठित कर सकता है। उसने बडी योग्यता से कुछ निश्चित नियमो और कार्यकारण सबधो की स्थापना और व्याख्या की और दिखाया कि यह दृश्यमान भिन्नता किसी ईश्वरीय सनक की परिणाम नही है, इसमें एक निश्चित कारण-कार्य सबध शृंखला है। (Simpson)

जीवित पदार्थ की सबसे बड़ी विशेषता है—पुनरुत्पादन, आत्मोपादन के रूप में विकास (Development) और परिवृत्ति से भोजन के रूप में (भोजन विस्तृत अर्थ में) कुछ ग्रहण कर उसे आत्मसात करने की शक्ति। पुनरुत्पादन की प्रक्रिया एक बड़ी विचित्र प्रक्रिया है, क्योंकि उत्पादक तत्व या पदार्थ (Germ) परिवृत्ति से एकदम अपरिवर्तनशील है, इसलिए पुनरुत्पादन में उसका झुकाव ठीक उत्पादक की प्रतिलिपि प्रस्तुत करना होता है। यदि कहा जाय कि परिवर्तन उस पर ठूसा जाता है, तो भी अत्युक्ति न होगी। इसके विपरीत अभिवृद्धि बाह्य परिवृत्ति के समीकरण से ही सभव होती है, जिससे उसकी प्रकृति का परिवृत्ति पर निर्भर होना अनिवार्य हो उठता है। इतना ही नही, जर्म भी पुनरुत्पादन में उसका आश्रय लेता है, नही तो जर्म-सेलकी द्विधाविभक्ति कभी सभव ही न हो। आत्मजनन या पुनरुत्पादन के इस विज्ञान को जेनटिक्स कहते हैं और इस विज्ञान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसने आत्मोपादक तत्वो की आणविकता को, इसके मौलिक घटको को, जिन्हे जेन कहते हैं, खोज निकाला है। उस रासायनिक प्रक्रिया को, जिसके द्वारा जेन अपनी प्रतिकृति—सन्तानो का जनन और उनकी प्रकृति का निर्धारण करता है, जानने में अभी तक जेनेटिक्स समर्थ नही हो सका है, किन्तु फिर भी सर्वमान्य रूप से उसके विषय में जितना ज्ञान है, Dobzhansky उसे इस प्रकार चित्रित करता है—

क + ख = २ क + ग

यहाँ 'क' जब कि जेन का प्रतीक है 'ख' समीकृत परिवृत्ति का। जेन कुछ निश्चित समय के बाद द्विधाविभक्त हो जाता है और २"क" का रूप धारण कर लेता है, जब कि अतिरिक्त उपज (By Product) के रूप में यह गया शारीरिक कोषो को जन्म देता है। यद्यपि यह मात्र प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है, किन्तु इससे जेन-आत्मजनन और अतिरिक्त उपज के रूप में शारीरिक सेल या (Soma cells) के जनन की प्रकृति को समझने में बहुत अधिक सहायता मिलती है, क्योंकि यह एक महत्वपूर्ण तथ्य को चित्रित करता है कि जेन सदैव आत्म-जनन परिवृत्ति से अप्रभावित रह कर कैसे करता है। जेन कोष के घटक तत्वो में सबसे अधिक सक्रिय और मौलिक रासायनिक कण है। जेन प्रत्येक अनुगामी कोष विभाजन के अन्तर काल में आत्म-जनन की एक निश्चित प्रक्रिया में से बीतते हैं, जो कि अन्तत पूरे कोष विभाजन का रूप ग्रहण करती है। वही जेन न

केवल अभिवर्धमान (Developing) शरीर के प्रत्येक शरीर सेल (Some cell) को जन्म देते है प्रत्युत अक्षुण्ण रूप से सन्तान में हस्तान्तरित भी किये जाते हैं। यह परिवर्तन और अपरिवर्तन का एकत्र मिलन जेन की विचित्र रासायनिक विशेपता के कारण ही सम्भव हो सका है। प्राय शून्य अपवादो के अतिरिक्त जेन अपनी अपरिवर्तित प्रतिकृति को ही जन्म देते है। यह विशेपता जीवन पदार्थ को अपनी एकता और अविच्छिन्नता को वनाय रखने की शक्ति प्रदान करती है और इससे न केवल वह परिवृत्ति के थपेडो को सहन करने मे ही समर्थ होता है प्रत्युत उसे वदलने में भी कभी कभी सफल होता है। आत्म-जनन जीवन का आधारभूत गुण है, इससे कहा जा सकता है कि पृथ्वी पर प्रथम आत्मोपादक अणु का उद्‌भव जीवन का प्रथम सदेश था। (Muller)

जैसा कि क + ख = २क + ग से स्पष्ट है, जेन के आत्म-जनन में उस की एकता भग न होने पर भी परिवृत्ति उसकी अभिव्यक्ति—शरीर की प्रकृति (Phenotype)—में वहुत अधिक प्रभावशाली और निर्णायक हो सकती है। जो व्यक्ति एक जैसे दिखाई पडते हैं, उन्होने अपने पुनरुत्पादक पदार्थ में कुछ ऐसे तत्व प्राप्त किये हैं जो परिवृत्ति के प्रभाव को समान रूप से ग्रहण करते हैं, अथवा जो एक विशेप परिवृत्ति में एक विशेप शरीर-स्थिति (Phenotype) को जन्म देते है। इस प्रकार दो ऐसे व्यक्ति, जिन्होने पुरुत्पादक पदार्थ में समान तत्व प्राप्त किये हैं ठीक एक ही परिवृत्ति में एक ही जैसा शारीरिक विकास करेगे, यहाँ तक कि उनका मानसिक विकास तक एक सा होगा। अनेक वार तो ऐसा देखा गया है कि दो युग्म (twin) भाई सर्वथा भिन्न परिवृत्ति में वहुत कम वदलते है और रोगी तक एक साथ होते है। वर्मिघम विश्व विद्यालय के शिशु-जन्म-सवधी विषयो के डाक्टर प्रो० डेमहिल्डा लायड ने तो दो युग्म लडकियो की अन्तर्यामिता का भी एक उदाहरण दिया है। उन्होने वताया कि एक वार एक कक्षा की युग्म वहनों को एक विषय की आधी-आधी पुस्तक दी गई। इससे उन्हे वे वातें भी ज्ञात हो गई जो उन्होने व्यक्तिश नही पढी थी। अध्यापिका को सन्देह हुआ कि उन्होने एक दूसरे की नकल की है, किन्तु वाद में उसका यह भ्रम निवारण कर दिया गया, क्योंकि दोनों दूर दूर वैठी थी, यह सिद्ध हो गया* । किन्तु यह या ऐसे ही उदाहरण अस्पष्ट है, इससे हम यहाँ इन पर विचार नही करना

हिन्दुस्तान (दिल्ली, अक्तूबर २२, १९५२।

चाहते। किन्तु यह एक प्रयोग सम्मत तथ्य है कि एक ही जेनोटाइप के दो व्यक्तियो में एक ही परिवृत्ति में प्राय कोई अन्तर नही होगा, किन्तु दो भिन्न परिवृत्तियो में उनकी शरीर-प्रकृति में तदनुकूल कुछ अन्तर होगा और इस प्रकार मूलत एक ही पदार्थ दो कुछ भिन्न आकृतियो मे अपनी अभिव्यक्ति करेगा। जेन जीवन का मूल बीज होने से शरीर की सम्पूर्ण अभिवृद्धि की दिशा का इस प्रकार निर्धारण करते है जो कि उनमें सिमटे तथ्य का ही उद्घाटन है। परिवृत्ति के प्रभाव के लिए यदि यह भी कहा जाय कि विभिन्न परिवृत्तियो में जेन की विभिन्न अभिव्यक्तिया उसमे पहले से ही निहित रहती है, तो यह अनुपयुक्त न होगा, अब यह परिवृत्ति पर निर्भर है कि वह असीम सभावनाओ में से किसे अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करती है। इसलिए उत्तराधिकार व्यक्ति का अपने जनक के समान शारीरिक प्रकृति प्राप्त करना नही है प्रत्युत वह "प्रवृति" प्राप्त करना है जो अपने जनक के समान एक विशेप (अथवा किसी भी) सभावित परिवृति में सन्तान में एक सभावित अभिव्यक्ति को क्रियान्वित करती है। (sinnot and Dunn) यदि एक पौधा उत्तराधिकार में ऐसे बीज प्राप्त करता है जिनकी अभिव्यक्ति (phenotype) फुगस (एक घातक कीटाणु) के जीवन के लिए अनिवार्य है, तो पौधे के लिये परिवृत्ति में इस कीटाणु की उपस्थिति उन विशेष गुणो के विकास के लिये अनिवार्य हो उठेगी जिनका विकास उसके पूर्वजो में उस कृमि के कारण हुआ था। जैसा कि हम आगे देखेंगे, कुछ कीटाणुओ के लिए तो वीरुस आदि घातक कीटाणु परिवृत्ति में केवल इसलिए अनिवार्य हो उठते है क्योकि वे उनके उन पूर्णजो की परिवृत्ति में विद्यमान थे जिनके लिए यह घातक थे और जिनके प्रतिरोध के लिए उन्होने अपनी सन्तानो को भिन्न गुणो के साथ 'उत्पन्न किया'। परिवृत्ति पर इतनी निर्भता यद्यपि उन जीवो और पौधो में दृष्टि गोचर नही होगी जो काफी स्थिर और सुनिश्चित परिवृत्ति में रहते है, किन्तु उनमें भी यह बात आसानी से देखी जा सकती है, यदि परिवृत्ति में सामान्य सा अन्तर लाया जाए तो। जब मक्की खेतो में बोई जाती है तो उसका रग सूर्य से लाल हो जाता है, किन्तु यदि उसे धूप न लगने दी जाए तो उसमें लाल रग की अभिव्यक्ति नही होती। इस प्रकार मक्की लाल रग उत्तराधिकार में प्राप्त करते हुए भी सूर्य के बिना उसकी अभिव्यक्ति नहीं कर पाती। इसी प्रकार खरगोश की एक जाति, हिमालयन खरगोश, जिनमें कि गहरी भूरी आँखें और कान, पैर तथा पूछ काले और शेष शरीर श्वेत होता है अपनी

स्थान पर काले और काले के स्थान पर श्वेत उत्पन्न होंगे। सामान्यत यह समझा जाता है कि रग और दूसरे गुण भी ठीक उसी प्रकार उत्तराधिकार में प्राप्त किए जाते हैं जैसे वे जनक में किसी विशेष परिवृत्ति में विद्यामान होते हैं, किन्तु यह धारणा एकदम गलत है। वास्तविकता यह है कि जनक सन्तानो को वह पदार्थ उत्तराधिकार में देते हैं जिसमें अपनी कुछ विशेष सभावनाए हैं और जो विभिन्न परिवृत्तियो में उसी प्रकार क्रियान्वित होती हैं जैसे कि उनमें उनके जनक की होती। यदि हम उत्तराधिकार के निर्णायक पदार्थ और परिवृत्ति के सबन्ध की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देना चाहे तो वह इस प्रकार होगा —

$$क + ख_1 = २क + ग_1$$
$$क + ख_2 = २क + ग_2$$
$$क + ख_3 = २क + ग_3$$

इस प्रकार यदि जेन की परिवृत्ति वदल भी दी जाती है तो भी स्वय जेन मे कोई परिवर्तन नही होता, अन्तर केवल उसकी अभिव्यक्ति में पडता है। जेन वडी वफादारी से अपनी प्रतिलिपियाँ वनाता रहता है। किन्तु यदि परिवृत्ति में परिवर्तन इस प्रकार का हो कि जेन अपनी प्रतिलिपि ही नही वना पाए तो उसकी पुनर्जनन की क्रिया रुक जाएगी और अतिरिक्त उपज (By-produt) के रूप में प्राप्त होने वाले सोमा सेल (कोष) भी नही उत्पन्न होंगे। जेन वहुत कम ही अपनी परिवर्तित प्रतिलिपि (वह भी अल्पतम मात्रा में) का निर्माण करता है। जेन की इस स्थिरता के विपरीत इसकी परिणति (Phenotype) विभिन्न परिवृत्तियो में तदनुसार वदलती रहती है— ग१, ग२, ग३,. ....।

किन्तु शारीरिक प्रकृति में यह परिवर्तन स्थायी नही होता, क्योंकि शरीर के उत्पादक जेन नही वदले होते, अत इसे वास्तविक विकास नही कहा जा सकता, वास्तविक विकास तो तभी होता है जब जेन अपनी परिवर्तित प्रतिलिपि उत्पन्न करता है—अर्थात जनक अपने से भिन्न जेनोटाइप (जेन—प्रकृति के या समूह के) की सन्तान्त को उत्पन्न करते हैं; यह भिन्नता मूल में ही होने से एक दम स्थायी होती है। किन्तु यह परिवर्तन भी अपने अस्तित्व की सूचना अपनी अभिव्यक्ति में परिवर्तन के रूप में ही देता है। जेनोटाइप में

यह परिवर्तन परिवृत्ति से उस प्रकार प्रभावित नही होता जैसे शरीर में परि-वर्तन, इस प्रभाव को सुदीर्घ अतीत से विभिन्न परिवृत्तिया और जेनोटाइप की अपनी प्रकृति के विविध सकलनो की एक अन्विति कहा जा सकता है। किन्तु प्राणी की मृत्यु या जीवन, परिवृत्ति मे उसकी उपयुक्तता या अनुपयुक्तता उसके शरीर की प्रकृति पर निर्भर करती है, जिसका विकास अन्तत जेनो टाइप की प्रकृति पर ही आधृत है। मेरे विचार में परिवृत्ति के परिवर्तन मे प्रेरित फिनोटाइप (शरीर) मे परिवर्तन किसी प्रकार के सुविधात्मक चुनाव (Adaptive selection) के रूप में नही होता, वल्कि यह उसी प्रकार जेन की रासायनिक प्रकृति और परिवृत्ति की प्रकृति के सम्मिश्रण का परिणाम होता है जैसे कोई भी रासायनिक द्रव्य विभिन्न द्रव्यो के साथ सम्मिश्रण मे विभिन्न अभिव्यक्तियाँ करता है। इसका अर्थ यह नही कि इससे प्राणी की Adaptability--unadaptability में कुछ अन्तर 'नही पडता, सभव है रग में Phenotypic फिनोटाप सवधी परिवर्तन विशेष परिवृत्ति मे प्राणी के लिए लाभदायक प्रमाणित हो सके, किन्तु यह केवल सभावित है और फिर यह इसका कारण तो कभी भी नही है। फिनोटाइप में यह प्रभावात्मक परिवर्तन यद्यपि जेनोटाइप मे परिवर्तन का सूचक नही है, किन्तु यह परिवर्तन जेनोटाइप की प्रकृति में निहित सम्भावित अभिव्यक्ति की प्राप्ति का सूचक अवश्य है और इस प्रकार वह एक ऐसे प्रति-- प्रक्रिया 'यत्र' Reaction Norm का विधायक वनता है जो परिवृत्ति के प्रति एक विशेप प्रति–प्रकियात्मक रुख अपनाता है, जिसका अपना कुछ विशेषसुरक्षात्मक मूल्य (survival value) होता है। जेनोटाइप, फिनो टाइप और परिवृत्ति के इन सापेक्ष सबधो को यदि हम प्रतीको में उपस्थित करें तो यह कुछ इस प्रकार होगा

$$\text{क}_{\text{य}} + \text{ख}_{\text{र}} = \text{ग}_{\text{पर}} + \text{स} \ (\text{प—अ})$$

यहाँ क जबकि जेनका प्रतीक है तो ख परिवृत्तिका, तथा य औरर 'क' तथा 'ख' की अपनी अपनी प्रकृति के। य प्रकृति का र प्रकृति के ख के योग से जिस प्रति –प्रक्रियात्मक यत्र या फिनोटाइप को जन्म देगा वह न केवल परिवृत्ति की प्रकृति र से युक्त ही होगा प्रत्युत् जेन् की य प्रकृति से भी निर्धारित होगा, और यह प्रति–प्रक्रियात्मक यत्र य र एक विशेष सुरक्षात्मक मूल्य (प–अ) से सयुक्त होगा ,अर्थात् प्राणी की सुरक्षा उसकी अपनी प्रकृति और शक्ति तथा परिवृत्ति

× प्रति–प्रक्रियात्मक = प्रतिक्रियात्मक + प्रक्रियात्मक

की सापेक्षता से निर्धारित होगी। अब यह प (परिवृत्ति) के सापेक्ष मूल्य पर निर्भर है कि वह सत्ताशील प्राणी के अस्तित्व का क्या मूल्य निर्णय करता है।–अ परिवृत्ति के सभावित अपकारकत्व का प्रतीक है।

विभिन्न प्रकार की फिनोटाइप का सुरक्षात्मक मूल्य Survival value एक ही जेनोटाइप होने पर भी सर्वथा भिन्न हो सकता है, इस प्रकार जैसे जैसे र में अन्तर आता जाएगा वैसे वैसे य और उसमे ग में भी अन्तर पडेगा जो अन्तत स के लिए प के मूल्य को घटायेगा। जो फिनोटाइप उस परिवृत्ति में अभिवृद्धि का अवसर प्राप्त करता है जो उसके पूर्वजो की अभिवृद्धि के समय वर्तमान रही है उसकी अवस्थिति और उपयुक्तता अपेक्षाकृत अधिक निश्चित होगी - अर्थात उसके लिए प का मूल्य—अ मे अधिक हो जाएगा, जबकि ऐसी परिवृत्ति की, जो उसके पूर्वजो के जीवन में सामान्य नही रही, उपयुक्तता और अवस्थिति के लिए पोपक होने की बहुत कम सभावना है। प्रत्येक प्रति-प्रक्रिया—यत्र परिवृत्ति के उपयुक्त या अनुपयुक्त ढलने की सहस्रो संभावनाए रखता है, किन्तु उपयुक्त रूप में ढलने की सभावनाए अनुपयुक्त रुप से ढलने की सभावनाओ से कही कम रहती है। जिससे स्पष्ट है कि ये परिवर्तन कभी इच्छित (मानसिक) न हो कर एक दम यांत्रिक होते हैं, किन्तु ये परिवर्तन, चाहे उपयुक्त हो या अनुपयक्त, जनोटाइप पर कोई प्रभाव नही डालते। जेनोटाइप ऐसे किसी भी प्रकार के फिनोटाइप की अपेक्षा के विना, जिसे वह विभिन्न परिवृत्तियो में विभिन्न रूपो में जन्म देता है, अपरिवर्तित आत्म-जनन की प्रक्रिया को जारी रखता है।

जो प्राणी अपनी परिवृत्ति में उपयुक्ततम है और जिसकी प्रवृत्तियां उसके अनुसार ढलकर स्थिर हो चुकी हैं, आवश्यक है कि परिवृत्ति में परिवर्तन उसके लिए घातक ही होगा, क्योकि जेनोटाइप उसके अनुसार नही बदल चुका होगा और फिनोटाइप में जो परिवर्तन होगा अनिवार्य रूप से वह परिवर्तन सन्तुलन स्थापित करने के 'उद्देश्य' से न होकर भौतिक और रासायनिक कारण-कार्य के अनुमार होगा, जिसका अर्थ है कि परिवर्तन कुछ भी हो सकता है। इस परिवर्तन के अनुसार प्राणी की वासना की प्रकृति और मात्रा में भी अन्तर पडेगा और उसकी आत्म-व्ययी प्रक्रिया को क्रियान्वित होने के लिए नये सिरे से प्रारम्भ करना होगा। इस प्रकार प को केवल परिवृत्ति के प्रतीक होने का भार न संभालकर परिवृत्ति में और जेनोटाइप तथा फीनोटाइप में परिवर्तन मात्र के प्रतीकत्व का भार संभाला जा सकता है। वास्तव में अपकारक परिवर्तन सामान्यत उन प्रतिक्रियाओ के रूप में होते है जो

आकस्मिक हो जबकि उपकारक परिवर्तन प्राणी के जर्म में धीरे-धीरे होते विकास से अस्तित्व मे आते है (किन्तु यह केवल सभावित है, आवश्यक नही, जैसा कि हम आगे देखेगे ।) परिवृत्ति में परिवर्तन के प्रति प्रति-प्रक्रियात्मक यत्र का रुख और स्वरूप प्राणी के अपने जेनोटाइपिक इतिहास और प्रकृति से सबध रखते हैं, जैसे चीटियो में घर बनाने की प्रवृत्ति का इतना विकास और उसमे उनकी इतनी योग्यता यद्यपि उनकी शरीर रचना पर बहुत अधिक निर्भर करती है, किन्तु यह शरीर रचना, जो कि उनकी सामजिक योग्यता को इतना उत्कृष्ट बनाती है, उनकी किसी परिवृत्ति के प्रभाव से विकसित नही हुई, होगी प्रत्युत् यह चीटी के जेनोटाइप की ही अपनी विशेषता होगी। चीटियो में अधिकाश सदस्य अनुत्पादक मादा होते हैं जबकि ०१प्रतिशत उत्पादक तथा कुछ नर होते है । इन अनुत्पादक मादाओ मे भी दो वर्ग होते है, जिनमे एक वर्ग बडे आकार की चीटियो का होता है और दूसरा छोटे आकार की । ये दोनो वर्ग केवल सामाजिक श्रम के सयोजक होते है । इस भिन्नता का एक मात्र कारण नर और मादा में क्रोमोसोम्ज का असमान अनुपात में होना ही प्रतीत होता है जिससे कि उनके मिलने से और न मिलने से दो भिन्न अनुपात के क्रोमोसोम के प्राणी उत्पन्न हो सकते है। सभव है इसका कारण उनके जेनोटाइप की कोई ऐसी ही और विशेषता हो, किन्तु निश्चित है कि इसका कारण एक जेनोटाइप की त्रिधा अभिव्यक्ति नही है ।

परिवर्तन के जेनोटाइपिक कारण

इस प्रकार स्पष्ट है कि शरीर-रचना में और प्रवृत्तियो में भिन्नताओ का आधार जर्म प्लास्म (जीवन कोष) के सयोजक क्रोमोसोम्ज का नर मादा में अनुपात तथा अन्य बहुत सी विशेषताएँ (+हाइब्रिडाइजेशन, *म्यूटेशन, क्रोमोसोम स्थिति परिवर्तन, तथा जेन-सख्या परिवर्तन) है जिनका विवेचन हम अब यहाँ करेगे।

उत्तराधिकार की प्रकृति या जर्म प्लास्म के सयोजक जेन का प्रथम अध्ययन हाइब्रिडाइजेशन से प्रारम्भ हुआ था, क्योकि यह एक सबसे अधिक सुविधा जनक प्रयोग है । 'मैंडल के इन प्रयोगों से यह प्रमाणित हो गया कि विभिन्न आकृतिया और प्रकृतियाँ, जो हम प्राणी-सन्तानो में पाते है, उनके उद्भव का कारण परिवृत्ति या वातावरण नही है, और न उन परिवर्तनो को

+ विजातीय मिलन । *मौलिक परिवर्तन ।

जेनम्यूटेशन या मौलिक परिवर्तन ही कहा जा सकता है, प्रत्युत् इनका श्रेय किन्ही कारणो से दवे पडे जेन के पुनरुद्धार या उनके क्रम-परिवर्तन को ही दिया जाना चाहिए। ऐसे परिवर्तन या विविवताएँ ऐसी सन्तानो में ही अधिकतर देखी जाती हैं जिनके जनक किन्ही ऐसे पूर्वजो की सन्तान हो जो दो भिन्न जेनोटाइप के थे। किन्ही भिन्न प्रकृति के क × ख माता पिता के अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, इत्यादि विभिन्न प्रकार की सन्तानो का यही रहस्य है, अथवा यह भी सभव है कि किन्ही क × क प्रकृति के माता पिता का कोई पूर्वज अ × इ प्रकृति का रहा हो और उनकी विभिन्न सन्तानो में से एक क में उनकी कोई विशेपता दवी रह गई हो, जो शेप सभी सन्तानो से भिन्न एक व्यक्ति सन्तान में उद्घाटित हो गई। कुछ पीढियो से गोरे रग के जनक जननी के मिलन से अचानक एक काले रङ्ग का वच्चा उत्पन्न होने का तथा काली आखो वाले जनक × जननी से भूरी आँखें वाला वच्चे उत्पन्न होने का यही रहस्य है। इस प्रकार सन्तान में प्राप्त ऐसी भिन्नता किसी मौलिक परिवर्तन की अथवा परिवृत्ति जन्य परिवर्तन की द्योतक न हो कर पहले से ही विद्यमान गुण की अभिव्यक्ति है।

वहुत सभव है कि पूर्वजो के गुणो की इस अभिव्यक्ति की प्राप्ति में इतना विलव हो जाए कि वह जव प्रगट हो तो जेन म्यूटेशन का भ्रम उत्पन्न करे। Lotsy ने वनस्पतियो में ऐसी अनेक सन्तानो को देखा और हाइब्रिड-सिद्धान्त के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है। वह तो यहाँ तक कहता है कि मौलिक परिवर्तन (म्यूटेशन) या तो कल्पना मात्र है अथवा वहुत कम प्रभाव शाली परिवर्तन है, उसके अनुसार वडे से वडे परिवर्तन पहले से ही विद्यमान ऐन्नेल्ज (Alleles) की क्रम-भिन्नता के कारण ही उत्पन्न होते हैं। उसके पश्चात हाइब्रिडिटी के कितने ही ऐसे उदाहरण अनेक वैज्ञानिको ने वनस्पतियो में प्राप्त किये जिनका भौगोलिक क्षेत्र या तो विल्कुल समीप है अथवा एक ही है। Anderson ने तो हाइब्रिडाइज़ेशन को वहुत ही अधिक महत्व दिया है, जव कि लाइसेंको (Lysanko) परिवृत्ति के प्रभाव को सवसे अधिक महत्व देता है। Riley न इरिस फुल्वा (Iris fulva) और हैक्सागोना (Haxagona) जातियो में यह सम्मिलन और क्रम भिन्नता वहुत योग्यता से प्रदर्शित की है। इनमें पहली जाति चिकनी मिट्टी की भूमि पर उत्पन्न होती है और छाया को अधिक पसद करती है, जव कि दूसरी वहुत गीले कीचड में तेज़ धूप के नीचे रहना पसन्द करती है। परिवृत्ति की यह भिन्नता एक स्थान पर जगलो के नष्ट होने तथा कीचडो के सूख जाने से समाप्त हो गई। परिवृत्ति की इस भिन्नता के समाप्त होने पर इनके

सम्मिलन से उत्पन्न सन्तान (FI) आशिक अनुर्वरता को लेकर उत्पन्न हुई, किन्तु इन्हे अपनी जनक जातियो से मिलाने (Crossकरने) पर उनकी सन्तानो में ड्रिस हैक्सागोना के विभिन्न रूपो को प्राप्त किया गया जिनमे ड्रिस फुल्वा के भी जेन विभिन्न अनुपातो और रूपो (गौण और प्रधान Recessive and Dominent) में विद्यमान थे। (Dobzhansky)

किन्तु क्रम–भिन्नता की उत्पत्ति के रोचक उदाहरण उन इज्जडो में पाये जाते हैं जहाँ सर्वथा एक से नर-मादा का या भिन्न किन्तु नियत नर-मादा का मिलन कराया जाता है। अमेरिका मे केवल काले या सफेद रग के ही (Holstein Friesian) ढोर रजिस्टर किये जाते हैं तथा उन्ही को सन्तानोत्पत्ति का अवसर दिया जाता है, किन्तु अचानक लाल-श्वेत रग का बच्चा उत्पन्न हो जाता है, जब कि पिछली सात आठ पीढियो मे ऐसी कोई सन्तान उस इज्जड में नही देखी गयी होती। यदि यह पता न हो कि (Holstien) डच इज्जडो के उत्तराधिकारी है, जिनमें काले और लाल दोनो रग के बछडें समान रूप से पाए जाते हैं और यह कि लाल रग जर्म में निहित होने पर भी काले से आच्छादित रहा, तो स्वभावत लाल बछडा जेन में परिवर्तन के कारण उत्पन्न समझा जाता। किन्तु अब यह बात नही है, अब लाल रग के बछडे की उत्पत्ति केवल प्राचीन और काले रग के जेन से आच्छादित लाल जेन के प्रगट हो जाने के कारणसमझी जाती है। (Sinnot and Dunn) इसलिए जिन व्यक्यिो काजेनोटाइप दो भिन्न जातियो के सयोग से निर्मित हुआ है उनकी दूसरी पीढी (F2) में और अगली पीढियो में भी वितरण के द्वारा अधिक भिन्नताओ की उत्पत्ति की सभावनाए छिपी रहेंगी और इनकी प्राप्ति में क्रमश भिन्नता बढती जाएगी। पर (दूसरी पीढी) में या अगली पीढियो में किन्ही ऐसी विशेषताओ की उत्पत्ति, जो उसके जनक व्यक्तियो में नहीं पाई जाती, या किसी बहुत दूर की आगामी पीढी में किसी विचित्रता की उत्पत्ति, सभव है किसी मौलिक परिवर्तन के कारण उत्पन्न हो और सभव है क्रम—भिन्नता मात्र हो किन्तु मौलिक परिवर्तन की सभावना विकसित प्राणियो मेंतो बहुत ही कम होती है, यद्यपि कम विकसित प्राणियो में भी मौलिक परिवर्तन बहुत कम ही सभावित रहता है। इसलिए विभिन्नताओ की उत्पत्ति में पुनरुद्भव या क्रम-भिन्नता ही सामान्यत महत्व पूर्ण भाग लेते हैं।

किसी गौण recessive जेन के पुनरुद्भव और जेन में क्रम-भिन्नता की उत्पत्ति को आकस्मिक या चांस कहना, हमारे विचार में, सगत

नही है क्योकि इसका अर्थ कुछ ऐसा हो जाता है मानो यह कोई कारण-कार्य संबंध-रहित रहस्य मय घटना हो, किन्तु वैज्ञानिक अध्ययन के लिए यह स्वीकार करना आवश्यक है कि कोई भी घटना कारण-कार्य संबंध से स्वतन्त्र नही है। इससे किसी प्रकार की क्रम-भिन्नता या पुनरुद्भव के लिए यह प्रश्न किया जाना स्वाभाविक ही है कि अ + ब से स ही उत्पन्न क्यो हुआ स र क्यो नही। हमारे विचार में इसके अनेक कारण हो सकते हैं – जैसे जर्म-कोषो की रासायनिक स्थिति, जो उनके इतिहास पर निर्भर है, रज और वीर्य ova-sperm के मिलन काल में उनके मिलन की प्रकृति, किरणो तथा गामा किरणो Gama ray इत्यादि का प्रभाव इत्यादि। यद्यपि कारण-कार्य संबंध इन में हो सकते हैं, किन्तु किरणें किन जेन्ज़ पर आक्रमक होगी यह केवल आकस्मिक और चास है, क्योंकि वे कही अन्यत्र हो सकती थीं, इस प्रकार यह बहुत कुछ आकस्मिक हो सकता है कि उनका ही पारस्परिक सम्पर्क क्यो हुआ अन्य का क्यो नही, किन्तु अ + ब से स की उत्पत्ति आकस्मिक घटना नही हो सकती। इसके लिए कहा जा सकता है कि बच्चो में विशेष रज-वीर्य कोषो की रासायायनिक प्रकृति एक विशेष समय एक विशेष प्रकार की थी और क्योकि इनका मिलन एक विशेष प्रकार की तदीय स्थितियो में हुआ इससे एक विशेष परिणाम निकला इत्यादि। यह बात और है कि अब हम वह सब कुछ नही बता सकते, किन्तु लाइसैंको जिस तरह परिवृत्ति के प्रभाव पर बल देता है उससे हम सहमत नही हैं। वह कहता है--पौधो में उनके विशेष गुण अथवा तदीयता की विद्यमानता का कारण यह है कि वे गुण और विशेषताएँ उनकी जनक दम्पति में विद्यमान होती है और संवर्षण तथा रासायनिक प्रक्रियाओ (metabolism) के द्वारा वे गुण और विशेषताएँ उनके भी रज और वीर्य में निहित हो जाती है जो कि आगे नवीन सन्तति को जन्म देते हैं। किन्तु, वह आगे कहता है, "ऐसे बहुत से उदाहरण देखे जा सकते हैं जब कि सन्तान सर्वथा या बहुत अधिक भिन्नताओ के साथ जन्म लेती है। ये आकस्मिक विशेषताएँ किन्ही पूर्वजो में विद्यमान रह चुकी होती है और केवल दुबारा नवीन रूप में कुछ सन्ततियो के बाद उत्पन्न होती है। ये विशेष गुण और तदीयताएँ, मैंडलिस्ट-मोर्गनिस्टो के अनुसार, अन्तर्गुह्य रहती है, यह एकदम गलत है। इसके कारणो की व्याख्या करने के लिए हमें अपने उस उदाहरण की आवृत्ति करनी चाहिए जिसमें हम दिखा आए है कि कैसे कनक के पत्ते ठीक धूप मिलने पर हरे निकलते हैं अन्यथा सफेद या पीले ही रह जाते हैं। जब छोटे पत्ते पृथ्वी पर उत्पन्न होते है तब हरे नही होते, उनमें क्लोरोफिल Chlorophyle

नहीं होता, किन्तु उनमें एक पदार्थ Plastid रहता है जो कि धूप और तापमान मिलने पर हरे रग में विकसित हो जाता है।" वह आगे कहता है कि "यदि आप इसके एक भाग को छाया मे उत्पन्न करें और दूसरे को धूप में तो छाया में बढ़ने वाले पौधे के पत्ते लाल नही होगे जब कि धूप में बढने वाले के लाल रग के होगे। इसी पीले पत्तो वाले पौधो में उत्पन्न बीजो को यदि बोया जाए और उनको धूप में बढाया जाए तो वे पुन हरे रग के पत्ते उत्पन्न करेंगे, अर्थात् क्लोरोफिल (Chlrophyle) के कण अपना उचित विकास कर सकेंगे। यहाँ हम देखते है कि हरे पत्ते वाले पौधो के जनक के पत्ते हरे नही है जब कि उसकी सन्तान के पत्ते हरे हैं, अर्थात् पहले में प्लास्टिड-क्लोरोफिल में विकसित ही नही हुई जब कि दूसरे में वह हो गई। स्पष्ट रूप से इसका यही अर्थ समझा जाएगा कि क्लोरोफिल प्लास्टिड और धूप के सम्मिलन का परिमाण है। प्लास्टिड में विकास की यह सम्भावना पहले भी विद्यमान थी, किन्तु उसे उचित परिवृत्ति न मिलने से उसका विकास या विस्फोट रुक गया जो कि अगली पीढी में उसके प्राप्त हो जाने से वह क्रियान्वित हो गया।" वह बड़े निश्चय से आगे कहता है कि "इस प्रकार की तर्क प्रणाली से हम बडी आसानी से उन व्यक्तियो को समझ सकते है जो अपनी विशेष प्रकार की तदीयता और गुणो के कारण अपनी जनक दम्पति से प्रतीयमान रूप से भिन्न किसी पुरानी पीढी से सबधित प्रतीत होते है। इसका कारण यह है कि वे अन्तर्गुह्य गुण, जो कि इतनी सन्तानो मे छिपे रहते हैं अपने उपयुक्त परिवृत्ति नही प्राप्त कर सके होते।"

किन्तु यह बात ठीक प्रतीत नही होती, क्योंकि किन्ही पौधो के या किन्ही विशेष प्राणियो के इस प्रकार के रगो की धूप या तापमान में अभिव्यक्ति उनकी फिनोटाइपिक अभिवृद्धि (Development) से सबध रखती है जो अन्तत जेनोटाइप पर निर्भर करती है, यहाँ लाइसैंको न केवल यही मानता है कि Soma cells (शारीरिक कोष) जर्मसेल्ज को उत्पन्न कर सकते हैं और करते हैं, (जैसा कि उसके इस कथन से प्रतीत होता है कि प्राणी में परिवर्तन और विकास का कारण उसकी समीकृत परिवृत्ति में परिवर्तन है, और प्रत्येक अग और कोष लिग कोष को जन्म देता है इत्यादि) बल्कि यह भी कि जेन विशेष का पुनरुद्भव केवल परिवृत्ति पर निभर है। प्रथम तो पुनरुद्भव को स्वीकार करना ही समीकरण सिद्धान्त का खडन करता है, दूसरे यह न केवल सभी अवस्थाओ में ठीक नही है प्रत्युत अधिकतर अवस्थाओ में भी ठीक नही है। फिर लाइसैंको का यह उदाहरण विजातीय मिलन के बारे में कुछ भी नहीं बताता जिसे कि मैंडल का अन्तर्गुह्यता

का सिद्धान्त से ठीक ठीक निरूपित करता है। लाइसैंको के उदाहरण में प्लास्टिड वर्तमान है, किन्तु वह धूप न मिलने से क्लोरोफिल में विकसित नही हो सका, जबकि हाइब्रिडिटी (विजातीय मिलन) में या भिन्न क्रम में जेन्ज़ के मिलन में यह बात नही है –विजातीय मिलन से उत्पन्न होने वाली सन्तानो में विभिन्नता की सभावनाए किसी भी परिवृत्ति मे ठीक ठीक क्रियान्वित हो जाएगी। पुनरुद्भव और भिन्न क्रम में मिलन केवल उचित परिवृत्ति के अभाव में जेन की आत्माभिव्यक्ति न कर सकने की क्रिया से सर्वथा भिन्न बात है। अभिवृद्धि और अभिव्यक्ति के लिए जहाँ केवल परिवृत्ति के आत्मीयकरण की आवश्यकता है और यह आत्मीयकरण जहाँ प्रतिपल इस अभिव्यक्ति और अभिवृद्धि को निर्धारित करता है वहाँ पुनरुद्भव और क्रम भिन्नता इस प्रकार परिवृत्ति से एक दम प्रभाविक नही होते, जैसा कि हम पीछे देख आए है। जहाँ तक विभिन्न रगो के व्यक्तियो में जेन की गौणता और प्रधानता का प्रश्न है वहाँ भी परिवृत्ति में अभिव्यक्ति से उस का कोई सबध नही है, क्योकि मैंडलियन विभाजन (Segregation) के सिद्धान्तानुसार, जिसे सभी जेनेटिस्ट उसकी प्रयोगसिद्धता के कारण स्वीकार करते है, यह भिन्नता एक दम परिवृत्ति से स्वतत्र और नियमित है। मैंडल दो गुणो वाले एक ही जाति के नर और मादा का मिलन Cross करवाता था और उनकी प्रथम हाइब्रिड सन्तान प¹ को देखता था। यह सन्तान निश्चित रूप से अपने दोनो विजातीय जनकोकी विशेषताओ को अभिव्यक्त या अनभिव्यक्त रूप में सँजोए रहती है। किन्तु यदि इस पीढी के दो व्यक्तियो को सन्तानो के लिए मिला दिया जाए तो प² में एक दम नियत सख्या में अपने जनक दम्पति तथा विजातीय पितामहो का प्रतिनिधित्व होता है और यह नियमितता असख्य वैज्ञानिको के असख्य प्रयोगो पर उतरी है उसने Pure breeding (अपनी विशेषताए ठीक ठीक हस्तातरित करने वाले) लाल फूलो के पौधो को सफेद फूलो वाले पौधो से मिलाया और देखा कि प¹ में सभी बच्चे लाल रग के उत्पन्न हुए। इसके पश्चात इस पीढी के विभिन्न व्यवितयो का मिलन करवाया गया और प² की सन्तानो की प्रतीक्षा की गई। इस पीढी में न केवल लाल ग के ही बच्चे उत्पन्न हुए प्रत्युत श्वेत रग के भी, जिनका अनुपात क्रमश ९/१६ और ३/१० था। इस अनुपात में भी आगे कुछ और भिन्नताएँ थी जिनका कारण लाल और श्वेत ऐल्लेल्ज (Alleles) का भिन्न भिन्न व्यक्तियो में गौणता और प्रधानता का भिन्न भिन्न अनुपात था। स्पष्ट है कि प¹ में ल×स से उत्पन्न होने वाली लाल सन्तान में प्रधान और गौण ऐल्लैल्ज

ल और स का अनुपात ल ल स स रहा होगा जबकि प २ में विभिन्न व्यक्तियो में यह अनुपात ल ल स स , ल ल स स , ल ल स स तथा ल ल स स और ललसस के रूप में विभक्त हो गया । प १ की सन्तानो में तथा प २ की सन्तानो में स्पष्ट रूप से दोनो ही विजातीय तत्व विद्यमान है किन्तु उनकी अभिव्यक्ति भिन्न भिन्न है और फिर यह अभिव्यक्ति एक दम नियमित है फिर चाहे उसका प्रयोग किसी भी प्राणी पर क्यो न किया जाए। यहाँ प१ में लाल रग के फूल उत्पन्न होने का कारण यह है कि लाल ऐल्लैल श्वेत पर पूर्णत: प्रभावशाली (Dominant) है किन्तु ऐसे बहुत से उदाहरण हो सकते है कि किसी रग सबधी या अन्य गुण सबधी ऐल्लैल समानरूप से प्रभावशील हो , उस अवस्था में प१ में दोनो जनक दम्पति से भिन्न प्रकार की सन्तान होगी और प २ में यह अनुपात थोडा सा बदल जाएगा , जिसमें कुछ सतानें प १ जैसी होगी और कुछ जनक-दम्पति जैसी । इनमें यह अनुपात ६,४,३, का होगा । इनका ऐल्लल-विभाजन प्राय: इस प्रकार होता है ।

	लाल			श्वेत
	ललसस			ललसस
		मिश्र		
प १		ललसस		
	मिश्र	मिश्र	मिश्र	मिश्र
प २	ललसस	ललसस	ललसस	ललसस
	मिश्र	लाल	मिश्र	लाल
	ललसस	ललसम	ललसस	ललसस
	मिश्र	मिश्र	मफेद	सफेद
	ललसस	ललसस	ललसस	ललसस
	मिश्र	लाल	सफेद	सफेद
	ललसस	ललसस	ललसस	ललसस

यहाँ यद्यपि मिश्ररग के फूल ६ हैं किन्तु इनमें एक श्वेत ललसस भी वास्तव में मिश्र ही है क्योकि इसमें दोनो ओर के ऐल्लैल गौण है । इस प्रकार यह विभिन्नता परिवृत्ति के समीकरण का, अतएव आकस्मिक, परिणाम नही हैं प्रत्युत् यह विभिन्न व्यक्तियो और जातियो के अपने अपने जेनोटाइप की विशेषता है जो वास्तविक कारण है ।

डोब्जहेस्काई, हारलैंड और मिन्टट तथा डन ने जेन की प्रधानता और

गौणता के विषय में यह सिद्ध कर दिया है कि यह सर्वथा जेनोटाइप की अपनी विशेषताओ पर निर्भर है, जैसा कि हमने ऊपर दो उदाहरणो में देखा है। एक ही रग, सभव है दो भिन्न विजातीय मिलनो में एक मे प्रधान प्रमाणित हो और दूसरी जाति मे उस मिलन में गौण। विभिन्न प्राणियो में विभिन्न जेन प १ में किसी स्थान पर प्रधानता कही गौणता और कही सम्मिश्रण पाते है जबकि प २ में सार्वभौकि रूप में विभाजन के द्वारा ३ १। अथवा ९ ७ के अनुपात में विभक्त हो जाते है। इस प्रकार जब दो भिन्न गुणो वाले और जन वाले दो व्यक्ति एक दूसरे के साथ मिलते हैं, इनमें अपनी मिश्र सन्तानो मे आत्माभिव्यक्ति की योग्यता भी भिन्न होती है, जैसा कि हम लाल और सफेद रग के फूलो के मिलन में देख आएहैं। जैसे गोस्सिपियम—वार बेडेंस × गोस्सिपियम हिर्सुटम पौधो के पत्ते लाल धब्बो से युक्त होते हैं और इनसे रहित व्यक्तियो पर हावी रहते है। इन रहित और सहित व्यक्तियो के मेल से प१ में छोटे लाल धब्बो वाली सन्तान उत्पन्न होती है जबकि प२ में तीन प्रकार की सन्तान उत्पन्न होती हैं—बडे धब्बेवाली, धब्बे से सर्वथा रहित और इन दोनो के बीच कडी मिलाने वाली व्यक्तियो की शृखला रूप अनेक आकार के धब्बो वाली। मैंडिलियन विभाजन (Segeagation) का यही नियम कुक्कुटो के इस चित्र मे भी देखा जा सकता है। गो० वार-बेडेंस और गो०हिर्सुटम के मिलन से प२ में उत्पन्न सन्तानें यद्यपि प्रतीयमान रूप से अनुपात के मैंडिलियन नियम को प्रमाणित नही करती, और स्वय मैंडलको इसका पता था, किन्तु ऐल्लैल-विभाजन वास्तव में ठीक उसी प्रकार और उसी अनुपात में हुआ है, यह केवल उनकी सापेक्ष प्रभाव शालिता और अप्रभाव शालिता में अन्तर होने से भिन्न परिणाम में परिणत हुआ है।

दूसरी पीढी में लाल रग के हाइब्रिड जनक से ठीक पितामहो जैसे श्वेत और लाल फूलो का सर्वथा भिन्न उत्पन्न होना प्रमाणित करता है कि प्रत्येक प्राणी मे ये विशेषताए अपने स्वतत्र व्यक्तित्व के साथ विद्यमान रहती है। जब किन्ही भिन्न जेन्जवाले प्राणी आपस मे मिलकर एक तीसरी प्रकार के मिश्र व्यक्ति को उत्पन्न करते हैं तब भी प २ में उत्पन्न होने वाली सन्तानो में से कुछ प १ जैसी और शेष उनकी जनक दम्पति में से एक या दूसरे जैसी उत्पन्न होती है। किन्तु, हमारे विचार में यह अधिक उपयुक्त होगा कि हम उनकी प्रतीयमान आकृति की बजाय जेन विभाजन को गणना के लिए इकाई बनाए। इससे प्राय कोई भी अनियमितता नही रहेगी, जैसा कि हम पीछे देख ही आए है।

यह प्राय सर्व विदित ही है कि जनक और मन्तानो के बीच की मवध-विधायक कडी केवल जर्मसेल या गेमेट (Gamete) हैं, जोकि उस प्रत्येक गुण को, जो जनक से मन्तान में हस्तान्तरित होता है, धारण करते हैं। इस प्रकार यह सुविधा से कहा जा सकता है कि जिस लाल फूल से सजातीय मिलन में केवल लाल फूल ही उत्पन्न हो उसके जेन-ऐल्लैल्ज़ में लाल ऐल्लैल्ज पूर्ण रूप से प्रधान हैं, इसी प्रकार सभी रगो के लिए। इसी से जब लल × लल व्यक्तियो का सम्मिलन करवाया जाता है तो उनकी सभी मन्तानें लल ऐल्लैल वाली ही उत्पन्न होती हैं। किन्तु लाइसैंको जर्मसेल और सोमासेल की कल्पना तक मे इन्कार करता प्रतीत होता है (यद्यपि पीछे दिये गए उद्धरण में वह इनमें किसी न किसी प्रकार गभीर अन्तर करता प्रतीत होता है) वह कहता है कि "मैंडलिस्ट-मोर्गनिस्ट जेन-वैज्ञानिक प्राणी को दो भिन्न पदार्थो–सामान्य शरीर और उत्तराधिकार में प्राप्त पदार्थ (Hereditary Substance) से युक्त मानते हैं। प्रथम पदार्थ (Soma) अथवा मामान्य शरीर प्राणी के क्रिया व्यापारो को क्रियान्वित करने वाला यन्त्र है, यह अपनी परिवृत्ति पर निर्भर करता है और उसमे परिवर्तन के साथ साथ परिवर्तित होता रहता है। दूसरा, उत्तराधिकार में प्राप्त पदार्थ, इन जेनेटिस्टो के अनुसार, केवल मन्तानोत्पादन और पूर्वजो के गुणो को हस्तान्तरित करने का कार्य करता है। इसी से उनकी उत्तराधिकार की परिभाषा है—प्राणी की वह मम्पत्ति, जो उसको आत्मजनन की शक्ति प्रदान करती है।

"किन्तु, इसके विपरीत," वह आगे कहता है," हमारे विचार में सपूर्ण शरीर केवल एक ही पदार्थ, मामान्य शरीर या सोमा से युक्त है। इसके अतिरिक्त उसमें ऐसा कोई पदार्थ नही होता जो सामान्य शरीर मे भिन्न हो। इसके विपरीत प्रत्येक कण या परमाणु, वास्तव में प्रत्येक छोटी से छोटी बूद जब एक बार जीवन युक्त हो लेती है, वह उत्तराधिकार सबधी पदार्थ से भी युक्त हो जाती है, अर्थात् वह अपने जीवन-धारण के लिए, अपने विकास और अभिव्यक्ति के लिए विशेष परिवृत्ति की माग करती है।" अपनी पुष्टि में वह वेजिटेटिव हाइब्रिड्ज (Vegetative hybrids) को, जिन में कि एक से अधिक पौधो के शरीर कोष या शरीर के भागो (शाखाओ इत्यादि) को मिला कर एक पौधे के रूप में बढाया जाता है प्रस्तुत करता है। किन्तु लाइसैंको ने जो यह उदाहरण दिया है इससे यह प्रमाणित नही होता कि उत्तराधिकार सबधी पदार्थ सोमा (Soma) से भिन्न नही है, इससे केवल यही प्रमाणित होता है कि अनेक वनस्पतियो में एक पौधे की शाखा दूसरे पौधे में भी अपना भोजन प्राप्त कर बढ सकती है। और यदि अब यह कहा जाय

कि यह उदाहरण उत्तराधिकार सम्बन्धी सिद्धान्त की ओर भी पुष्टि करता है तो अधिक ठीक होगा, क्योकि इस प्रकार एक या अनेक शाखाए किसी पौधे में जोड देने पर भी मूल पौधे के वीज शाखाओ के उत्तराधिकार को धारण नही करेंगे। आश्चर्य की बात यह है कि लाइसैंको स्वय यह स्वीकार भी करता है कि सेक्सकोष या कलियाँ, जिनसे सम्पूर्ण शरीर विकसित होता है, सम्पूर्ण शरीर के विकास का प्रतिनिधित्व करती है,' और स्वय इससे इन्कार भी करता है। सभवत उसके इस कथन का अभिप्राय यही है कि सेक्सकोष यद्यपि अन्य कोषो से भिन्न है किन्तु यह भिन्नता केवल यही है कि ये उनके विकास की ओर प्रत्येक तदीयगुण की अन्विति है। किन्तु जव वह कहता है कि इसी से ये सेक्सकोष उस प्राणी के सम्पूर्ण अगो का और शरीर का प्रतिनिधित्व करते है, जो इन्हें उत्पन्न करता है और यह कि वर्पित कोष से शरीर का विकास और उस विकास में प्रकट होते हुए परिवर्तन घटनाओ की केवल आवृत्तियाँ है जो उसके पूर्वजो ने अपने जीवन के विकास-पथ में अनुभूत की थी, और जव वह इस आवृत्ति की उपमा लिपटे हुए उस कागज के पुलिन्दे से देता है जिसमें लिखित योजना, ज्यो ज्यो वह खुलता है, उद्घाटित होती जाती है, तब केवल आश्चर्य होता है कि वह कहना क्या चाहता है। यहाँ स्पष्ट है कि उपमा और उपमित, दोनो उसके पूर्व कथन से मेल नही खाते क्योकि अनुद्घाटित योजना का उद्घाटन कभी भी परिवृत्ति का समीकरण नही है, जिसमें प्रत्येक क्षण नवीन और आकस्मिक है।

इससे चाहे और कुछ भी क्यो न अर्थ लिया जाए, यह अर्थ कभी नही लिया जा सकता कि सेक्स सेल सोमासेल से भिन्न नही है, जबकि वह आगे यह स्पष्ट लिखता है कि सोमासेल्ज में नवीन प्राणी को जन्म देने की शक्ति नही होती। लाइसैंको शायद कम्यूनिस्ट रूस और स्टालिन का पूर्ण वफादार होने के लिए और स्टालिन-मार्क्स सिद्धान्त को एक मात्र सत्य सिद्ध करने के लिये यह आवश्यक समझता है कि परिवृत्ति के महत्व को बढा चढा कर प्रस्तुत किया जाए। किन्तु हम पीछे प्रधानता और गौणता के तथा Segragation

---

* Dialectical Materialism, developed and devoted to a new high plants by the workers of comrade Stalin, is the most valuable, most patent theoretical weapon in the hands of Soviet biologists, and this is the weapon they must use in solving the profound problems of biology including the problems of the descent of one species from another The Science of biologica ispecies P 12

के जो उदाहरण दे आए है उनसे उसका यह प्रयास एकदम भ्रान्ति पूर्ण हो जाता है।

अस्तु, प्राणी का कोई गुण या विशेषता किस सीमा तक अपनी अभिव्यक्ति करेंगे यह इसके जेन-ऐल्लैल की दूसरे साथी ऐल्लैलज के साथ सापेक्ष स्थिति पर निर्भर करता है। यदि कोई ऐल्लैल अपने साथियो के ऊपर पूर्ण रूप से हावी हो जाए तो वह दो ऐल्लैलज के समान प्रभावशाली होगा जबकि दो की एक सी स्थिति होने पर वे सम्मिलित अभिव्यक्ति करेंगे। किन्तु सभवत यह प्रधानता और गौणता कभी भी पूर्ण नही होती। ऐसे बहुत मे उदाहरण दिये जा सकते हैं जहाँ पर एक स्थान पर एक ऐल्लैल प्रधान होता है और दूसरे पर वही गौण रहता है। वास्तव में प्रधानता या गौणता एक दम उलझन पूर्ण स्थितियाँ है और अभी तक इनके निश्चित नियम या Law का पता नही चल सका है। इस पर परिवृत्ति के प्रभाव के उदाहरण रूप मे हम हिमालयके खरगोश और कुछ फूल प्रस्तुत कर आए है, किन्तु इसमें अनेकानेक आन्तरिक कारण भी हो सकते है, जैसे भेड की कुछ जातियो मे नर सीगवाले ऐल्जैल से रहित होने पर भी सीगयुक्त होते है जबकि मादा उन्ही ऐल्लैल के साथ भी सीग रहित रहती है। इसी प्रकार कोई ऐल्लैल प्राणी में बचपन में गौण प्रभाव वाला हो सकता है और यौवन मे या उसके पश्चात् केवल आयु के मुख्य हो सकता है।

जेन्ज और ऐल्लैज के स्वतत्र होने पर भी सेक्सकोप केवल एक ऐसा डब्बा नही है जिसमें जेन अपने अपने स्थान पर एक दूसरे से अप्रभावित पडे रहते हो अथवा ऐसा खगोल नही है जिसमें तारे अपने अपने वृत्तपर घूमते रहते है, बल्कि ऐसी अविभाज्य इकाई है जिसमें तारो के समान जेन एक दूसरे की क्रियाओ पर प्रभाव डालते रहते है, जैसा किसी भी जीव मे देखा जा सकता है। स्वीट पी पौधे अनेक रगो के पाए जाते है और वे प्राय सभी स्वतत्र जातियाँ है। स्वीटपी की ये विभिन्न जातियाँ एक जगली जाति के पूर्वज से विकसित हुई है जिसके फूल गहरे लाल रग के होते हैं तथा डोडी के पत्र लाल होते है। इसमें गहरा लाल रग श्वेत के ऊपर हावी रहता है। यदि जगली जाति की विकसित पीढियो की स्वीटपी जातियो में लाल और श्वेत का अथवा श्वेत की दो भिन्न जातियो का मिलन करवा दिया जाए तो प १ में जगली जाति की गहरी लाल स्वीटपी के पौधे उत्पन्न हो जाते है और प २ में यह अनुपात गहरी लाल और श्वेत में क्रमश $\frac{9}{16}$ और $\frac{7}{16}$ मे विभाजित हो जाता है। किन्तु यहाँ आश्चर्य की बात यह है कि गहरे लाल (Purple)

रग के पौधे केवल तभी उत्पन्न होते है जब कि श्वेत रग युक्त ऐल्लैल (र) और गहरेलाल ऐल्लैज (ल) में से या तो दोनो ओर का एक एक मुख्य हो या दोनो मुख्य हों, किसी भी एक ओर के ऐल्लैल होने पर फूल केवल श्वेत रग के ही उत्पन्न होगे ।

जैसे—
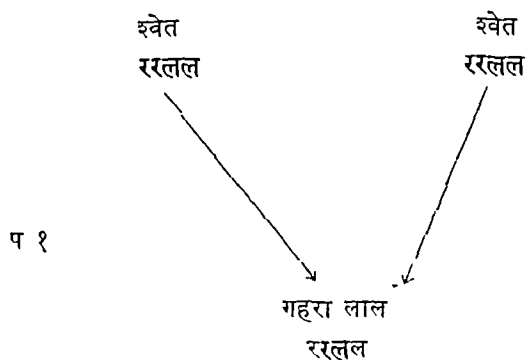
ररलल ग० लाल	ररलल ग० लाल	ररलल ग० लाल	ररलल ग० लाल
ररलल ग० लाल	ररलल श्वेत	ररलल ग० लाल	ररलल श्वेत
ररलल ग० लाल	ररलल ग० लाल	ररलल श्वेत	ररलल श्वेत
ररलल ग० लाल	ररलल श्वेत	ररलल श्वेत	ररलल श्वेत

(Sinnot and Dunn-Principles of Genetics 1939)

स्वीटपी की प १ में एक भिन्न रग की उत्पत्ति किसी मौलिक परिवर्तन की परिणाम नही है बल्कि दो भिन्न ऐल्लैज के मिश्रण से उत्पन्न प्रभाव भिन्नता है, जब कि वे पृथक पृथक एक ही प्रभाव (श्वत रग) उत्पन्न करते है (Sinnot and Dunn)

स्वीटपी में दो भिन्न प्रकार के जेन—ऐल्लैज के मिलन से एक तीसरे गुण की उत्पत्ति आश्चर्य जनक होने पर भी सामान्य है, क्योकि रसायण विज्ञान में ऐसे अनेक रासायनिक पदार्थ स्वय रग रहित होकर भी मिलाए जाने पर रग उत्पन्न कर देते हैं। इसी प्रकार इज्जडो या उद्यानो में भी हाइविड उत्पन्न होते रहते हैं।

अनेक प्राणियो में, और एक ही प्राणी की अनेक विशेपताओ में अनेक वार विभिन्नताओ की अनेक सभावनाए विद्यमान रहती हैं। इनका अधिक तर श्रेय जेंज के उस वडे सग्रह को है जो दूसरे जेंज के प्रभाव में छिप रहते है, अथवा अन्य अनेक कारणो से, जिनमें परिवृत्ति भी एक कारण हो सकती हैं, अपनी अभिव्यक्ति नही कर पाते। जेंज के ये सग्रह व्यक्ति की आकृति पर वहुत अधिक प्रभाव डाल सकते हैं, अनेक जेन तो व्यक्ति को नपुसक या अत्यन्त दुर्वल तक वना देते हैं (यह प्रभाव जेंज की पारस्परिक अन्त प्रतिक्रियाओ से सवधित हैं)। इतना अधिक प्रभाव डालने वाले जेंज के अतिरिक्त ऐसे भी वहुत से जेन प्राणी के जर्म में रहते है, जो व्यक्ति की किसी विशेपता को सम्मिलित रूप मे निर्धारित करते है, जो यद्यपि प्रभाव की गभीरता में वहुत कम होते हैं किन्तु विविधता में अनेक और विस्तृत होते हैं। ये सामूहिक प्रभाव भी विकास में महत्व पूर्ण योग दान की अनेक सभावनाए रखते है। कुछ जेनेटिस्ट प्रमख (Major) और समष्टि जेंज को दो भिन्न श्रेणियां मानते हैं, किन्तु यह वात कुछ ठीक नही जान पडती। यद्यपि यह ठीक है कि समष्टि जेंज का व्यक्तिग प्रभाव आकना कठिन है, किन्तु वे उसी प्रकार क्रोमोसोम्ज्ञ में विद्यमान रहते हैं जैसे प्रमुख, और वे कभी भी प्रमुख हो सकते हैं।

सम्मिलित जेंज की एक वडी विशेपता यह है कि इनमें परिवर्तन की सभावनाए वहुत अधिक विद्यमान रहती हैं। मान लीजिए कि किसी जाति के कुछ सवद्ध व्यक्ति चार जेन-युगलो में भिन्न हैं, जो कि उनमें आकारगत (लवाई या चौडाई) गत विशेपता को उत्पन्न करते हैं, तो उनमें इन भिन्नता की अनेकानेक सभावनाए निहित रहेंगी,— यह स्वाभाविक भी है। मान लीजिए कि एक वश की यह जेन सम्पत्ति आ आ इ इ उ उ तया ए ए है और दूसरे की अ अ ई ई ऊ ऊ तया ऐ ऐ और वडे स्वरो में प्रदर्शित जेंज का प्रभाव समान है तो इन वशो के ये दोनो व्यक्ति आकार में समान होंगे किन्तु यदि इनको आपस में मिला दिया जाए तो दूसरी पढी प २ में विभिन्न आकारो के व्यक्ति उत्पन्न हो सकेंगे, जैसे अ अ ई ई ऊ ऊ ऐ ऐ' आ आ

इ इ ऊ ऊ ऐ ऐ, आ आ ई ई उ उ ऐ ऐ, आ आ ई ई ऊ ऊ ए ए तथा आ आ ई ई ऊ ऊ ऐ ऐ × इत्यादि । इसी प्रकार अन्य परिवर्तनो में भी, जो वहुत महत्वपूर्ण हो सकते हैं समष्टि-जेन वहुत प्रभाव डाल सकते है (Dobzhansky)

पीछे हमने देखा था कि एक ही क्रोमोसोम की गुणित (Multiple) इकाई प्राणी में आकारगत, मुद्रागत तथा अन्य गुणो में वहुत वडे परिवर्तन उत्पन्न कर सकती है, इसी प्रकार सख्या में कमी भी कम गभीर प्रभाव नही छोडती ।

हमने अव तक के अपने सक्षिप्त से अध्ययन में देखा कि कैसे जेन किसी मौलिक परिवर्तन के विना भी केवल क्रम, सख्या, सापेक्षता तथा प्रधानता-गौणता इत्यादि में परिवर्तन के द्वारा भी प्राणी मे गभीर परिवर्तन के कारण हो सकते है। जेंज में इन अमौलिक परिवर्तनो के कारण आन्तरिक भी हो सकते है और वाह्य भी, किन्तु सभवत विजातीय व्यक्तियो का मिलन, व्यक्तियो के जेनोटाइप की रासायनिक प्रकृति और रासा-यनिक प्रक्रिया इत्यादि का इसमे अधिक हाथ रहता है। किन्तु परिवृत्ति इस परिवर्तन में कम महत्वपूर्ण भाग लेती है। परिवृत्ति यद्यपि कभी कभी जेन में मौलिक परिवर्तन (Gene mutation) तथा क्रोमोसोम के दिशा परिवर्तन तक को सभव कर देती है, जैसा कि हम अब देखेंगे, किन्तु यह परिवृत्ति के विशेष उपकरण ही कर सकते है, जैसे गामा किरणें इत्यादि । इस से यह सहज ही कहा जा सकता है कि जेनोटाइप और फिनोटाइप में परिवृत्ति की सापेक्षता मे भी एक मौलिक अन्तर है, और यह अन्तर केवल यही नही है कि एक (जेनोटाइप) सन्तानोत्पत्ति का कारणभूत पदार्थ है और दूसरा उस पदार्थ में बीज रूप में निहित वह पदार्थ, जो कि परिवृत्ति के सयोग से उससे फूट निकलता है। यदि एक प्राणी को परिवृत्ति से उसका आवश्यक भोजन न मिले तो यह बिलकुल ठीक है कि उसका विकास रुक जाएगा, इससे भी अधिक, यदि एक बीज को गर्भपात्र और उसमें उपलब्ध होने वाला आवश्यक भोजन न मिले तो बीज कभी भी सन्तानोत्पादन नही कर सकेगा । किन्तु यह भी सत्य है कि परिवृत्ति पीपल के बीज में से आम उत्पन्न नही कर सकती । इस से भी अधिक महत्वपूर्ण यह बात है कि यदि एक बीज को उसकी प्राकृतिक परिवृत्ति से भिन्न परिवृत्ति में रखा जाए और अपने फिनोटाइप का विकास

× यहाँ दीर्घ और ह्रस्व स्वर एक ही जेन की प्रमुख Dominant तथा गौण Recessive प्रतियो के लिये प्रयुक्त किये गये है ।

करने दिया जाए तो वह कुछ भिन्न प्रकार के फिनोटाइप को जन्म देगा, किन्तु उसके वीज पहले वीज से भिन्न नही होगे, अर्थात् उनका जेनोटाइप परिवृत्ति मे प्रभावित नही होगा। यही क – ख१ = २ क + ग १ का अर्थ है और यही प्राणी का उत्तराधिकार है। इमलिए लाइसैंको जव कहता है कि प्राणी की प्रकृति में परिवर्तन का कारण उमकी समीकृतपरिवृत्ति में परिवर्तन है तो यह केवल तथ्य पर जवरदस्ती मालूम पडती है। लाइसैंको अन्यत्र कहता है कि सन्तानो के रूप मे आत्मसृजन और नवीन जातियो की उत्पत्ति प्राणी के शारीरिक विकासकाल में परिवृत्ति के द्वारा उत्पन्न होने वाले प्राणी मे के रासायनिक परिवर्तनो के साथ वँधी है। इमकी पुष्टि में वह २८ क्रोमोमोमवाली ड्यूरम कनक (Durum wheat) का उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो यदि पतझड के अन्तिम दिनो में वोई जाए तो तीन-चार पीढियो के वाद ४२ क्रोमोनोम वाली ड्यूरमकनक में परिवर्तित हो जाती है। वह इनसे भी अधिक आश्चर्यजक वात कहता है कि—ड्यूरम कनक की वालियो में नरम कनक (Soft wheat) के एक या दो कण कभी कभी आकस्मिक रूप से पाए जाते है। वह आगे वताता है कि जव ड्यूरम कनक की वालियो में भटके हुए नरम कनक के कणो को वोया गया तो इन्होने नरम कनकको ही जन्म दिया ड्यूरम को नही। इमी प्रकार वह ड्यूरमकनक और नरमकनक की वालियो में Rye wheat के कणो की उपस्थिति भी वताता है। वह कहता है कि १९४९ में फुटहिल जिले में ड्यूरम कनक और नरम कनक की वालियो में रे कनक के कण पाने का प्रयास किया गया। इम जिले मे नरम कनक के साथ साथ रे कनक भी प्राय उत्पन्न देखी जाती है। कुछ वर्षो तक इन जिलो में इसका कारण ज्ञात नही हो सका। किन्तु हाल के वर्षो में ही V K Karapetian और V N Gromocheusky इत्यादि ने ड्यूरम और नरम कनक की वालियो में रे के कण प्राप्त किये और ये कण पुन वोए गए। इन कणो या वीजो ने सामान्य वीजो के समान सन्तानें उत्पन्न की गई, जव कि Hybrid (विजातीय मिलन से उत्पन्न) रे के वीज नपु सक अथवा अनुत्पादक होते है। कुछ वीजो से भिन्न जाति की कनक भी यद्यपि उत्पन्न हुई, किन्तु ऐसे वीज वहुत कम थे। ठीक इसी प्रकार के और भी दो चार उदाहरण लाइसैंको ने दिये है। किन्तु उन्होंने इसका कोई भी ठोस या थोथा कारण नही दिया, यद्यपि प्रत्येक पृष्ठ पर वह कारण वताने का आवश्वासन देता है। केवल इतना कह देने मात्र से कि प्राणी परिवृत्ति का समीकरण करता है इसलिए परिवृत्ति में परिवर्तन समीकरण (Assimilation) के द्वारा प्राणी में परिवर्तन सभव करता है,

निरर्थक है क्योकि तब तो कनक मे केवल यही अन्तर पडना चाहिए था कि बदली हुई परिवृत्ति में विशेष जाति की कनक में कुछ विशेष अन्तर उस कनक की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति पर पडता, किन्तु यहाँ ड्यूरम कनक और नरम कनक की पूरी बाली मे एक भटके हुए विजातीय कनक-कणो की उपस्थिति के अतिरिक्त और किसी पकार के परिवर्तन की सूचना वह नही देता, इसी प्रकार ड्यूरम और रे की बालियो में नरम कनक-कणो के लिए भी। फिर आश्चर्य की बात यह है कि ड्यूरम की बालियो मे भटके हुए नरम कनक के कणो के लिए तो वह केवल इतना ही लिखता है कि वे बोए जाने पर अपनी सन्तानो में नरम कनक ही उत्पन्न करते हैं जबकि रे कनक-कणो में कुछ, उसके कथनानुसार, ठीक रे के पौधो को उत्पन्न करते है जबकि शेष विभिन्न जातियो के कनक के पौधो को जन्म देते है। इसका क्या कारण है, लाइसैंको ने न केवल यही नही बताया, पत्युत इसे कुछ महत्व भी नही दिया। पाठक को भ्रम होने लगता है कि रे और नरम कनक के भटके कणो में यह भिन्नता केवल लेखक के नरम कनक की सेक्स-प्रकृति बताने में भूल करने के कारण ही तो नही ? सभवत इसका यही कारण है, अवश्य नरम कनक के बीज भी रे के समान भिन्न भिन्न प्रकार की सन्तानो को जन्म देते होगे। किन्तु लाइसैंको ने जिस प्रकार विभिन्न पौधो के रे के कणो से उत्पन्न होने की बात लिखी है वह अपने आप में भी कम सशयास्पद नही है क्योकि वह इसे एक पैरे के अन्त में एक दो लाइनो में बताकर आगे बढ जाता है।

लाइसैंको की उक्त सूचना में सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि २८ क्रोमोसोम वाली ड्यूरम कनक की किसी किसी बाली में ४२ क्रोमोसोम वाली नरम कनक के कण पाए जात हैं और इन दोनो में भिन्न सख्या के क्रोमोसोमवाली रे कनक के कण उत्पन्न होते हैं। हमने अब तक प २ में विभाजन (segregation) के द्वारा ऐसी भिन्न सन्तानो के उत्पन्न होने के उदाहरण दिए थे जिनमें एक या दूसरे प्रकार का एल्लैल मुख्य है और यही भिन्नता शरीर में प्रतीयमान भिन्नता का भी कारण है। एक दूसरी प्रकार का उदाहरण हमने चीटियो में एक ही जेनोटाइप से तीन भिन्न प्रकार की - छोटी वध्या, बडी वध्या और छोटी अवध्या—चीटियो की उत्पत्ति का भी दिया था, जिनमें स्पष्ट रूप से क्रोमोसोम की सख्या में नर-मादा में अन्तर ही कारण हो सकता है। इसी प्रकार का एक और उदाहरण मधु मक्खियो का दिया जा सकता है। इनमें मादा के जर्मसेल में जहा ३२ क्रोमोसोम होते हैं नर के जर्म सेल में केवल १६, इसलिए जब मादा नर से मिलन के बिना ही बच्चा देती है तो Reduction division जर्म

सेल में एक विशेष अवस्था में विभाजन हो जाता है और क्रोमोसोम लगभग अन्वे रह जाते हैं) के द्वार १६ क्रोमोमोम वाला नर उत्पन्न होता है जब कि नर से मिलन होने पर ३२ क्रोमोसोम वाली मादा। ड्यूरम कनक और नरम कनक के बीच का भेद भी यद्यपि वैसा ही प्रतीत होता है किन्तु यहा यह बात नही है। फिर भी एक बात स्पष्ट है—कि जहा ड्यूरम कनक की क्रोमोमोम मख्या २ N=२८ है वहा नरम कनक की क्रोमोसोम सख्या ३N =४२ है अर्थात एक दुहरी (Diploid) है और दूसरी तिहरी (Triploid) है। इन दोनो मे इकाई N = 14 है, इमसे इनमें का अन्तर भी मात्रात्मक है गुणात्मक नही, जैमा कि लाइसैंको कहता है। तिहरे (Triploid) प्राय दुहरे × तिहरे या दुहरे × चौहरे के सयोग से उत्पन्न होते हैं, इससे यही सभव प्रतीत होता है कि नरम कनक के कण किसी प्रकार से उस खेत में आ गए होंगे या पहले मे ही विद्यमान रहे होंगे और उनके ड्यूरम कनक के साथ मिलन ने यह घटना सभव हुई होगी, यद्यपि लाइसैंको इससे इन्कार करता है। किन्तु रे कनक-कणो के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि हमारे वताए कारण के होने की सभावनाए वहुत अधिक हैं, क्योकि लाइसैंको के अपने ही कथनानुसार ये बीज न केवल सजातीय सन्तानें ही उत्पन्न करते हैं प्रत्युत विजातीय सन्तानें भी उत्पन्न करते है, जो स्पष्ट रूप से विजातीय मिलन और वितरण (Segregation) का उदाहरण है।

इसी प्रकार के हम एक दो उदाहरण और प्रस्तुत करते हैं जिमसे हमारी वात स्पष्ट हो सके। (Galeopsis) गेल्योप्सिस पौधे की आठ जातिया पाई जाती हैं जिनमें मे छ की क्रोमोमोम सख्या आठ (इकहरी=Haploid) हैं जव कि शेप दो में २ n=16 है। प्रथम छ में दो जातिया गे-प्यूवेस्सेंस G Pubescens) और गे स्पेश्योसा (G speciosa) हैं और दूसरी दो जातियो में से एक गे-टेट्राहिट (G Tetrahit) है। प्यूवेस्सेंस × स्पेश्योसा प्रथम पीढी में एक दम नपुसक सन्तान को उत्पन्न करती हैं, किन्तु पोलिनेशन* (Pollination) से प २ में तिहरा (Triploid) पौधा (3N=२४) उत्पन्न होता है। डोव्जहॅस्काई के अनुसार इसकी उत्पत्ति का कारण समवत यह होगा कि इसके जर्म सेल और प १ के सोमासेल के

---

*×पौधो में नर लिग से मादा लिग में पोलन लगाना।

भाग आपस मे मिल जाते होगे। इस त्रि-क्रोमोसोम पौधे का पुन एक क्रोमोसोम पौधे (Pubescens) से मिलन करवाया गया, जो कि इसके पूर्वजो में से एक था। इससे केवल एक ही जेनोटाइप का पौधा उत्पन्न हुआ जिसकी क्रोमोसोम सख्या ४ अथवा 4 N = ३२ थी। यह चौहरे क्रोमोसोम वाली जाति अनुत्पादक नही थी और इसी से टेट्राहिट जाति, जिसकी क्रोमोसोम सख्या ४ या 4 N = ३२ है उत्पन्न हुई। इसकी उत्पत्ति का कारण त्रिक्रोमोसोम वाले जर्म का बिना विघटित हुए एक-क्रोमोसोम वाले पौधे गेप्यूबेस्सेंस से मिलन होना है। (Dobzhansky) सभवत ड्यूरम कनक मे नरम कनक के कण उत्पन्न होने का भी यही कारण है, यद्यपि यहा यह भिन्नता है कि ये कण दूसरे पौध की बालियो में भटके हुए मिलते है। इससे कम से कम यह कहना उचित प्रतीत नही होता कि क्रोमोसोम का द्विगुणित या त्रिगुणित होना परिवृत्ति विशेष के समीकरण का परिणाम है। फिर यहा जो केवल कुछ बालियो में कही कही ही एक दो कण उपलब्ध हुए है उससे तो यह बात बिल्कुल भी प्रमाणित नही होती।

इसका अर्थ यह नही कि हम विकास में या परिवर्तन में परिवृत्ति के प्रभाव से निषेध कर रहे है, सम्पूर्ण दूसरे अध्याय में और प्रथम मे भी कही कही हमने परिवृत्ति के प्रभाव को पूरी तरह से स्वीकार किया है, किन्तु हम यह स्वीकार नही कर सकते कि प्राणी परिवृत्ति का उसी प्रकार एक समीकरण मात्र है जैसे पत्थर। और फिर परिवृत्ति का समीकरण भी पृथक् पृथक् प्राणियो में पृथक् पृथक् महत्व रखता है। उसका जो प्रभाव गुलाब या बेरी में देखा जा सकता है वह मनुष्य या गाय में नही और जो कीटाणुओ में देखा जा सकता है वह इनमें नही। विकास स्तर पर जो प्राणी जितना आगे होगा, अथवा यो कहे कि जिसका जेनोटाइप जितना ही अधिक विशिष्ट होगा उसमें परिवृत्ति पर निर्भरता उतनी ही कम होती जाएगी।

फिर भी ऐसी व्यक्ति भिन्नताएँ, जो उत्तराधिकार से सबध नही रखती, जैसे अच्छा या बुरा भोजन मिलने से, किसी घातक रोग से या चोट से अथवा कार्य की प्रकृति से उत्पन्न, ये परिवृत्तिपर निर्भर करती है और कभी कभी काफी गभीर फिनोटाइपिक प्रभाव छोड जाती है। पहले अध्याय में हम कुछ ऐसी कृमि जातियो के उदाहरण दे आए है जहाँ पर केवल भोजन का अन्तर व्यक्ति को रानी या दासी अथवा उत्पादक और अनुत्पादक बना देता है। इतना ही नही, यदि शैशव के बाद में भी दासी को रानी का भोजन दिया जाए तो भी वह

थोडे ही समय में रानी वन जाती है, उसमें सन्तानोत्पादन की योग्यता आ आती है, जो परिवृत्ति के प्रभाव का स्पष्टतम प्रमाण है। फिर भी परिवृत्ति जनित अन्तर आनुवशिक नहीं होता। यदि हम एक निचले भूमि स्तर पर उत्पन्न हुए पौधे को, जिसके पत्ते पतले तथा चौडे हैं और जिसके फूलो के वृन्त लम्बे है, दो भागो में विभक्त करलें और उसके एक भाग को ऊँचे पार्वत्य प्रदेश में लगादें, जहाँ परा तापमान, प्रकाश, नमी तथा भोजन की प्रकृति सर्वथा भिन्न हो, कुछ पीढियो बाद ही हम पाएगे कि एक ही उत्तराधिकार के बावजूद यह पौधा अपने पूर्वज से इतना अधिक भिन्न होगा कि हम उसे पहिचान तक न सकेंगे। (Sinnot and Dunn) इस प्रकार परिवृत्ति का प्राणी पर प्रभाव काफी स्पष्ट और कभी कभी काफी गभीर भी हो सकता है। हम प्राय ही एक ही उत्तराधिकार के व्यक्तियो में लबाई, चौडाई, पत्तो की सख्या में भिन्नता, फलो की सख्या आकार और स्वाद तथा बीज के रूप आकार इत्यादि में भिन्नता देख सकते हैं और इसमें परिवृत्ति का बहुत बडा हाथ रहता है। यह प्रभाव मनुष्य में भी देखा जा सकता है। अमरीका में कुछ पीढियो से बसे जापानियो के कद दो से तीन इच तक अपनी मूल जाति से बडे हो गए है।

मौलिक परिवर्तन

हमने अब तक प्राणी में परिवर्तन या विकास का कुछ अवस्थाओ को देखा जिनमें परिवृत्ति का या तो कुछ भी हाथ नही है अथवा बहुत कम हाथ है, किन्तु परिवृत्ति कभी कभी गभीर और स्थायी प्रभाव भी छोडती है जो जेनेटिक सिस्टम को आधार से ही बदल देता है और इस प्रकार अब तक वर्णित सभी परिवर्तनो से अधिक मौलिक होता है —इसे हम मौलिक परिवर्तन या म्यूटेशन कह सकते है। किन्तु यह परिवर्तन परिवृत्ति के वैसे स्थूल समीकरण से नही होता जैसे सामान्यत फिनोटाइप की अभिवृद्धि तथा लबाई चौडाई तथा स्वास्थ्य इत्यादि मे होता है, इस परिवर्तन के लिये अधिक गभीर प्रहारो की आवश्यकता होती है जो जेनोटाइप की सुरक्षा के सभी दुर्भेद्य आवरणो को चीर कर उसे सीधे आक्रान्त करें। ऐसे प्रहार उसके आकार को ही बदल देते है। परिवृत्ति के पास जेन पर प्रहार के साधन X रश्मियां, गामा रश्मियां, कास्मिक रश्मियां तथा अल्ट्रा वायलेट रश्मियां है जो अपनी चोट से जेन के परमाणुओ को तोड कर उन्हे दूसरे प्रकार से मिलने के लिए बाध्य करती है और उन पर अपना तथा अपनी चोट का भौतिक तथा रासाय-

निक प्रभाव भी छोड़ती हैं। सामान्य समीकरण, जैसा कि हम पीछे कह आये हैं, कोई प्रभाव यद्यपि जेन परिवर्तन पर नहीं डालता किन्तु उससे जेन को अपना कार्य ठीक प्रकार से करते रहने में कुछ सहायता अवश्य मिलती है जो अन्तत उस पर एक अत्यन्त परोक्ष प्रभाव छोड सकती
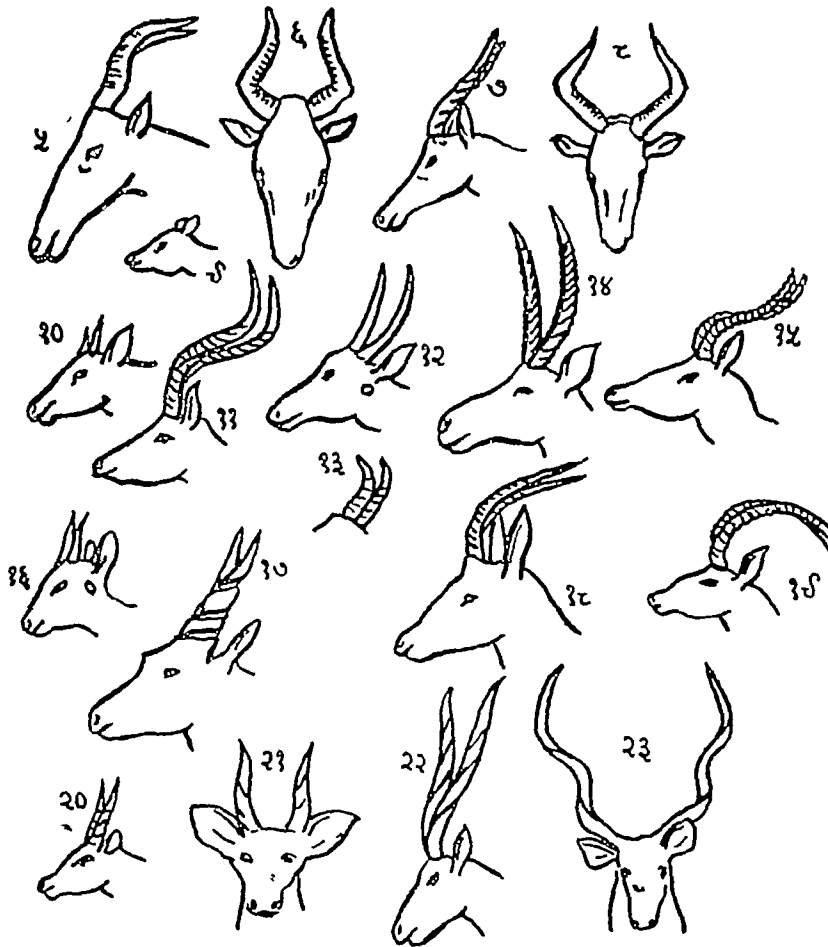
है, यह प्रभाव इतना अल्प और परोक्ष होता है कि उसे परिवृत्ति का प्रभाव कहना व्यर्थ है, उसे जेनोटाइप की अपनी ही प्रकृति की व्यजना या अतीत की प्रगति कहना अधिक उपयुक्त होगा। प्राकृतिक परिवृत्तियो में ऐसे परिवर्तन प्रायः बहुत कम होते है क्योंकि वहाँ जेनो—टाइप स्वाभाविक रुप से अपना कार्य करता है, किन्तु बस्तियो में रहने

वाले, विशेषत पालतू प्राणियो में मनुष्य उन पर दवाव डालता है अथवा उसके कारण कभी कभी परिवृत्ति में अन्तर पड जाता है जिससे प्राणी का या तो प्राकृतिक क्रम विगडता है या विजातीय मिलन-जन्य अन्तर

पडता रहता है। किन्तु एक्सकिरण (x Rays) इत्यादि से चोट खा कर जब एक बार जेन के परमाणु टूटने लगते हैं तब उसके परिवर्तन

की गति अपेक्षाकृत तीव्र और असख्य सभावनाओ से युक्त हो उठती है। और यह परिवर्तन तव तक रुक नही पाता जव तक कि प्राणी एक या अनेक झुडो में किसी परिवृत्ति में एक दम स्थायी नही हो जाता। स्पष्ट रूप से इस परिवर्तन के मूल में किसी प्रकार के चुनाव की सभावना नही है, किन्तु परिवर्तन को स्थायी करने में और अनुपयुक्त परि-वर्तनो से प्रभावित व्यक्तियो या झुडो को समाप्त करने में प्राकृतिक-चुनाव (Natural selection) का वहुत वडा हाथ रहता है, किन्तु प्राकृतिक चुनाव मे उत्तीर्ण होने वाले प्रत्येक परिवर्तन का कोई सुरक्षात्मक मूल्य (Survival value) हो ही यह अवश्यक नही है, और प्राय ही वहुत से परिवर्तनो की Survival value एक दम शून्य और अनेक बार तो –xस[x] होती है, जैसा कि साथ के चित्रो से स्पष्ट है। इसके हम असख्य उदाहरण पिछले अध्याय में भी दे आए हैं।

चित्र में ऐंटीलोप हरिण के सीग उसके जीवन-सघर्ष में सामान्यत उसके सब अगों से अधिक प्रभावशाली होते है, क्योकि इनसे वे अपने साथियो के ऊपर आक्रमण कर उन पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करते है और विजातीयो से आत्म रक्षा करते है। चित्र में की सब जातियो के सीग है किन्तु किन्ही भी दो जातियो के सीग आपस में मेल नही खाते। इनमें किसी एक जाति के सींग सभवत शेष के सीगो से अधिक अच्छे होगे, यद्यपि यह बिल्कुल ठीक है कि सीगो की सार्थकता की दृष्टि से वे या कोई भी आदर्श नही है। फिर इनमें तो ऐसे सीग ही अधिक है जो उलटी ओर झुके होने से वहुत कम उपयोगी प्रतीत होते हैं। इन सभी जातियो के ही सीगो में बहुत कमियाँ हैं। फिर सबसे अधिक कुतूहल जनक बात यह है कि १४ और १८ नबर के हरिणो में मुद्रा में सर्वत्र वहुत अधिक समानता होने पर भी १४ के सीग आगे की ओर झुके हुए है जब कि १८ के पीछे की ओर को झुके है। इसी प्रकार ११ और १५ के सीगो में दुहरा मोड हैं जब कि ऐसे सीग इकहरे और एक मोड वाले ७ तथा १७ नबर के सीगो से कही कम उपादेय हो सकते है। दस और सोलह नबर के सीग इतने छोटे है कि इनसे वे प्राय कोई भी लाभ नही उठा सकते। इसी प्रकार १५ और १६ के सीग इतने अधिक पीछे की ओर मुडे हुए है कि वे इनसे सघर्ष में किसी भी प्रकार का लाभ नही उठा सकते। इसी प्रकार कुक्कुटो में कलगी, केश और चोच तथा लटकन के लिए भी। इस चित्र में कुछेक के कलगी या तो बिल्कुल भी नही हैं अथवा

×स = सुरक्षामूल्य

इतनी छोटी है कि इससे कोई अन्तर नही पडता। यदि कलगी और लटकन को सेक्सुअल चुनाव* (Sexual Selection) से उत्पन्न माना जाए तो ६, १४, १६, २२, २३, २४, २५, २७, और २९ में कलगी का सर्वथा अभाव है जब कि अन्य बहुत सी जातियो में वह बहुत छोटी है। फिर कलगी के लिए इस चुनाव विशेष का पक्षपात स्वीकार करने पर, केशो के लिए किस चुनाव का पक्षपात कल्पित किया जाए ? पन्द्रह नबर की कलगी ७,८,९,१०,११, १६,१७,१८,१९ तथा बीस की अविकसित कलगियो का ही विकसित रूप है जब कि बीस तथा २५ का भी प्रारूप उसे कहा जा सकता है। इसी प्रकार चोच तथा लटकनो में भी काफी अन्तर है। कुछेक के तो लटकनें बिल्कुल भी नही है। कलगी यद्यपि प्राकृतिक चुनाव की दृष्टि से अपकारक है और कुक्कुट आपस में लडते भी बहुत अधिक है, किन्तु डरविन के अनुसार सेक्सुअल चुनाव के कारण ये स्वीकार कर ली गई या उत्पन्न कर ली गई। किन्तु बडे बडे बालो वाले कुक्कुटो में जहाँ प्राकृतिक चुनाव को अर्धचन्द्र दे दिया गया प्रतीत होता है वहां सेक्सुल चुनाव को भी। हरिणो में तो यह बिल्कुल ही स्पष्ट है। यदि हम एक जाति में किसी विशेषता की विद्यमानता का कारण किसी विशेष उपयोगिता को मानेंगे तो दूसरी जाति में उसकी अविद्यमानता का कारण भी हमें बताना चाहिए। एक ही जाति (Specie) के भिन्न भिन्न वर्गों (Varieties) मे एक में एक लाभदायक विशेपता का विद्यमान होना तथा दूसरे में न होना और ऐसा आकस्मिक रूप से नही सामान्य रूप से होना प्रमाणित करते हैं कि चुनाव सबधी इन कल्पनाओ में कोई बडी भूल है। वास्तव मे किसी भी प्राणी में मानसिकता सबधी अनुमान काफी सोच समझ कर करना चाहिए क्योंकि उसके किसी भी पहलू की कल्पना मे अपनी मानसिकता के आरोपण का भय रहता है। फिर किसी अंग की विद्यमानता का कोई मानसिक कारण बताते हुए तो बहुत ही अधिक सावधानी की आवश्यक्ता है। कुक्कुटो में जैसे तेज और सशक्त पजो वाला व्यक्ति न केवल शत्रु को परास्त ही कर सकता है, काम-सखा को दबोच भी सकता है, जैसा कि कुक्कुटो में मैथुन का ढग है।+ इससे सेक्सुअल चुनाव में किसी ऐसे अग की रक्षा

---

*सेक्सुल चुनाव या सिलेक्शन = अपनी काम सखी को प्रसन्न या आकर्षित करने के लिए किसी विशेषता को अपनाना।

+कुक्कुट प्राय सदैव ही मैथुन के लिए मादा के पीछे तीव्रता से दौडता है जब कि वह आगे आगे भागती है, और तब वह बलात उसका घर्षण कर उससे मैथुन करता है।

करना जो उसके शत्रु के लिए लाभदायक हो, उपयुक्त प्रतीत नही होता।

इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि विकास मे न तो कोई योजना है और न सुरक्षा-मूल्य का आग्रह ही, यह केवल जेनोटाइप और परिवृत्ति की अथवा केवल जेनोटाइप की रासायनिक स्थिति की यान्त्रिक क्रिया-प्रतिक्रिया का ही परिणाम है। यह ठीक है कि सीग ऐंटीलोप की प्राय सभी जातियो में विद्यमान हैं और यह भी कहा जा सकता है, जैसा कि सिम्पसन कहता भी है, कि विभिन्न दिशाओ में विकास की वाध्यता के वावजूद सुरक्षामूल्य (Survival value) के कारण सीग सभी जगह वचा लिए गए हैं, और यह कि कार्य-क्षमता में अपूर्णता होने पर भी इनका महत्वपूर्ण सुरक्षा-मूल्य है, किन्तु यह केवल सभावना है, निश्चित तथ्य नही, क्योकि दूसरे चित्र में कुक्कुटो में हम स्पष्ट रूप मे इसका प्रत्याख्यान पाते हैं। फिर उन हरिणो में, जिनके सीग लगभग न के बराबर हैं (१० और १६) यह कहना एक दम ज्यादती प्रतीत होता है कि विकास की विभिन्न दिशाओ में वाध्यता के वावजूद महत्वपूर्ण सुरक्षामूल्य के कारण सीग सभी जगह वचा लिए गए, क्योकि इनमें ये प्राय समाप्त हैं। यह ठीक है कि सहज चुनाव अपकारक तत्वो या असमर्थ व्यक्तियो को निष्कासित कर देता है, और यह भी ठीक है कि प्राणी प्राप्त सुविधा और अवसर को उपयुक्त से उपयुक्ततर उपयोग करने का प्रयास करता है, किन्तु मौलिक परिवर्तन इनसे एकदम निरपेक्ष है, सापेक्ष नही।

किन्तु इस विषय में और अधिक कुछ कहने से पूर्व हमें म्यूटेशन की परिभाषा निश्चित कर लेनी चाहिए। जैसा कि हम पीछे अनेक स्थलो पर कह आए है, हमारा जेनोटाइप विभिन्न और स्वतत्र इकाइयो का सकलन है और इन स्वतत्र इकाइयो में मिलानेवाली कडियाँ कोई नही हैं, यद्यपि ये आपस में सपर्क में रहती है। म्यूटेशन इन इकाइयो में से एक या अनेक में स्वल्प या गभीर मौलिक परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। यह परिवर्तन, तापमान, ऐक्स-किरण तथा अल्ट्रावायलट किरण इत्यादि के प्रभाव से जेन में उत्पन्न हो जाता है। किन्तु इसकी सभावनाएँ बहुत कम रहती है, और जब कभी यह अस्तित्व में आ भी जाता है तो जैसे भौतिक वातावरण में X किरणें या कॉस्मिक किरणें किसी भी परमाणु पर आकस्मिक प्रहार कर उसे तोड देती हैं उसी प्रकार जेनोटाइप में भी न तो उनका आक्रमण चुनाव द्वारा निर्दिष्ट जेन पर ही हुआ होता है और न उनका प्रभाव ही किसी लाभ-हानि की अपेक्षा रखता है। जब कभी यह परिवर्तन दुहरे (Diploid) प्राणी के जर्मसेल में होता है, वहाँ क्रोमोसोमयुगल के केवल एक सदस्य को प्रभावित करने पर भी, जिस युगल का यह क्रोमोसोम सदस्य होता है उसका परिवर्तित जेन उस

सम्पूर्ण क्रोमोसोम को ही प्रभावित करता है और इस प्रकार उसे इकहरा और (Haploid) भी बना देता है। एक्स-किरणें जेन मे क्रमिक और सहज अन्तर उत्पन्न न कर उसे एकदम तोड देती है, इससे उनसे उत्पन्न परिवर्तन सहज (Spontanious) नही होता। अल्ट्रावायलट (Ultra Violet) किरणे यद्यपि जेन को एक दम तोड नही देतीं और उनसे प्रेरित परिवर्तन सहज सा प्रतीत होता है, किन्तु उसकी गति तीव्र और प्रभाव पर्याप्त गभीर होता है, जितना कि सहज का नही होता। एक्स किरणो से प्रेरित परिवर्तन का अनुपात यद्यपि किरणो की सख्या के अनुपात में होता है, किन्तु वहाँ इस बात की कोई अपेक्षा नही रहती कि क्रोमोसोम कितने समय तक उनसे प्रभावित हुआ या किरणो का लहर प्रसार (wave length) कितनी थी, जबकि अल्ट्रावायलट किरणो में समय और लहर प्रसार का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। वास्तव में अल्ट्रावायलट किरणें बहुत कम प्रभावशाली होने से अनेक बार काफी गभीर परिवर्तनो की कारण नही होती। किरणो के अतिरिक्त तापमान का भी म्यूटेशन में महत्वपूर्ण स्थान है। जितनी गर्मी ड्रोसोफिला के स्वभावानुकूल है उस से अधिक गर्मी मिलने पर उसमें मौलिक परिवर्तन की सभावनाएँ बढ जाती हैं। म्यूटेशन यद्यपि रासायनिक द्रव्यो से भी उत्पन्न किया जा सकता है, किन्तु इस प्रकार के प्रयोगों की सभावनाएँ प्रकृति में बहुत कम ही रहती है। इसमे म्यूटेशन में एक्सकिरणें, अल्ट्रावायलट, गामा तथा कॉस्मिक किरणें, और तापमान बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

किन्तु म्यूटेशन की परिभाषा करने के लिए उनकी सीमाए निश्चित करनी आवश्यक हैं। बहुत से जेनेटिस्ट म्यूटेशन के अन्तर्गत उन परिवर्तनो को भी ले लेते हैं जो मौलिक नही हैं और जो परिवृत्ति के इन प्रभावो से कोई सबध नही रखते, दूसरे शब्दो में जो विजातीय मिलन जन्य क्रोमोसोम अथवा जेन की सख्या वृद्धि से सम्बन्ध रखते है। किन्तु हम म्यूटेशन को केवल मौलिक परिवर्तन ही कहेगे, जो परिवर्तन मौलिक न हो कर सख्या इत्यादि से सबध रखते हो उन्हें हम मौलिक परिवर्तन या म्यूटेशन नही कहेगे। किन्तु यदि किसी क्रोमोसोम में X किरणो की चोट से जेन-सख्या घट जाती है तो उस क्रोमोसोम का अपने युगल साथी से भिन्न हो जाना स्वाभाविक ही रहेगा, उस अवस्था में केवल सख्या मे परिवर्तन भी मौलिक परिवर्तन का कारण हो सकेगा। इस प्रकार हम म्यूटेशन के अन्तर्गत व्यक्ति में निहित वैविध्य की सभावनाओ और सख्या परिवर्तन को (यदि वह विजातीय मिलन से हुआ हो) नहीं रखते। म्यूटेशन तो प्राणी को मूलत ही अपने पूर्वजो से भिन्न कर देता है, फिर चाहे वह भिन्नता कितनी भी स्वल्प क्यो न हो। किन्तु

म्यूटेशन के ऐसे उदाहरण भी सभव है जिनमें म्यूटेशन की उत्पत्ति एकदम आकस्मिक हो और यह कहना कठिन हो कि इसका क्या कारण है। ऐसे उदाहरण वडे वडे इज्जडो में प्राय ही पाए जा सकते हैं। डन (Dunn) के अनुसार, इस प्रकार से म्यूटेशन से प्रभावित व्यक्ति न तो परिवर्तित कहे जा सकते हैं, न अपने जातीय इतिहास से ही उन्हे सम्वन्धित किया जा सकता है और 'न उन्हे अपनी जाति या विजातीय मिलन में निहित वैविध्य की सामान्य सभावनाओ का ही परिणाम कहा जा सकता है' ('—' यशदेव)। वह कहता है कि वनस्पतियो या पशुओ के जातीय जीवन में ऐसे परिवर्तनो की घटनाए प्राय ही घटती रहती है। उदाहरणत, १८वी शताब्दि के उत्तरार्ध में इगलैड के एक किसान के घर एक मेढा[1] उत्पन्न हुआ जिसकी टाँगें बहुत अधिक छोटी और झुकी हुई भी थी। किसान ने उसे ध्यान से पाल लिया और उससे उसकी जाति वढ़ानी प्रारम्भ की, किन्तु लगभग ६० वर्ष पूर्व (१९३६ में यह लिखा गया था) यह जाति समाप्त हो गई, किन्तु लगभग ५० वर्षों वाद अथवा दस वर्ष पूर्व एक नार्वेजियन किसान के घर एक और इसी जाति की सन्तान उत्पन्न हुई जो कि लगभग उसी का नवीन सस्करण थी। इस व्यक्ति का पुन नवीन व श वढाया जा रहा है। इस उदाहरण में स्पष्ट ही परिवृत्ति का कोई हाथ प्रतीत नही होता यद्यपि किरणो इत्यादि का प्रभाव अवश्य सभावित है। किन्तु दो बार एक ही प्रकार की म्यूटेशन की किरणो के प्रभाव से उत्पत्ति असभव नही तो आश्चर्यजनक अवश्य है। यदि उसे किसी गौण जेन के प्रमुख होने का प्रभाव कहा जाए तो अधिक उपयुक्त होगा क्यो कि इस जाति के मेष मलाया में पहले से ही विद्यमान थे, जिससे सभव है इन दोनो जातियो का एक ही मूल हो और इगलैंड तथा नार्वे की भेड जातियाँ अपने मूल से धीरे-धीरे भिन्न हो गई हो। किन्तु इससे भी आश्चर्यजनक उदाहरण और हैं जो कम से कम यह अवश्य प्रमाणित करते हैं कि उनकी उत्पत्ति में परिवृत्ति का कोई हाथ नही है। दुलकी चाल रहित घोडे, दो अगूठे वाली विल्ली, श्वेत रोम और लाल आँखो वाले चूहे तथा सीग युक्त जातियो से सीग रहित सन्तानें ये सभी मौलिक परिवर्तन जन्य जातियाँ अपनी ही प्रतिनिधि सन्तानें उत्पन्न करती है, ये (True breader) है। इनमें चूहे में श्वेतता के अतिरिक्त किसी भी म्यूटेशन में परिवृत्ति के समीकरण की सभावना नही कही जा सकती, यद्यपि इनकी ठीक प्रतिनिधि सन्तानें उत्पन्न करना वताता है कि यह समीकरण मौलिक परिवर्तन का ही द्योतक है, जो कि लाल आँखों से और भी अधिक निश्चित हो जाता है।

---

[1] नर भेड।

दो अगूठे वाली बिल्ली को भी किसी न किसी प्रकार से परिवृत्ति का (किरणो इत्यादि का) प्रभाव कहा जा सकता है, इसी प्रकार सीग युक्त जातियो मे सींग रहित व्यक्तियो के लिए भी, किन्तु दुलकी चाल रहित घोडो को एक दम आकस्मिक ही कहा जा सकेगा जो रज-वीर्य के मिलन की विशेष मिलन--परिस्थिति (भौतिक या रासायनिक परिस्थिति नही) के कारण उत्पन्न हो गए। इसे जेन की अपनी ही रासायनिक प्रक्रिया से उत्पन्न केवल अभिव्यक्ति में परिवर्तन भी कहा जा सकता है। वास्तव में प्रत्येक जाति या वर्ग में ऐसे जेन होते है जो अधिक परिवर्तनशील होते हैं जब कि अधिकांश जेन परिवर्तन से बचते हैं। इनके अनुपात से ही जाति के सभावित परिवर्तनो की गति निर्धारित होती है। किन्तु परिवर्तनो की इस गति का ठीक गणित खोजना काफी कठिन और उलझन पूर्ण कार्य है क्योकि सभी जेन समान रूप से प्रभावित नही होते, और क्योकि उनका प्रभाव मिश्रित और बहुमुखी दोनो ही प्रकार का है, इसलिए जेनोटाइप की सामान्य और एक जेन की विशेष परिवर्तन शीलता का अनुमान करना सहज नही है। जब प्रत्येक जेन एक पृथक इकाई है और प्रत्येक की परिवर्तनशीलता भिन्न है तो जेनोटाइप की सामान्य गतिका अनुमान बहुत अधिक कठिन है, क्योकि उसके लिये न केवल प्रत्येक व्यक्ति-जेन का निकट परिचय ही आवश्यक है प्रत्युत कठिन गणित का प्रयोग भी आवश्यक है। उस अवस्था में भी यह अनुमान केवल उसके परिवृत्ति से अप्रभावित रहने पर ही ठीक हो सकता है। जहाँ तक एक जेन की गति का सबन्ध है वहाँ भी अनेक उलझनें रहती है, प्रथम तो प्रत्येक जेन आयु के विभिन्न स्तरो पर विभिन्न अभिव्यक्तियाँ करता है, दूसरे, उसके प्रभाव की सीमाए निश्चित करना भी प्राय असभव कार्य है, और आगे जितनी दूर तक भविष्य में हम झाक सकते हैं, यह असभव रहेगा, ऐसा प्रतीत होता है। मनुष्य जाति में भी हम प्राय देखते है कि आयु के एक स्तर पर बच्चें के कान पहिले छोटे और सीधे है जब कि दूसरे स्तर पर बडे और टेढे हो सकते है। इसी प्रकार अन्य अगो के लिये भी, रग में भी अनेक वार बिल्कुल परिवर्तन हो जाता है। इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि कभी-कभी बच्चा पहिले माता या पिता पर होता है जब कि बाद में पिता या माता पर और कभी-कभी बिल्कुल किसी अन्य पर हो जाता है। इतना ही नही, कभी-कभी आयु के साथ-साथ क्रोमोसोम और जेन इत्यादि की सख्या और स्थिति इत्यादि में भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे इन्ही दिनों स्त्री के पुरुप और पुरुप के स्त्री हो जाने के दो चार समाचार आए हैं। जो कि

प्राय १५-१६ वर्ष की आयु के बाद परिवर्तित हुए हैं। स्पष्ट रूप मे ये उदाहरण सख्या परिवर्तन और अभिव्यक्ति परिवर्तन के हैं। इसी प्रकार यदि अत्यल्प परिवर्तन होता है तो यह जानना कठिन है कि इस परिवर्तन मे किस जेन ने कितना और क्या भाग लिया। यदि एक ही जेन के प्रभाव को देखना हो तब तो यह कार्य बहुत ही कठिन हो जाता है, क्योकि यह प्रभाव इतना कम होता है कि उसे जानने के लिए बडे तीव्र अणुवीक्षणो की आवश्यकता हो सकती है।

मौलिक परिवर्तन से सबधित अनुसधानो की सबसे बडी विशेषता यह है कि इनसे विकासवाद की अब तक की कल्पना में निहित 'प्राणी के लाभ' की धारणा समाप्त हो गई है। अब यह एक दम निश्चित है कि म्यूटेशन का कारण किसी भी प्रकार का चेतन या अचेतन प्रयास नही है और न किसी प्रकार का चुनाव ही। वास्तव में अच्छी प्रकार से अपनी परिवृत्तियो में सुरक्षित और उनके अनुसार ढली हुई जातियो में मौलिक परिवर्तन सदैव एक अपकारक तत्व के रूप में ही आ सकता है, क्योकि तब वे परिवृत्ति की सापेक्षता में परिवर्तित न होकर नये सिरे से अपने आपको उसमें ठीक बैठाने में कठिनाई पाएगी। सभव है उनके लिए यह परिवर्तन पूर्ण मृत्यु का भी कारण बन जाए और वह जाति धीरे धीरे जीवन के प्रगतिशील क्षेत्र से बहिष्कृत कर दी जाए।

इसके विपरीत आवश्यकता होने पर भी अनेक बार प्राणियो में परिवर्तन नही होता और वह जाति जो एक समय मे अपनी परिवृत्ति में उपयुक्ततम रही होती है, पैरो तले से उपक्तता के लिए सापेक्ष जमीन खिसक जाने से, अनुपयुक्त हो जाती है और इस प्रकार अस्तित्व के क्षेत्र से पराभूत करके निकाल दी जाती है। रूपकात्मक अभिव्यक्ति में हम कह सकते हैं कि उसके पैरो तले की जमीन खिसक जाती है जब कि उसके पैर नवीन के अनुसार नही ढल पाए होते, उसके खाद्य भडार की सब वस्तुए बदल जाती हैं जब कि उसके स्वाद की प्रकृति तथा पाचनशक्ति उसके अनुसार नही बदल पाई होती। दूसरे शब्दो में, वह उपयुक्तता के शिखर से गहरी तलहटी में धकेल दी जाती है। उस अवस्था में वह जाति समाप्त तक हो सकती है यदि वह अपनी बदली परिवृत्ति के अनुकूल अपने जेनोटाइप में सभावनाए नही रखती या उनका उपयोग उसके अनुसार नही कर पाती। किन्तु पुन उपयुक्तता की चोटी पर पहुचने के लिए, दूसरे शब्दो में अपने पैरो को उस तल के और मुह को उस स्वाद तथा पाचन शक्ति को उस भोजन के अथवा अन्य उपयोग के पदार्थों का

अधिक से अधिक लाभ उठा सकने के उपयुक्त बनने के लिए न केवल प्राणी के लिए अपने जेन भडार में परिवर्तन करना ही अवश्यक हो जाता है प्रत्युत प्रवृत्तियो में परिवर्तन भी अनिवार्य हो उठता है, जिनमें एक सर्वथा उसके वस के बाहर है और दूसरा एक सीमा तक प्रयास साध्य है। जबकि प्राणी के जेनोटाइप में परिवर्तन प्राणी के लिए नवीन शिखर या घाटी के द्वार खोलता है वहाँ दूसरा परिवृत्ति का उसे नवीन चोटी पर पहुचने का आव्हान करता है।

नवीन उपयुक्तताओ की सभावनाओ का अर्थ है असीम अभुक्त परिवृत्तियो अथवा अनुपयुक्त रूप से अध्युषित परिवृत्तिया की विद्यमानता की सभावनाओ का होना, दूसरे शब्दो में, जेंज और परिवृत्ति की असख्य सापेक्ष स्थितियो की सभावनाए, जो अभीतक चरितार्थ नही की गई। इसका केवल यही अर्थ है कि प्राणी की प्रकृति और परिवृत्ति में एक सापेक्ष सबध है, यदि प्राणी की प्रकृति में परिवर्तन हो जाए तो परिवृत्ति में परिवर्तन हुए बिना भी सबध की सापेक्ष स्थिति मे अन्तर आ जाएगा और इस प्रकार एक अन्य सापेक्ष सबध अस्तित्व में आ जाएगा। क्योकि प्रत्येक प्राणी में असख्य जेन है और प्रत्येक जेन की प्रतिलिपियाँ और असख्य सबध—सभावनाए हो सकती है इससे असख्य भिन्नताओ से युक्त प्रतिलिपियो की सभावनाए हो सकती हैं। इसी प्रकार विशेष परिवृत्तियो मे उन्हें अध्युषित करने वाले सभी प्राणी उन परिवृत्तियो में उपयुक्ततम नही होते और इस प्रकार उनके सबधो में सुधार की अथवा उपयुक्तता की मात्रा में अधिक विभिन्न स्तरों के जेनोटाइप की सभावनाए भी निहित हैं। इसका एक प्रमाण यह भी है कि विदेशो से लाये गए अनेक पौधे अपनी जन्म भूमि से अधिक अन्य देश की पृथ्वी पर फूलते है और जहाँ वे इस प्रकार अधिक उपयुक्त होते हैं वहाँ वे कम उपयुक्त पौधो को अस्तित्व के क्षेत्र से निकाल फैंकते है। अर्थात न केवल यही कि उनकी उत्पत्ति की अधिक ठीक परिस्थितियां होने पर भी उनकी वहाँ कभी उत्पत्ति नही हुई, अथवा उनकी उत्पत्ति की पूरी सभावनाए होने पर भी वे कभी क्रियान्वित नही हुई प्रत्युत यह भी कि उनमें उत्पन्न प्राणी एक तो अनुपयुक्त रूप से उसे अध्युषित किये रहे और दूसरे अनेक सभावित सबधो को शून्य छोडे रहे। इससे यह भी परिणाम निकलता है कि 'जो हो सकता है वह अवश्य होता है' का सिद्धान्त गलत है। यह केवल सयोग है, यद्यपि ठीक कारण – कार्य सबध से बँधा हुआ, कि एक घटना

घटित हो जाती है और दूसरी ६६ केवल प्रतीक्षा में रह जाती हैं। जब एक पौधे की उत्पत्ति की उपयुक्ततम संभावनाए भारत में है जब कि उससे बहुत कम उपयुक्त इगलैंड में, और तब भी वह इगलैंड में ही उत्पन्न होता है तो यही कहा जाएगा कि सयोगवश, यद्यपि किन्ही निश्चित कारणो से, वह पौधा इगलैंड में उत्पन्न हो गया और भारत में उत्पन्न नही हुआ। यह विरोधाभास सा है किन्तु यह हम फिर निश्चित रूप से कहेंगे कि जो होता है न तो उसका होना आवश्यक था और न जो नही होता उसके होने की सभावनाए नही थी, इस लिए, यह केवल सयोग है कि असंख्य समान सभावनाओ में से एक सभावना क्रियान्वित हो जाए और शेष प्रतीक्षा में पडी रहें। +

अस्तु, प्राणियो के विभिन्न वर्ग और जातिया जेंज़ की सख्या और प्रकृति में बहुत भिन्न होती है, इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति के जेन इस प्रकार समवेत होते है कि उसकी उपयुक्तता-अनुपयुक्तता उसके सम्पूर्ण जेनोटाइप की सामान्य विशेषता पर निर्भर करती है। विकास या परिवर्तन प्राणी में केवल जेंज़ की सख्या को घटाता बढाता ही नही है उनको समवेत और शृखलित भी करता है। इस एक उपयुक्त अवस्था से दूसरी अधिक उपयुक्त अवस्था में सक्रमण भी अन्तर काल में अनेक विषमताएँ उत्पन्न करता है, क्योकि इसके लिए जेनोटाइप का पूर्णत नव-निर्माण करना पडता है जो कि दो उपयुक्तताओ के अन्तर में प्राणी को असन्तुलित रखता है। इस प्रकार उस जाति में, जो अपनी परिवृत्ति में पूर्णत उपयुक्त है, म्यूटेशन का परिणाम यदि अन्तत लाभदायक भी होने को हो, एक बार हानिकारक अवश्य होगा। इसलिए उनमें इस परिवर्तन को न तो प्राकृतिक चुनाव ही कहा जा सकता है और न सहज चुनाव (Adaptation)।

प्राकृतिक चुनाव के विरुद्ध मुख्य आपत्ति यह है कि उसमें अनेक पूर्व-कल्पनाओ की अवैज्ञानिकता निहित है। जैसे, उसके लिए पहिले से ही यह

+ भूत विज्ञान में क्वांटम् सिद्धान्त (Quantum theory) का Law of Probability भी कुछ इसी प्रकार के मत की पुष्टि करता है, किन्तु आईंस्टीन की unified theory, जो अभी तक पूर्ण विकसित नही हुई, 'सयोग शब्द का प्रत्याख्यान करने के लिए कटिबद्ध है, यद्यपि अभी तक आईंस्टीन इसमें बिल्कुल भी सफल नही हो सके। एक तरफ जब कि Whitehead और Eddington इत्यादि दार्शनिक इसका तीव्र समर्थन कर रहे हैं, आईंस्टीन सयोग शब्द को साईंस में उपहासास्पद समझते है।

मान लेना पडता है कि प्राणियो में सामान्य परिवर्तन (विजातीय मिलन इत्यादि से) तथा मौलिक परिवर्तन (mutation) की सभावनाएँ अनिवार्य रूप से निहित है, जिन पर कि चुनाव क्रियान्वित होता है। किन्तु भिन्नताओ को उत्पत्ति, फिर चाहे वे कैसी भी क्यो न हो, किसी भी प्रकार के चुनाव से प्रेरित नही होती, यह बात और है कि यह उत्पत्ति प्राकृतिक चुनाव की कसौटी पर कसी जाती है। इस प्रकार प्राकृतिक चुनाव विकास का कारण नही है, विकास तो मुख्यत मौलिक परिवर्तन और सामान्य परिवर्तन Hybridizdation and Recombination के द्वारा क्रियान्वित होता है। प्राकृतिक चुनाव का कार्य तो केवल छँटनी करना है। जैसा कि हम पीछे कह आए हैं, मौलिक परिवर्तन परिवृत्ति में उपयुक्त जातियो के लिए प्राय ही हानिकारक होता है, प्राकृतिक चुनाव उस अवस्था में उन जातियो को अस्तित्व विहीन कर देता है। आश्चर्य की बात है कि आज भी बहुत से वैज्ञानिक विकास का कारण सहज चुनाव या प्राकृतिक चुनाव को मानते हैं, जिसका अर्थ है कि प्राणी का प्रयास परिवृत्ति की सापेक्षता में विकास-प्रक्रिया को क्रियान्वित करता है। निश्चित रूप से हम प्राकृतिक चुनाव की शक्ति में अविश्वास नही करते, किन्तु वह अस्तित्व में आ ही तब सकता है जब परिवर्तमान व्यक्ति या जातियाँ उसे क्रियान्वित करने के लिए अस्तित्व में आ जाएँ, जहाँ तक सहज चुनाव का सबध है, हम उसे पूर्णत अस्वीकार नहीं करते, इसका प्राणी के परिवृत्ति को अपने लिए उपादेय बनाने के प्रयास के रूप में महत्वपूर्ण स्थान हैं, किन्तु जैसा कि हम पीछे देख आए है (अध्याय दो) यह स्वय अन्तत प्राणी की शारीरिक प्रकृति और जेनोटाइप (अध्याय ४) से निर्धारित होता है।

यह प्राय सर्व-विदित है कि डारविन ने सहज चुनाव का सिद्धान्त माल्थस (Malthus) से ग्रहण किया था, जैसा कि उसने स्वय भी ओरिजिन ऑफ स्पीशीज में लिखा है, जिसके अनुसार सभी प्राणी अधिक से अधिक सन्तानोत्पत्ति करने का प्रयास करते है, जिससे वे अधिक से अधिक प्रदेश घेर सकें और अपकारक परिस्थितियो से बच सकें। इस धारणा के मूल में सामान्यत उस शताब्दि के सघर्षशील और क्रान्तिकारियो के युग के 'जीवन के लिए सघर्ष' और 'उपयुक्त तम की अवस्थिति' तथा 'जीवो जीवस्य भोजनम्' इत्यादि नारे कार्य कर रहे थे, जो कि प्राकृतिक चुनाव तथा सहज चुनाव के भी प्राण हैं। क्योंकि इनकी धारणा के मूल में, जैसा कि डारविन 'ओरिजिन आफ स्पीशीज़' में जीवन के लिए सघर्ष को

सार्वभौमिकता बताते हुए कहता है, शक्तिशाली की विजय और निर्बल की पराजय का भाव कार्य कर रहा था।

किन्तु, सिम्पसन और डोब्जहेस्काई के अनुसार, सहज चुनाव को आज इस रूप में कोई भी स्वीका‹ नही करता। इमके विकल्प में वे इसकी दूमरी व्याख्या देते हैं,—वे कहते हैं, एक वस्ती Population में विभिन्न जेनो—टाइप हो सकते है जो कि वस्ती के सामान्य जेन-भडार में अपना दाय भाग देते हैं, जिम भडार में मे मन्तानें अपना प्राप्य पाती है। इनमें कुछ व्यक्ति (Genotype) अपेक्षाकृत अधिक सशक्त होते है और अधिक सन्तानें उत्पन्न कर सकते हैं जब कि दूसरे कम उत्पन्न कर पाते हैं। जेनोटाइपो की यह भिन्नता उनकी मापेक्ष अवस्थिति की उपयुक्तता का अनुपात निर्धारित करती है, इसी को प्राकृतिक चुनाव कहा जा सकता है। इस प्रकार प्राकृतिक चुनाव-जन्य उपयुक्तता अधिक सन्तानोत्पत्ति पर निर्भर करती है इत्यादि। किन्तु यदि सुरक्षात्मक मूल्य और प्राकृतिक चुनाव का अभिप्राय प्राणी की परिवृत्ति विशेष में उपयुक्तता समझा जाय तो हमे कोई आपत्ति नही है, क्योकि यह प्राणी की अप्रयान-जन्य-यान्त्रिक-योग्यता पर निर्भर है, जो उसे उसके जेनोटाइप के ऐतिहासिक निर्धारण और परिवृत्ति के अनुसार प्रवृत्तियो के विकास के आधार पर प्राप्त होती है। इसमें इस बात का भी बहुत बड़ा महत्व है कि वह जाति सख्या के अनुपात में कितने विस्तार में फैली हुई है, उसके विभिन्न वर्गो के बीच कैसी दैशिक बाधाएँ हैं और उसका सख्याबल कितना है। कोई जाति कम उत्पादक होकर भी यदि एक घिरी हुई और उपयुक्ततम परिवृत्ति में रहती है तो उसका जीवन अत्यधिक सुरक्षित होगा और उसमें परिवर्तन की गति अत्यन्त धीमी होगी जब कि अधिक सख्यावाली विस्तृत प्रदेश में फैली जाति में परिवर्तन की गति तीव्र और कभी उपकारक तथा अपकारक होगी। इस जाति के स्तर भी अनेक होगे। किन्तु छोटी और परिवृति में उपयुक्ततम जाति में दूसरी कमी होती है, वह परिवृत्ति में परिवर्तन आने पर अपना अस्तित्व अक्षुण्ण नही रख पाती। किन्तु सिम्पसन या डोब्जहेस्काई जो अधिक सन्तान उत्पन्न करने की बात करते हैं वहाँ जाति के स्थान पर व्यक्ति आ जाता है, जैसे—'जो व्यक्ति अधिक सशक्त होते है वे अधिक सन्तानें उत्पन्न कर सकते हैं' इत्यादि, किन्तु सन्तानो की अधिक या कम उत्पत्ति का महत्व व्यक्ति के लिए न होकर जाति के लिए होता है, व्यक्ति के लिए तो महत्वपूर्ण केवल अपनी वासना तृप्ति और दीर्घजीवन का उपभोग है। जो भी हो, डारविन 'जीवन के लिए सघर्ष' को जो इतना अधिक महत्व देता

था, उसे आज सभवत कोई भी स्वीकार नही करता, क्योकि प्राकृतिक चुनाव के लिए यह आवश्यक नही है कि उसमें सघर्ष का कोई योग हो ही, प्राकृतिक चुनाव, जो कि डारवीनियनिज्म की रीढ थी, आज न तो वह अर्थ ही रखता है और न वह महत्व ही। सहज चुनाव में अनेक तथ्य काम करते है, जैसे समान क्रोमोसोम युगल वाली (Homozygous) जाति में अपकारक (lethal) जेन की उत्पति उसके लिए पूर्णत घातक हो सकती है जब कि असमान क्रोमोसोमवाली (Heterozygous) उस विपत्ति में से बच निकलती है। इसी प्रकार, सम्भव है कोई अपने जेनोटाइप में परिवर्तन की सभावनाए रहने पर भी कम सन्तानोत्पादन के कारण समाप्त हो जाय, अथवा सम्भव है उसको अपने विस्तार के लिए प्रदेश और भोजन के लिए उपयुक्त सामग्री न मिल सके और वह समाप्त हो जाय। दूसरी ओर, कम सन्तानोत्पादन के बावजूद किसी जाति के लिए सम्भव है कि वह प्राकृतिक चुनाव की कुदृष्टि से बची रहे। इस प्रकार अधिक सन्तानोत्पादन को हम भी जाति के अस्तित्वमूल्य के लिए महत्वपूर्ण समझते है, किन्तु इतना अधिक नही जितना अन्य अनेक वैज्ञानिक। सबसे बडी बात यह है कि इसको हम किसी प्रकार के निहित उद्देश्य के द्वारा प्रेरित नही समझते।

अब तक हम पर्याप्त विस्तार से यह दिखा आए है कि विकास के मूल में प्राणी के पुनरुत्पादक पदार्थ या जेनोटाइप में यान्त्रिक और आकस्मिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण भाग रहता है। किन्तु सिम्पसन के विचार में विकास की प्रक्रिया उभय-पक्षीय है—आकस्मिक और यान्त्रिक भी तथा निर्दिष्ट और सोद्देश्य भी। वह कहता है कि जीवन की ऐतिहासिक प्रक्रिया न तो पूर्णत यान्त्रिक और आकस्मिक है और न पूर्णत निर्दिष्ट, प्रत्युत—इन दोनो का विषम सम्मिश्र है। जब कि एक पक्ष को एक स्थान पर प्रधान देखा जा सकता है वहा दूसरे स्थान पर गौण, किन्तु जेनेटिक-सिस्टम मे दोनो अवि-भाज्य रूप से विद्यमान रहते है। सोद्देश्यता का यह तत्व परिवृत्ति के अनुसार ढलने और उसके उपयुक्त होने की प्रक्रिया मे निहित है न कि किसी तथा—कथित जीवन की लहर और निश्चित उद्देश्य की ओर बढने की प्रक्रिया में (निश्चित उद्देश्य की ओर बढने (Finalism) से तात्पर्य है, जीवन की उत्पत्ति और विकास का जीवन की मूल प्रकृति मे ही निहित होना)। किन्तु, सिम्पसन के ही शब्दो में, यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब जेन में परिवर्तन की प्रक्रिया एक दम आकस्मिक है, जैसा कि प्रमाणित किया जा चुका है, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि इसमें उपयुक्ततम स्थिति की प्राप्ति के लिये प्रयास का भी कुछ स्थान है और यह प्रयास इसे एक सुनि-

श्चितता तथा दिशा देता है ? वह अन्यत्र कहता है कि विकास में एक निश्चित क्रम है, उसे आकस्मिक और विशृंखल नही कहा जा सकता, चाहे वह उतना निश्चित और नियोजित नही है जितना उसके लिये कहा जाता है।

यहाँ फिर वही भूल है जिसका सकेत हम पिछले अध्याय में कर आए हैं—इसमें कारण और कार्य को घपला दिया गया है और इस प्रकार कार्य की गलत व्याख्या की गई है और कारण को भुला दिया गया है। यह ठीक है कि विकास और मौलिक परिवर्तन कुछ नियमित और निश्चित दिशा की ओर तथा कुछ क्रम से होते है, क्योकि उनमें इस नियमितता की कुछ सभावनाए है जिसका कारण उनके जेनोटाइप की रासायनिक प्रकृति है, जो एक प्रकार से क्रियान्वित हो सकती है और दूसरी प्रकार से नही हो सकती। जैसे मछली के जेनोटाइप में कभी ऐसा परिवर्तन नही हो सकता कि उससे मनुष्य उत्पन्न हो सके और अमोयवा के भेडिया उत्पन्न हो जाए, यद्यपि मछली के जेनोटाइप में, या किसी भी प्राणी के जेनोटाइप में परिवर्तन की ओर प्रकारो की असख्य सभावनाए रहती है। यद्यपि मछली के जेनोटाइप में मनुष्य की उत्पत्ति की सभावना विद्यमान है, तभी मछली और मनुष्य के बीच हम शृखला मान सकते है, किन्तु यह सभावना अनेक क्रमिक सभावनाओ के क्रियान्वित होने के पश्चात् ही क्रियान्वित हो सकती है, जैसे दसवाँ एक के बाद एक दम सभव नही हो सकता जब तक पहले और दसवें के बीच दूसरा, तीसरा और नवाँ क्रम में नही आते। इस प्रकार मछली के जेनोटाइप में मनुष्य की सभावना विकल्प से और असख्य क्रमिक अन्तरायो के साथ विद्यमान हैं। इसी प्रकार हमारी पृथ्वी पर जीवन की एक विशेष भौतिक प्रकृति है जो हमारी पृथ्वी की और उसकी खगोल से सापेक्ष भौतिक स्थिति की सापेक्षता में निर्धारित होती है। क्योकि यदि हमारी पृथ्वी के कीचड को सूर्य की विभिन्न किरणो का सपर्क प्राप्त न होता तो सभवत कभी भी जीवन की उत्पत्ति न हो पाती। सभव है किसी और तारे में, यदि किसी में जीवन का अस्तित्व है तो, जीवन की सर्वथा भिन्न और अकल्पनीय स्थिति और प्रक्रिया हो और सर्वथा भिन्न सभावनाए हो। निश्चित रूप से हम उन सभावनाओ को इस पृथ्वी पर कभी भी क्रियान्वित होते नही देख सकते, क्योकि हमारी पृथ्वी की सभावनाए उसकी अपनी प्रकृति और परिवृति के साथ बँधी हुई हैं, और हम स्वय इस

× विकल्प से इसलिए क्योकि विकास केवल मनुष्य की ओर ही नहीं हुआ, सम्भव था मनुष्य कभी भी उत्पन्न न होता।

पृथ्वी की प्रकृति के एक अंग हैं। इस प्रकार यह केवल जीवन में नहीं प्रत्येक कण में उसकी विकास शृखला है और उसकी निश्चित सभावनाए हैं। इसीलिए किसी भी प्रकार का परिवर्तन किसी भी प्राणी में एक दम विशृखलित सन्तान सभव नही कर सकता। यदि कोई विशृखलता कभी देखी जाती है, जैसे किसी के दो सिर वाले बच्चे की उत्पत्ति या नाक इत्यादि का एक से अधिक या अपने स्थान से हट कर होना इत्यादि, तो ऐसे बच्चे या तो मृत ही उत्पन्न होते हैं या शीघ्र ही मर जाते हैं, इसका कारण यह है कि जेन अपनी अभिव्यक्ति और विकास का स्वाभाविक अवसर न प्राप्त कर सकने से अपनी प्रतिलिपि और अतिरिक्त उपज को उत्पन्न नही कर पाते; इसीसे विकास कभी भी विशृखलित नही हो सकता। किन्तु प्रश्न यह है कि विकास और मौलिक परिवर्तन की कारण भूत प्रक्रिया की कोई योजना, उद्देश्य या शृखला है ? क्या परिवर्तन सदैव एक ही निश्चित और निर्दिष्ट सभावना से युक्त है ? इसका उत्तर हमें कभी भी सकारात्मक नही मिल सकता। यदि हम किसी सोद्देश्यता या नियमितता और निर्दिष्टता की सभावना मानलें तो न हम यही कह सकते हैं कि जो हो सकता है वह अवश्य होता है और न यही कि असख्य समान सभावनाओ में से किसी का भी क्रियान्वित-होना केवल सयोग है, क्योंकि तब 'हो सकने' का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। सिम्पसन का भी निर्दिष्टता से यद्यपि वही अर्थ नही है जो हमारे इस वाक्य से प्रतीत होता है, किन्तु जिस निर्दिष्टता और निश्चित दिशोन्मुखता (Orientation) की वह बात करता है, वह कितने ही वैज्ञानिक ढग से प्रस्तुत की जाने पर भी ध्यान आकर्षित किये बिना नही रहती।

वास्तव में यह केवल जेन और परिवृत्ति का आकस्मिक और सर्वथा अनियमित सघर्ष है अथवा जेन के अपने इतिहास की आकस्मिक और अनिर्दिष्ट प्रक्रिया है जो एक प्रतीयमान क्रम में अथवा नियमितता में परिणत होती है। शृखला और नियमितता के पक्षपाती इयोहिप्पस (Eohippus) से वर्तमान घोडे तक इस जाति के विकास को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते हैं, किन्तु यह विकास-शृखला उसी प्रकार एक प्रतीयमान परिणति है जैसे मौलिक परिवर्तन के अन्य उदाहरण, जिनमें अनेक बहुत अधिक विच्छिन्न से प्रतीत होते हैं। इयोहिप्पस से घोडे तक का विकास अत्यन्त क्रमिक सा और निर्दिष्ट सा प्रतीत होता है, यह या तो (Ultra Violet) इत्यादि किरणों से एक बार जेनोटाइप के व्याकुल होने से उसकी स्थिर होने तक की रचना हो सकती है अथवा इसे छोटे और सामान्य से मौलिक-परिवर्तनों के कारण घटित कहा जा सकता है। यह प्रतीयमान रूप से नियोजित विकास परिणाम

में अस्तित्व-मूल्य की दृष्टि से प्राय निष्पक्ष सा है अथवा कुछ उपकारक है, किन्तु यह इसकी मूल प्रेरणा और प्रतीयमान शृखला का कारण या परिणाम है, यह कहना ऐसा ही है जैसे कार्य का कारण से अथवा परिणाम का प्रारभ से पहले होना हो सकता है। जातियो में अनेक अन्य मौलिक परिवर्तन, जो कि अनकारक होते हैं, किन अन्त प्रेरणा और योजना से होते हैं? मौलिक परिवर्तन सर्वथा विच्छिन्न और अनियमित होते हैं। ये परिवर्तन भयानक और घातक से लेकर स्वल्पतम और तटस्थ तक हो सकते हैं। इसलिए यह कहने में हमें कुछ सार्थकता प्रतीत नही होती कि विकास में कुछ सुनिर्दिष्टता है। पीछे हमने जो एटीलोप और कुक्कुट के उदाहरण दिए हैं उनसे भी यही बात प्रमाणित होती है।

मै प्राकृतिक चुनाव और सहज चुनाव से इकार नही करता, जैसा कि भ्रम हो सकता है। सहज चुनाव परिवृत्ति की सापेक्षता में प्राणी की वासना तृप्ति की प्रक्रियाओ का निर्धारण करता है, इस चुनाव की छालनी से केवल वही प्रक्रियाए निकल पाती हैं जो वासना-तृप्ति में सहायक और उपकारक होती है जब कि दूसरी पुनकर फेंक दी जाती हैं। इस प्रकार सहज चुनाव का सबध केवल वासना-तृप्तिकरी प्रक्रिया से है स्वय वासना से नही। जैसा कि हैल्व कहता है—प्राणी सीखते हुए (जीवो की बुद्धिमता की परीक्षा लेने के लिए उसे एक विशेष समस्यापिंजर में बद कर दिया जाता है, जहाँ से वह दौड धूप कर निकलता है, दुबारा वह पहले से कम दौडता है और निकलने में सफल हो जाता है, इस प्रकार देखा जाता है कि वह कितनी बारियो में बिना किसी गलती के सीधे द्वार पर ही पहुँचता है) कुछ गलत हरकतें करता है और कुछ ठीक हरकतें करता है, वह कौन सी चीज है जो उसे ठीक हरकतें याद रखने में और गलत भुलाने में समर्थ करती है, अथवा ठीक शब्दो में, गलत हरकतो को निरुत्साहित करती है और ठीक को करने के लिए उत्साहित करती है? क्यो उसे ठीक याद रह जाती है और गलत क्रमश भूलती जाती है। यह समस्या अत्यन्त उलझन पूर्ण है तथा प्राणी व्यवहार के अध्ययन में आगे बढने के लिए इसका सुलझाव आवश्यक है।" हम इस उलझन पूर्ण समस्या का सुलझाव देने का साहस नही करते, किन्तु इसमें सहज-चुनाव (Adaptation) की सभावना निहित प्रतीत होती है। हमारे विचार में सहज चुनाव प्राणी की आत्मव्ययी प्रक्रिया की दिशा का निर्देश करता है, जैसा कि हम विस्तार से पिछले अध्याय में देख आए हैं। किन्तु वहाँ भी हमने यह स्वीकार करने से बार-बार इकार किया है कि सहज चुनाव का स्वय वासना से भी कोई सबध हो सकता है। इसीलिए हम

अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति से, जिसके लिए सहज चुनाव के सिद्धान्त का जन्म हुआ, इस रूप में इन्कार करते है कि वह सार्वभौम है और प्राणी की वासना और प्रक्रिया का निर्देश करती है।

यह एक आश्चर्य की बात है कि मौलिक-परिवर्तन (म्यूटेशन) की प्रकृति के ज्ञान के बाद भी, यह पूर्व कल्पित क्यो कर लिया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक प्रक्रिया और उसका प्रत्येक अग उसके लाभ की दुर्निवार प्रेरणा से ही उत्पन्न हुए होगे। इसके विपरीत प्रवृत्तियो और विकास को वे या तो उसी पूर्व कल्पना पर घटित करने का प्रयास करते है या फिर उसे अपवाद और प्रकृति की भूल कह कर शान्त हो रहते है। यह लगभग जीवन की लहर के सिद्धान्त[1], उसकी सोद्देश्यता और मनस्विता को स्वीकार करने जैसा ही है। डोब्सहेस्काई कहता है कि मिश्रित Hybrid और विशुद्ध (primitive) जातियो और वर्गों में प्राप्य विभिन्नताए प्राय ही ऐसी विशेषताए प्रदर्शित करती है जो सहज चुनाव की दृष्टि से एकदम समस्यात्मक होती है। सहज चुनाव की ओर यह स्पष्ट तटस्थता, जो कि विकास क्रम में उत्पन्न जेनिक भिन्नताए प्रदर्शित करती है, सहज चुनाव को प्राकृतिक चुनाव के द्वारा विकास का एकमात्र कारण समझने वालो के लिए बडी समस्या उत्पन्न कर देती है। वह आगे कहता है—यह एकदम उपहासास्पद प्रतीत होता है कि इस प्रकार शरीर के प्रत्येक भाग को ही इस सिद्धान्त पर परखने की कोशिश की जाय। किन्तु यह भी ठीक है कि प्रत्येक जेन एक ही समय मे शरीर के विभिन्न स्थलो पर अपनी अभिव्यक्ति करता है, इसलिए सहज चुनाव से तटस्थ विशेषता जेन की असख्य अभि-व्यक्तियो में से केवल एक अभिव्यक्ति है। विकास प्रक्रिया में किसी जेन का भाग्य उसके शरीर रूप में आत्माभिव्यक्ति के अस्तित्वमूल्य (Survival Value) से निर्धारित होता है। किन्ही अगो की पूर्णता जाति विशेष को इतनी लाभप्रद हो सकती है कि वह उसके कारण अपनी परिवृत्ति का श्रेष्ठतम प्राप्त करने योग्य हो जाए, किन्तु इसी कारण मे उसके दूसरे अग अप्रयोग के कारण असमर्थ भी हो सकते है (use और disuse)," किन्तु ऐसी असख्य जातियो के विकासो के लिए क्या कहा जाय जाए, जिनमें कोई अग वैसा नही होता? लेखक ने जिन आधारो पर प्रयोग अप्र-योग सबधी इस सिद्धान्त को उठाया है उसी पर अन्य सिद्धान्त और

[1] Elan Vital Bergson इसका प्रमुख समर्थक था।

अधिक उपयुक्त रूप से, स्थिर किये जा सकते हैं। किन्तु इस पर एक आपत्ति उठानी भी आवश्यक है, क्योकि जब वह जेन की असख्य अभिव्यक्तियो की बात करता है जिनमे कुछ तटस्थ और कुछ उपकारक या अपकारक है तब यह केवल जेन का ही कार्य है न कि किसी प्रयोग–अप्रयोग सबधी प्रक्रिया का। वह शायद कहेगा कि जेन की विशिष्ट अभिव्यक्ति ने जो पखो और पैरो पर एक साथ प्रभाव डाला उससे प्रयोग अप्रयोग सबधी प्रक्रिया को अवसर मिला, दूसरे शब्दो में, पख के सशक्त तथा पैरो के निर्बल होने से पक्षी ने पैर पर निर्भर करना इतना कम कर दिया कि वे अप्रयोग से और भी असमर्थ हो गये। किन्तु यह बात सभव होने पर भी जँचती नही, क्योकि पक्षी कितना भी पखो पर निर्भर करें उसे प्रत्येक बार जमीन से उडने के लिए और भोजन प्राप्त करने के लिए तथा सोने के लिएपृथ्वी पर उतरना ही पडेगा। बाज या चील तथा गिद्ध जैसे आकाश में ही या उडते उडते ही भोजन प्राप्त कर लेने वाले पक्षियो के प्राय ही पैर भी खूब सशक्त होते हैं जबकि सिलारा चिडिया के, जिसे अपने भोजन के लिए अवश्य उतरना पडता होगा, पैर अत्यन्त अशक्त होते हैं। पीछे हमने एक ही जेन के कारण बिल्ली के श्वेत होने तथा अधप्राय होने और श्वेत सूअर के एक विशेष पौधा खाने से खुर और हड्डियां गलने के उदाहरण दिये थे। बिल्ली में श्वेत रग सभवत उसमें किसी प्रकार के भी अस्तित्वमूल्य को नही बढाता, यह केवल सबद्ध जेन की यात्रिक अभिव्यक्ति है, और उसी जेन के अन्त:—सघर्ष (Interaction) के कारण या बहुमुखी प्रभाव के कारण उसमें एक विघातक विशेषता, अन्धेपन, की उत्पत्ति भी हो गई। इससे भी अधिक चौंकादेने वाला उदाहरण दूसरा है—र जेन सूअर के रग औरहड्डियो पर एक ही साथ प्रभाव डालता है, अथवा हड्डियां और रग एक ही जेन के प्रभाव-क्षेत्र बनते हैं। किन्तु न तो सूअर उन अपकारक पौधो को खाने से विरत होता है और न अपने जेन की अभिव्यक्ति को ही बदलता है। इस प्रकार न वह हैब्ब की बात मानता है न डोब्जहेस्काई और सिम्पसन की इस प्रकार सफेद सूअर और बिल्ली डोब्जूहेस्काई के पूर्वपक्ष और परिणाम दोनो का खडन करते हैं। डोब्जहेस्काई अपने कथन का आगे समर्थन करते हुए कहता है कि "सहज चुनाव से एक दम तटस्थ प्रतीत होने वाले गुण की उपयोगिता का बहुत स्पष्ट चित्रण जोज और वाकर ने दिया है। प्याज में एक विशेष जेन एल्लैल। और 1 उसकी फुंगस (Fungus) की सापेक्षता मे

दृढता और सामना करने की शक्ति को निर्धारित करते है । सम क्रोमोसोम (Homozygous) (ıı) कलियो का रग सफेद होता है और ये कलियाँ फुगस (Fungus) के आक्रमण की सहज ही शिकार हो जाती है, विषम क्रोमोसोम (Heterogygous) कलियाँ (1ı) कुछ भूरे रग की होती है और फुगस के प्रति अपेक्षाकृत अधिक दृढहोती है तथा समक्रोमोसोम (11) बहुत गहरे लाल रग की होती है और फुगस से आक्रान्त नही होती । इसका कारण यह है कि रगीन कलियो के पत्तो में Protocatechuic तेजाब होता है और यह फुगस के लिए अपकारक होता है।" किन्तु इस मे यह कब प्रमाणित होता है कि समक्रोमोसोम (11) जेनो टाइप की उत्पत्ति का कारण फुगस से बचाव अथवा आत्मरक्षा की प्रवृत्ति है, यदि ऐसा होता तो सम ıı और विषम ı1 की उत्पत्ति होनी ही न चाहिए थी अथवा उन्हे अब तक अपने आप को ढाल लिया होना चाहिए था । स्पष्ट है कि यह पौधा (11) किसी यान्त्रिक प्रक्रिया (किन्ही दो वस्तुओ की क्रिया-प्रतिक्रिया) से इस प्रकार जेन की शारीरिक Phenotypic अभिव्यक्ति करता है, इस यान्त्रिक प्रक्रिया का कोई सुरक्षा-मूल्य भी है या नही, इसकी उसे कोई अपेक्षा नही होती । वास्तव में डोब्जहेम्स्काई भी जेन के परिवर्तन को यान्त्रिक प्रक्रिया-जन्य ही मानता है, और आ-रक्षा आ-मूल्य केवल परिणाम रूप मे महत्त्व रखते है, कारण रूप में नही । जैसा कि हम पिछले अध्याय में भी अनेक स्थानो पर, देख आए है, इनका भी कुछ महत्व अवश्य है, किन्तु यह महत्त्व इनके कारण रूप में होने मे नही प्रत्युत कार्य रूप में होने में है, और इस अन्तर को उपेक्षित करने के कारण घपला उत्पन्न होना स्वाभाविक है ।

इस विस्तृत अध्ययन के पश्चात हम पाते है कि जीवन एक ऐसा अनगढ पदार्थ है जिसकी अपनी कुछ विशेषताए है, किन्तु वह निरन्तर परिवृत्ति के सपर्क में आता है जिसे हम अ × इ के रूप में रख सकते है। किन्तु उसकी विशेष परिवृत्ति के अतिरिक्त कितनी ही सभावित परिवृत्तियाँ भी रहती है जिनके सपर्क में आने की प्रबल सभावनाए होती है। इनके अतिरिक्त वह परिवृत्ति के साथ साथ अपने सबध को निरन्तर क्रियान्वित करता है अर्थात् अ × इ एक नवीन परिणाम उ को धारण करते है। निश्चित रूप मे अब वह अपने पूर्व रूप (अ) से भिन्न है, इसलिए इ के साथ उसकी सापेक्ष स्थिति में भी अन्तर आ जाता है, और इस प्रकार वह अब नवीन पदार्थ के रूप में इ के सपर्क में आता है । इसलिए परिवृत्ति नही भी बदलती तो भी इ की सापेक्ष स्थिति वह नही रहती जो वह अ के प्रसग में थी। अत स्वभावत ही

उसकी सभावनाएं भी बदल जाती हैं। इसलिए न तो कभी इ अ से वह परिणाम ला सकती है जो उ से और न अ इ से उ के समान वस्तु प्राप्त कर सकता है। यह एक सामान्य सी बात है जिसे बहुत ही बड़े रूप में हम मनुष्यो और पौधो के 'एक ही' परिवृत्ति के सपर्क मे उनकी सापेक्षता जन्य भिन्नता में देख सकते है। किन्तु इससे भी आगे बढ़कर यह कहा जा सकता है कि अ कभी भी किसी भी परिवृत्ति में उस स्थिति मे नही हो सकता जो उ किसी भी परिवृत्ति में होगा। किन्तु यह सभव है कि अ इ १ के स्थान पर इ १०० के सपर्क में आए और उ१ के बजाय उ१०० के रूप में परिणत हो। इस प्रकार जीवन के क्रियान्वित होने की असख्य किन्तु निश्चित सभावनाए है जिनमें से किसी एक या किन्ही एक को ही वह क्रियान्वित कर पाता है। इसलिए यह नही कहा जा सकता कि जो हो सकता है वह अवश्य होता है और न यही कि जो होता है उसका होना निश्चित ही था, यह उसके भाग्य में बदा था, इसके अतिरिक्त और कुछ हो ही नही सकता था। तत्व की बात केवल इतनी ही है कि जीवन को अपनी ऐतिहासिक प्रक्रिया में कुछसभावनाओ को क्रियान्वित करने का अवसर मिला और कुछ को नही। आज जीवन की जो स्थिति हमारे सम्मुख जैसी है वह इसीलिए ऐसी है क्योकि सयोगवश—जिसमे कार्य-कारण सबध केवल इतना ही है कि अ×इ१ कारण उ१ में क्रियान्वित होता है उ२ में नही, किन्तु यह केवल सयोग ही है कि अ का सपर्क इ१ से ही क्यो हुआ इ २ से क्यो नही, इसीसे वह सपर्क और फिर अनुगामी सपूर्ण कारण कार्य शृखला कुछ और हो सकती थी और उसके लिए भी उतने ही सयोग थे। इस प्रकार विकास की प्रमुखतम विशेपता है—प्राप्त अवसर और उसका उपयोग। इस 'अवसर-प्राप्ति' और उसके उपयोग में किसी भी प्रकार के प्रयास को लेना अभिप्रेत नही है, यह केवल एक प्रतीक है जिसका अर्थ हमारी पिछली सम्पूर्ण स्थापना के आधार पर ही समझना चाहिए। इस उपयोग और अवसर प्राप्ति में किसी भी प्रकार से उपयुक्ततम अवसर प्राप्ति और उपयुक्ततम उपयोग का अर्थ निहित नही है, जब सयोग ही है सयोग केवल निर्दिष्ट या सोद्देश्य के विपरीत अर्थ में तो कम उपयुक्त और अनुपयुक्त अवसर भी आ सकते है, किन्तु अनुपयुक्त अवस्था में प्राणी या तो समाप्त हो जाएगा अथवा प्रवास करने को बाध्य होगा, जहाँ उसे जीवन निर्वाह का कुछ भी अवसर मिल सकता होगा। यदि उसमें कुछ सभावनाए निहित है जो क्रियान्वित होने पर उस जाति की रक्षा कर सकती है, तो यह केवल सभव है कि वे क्रियान्वित हो जाए, किन्तु इसके लिए भी उतने ही पास हैं कि वे कभी भी क्रियान्वित न हो। इस प्रकार विकास किसी उद्देश्य

अथवा योजना के बजाय अवसर का अनुसरण करता है। जीवन का विस्तार ज्यो ज्यो अधिक होता जाता है त्यो त्यो उसकी सभावनाए भी विस्तृत होती जाती है और विभिन्नताए भी, किन्तु दूसरी ओर वह उन सभावनाओ से वचित भी हो जाता है जिनमे वह एक वार बीत चुका हो अथवा बीत रहा हो। जैसे अ×इ=उ, और कभी भी अब अ और इ सम्मिलित नही हो सकेंगे और अ×इ कभी भी उ नही होगे। इसी के साथ साथ अ के साथ इ के अतिरिक्त और भी कितने ही अवसर सपर्क स्थापित कर सकते थे जिनकी सभावना अ और इ के सपर्क के पश्चात समाप्त हो गई। किन्तु जीवन की विकास-प्रक्रिया में इस गणित से कुछ अन्तर है और वह यह कि अ इ के साथ मिलकर उ का सृजन कर के भी अस्तित्व विहीन नहीं हो जाता जबकि इ अस्तित्व विहीन हो जाती है। किन्तु फिर भी अ अपनी प्रतिलिपियाँ उत्पन्न करता रह सकता है और परिवृत्ति के कुछ वदल जाने पर भी एक सामान्य से परिवर्तन के साथ अपना अस्तित्व बनाए रह सकता है। इस प्रकार यदि यह कहा जाए कि अ×इ उ का सृजन करते रहेंगे और अ अपनी कुछ विशिष्ट सभवनाओ क के साथ अपनी नवीन परिवृत्ति इ१ के अथवा अन्य नवीन सयोगो के सपर्क में आता रहेगा, तो अधिक उपयुक्त होगा।

यहाँ स्पष्टत ही हमने प्रतीयमान रूप से एक विरोधाभासपूर्ण बात कही है, और वह है परिवृत्ति के अनुसार अपने आपको ढालने की प्रक्रिया। यह विरोधाभास इससे पहले अध्याय को ध्यान में रखते हुए तो और भी बडा प्रतीत होता है, यद्यपि हमने इसका इस अध्याय में कुछ स्थानो पर सामजस्य विठाने का प्रयास किया है। किन्तु यदि थोडी सी गभीरता से भी इसे देखा जाए तो इसमें विल्कुल भी विरोधाभास नही है, क्योकि हमने यह तो कभी भी नही कहा कि प्राणी एक दम निर्जीवयत्र है, प्रत्युत यह कि उसकी प्रक्रियाए जिन तत्वो से निर्धारित होती है उनका व्यापार एक दम यान्त्रिक है। पिछले अध्याय में हमने यान्त्रिक प्रतिक्रिया व्यापार (Reflexive Mechanism) का विस्तार से अध्ययन करते हुये बताया था कि प्राणी पीडा और सुख का अनुभव करता है, निश्चित रूप से वह पीडा से बचना चाहता है और सुखानुभूति की आवृत्ति चाहता है, इसने वह उसका कुछ उपाय भी करता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इसे हम विकास का मूल, एक मात्र या प्रधान भी, कारण मानते है। इसका केवल इतना ही अर्थ है कि प्राणी में कुछ सामान्य और शरीरिक परिवर्तन हो जाते है और कभी कभी ये स्थायी भी हो जाते है, किन्तु यह स्थायिता बहुत शीघ्र समाप्त भी हो

सकती है जब उसकी आवश्यकता न रहे। यह परिवर्तन-प्रक्रिया कुछ उतनी ही चेतन है जितनी एक राजकुमार से किसान बनने वाले किशोर में उसके शरीर में धीरे धीरे होते हुए परिवर्तन में होगी। यद्यपि यह परिवर्तन कभी भी जोनोटाइप में प्रविष्ट नही होगा किन्तु उसकी शरीर रचना में अवश्य यह कुछ स्थायिता बना लेगा। किन्तु अविकसित प्राणियो में ऐसे परिवर्तन कुछ और कभी कभी बहुत भी, जेनोटाइप में निहित हो जाते हैं। यहा लाइसैंको का समीकरण और डारविन का सहज-चुनाव दोनो ही बहुत दूर तक चरितार्थ हो जाते ह, किन्तु, जैसा कि सभी जानते है, जितने कम प्राणी विकसित होते है उतनी अधिक इनकी मानसिक प्रक्रिया यान्त्रिक होती है। किन्तु सामान्य परिवर्तन की, जो कि 'प्रयास जन्य' है, आधार भूत और प्रतिनिधि प्रक्रिया को हम एक दूसरे उदाहरण में भी देख सकते है, और वह है अधिक सर्दी या अधिक गर्मी में हमारे शरीर का प्रतिरोध और आत्म सन्तुलन (Equilibrium) स्थापित करने का 'प्रयास'। अधिक ठडी हवा चलने पर हमारे रक्त का दबाव बाहर की ओर को हो जाता है, निश्चित रूप से यह सन्तुलन और प्रतिरोध का प्रयास नही है, यह केवल एक यान्त्रिक प्रक्रिया है। शीत-प्रधान देशो में पशुओ के वडे वडे बाल होना और खुश्क देशो में वनस्पतियो की गहरी जडें और गर्म खुश्क ढेगो में गहरी जडें तथा मोटे पत्ते होना, ये सब उदाहृण इसी प्रकार की यान्त्रिक प्रक्रिया के परिणाम भी हो सकते है, यद्यपि अधिक सभावना यही है कि ये उनके विशेष जेनोटाइप के कारण उत्पन्न हुए और उन देशो में वे स्थायी हो गये जब कि दूसरो में नही हो पाए। अथवा जहाँ ये ऐसे पाए जाते है वहाँ का रासायनिक समीकरण ही ऐसा हुआ कि ये इन विशेषताओ के साथ उत्पन्न हुए। किन्तु इसका प्रयास जन्य होना भी उतना ही स्वाभाविक है, क्योकि शरीर सदैव सामजस्य बैठाने के प्रयास जन्य तनाव में जीवित नही रह सकता, उसमें स्थायी सामजस्य प्रवृत्या ही स्थापित हो जाता है। किन्तु कृमियो, मछलियो और पक्षियो इत्यादि का अपने प्रवल शत्रु से बचने के लिए परिवृत्ति के अनुसार अथवा शत्रु के लिए भय-जनक वस्तु अथवा प्राणी के अनुरूप रग बदल लेना, स्पष्ट रूप से हमारी इस सम्पूर्ण स्थापना को चैलेंज है, किन्तु इसमें अधिक अत्यारोपण ही प्रतीत होता है। क्योकि पहले तो यही कहना कठिन है कि वे अपने शत्रुओ को भी उसी रग के उसी प्रकार के दिखायी पडते हैं जैसे अपने विकासवादी मित्रो को, सभव है वे अपने शत्रुओ के लिए उस प्रकार से भी उतने ही गम्य हो जितने वे हमारे लिए भिन्न होकर होते, दूसरे, सभव है, उनके परिवृत्ति के अनुरूप रग

होने का कारण उनके भोजन इत्यादि का उन पर प्रभाव हो, क्योंकि उनके शरीर का रग परिवृत्ति के समीकरण पर निर्भर करता है। इसका प्रमाण वे कृमि हैं जो यूरोप के औद्योगीकरण से पूर्व श्वेत थे और पश्चात् धूए से काले हो गए। इगलैंड, फ्रांस तथा जर्मनी के इन कृमियो को इस प्रकार बदले देखकर सहज चुनाव के पक्षपातियों ने सोचा कि इसका कारण अवश्य सहज चुनाव ही हो सकता है, किन्तु हैरीसन ने इसका कारण उनके भोजन इत्यादि का धूम्रवर्ण हो जाना तथा उससे कुछ ऐसे रासायनिक परिवर्तन हो जाना दर्शाया है जिन से उनके रग में यह परिवर्तन आया। उसने श्वेत कृमियो को मैंगानीस तथा कुछ और रासायनिक द्रव्यो से मिश्रित भोजन देना प्रारभ किया, इससे अगली ही पीढी में उसने पाया कि उनकी सन्तानें काली थीं और ये मैंगानीज के बिना ही काली सन्तानें उत्पन्न करती थीं। वास्तव में कृमियो में किसी प्रकार के प्रयास की कल्पना एक दम व्यर्थ है, यह केवल 'आत्मवत सर्व भूतेपु' देखने की भूल के कारण उत्पन्न भ्रम है। कृमियो के जीवन की प्रेरणाए हमारे लिए सभवत इतनी अपरिचित और अगम्य भी है कि उनके लिए कोई ऐसा निर्णय देना व्यर्थ है जो उनकी मनस्प्रक्रिया से सबधित है। जहाँ तक विज्ञान की प्रयोगात्मक पहुँच का प्रश्न है, उसके अनुसार उनकी प्रक्रियाएँ यान्त्रिक ही अधिक प्रतीत होती हैं।

किन्तु डोब्जहेस्काई कीटाणुओ मे मौलिक परिवर्तन (Mutation) के कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करता है जो प्रतीयमान-रूप से सहज चुनाव जन्य प्रतीत होते हैं, जैसे कोलन नामक कीटाणु वीरुस (कोलन के लिए घातक कीटाणु) मे, जो कि उनके कोषों में रहते और सन्तानोत्पत्ति करते हैं, प्राय ही आक्रान्त होते रहते है और इस प्रकार समाप्त होने का खतरा मोल लेते हैं। यदि ये रोग-कीट उनमें प्रविष्टि कर दिये जाएँ तो वे अपवादात्मक रूप से ही बच पाते हैं। किन्तु जो कीटाणु बच जाते हैं और सन्तानोत्पत्ति करते है, उनकी सन्तानें अपनी परिवृत्ति में उपस्थित वीरुस के आक्रमण से प्रभावित नहीं होती। Luria के अनुसार, यह सामर्थ्य उनमें मौलिक परिवर्तन (Mutation) से उत्पन्न होती है। यह म्यूटेशन उनमें ल्यूर्या के अनुसार, २ × १०—८ के दर से कीटाणु नाशको (वीरुस) के परिवृत्ति में विद्यमानता से निरपेक्ष रूप में होता है। इससे स्पष्ट है कि वीरुस कीटाणुओ में इस परिवर्तन का कारण नहीं है, प्रत्युत यह कि वह केवल प्राकृतिक-चुनाव का प्रतिनिधित्व करता है। जिन कीटाणुओं में परिवर्तन की उपयोगिता- अस्तित्वमूल्य—कम होगी वे निष्कासित कर दिये जाएगे, जब कि शेष परिवृत्ति की घातकता के लिए दृढ प्रमाणित होंगे।

किन्तु कीटाणुनाशको की विभिन्न जातियाँ हैं जो अपनी शारीरिक-प्रकृति और आकृति में पर्याप्त अन्तर रखती हैं। इस प्रकार इनमें से किसी एक से युक्त परिवृत्ति में जीवित और प्रबल कीटाणु केवल उस वीरूस के लिए ही प्रबल होंगे जो उनकी परिवृत्ति का घातक अंश था जबकि शेष के लिए वे भी उतने ही निर्बल होंगे जितने वे परिवर्तन से पूर्व अपनी परिवृत्ति में उपस्थित शत्रु के लिए थे। इस प्रकार एक ही जाति के कीटाणु विभिन्न शत्रुओं की परिवृति मे अगली पीढियो में प्रतिरोध शक्ति की दृष्टि से भिन्न हो उठेंगे। इस प्रकार यदि ये कीटाणु विभिन्न शत्रुओं की परिवृत्ति में रखे जाए तो उनकी विभिन्न सन्तानें थोडे ही समय में प्राप्त की जा सकेंगी।

क्योकि शत्रु के प्रतिरोध की शक्ति मौलिक परिवर्तन से उत्पन्न होती है, जो मौलिक परिवर्तन स्वय शत्रु की परिवृत्ति में विद्यमानता का सापेक्ष नही, और क्योकि प्रतिरोधक कीटाणु शत्रुओ से बच जाते है, जोकि शेष नही बच पाते, इस लिए स्वभावत ही बडी जल्दी सभी कीटाणुओ को शत्रु—प्रतिरोधक हो उठना चाहिये, किन्तु ऐसा होता नही, क्योकि, एडर्सन के अनुसार, इन कीटाणुओ की प्रबलता या अस्तित्व मूल्य वीरूस की (जोकि अब शत्रु नही रह गए होते, प्रत्युत जीवन के लिए अनिवार्य हो आते है) उपस्थिति के बिना, वीरूस के लिये निर्बल, अथवा स्वाभाविक परिवृत्तिओ में विकसित होते कीटाणुओ से कम होता है। उसके अनुसार, इन कीटाणुओ को अपने जीवन के लिये विशेष और मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता होती हैं, जैंसी उन्हे अपनी परिवृत्ति में वीरूस की उपस्थिति से हुई थी।

परिवर्तन और चुनाव की इस क्रिया—प्रतिक्रिया का उदाहरण एक्स-किरणो और अल्ट्रा वायलट किरणो के प्रभाव में भी देखा जा सकता है। यदि इ—कोली कीटाणु पर एक्स किरणों से आक्रमण किया जाय तो उनमें अधिकाश मर जाएगे और शेष जिन सन्तानो को जन्म देंगे वे अपेक्षाकृत अधिक सबल और प्रतिरोधक होगी। यहाँ भी प्रतिरोध-शक्ति परिवर्तन से उत्पन्न होती है जो परिवर्तन स्वय किरणो के आक्रमण से होता है। यद्यपि यहाँ परिवर्तन की गति स्वाभाविक या वीरुस वाली परिवृत्ति से काफी अधिक होती है—जैसा कि किरण—आघात से सभी प्राणियो में होता है, किन्तु प्रतिरोध शक्ति और किरण— आघात में कोई मनोवैज्ञानिक सबंध नही है।

कीटाणुओ के इन उदाहरणो से यह स्पष्ट है कि मलत परिवर्तन की प्रेरणा में चुनाव का कोई हाथ नहीं है, यह केवल वह साचा है जो उस परिवर्तन को अपने अनुसार ढाल लेता है, जहाँ तक कीटाणुओ में शत्रु-प्रतिरोध के रूप

का प्रश्न है। सभवत शत्रु की उपस्थिति रासायनिक कारणो ने उसमें कुछ विशेषता उत्पन्न कर देती होगी जिससे शत्रु उसके लिए घातक रसायण न हो कर उपकारक रसायण बन जाता है। वीरूम की उपस्थिति जन्य परिवर्तन और अवशिष्ट सन्तान के लिए उसका उसके जीवन के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता हो उठना यही प्रमाणित करता है।

किन्तु कीटाणुओ में चुनाव या सांचा जितना प्रभावशाली होता है, अधिक विकसित प्राणियो मे यह इसके पासग में भी नही होता। परिवर्तन भी इन प्राणियो में बहुत कम होता है, किन्तु परिवर्तन और चुनाव का अनुपात फिर भी वह नही होता जो कीटाणुओ में विद्यमान है। कीटाणुओ को तदनुकूल ढलने में अधिक सुविधा उनका शरीर-निर्माण देता है, क्योकि वे इतने कम विकसित अथवा इतने कम सजीव होते है कि उनके लिए विभिन्न आकृतियो में ढलना अथवा विभिन्न रासायनिक पदार्थो का समीकरण करना पानी के विभिन्न गिलासो में ढलने अथवा वायु के विभिन्न गधो को ग्रहण करने के समान है। उनके जीवन के लिए चुनाव के बाद शत्रु का उनकी परिवृत्ति में आवश्यक हो उठना बताता है कि शत्रु-कीटाणु की उपस्थिति का उन पर उसी प्रकार रासायनिक प्रभाव पडता है जैसे अन्य किसी भी रासायनिक द्रव्य का होता है। कुछ मनुष्य विष खाते है और उनके लिए यह एक दिन इतना आवश्यक हो उठता है कि वे उसके बिना जीवित नही रह सकते। यद्यपि यह परिवर्तन उनके जेनोटाइप में सरलता से निहित नही होता किन्तु एक ही सेल वाले अथवा इतने सरल शरीर रचना वाले सोमा और जर्म कोष के कीटाणुओ मे परिवर्तन की लगभग वही रीति है, जो हमारे उलझनपूर्ण शरीर यन्त्र की।

हम इस बात को तो कुछ दूर तक समझ सकते है कि मनस्प्रक्रिया पर परिवृत्ति का कम या अधिक —जैसा पिछले निबध में हम विस्तार से देख आए है — प्रभाव पडता है, किन्तु कोई वासना या आत्म-रक्षा की प्रेरणा इत्यादि किसी प्रकार के मौलिक परिवर्तन को भी कारण हो सकती है यह हम स्वीकार नही कर सकते। पिछले दोनो अध्यायो में हम इसको मनस्प्रक्रिया के सबध मे देख आए है। प्राणियो के अपनी परिवृत्ति के समान रग होना, और उनसे भी अधिक, अपनी परिवृत्ति में परिवर्तन के अनुसार रंग मे परिवर्तन हो जाना, जहाँ हमारे इस निबध के लिए चुनौती के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है वहाँ पिछले दो निबधो के लिए भी, और बहुत से समझदार वैज्ञानिक भी ऐसा ही समझते है, किन्तु हम इस प्रक्रिया

या इस व्यवहार के हेतु भूत यन्त्रो को यहाँ कुछ विस्तार से दे कर दिखाएगे कि यह भी उतनी ही यान्त्रिक प्रक्रिया है जितनी अन्य कोई, और इसका प्रयास से कोई सबध नही है ।

'गिरगिट के समान रग बदलना ' एक मुहावरा ही हो गया है, और शायद सब कहेंगे कि हमारी स्थापना के खडन के लिए यही एक काफी बडा प्रमाण है , किन्तु वास्तव में अनेक रग बदलने वाले गिरगिट की यह चतुराई एक दम यॉन्त्रिक प्रक्रिया है जैसे मनुष्य की त्वचा का सर्दियो में काली और गर्मियो में कुछ निखरी हुई हो उठना । सामान्यत गिरगिट पत्तो के समान हरित रग से लाल, भूरे और काले रग का हो सकता है । इसी प्रकार एक अन्य छिपकली कारोलिना एनोलस (Carolina Anols) भी कुछ ही मिनटो में चमकीले हरित रग से क्रमशः नसवारी और काले रगो में बदल सकती है, 'इसी प्रकार काले या हरित से क्रमश भूरे और फिर कुछ मैले सफेद में परिवर्तित हो सकती है । यह मादा से प्राथमिक मैथुन के समय अपने गले में गहरा लाल रग भी उत्पन्न कर सकता है, किन्तु J Porus और J Milne के अनुसार, गिरगिट के इन रगो में परिवर्तन का कारण उसके तापमान में परिवर्तन और कभी कभी उसकी स्नायविक अस्थिरता है , और यह केवल सयोग ही हो सकता है यदि वे कभी अपनी परिवृत्ति के रगो से मेल खाते हो , किन्तु सामान्यत वे उससे नही मिलते । गिरगिट का यह रग बदलना उतना ही मानसिक है जितना मनुष्य का क्रोध से लाल रग हो उठना । वह आगे कहता है कि–पृथ्वी पर रहने वाले जन्तुओ का आत्म रक्षा के लिए रग बदलना एक दम अत्युक्ति है । शत्रु को छलने के लिए रग बदलने की कृमियो और मछलियो की अनेक जातियो की योग्यता के बारे मे बहुत कुछ भावोक्तिया लिखी और कही जाती है, किन्तु लेखक इस बात तक का ध्यान नही करते कि इन्हे शत्रुओ से कितना कम वास्ता पडता ह। इससे कही अधिक समय इन्हे अपने जीवन की अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति में बिताना होता है । किन्तु यह हमारा तर्क नही है, हम तो केवल यही कहना चाहते हैं कि इस प्रकार की योग्यता प्रथम तो जेन्ज की यॉन्त्रिक क्रिया या उनकी प्रकृति की (जो कि मानसिक शासन से स्वतन्त्र है) परिणाम है और फिर उनकी उत्पत्ति रूप शरीर के कोषो और हार्मज इत्यादि के क्रिया व्यापार की परिणाम । इसके लिए हम रगो के अधिष्ठाता कोषो का सक्षेप में अध्ययन करेंगे ।

त्वचा के रग क्रोमेटोफोर नाम के कोषो की प्रकृति के ऊपर निर्भर है जिनमें रग को उत्पन्न करने वाले पदार्थ निहित रहते है। ये कोष ठीक त्वचा के नीचे होते है। सामान्यत क्रोमेटोफोर तारे की आकृति का होता है जिसकी लबी लबी भुजाए केन्द्रीय बिन्दु से निकल कर दूर दूर तक फैली रहती है। इनके रग बनाने वाले पदार्थ अत्यन्त छोटे छोटे कणो के होते हैं। ये कण सम्पूर्ण कोष में विकीर्ण किए जा सकते है और केन्द्र में एक स्थान पर भी एकत्रित रह सकते हैं। रगो के ये कण एक कोष में एकही प्रकार के होते है—काले, लाल, हरे या भूरे, जिस किसी भी प्रकार के फिर चाहे वे हो। किन्तु शरीर में, और विभिन्न प्राणियो के शरीरो में भिन्न सख्या में, अनेक रगो वाले रग-कोष या क्रोमेटोफोर होते है जिनके अपने अपने रग के समान नाम हो सकते हैं। शरीर को काले रग का करने वाले कोष मेलानोफेर्ज (Milanophores) कहे जाते हैं, जोकि काले रग (Melanin) शब्द से बना है। जब ये मेलानिन कण कोष के सम्पूर्ण शरीर और भुजाओ में विकीर्ण हो जाते हैं तो शरीर का रग काला हो जाता है, जब ये कोष के केन्द्र में एक बिन्दु के रूप मे केन्द्रित हो जाते है तो प्रकाश इन कोषो के भीतर से होकर गुजरता है जिससे शरीर का रग पीला दिखाई पडता है। रग के काला होने के लिए केवल इन केन्द्र स्थित कणो का विकीर्ण हो जाना ही पर्याप्त नहीं होता, इनके लिए अन्य ऐसे ही कणो की आवश्यकता होती है, यही वह क्रिया व्यापार है जो मनुष्य के शरीर को गहरे रग का और मछली के शरीर को काले रग का बना देता है। एक काली मछली कुछ ही घटो में काली से भूरी हो सकती है जोकि केवल इन काले कणो के केन्द्रीकरण का परिणाम है। यदि इसे काफी समय के लिए स्वच्छ पानी में रखा जाय तो इसमें यह परिवर्तन सहज ही देखा जा सकता है। इसी प्रकार मनुष्य का रग भी, यदि उसे अल्ट्रावायलेट किरणो में रखा जाय तो, उसका रङ्ग निखर आता है।

दूसरा महत्वपूर्ण त्वचा-रग-कण है पीत (Xanthophyll)—जो कि पतझड के पत्तो मे भी पीतरग का कारण होता है। काले रग-कण वाले कोष से भिन्न इन रग के कोष सख्या में घटते बढते नही—इनकी सख्या स्थिर रहती है, ये रग में परिवर्तन अपने रग-कणो के विकीर्ण और सकोचन के द्वारा ही करते है। पीत-रग कणो वाले कोष कृष्ण-रग-कणो के साथ मिलकर मछली के रग प्रदर्शन की विविधताओ की सभावनाओ को बहुत अधिक बढा देते हैं। इनके विभिन्न अनुपातो में मिलने से मछली या अन्य जीव नीले, भूरे तथा काले रग के अनेक आभास (Shades) प्रस्तुत कर सकते है।

तृतीय प्रकार का रग-कण-कोप गोग्रानिन (Guanine) है जिसका रग हिम-धवल होता है। यह रग प्राय चित्रकारो के चित्रो के रग के लिए चित्र फलक के आधार रग के समान अन्य रग के वब्वो के उभार के लिए भूमिका प्रस्तुत करता है। गुआनोफर कोप पीत रग के कोषो (Xanthophore) के नीचे की तह में बडी घनता मे सटे हुए होते है। ये गुग्रनोफर परिर्वातत नही होते प्रत्युत् एक तीव्र हिम धवल भूमिका के रूप में रहते है। त्वचा में गहरे होने के कारण इनके श्वेत कोप आकाश-नील रग का चित्रपट प्रस्तुत करते है, किन्तु यह नीलिमा ऊपर के पीत कोपो में छन कर हरित रग——जैसा हरित गिरगिट का होता है—की अभिव्यक्ति करती है। इन हिम धवल श्वेत रग–कणो वाले कोषो के नीचे विभिन्न आभासो के काले कोषो की तह होती है, जिनमें कृष्ण रक्त और लोहित सम्मिलित है। इन कोपो की बाहे लम्बी लम्बी होती है। गिरगिट इनके रग कणो के सकोच——विस्तार से विभिन्न रगो की अभिव्यक्ति करता है। अब कृष्ण–रग–कण पूरी तरह से कोषो की बाहो में फैल जाते हैं और गुआनो (श्वेत रग कण) को ढक लेते है किन्तु पीत को नही ढँक पाते, तो उनका रग हल्का लाल हो जाता है, किन्तु जब पीत को भी ढँक लेते है तब इनका रग लोहित या काला हो जाता है। परिवर्तन शायद ही कभी सम्पूर्ण शरीर में समरस होता हो। इसलिए ये रग प्राय छोटे-छोटे धब्बो या लहरो के रूप में ही धीरे-धीरे विस्तृत होने आरम्भ होते है।

ये रग-परिवर्तन किन कारणो से निर्धारित होते है ?——यह प्रश्न यहाँ महत्वपूर्ण है। जैसा कि हम आगे देखेंगे, इसका कारण दृष्टि, तापमान इत्यादि भी हो सकते है और आन्तरिक ग्रथियो का स्राव भी। साधारणत' धमनिया बाह्य उकसाहट की सूचना इन कोषो को प्रेषित करती है, जो कि शरीर के रासायनिक सदेशवाहक——हार्मज के द्वारा होता है। किन्तु कुछ प्राणी ऐसे भी है जिनमें ये धमनियाँ सीधे इन रग–कोषो का नियंत्रण करती है, ये प्राणी मोल्लुस्क (Mollusk) है। इनके रग-कोष लचकदार थैलो के रूप में होते है जिनमें कि प्रत्येक में एक विशेष रग का तरल रग रहता है। प्रत्येक थैले के साथ एक स्नायु की पतली तार सी जुडी रहती है जो कि इसे फैलाकर चौडे आकार में भी ला सकती है, जिससे कि तदीय रग प्रकट हो जाते है, और उन्हें सकुचित भी कर सकती है। इनमें से प्रत्येक थैले का नियत्रण एक पृथक् स्नायु तार करती है। सेफोलोपोड (Cepholopod) या स्नायु-सबद्ध—रग कोषवाले प्राणियो में आवेगो को इनके रगो में पढ़ा जा सकता है। जैसे मनुष्य में छोटे स्तर पर

आवेगो मे रग परिवर्तित होते है, उसी प्रकार बडे स्तर पर इन प्राणियो में होते हैं ।

जिनमे रग परिवर्तन दृष्टि (Vision) मे नियन्त्रित है उनमें यह सदेह हो सकता है कि इनमें रग-परिवर्तन का कारण आत्म रक्षा की प्रवृत्ति है, जैसे कैटफिश में। ये मछलियां जिस रग की परिवृत्ति में होती है उसी रग की बन जाती हैं। यहां तक कि यदि इन्हे धब्बो वाली परिवृत्ति में भी रखा जाय, इनके शरीर पर वैसे ही धब्बे प्रकट हो जाएगे। (Cott) ऐसा कहने के प्रयोगात्मक आधार हैं। और यह भी प्रयोग सिद्ध है कि परिवृत्ति के रग की मछलियां अपने शत्रुओ से बचने में बहुत अधिक सफल हो जाती है। किन्तु क्या इन आधारो पर कहा जा सकता है कि इन रग-परिवर्तनो का आधार या हेतु आत्म-रक्षा की प्रवृति है? एक मानसिक प्रयास है?

जैसा कि हम पीछे सर्वत्र कहते आए हैं, यह ठीक प्रतीत नही होता। हार्मंज के द्वारा दृष्टि से प्रभावित होने वाले इन रगो में परिवर्तन का कारण पिच्युइटरी ग्रन्थि है (पीछे हार्मंज की अनुक्रमणिका मे देखे) और यह ग्रथि केवल प्रकाश के प्रभाव में यान्त्रिक रूप से अपने स्राव की प्रकृति को बदलती रहती है। यदि मछलियो के रग परिवर्तन का कारण किसी प्रकार की 'प्रवृत्ति' होती तो इन कोषो का सम्बन्ध सीधे स्नायु तन्तुवाय से होना चाहिए था, जैसा कि मोल्लुस्क जातियों में है। किन्तु क्योंकि मोल्लुस्क इत्यादि में यह आवेगात्मक रग-परिवर्तन किसी भी प्रकार से उपकारक नही है, क्योकि उसका परिवृत्ति के साथ मेल से कोई सबध नही होता, इसलिए उसे भी केवल यान्त्रिक प्रक्रिया ही कहा जा सकता है, जैसे मनुष्य में लज्जा, क्रोध भय इत्यादि के समय रग-परिवर्तन में। मान लीजिए कि किसी मछली के शत्रु को विशेष रगो के लिए अंधा कर दिया जाता है, जैसे काले तालाब की मछली के शत्रु को काले के अतिरिक्त अन्य सभी रगो के लिए अंधा बना दिया जाता है, और ऐसा मछली की दस सन्तानो के लिए किया जाता है, तो स्वभाव काली मछली ही केवल आक्रान्त होगी अन्य सभी रगो की मछलियां बच जाएंगी। इस अवस्था में, यदि मछली का रग-परिवर्तन किसी प्रकार की मानस-प्रक्रिया-जन्य है, तो उस मछली की आगे आने वाली सन्तानो को काले तालाब मे भी काले रग से भिन्न किसी भी रग की होना चाहिए। किन्तु ऐसा १०वी नहीं किसी भी बाद की सन्तान में नही होगा। यद्यपि यह केवल कल्पना है, किन्तु यह तर्क सम्मत सभावना है, क्योकि अन्य

अनेक जातियाँ, जैसे थ्री स्पाइड स्टिक्कल बैक और मेंडक में मैथुन ऋतु में शरीर का रग लाल हो जाता है, और वे सुविधा से शत्रुओ के वशवर्ती हो जाते है। यहाँ कहा जायगा कि वे प्रेयसी को आकर्षित करने के लिए ऐसा करते है (Tinbergen) किन्तु यह उचित प्रतीत नही होता, क्योकि यह केवल उनके गोनाड्ज इत्यादि से स्रवित होने वाले हार्मंज का ही प्रभाव है जिसमें स्टिक्कलबैक की इच्छा या वासना को कुछ भी नही करना है।

जैसा कि हम अगले निवन्ध में विस्तार से देखेंगे, इन सवका आधार केवल जेंज है, क्योकि ये ही प्राणी के कोषो, ऐंजाइम्ज और हार्मज का निर्धारण करते है, और जैसा कि हम इस निवध मे पीछे देख आये है, जेंज का यह क्रिया—व्यापार एकदम स्वत चालित है, प्रेरित नही। इस प्रकार रग—परिवर्तन वासना और प्रक्रिया जन्य नही है, इनके कारण भूत यन्त्रो से नियन्त्रित भले ही हो।

इस प्रकार मानसिक चुनाव (Adaptation and Sexual-selection) इत्यादि के लिए जीव विज्ञान में कही भी स्थान नही है।

— o —

REFERENCES

1. *Cott H B* — Adaptive Colouration in Animals 1st Ed 1940 (Oxford University Press, London)

2 *Darwin* — Origin of Species (Watts & Co London)

3 *Dobzhansky T* — Genetics & Origin of Species 1st Ed 1951 (Colombia University Press)

4 *Lysenko-T D* — Developments in the Science of Biological Species 1st Ed 1951 (Moscow)

5 „ — Heredity & Its Variability 1st Ed 1951 (Moscow)

6 *Sinnot & Dunn* — Principles of Genetics 1st Ed, 1939 (Macgraw Hill Book Co New York)

6 *Simpson* — Meaning of Evolution 1st Ed 1949 (Yale University Press)

४—फिनोजेनेटिक्स और व्यक्तित्व

पिछले निबध में हमने यद्यपि मुख्यत प्राणी–विकास के आधार भूत कारणो को देखने का प्रयास किया है किन्तु उसमें जेन (Gene) की प्रकृति और शारीरिक-विकास (Development) पर उसके प्रभाव को भी यत्र तत्र देखते आए है। इससे स्पष्ट है कि प्राणी का 'भाग्य' कितना अधिक 'निर्धारित' होता है और कितना कम स्वतत्र । इस निबध मे हम इन जेन्ज के प्राणी के उन प्रक्रिया-स्रोतो पर नियत्रण और सबध को देखेंगे, जिनका वर्णन हम पहले निबध में कर आए है, और इस प्रकार हम वशानुक्रम और मानसिक प्रवृत्तियो (Heredity and Mental traits) की सापेक्षता को कुछ दूर तक समझ सकेंगे। इससे हम न केवल प्राणी–व्यवहार की प्रकृति को ही अच्छी प्रकार से समझ सकेंगे प्रत्युत प्राणी की मानसिक योग्यता और इसकी वासताओ की वशानुक्रम में एकता के कारण को भी समझ सकेंगे। प्राणी व्यवहार की ठीक ठीक व्याख्या के लिए वास्तव में उत्तराधिकार की सीमाओ और प्रकृति को जान लेना अत्यावश्यक है, क्योकि इसके बिना हम यह नही जान सकते कि प्राणी किस प्रकार अपने पूर्वजो के समान व्यवहार करता है और व्यवहार किस रूप में शारीरिक पदार्थ में निहित (Physiologically Rooted) होता है।

जबकि यह विषय इतना अधिक महत्वपूर्ण है, इस ओर इतना कम कार्य हो सका है कि निश्चितता से कुछ भी कह सकना असभव है। तो भी, जो कुछ भी आज ज्ञात है उसके आधार पर हम इस अत्यन्त कठिन समस्या पर कुछ विचार करेंगे।

जेनेटिक्स सामान्यत उस पदार्थ की प्रकृति का अध्ययन करता है जो पूवजो और सन्तानो को एक शृखला के रूप में सबधित करता है और इस प्रकार यह पदार्थ प्राणी के जीवन का वह आधार भत बीज है जिसमें प्राणी का जीवन केन्द्रितहोता और पुन आत्मोद्घाटन करता है, यह आत्मोद्घाटन वपित रजकोष (Fertilized Egg) और पूर्ण विकसित व्यक्ति में के अन्तर को नापता है, जिस अन्तर में जेन अपनी अभिव्यक्ति या आत्मोद्घाटन करते है और इस प्रकार शरीर को सभव करते हैं। जेंज के इस आत्मोद्घाटन या शारीर निर्माण का अध्ययन एक बहुत बडी समस्या है, जिसके बारे में जवैज्ञानिक हु अब त

क्रम जानते हैं। तथापि गोल्डश्मिट (Goldschmidt) और बीडल (Beadle) तथा अन्य भी जीव-रसायणशास्त्री (Biochemist) इस ओर कुछ दूर तक समस्या की व्याख्या करने में समर्थ हो सके है।

जेंज एक विशेष प्रकार के, किन्तु एक दूसरे से भिन्न, रासायनिक कण हैं और सभवत प्रोटीन (Protein) के बने है। इन प्रोटीन कणो से ही शरीर निर्माण होता है और शरीर मे उसके क्रिया व्यापार को चलाने वाले अन्य रासायनिक रस Enzymes, Co-enzymes, Hormones बनते है। ये रासायनिक द्रव्य भिन्न भिन्न जेंज मे निर्मित होने के कारण विभिन्न प्रकृतियो के होते है, किन्तु इन जेज का यह सृजन एकदम परिवृत्ति से स्वतत्र नही होता, क्योकि जैसा कि हम पिछले निबध में देख आए है, ये परिवृति से ही भोजन प्राप्त कर शारीरिक कोषो और इन रसो का सृजन करते है। तो भी इनका यह निर्माण बहुत कुछ अप्रभावित ही रहता है। जेंज और इन शारीरिक रसो के सबध-ज्ञान से यद्यपि जीव-रसायनो में नवीन क्षेत्रो का उद्घाटन सभव हुआ है, किन्तु स्वय इनके बारे में या तो कुछ भी नही जाना जा सका या इतना कम ज्ञान हो सका है कि उमसे प्राय कुछ भी अनुमान करना असभव है। बीडल इत्यादि विद्वानो के विचार में, जेज के सामान्य एलैल (Allel) एजाइम्ज का निर्माण करते है, जिनसे कि विभिन्न शारीरिक क्रिया-व्यापारो का सचालन होता है। जब कोई जेन परिवर्तित या गौण हो जाता है तो उससे सबद्ध ऐंजाइम का भी निर्माण नही हो पाता और इससे शरीर का सबद्ध क्रिया-व्यापार भी बद हो जाता है। वह आगे कहता है कि—एक जेन एक ही ऐंजाइम का निर्माण करता है जो शरीर में निश्चित और विशिष्ट रासायनिक क्रियाओं-प्रति-क्रियाओ को जन्म देता है, किन्तु अभी तक इसे प्रमाणित नही किया जा सका है। यद्यपि आगे कार्य करने के लिए इसे एक सभावना के रूप में स्वीकार किया जा सकता है किन्तु इसे अन्तिम समझने के लिए किसी ठोस प्रमाण की अनिवार्य आवश्यकता है। फिर अभी तक तो यह भी निश्चित नही सका कि विशिष्ट जेन और विशिष्ट ऐंजाइम में क्या सबन्ध है।

जैसा कि हम पिछले निबध मे भी देख आए है, जेन आणविक आकार का एक रासायनिक द्रव्य है जो कि जर्म कोष के केन्द्र में क्रोमोसोम्ज (Chromosoms) के डिब्बो में बन्द होता है। इस प्रकार का एक रासायनिक कण कैसे शरीर में के छोटे से छोटे और बडे से बडे परिवर्तनो का निर्धारण करता है, यह आश्चर्य की बात है। गोल्डश्मिट (Goldschmidt) के अनुसार जेन की रासायनिक क्रिया कोषो के भीतरी प्रदेशो से ही प्रारंभ होती है,

जो कि वाद में शरीर में की अन्य क्रियाओ में अनूदित हो जाती है। जेज की ये क्रियाए कोषो के भीतर से क्रोमोसोम्ज तथा साइटोप्लास्म (Cytoplasm) के सघर्षण से कैसे प्रारम्भ होती है, इस विषय में अभी कुछ भी ज्ञात नहीं हो सकता। सब जेन एक जैसे ही क्रिया शील होते है या कुछ कम और कुछ अधिक क्रियाशील होते हैं, तथा क्या ये जेन निरन्तर क्रियाशील रहते है या विभिन्न और नियत समयो पर क्रिया शील होते हैं और क्या जेन-क्रिया कोषो के और इस प्रकार जेज के भी द्विधा विभाजन की अतिरिक्त उपज (Byproduct) मात्र है या कुछ और ? इस सबध में अभी तक वैज्ञानिक प्राय अनिश्चय में ही है। ऐसी अवस्था में हम कम से कम जेंज् के वारे में कुछ भी निश्चय पूर्वक नही कह सकते।

तो भी इस में प्राय सभी सहमत है, और यह प्रयोग-सिद्ध भी है कि जेज शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओ का निर्धारण करते है। और य रासायनिक प्रक्रियाए न केवल प्राणी की आकृति और मुद्रा को ही वदल सकती है प्रत्युत भोजन इत्यादि के समीकरण, परिवृत्ति के दवाव में उसे सहने के लिए शक्ति सचय, मस्तिष्क ततुओ की दुर्बलता या सबलता तथा वासना की प्रकृति और शक्ति का भी निर्धारण करती हैं। इस प्रकार हम यह विश्वास करते है कि जेंज और ऐंजाइम्ज का निकट सम्बन्ध है। जेन किस प्रकार रासायनिक द्रव्यो को जन्म देते और प्रेरित करते है, इस विषय में निश्चित ज्ञान न होने पर भी सामान्यत दो सभावनाएं हो सकती है—(१) या तो जेन शान्त जर्म-केन्द्र (Nucleus) में क्रियाशील होते है अथवा (२) कोष विभाजन के समय साइटोप्लास्म (Cytoplasm) से क्रोमोसोम्ज का सीधा सम्पर्क होने पर ये रसायनिक रसो का सृजन करते है। सभवत जेन के लिए ये दोनो सभावनाए सत्य हैं—वह दोनो ही अवस्थाओ में क्रियाशील होता है। प्रथम को जहाँ हम रज कोष (egg cell) के सन्तति पर प्रभाव के रूप मे देख सकते हैं वहाँ दूसरे को वपन (Fertilization) के पश्चात् प्राय प्रत्येक रासायनिक क्रिया में देख सकते हैं। सभवत वपन से पूर्व भी रज कोष में जो निर्णायक शक्ति उसके जेंज की रासायनिक प्रक्रियाओ के कारण उत्पन्न हो गई होती है उसमें कोष-विभाजन से तो सभवत साइटोप्लास्म और प्रोटाप्लास्म का सपर्क सम्भव नही होता किन्तु तो भी उसके केन्द्र (Nucleus) में विशेष विस्फोट से यह सपर्क सभव होता है अवश्य, जिससे कि रासायनिक प्रक्रिया सभव होती है। इस प्रकार जेन व्यापार के दो भिन्न प्रकार होने पर भी उनमें मूलत कोई भिन्नता नही हैं।

जेन-प्रक्रिया या व्यापार को कुछ और अधिक स्पष्ट रूप मे समझने के लिए हम उनका कुछ इस प्रकार से भी वर्णन कर सकते है—जेन स्वय ही उन रासायनिक प्रतिक्रियाओ को जन्म देते है या नही जिन्हे हम एँजाइम सिस्टम से सबद्ध मानते हैं, इस बारे में निश्चित न होने पर भी यह निश्चित है कि उनके व्यापार निर्णायक रूप से एकदम एक विशेष रसायनिक क्रिया (catalyses) में परिणत हो जाते है। इन रासायनिक व्यापारो को क्रियान्वित करने वाले एँज़इम्ज बहुत अधिक विशिष्ट (specialised) प्रकृतियो के होत हैं, इसलिए वे तदनुकूल स्थिति में ही क्रियाशील हो सकते है। इसके लिए न केवल वह पदार्थ ही उपस्थित होना चाहिए जिस पर वे क्रियाशील हो प्रत्युत तदनुकूल विशेष तापमान भी होना चाहिए जिनमें वे अपनी रासायनिक क्रियाओ को क्रियान्वित कर सकें। इसी प्रकार उनकी अन्य भी ऐसी अनेक आवश्यकताए हैं जिनका पूरा होना उनकी रासायनिक प्रक्रियाओ के क्रियान्वित होने के लिए आवश्यक है। अनेक एँजइम्ज को तो कुछ अन्य सहायक रासायनिक रसो की भी आवश्यकता होती है जिन्हें (Co Enzymes) या सहायक एँजाइम भी कहते है। जब ये सम्पूर्ण शर्तें पूरी हो जाती हैं तो एँजइम अपने उस व्यापार को क्रियान्वित करते है जो कि रज ♀ में वीर्य ♂ के वपन के पश्चात् सभवत सदैव निष्क्रिय अवस्था में विद्यमान रहता है और अपनी उन शक्तियो और क्रियाओ के क्रियान्वित होने के लिए उपयुक्त परिस्थिति और अवसर की प्रतीक्षा करता रहता है। इसी को हम जेन का क्रियाशील होना कहते हैं। किन्तु यदि जेनिक क्रिया वपन से पूर्व भी प्रारभ हो सकती है तो इसमें केवल माता के जेन ही उत्तरदायी होते हैं और इसमें शिशु में उत्पन्न हुए प्रभाव माता के स्वतत्र जेंज के प्रभाव ही होते हैं।

इस प्रकार वपन के पूर्व ही माता के जेन किसी अग-निर्माण पर अथवा किसी अन्य पहलू पर अपना प्रभाव डाल सकते है या नही, यह सशयास्पद होने पर भी आज प्राय यह सर्व सम्मत है यद्यपि इसके पक्ष में पर्याप्त प्रमाण नही है किन्तु जो कुछ भी प्रमाण उपलब्ध हैं उनसे यह एक सीमा तक प्रमाणित हो चुका है। सिल्क के कीडे में गर्दन का रग इसी प्रकार का माता से प्राप्त गुण है, इसी प्रकार साप इत्यादि में लिपटने अथवा कुडील में मुडने की दिशा माता से प्राप्त गुण है।

कौन सा जेन किस एँजाइम का निर्माण करता है यह सीधे जेन और एँजाइम पर प्रयोग से ज्ञात न होने पर भी परिवर्तित जेंज का और तदनुसार परिवर्तित एँजाइम का अध्ययन कर वैज्ञानिक कुछ दूर तक तो स्पष्ट ज्ञान सके ही है कि किस जेन का किस एँजाइम से सम्बन्ध है। कभी तो ये

परिवर्तित जेन सम्पूर्ण जेन-समवाय में इतने विदेशी हो उठते हैं कि वे किसी रासायनिक द्रव्य और अन्य किसी प्रकार के क्रिया-व्यपार को जन्म ही नहीं दे सकते और इसका प्राणी पर अनिवार्य और गभीर प्रभाव पडता है। उदाहरण के लिए न्यूरोस्पोरा क्रासा (Nurospora Crassa) थियाजोल पिरिमिडाइन (Thiazole Pyrimidine से अपना निजी थियामिन (Thiamin एक विशेष सहायक ऐंजाइम अथवा विटामिन बी) बनाता है, किन्तु एक ऐसा परिवर्तित वश भी उत्पन्न किया गया जो थियामिन नही बना सकता था। जीव रसायण विज्ञान के अनुसार थियामिन के निर्माण के लिए एक विशेष ऐंजाइम (Thiazole Pyrmidine) की आवश्यकता है और इस विशेष जाति मे थियामिन न बन सकने या थियाजोल की अनुपस्थिति से सहज ही यह अनुमान किया जा सकता है कि परिवर्तित जेन का इस ऐंजाइम की उपस्थिति अनुपस्थिति से सीधा सबध है। (Morgan) इस प्रकार आज इस तथ्य में किसी को सदेह नही है कि जेंज और ऐंजाइम्ज में सीधा सबध है, किन्तु वैज्ञानिक इस सबध की प्रकृति से पूर्णत अभिज्ञ नही हैं। बहुत से वैज्ञानिक अब यह विश्वास करने लगे हैं कि जेन प्रोटीन के विशेप आकारो के अणु (Molecules) है जो कि विभिन्न ऐंजाम्ज का स्वय निर्माण करते है। जो भी हो, ऐंजाइम्ज की उपस्थिति—अनुपस्थिति तथा उनकी विशेश प्रकृति जेन निर्धारित करते हैं। इसलिए जेन में परिवर्तन ऐंजाइम की उत्पत्ति को भी प्रभावित कर सकता है और इस प्रकार शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओ को बन्द कर देता है।

सभवत परिवर्तित जेन दो प्रकार से रासायनिक क्रियाओ को प्रभावित करते हैं यदि हम इनकी क्रियाओ से उत्पन्न पदार्थों की प्रकृति का विचार न कर केवल उत्पन्न पदार्थ की रासायनिक क्रिया पर ही ध्यान केन्द्रित करें तो। इसमें एक तो यह सभावना की जा सकती है कि जेन से निर्धारित रासायनिक क्रिया व्यापार केवल उन कोषो तक केन्द्रित है जिनमें यह जेन बन्द होते है, इसे हम जेन की आत्म-केन्द्रित प्रक्रिया भी कह सकते हैं, और जेन-क्रिया व्यापार का दूसरा प्रकार उन द्रव्यो या रसो की उत्पत्ति हो सकता है जो केन्द्र से फैल कर शरीर के सुदूर प्रदेशो तक में रासायनिक क्रियाओ को जन्म देते है। जहाँ तक प्रथम सभावना का सम्बन्ध है, यह प्रमाणित करना अत्यन्त कठिन है कि जेन कोष के भीतर कैसे कार्य करते हैं, क्योंकि जेन को न किसी ने देखा है और न उस पर कोई प्रयोग ही किया जा सका है, इसलिए हमारे पास केवल एक ही रास्ता है जिससे हम जेन के क्रिया-व्यापारो को जान सकते है और वह हैं उन विचित्र और असामान्य व्यक्तियो

का अध्ययन जो या तो विशृंखलित रूप से अकेले दुकेले पाये जाते है अथवा जो किसी वश शृखला के रूप में देखे जा सकते है। इस ओर गोल्डश्मिट, वीडल और डोव्जहेस्की तथा मोर्गन और डन इत्यादि ने अपने प्रयोगो से रास्ता साफ कर दिया है। जैसे ड्रोसोफिला का वपित रज-कोष (Fertilized Egg cell) मादा बच्चे के रूप में XX क्रोमोसोम्ज के साथ वढने लगता है, कभी कभी अचानक ही एक X क्रोमोसोम वर्ग कोष-विभाजन के समय परिवर्तित हो जाता है और नर क्रोमोसोम (y chromosome) के रूप में विकास करने लगता है। इस प्रकार ऐसा व्यक्ति उभयलिंगी हो जाता है। ये परिवर्तमान जेन या क्रोमोसोम्म अन्य जेंज या क्रोमोसोज से सर्वथा स्वतन्त्र अपनी अभिव्यक्ति करते है, फिर चाहे ये कितने भी थोडे क्यो न हो। इन अवस्थाओ में परिवर्तित जेंज अनिवार्य रूप से कोष के भीतर ही क्रियाशील होते होगें जिनमें कि वे स्थित है। यह भी कहा जा सकता हैं कि जेंज के ये प्रभाव ऐसे है जो केवल कोष-विभाजन से ही क्रियान्वित होते है। इस प्रकार ये कोषस्थ (Intracellular) क्रियायो के परिणाम न होकर कोष-वाह्य क्रिया व्यापारो के परिणाम होते हैं, जैसा कि ऐसे व्यक्तियो के पखो पर उत्पन्न वर्ण-भिन्नता और पुरुष लिंग की उत्पत्ति से भी स्पष्ट हैं। इस प्रकार ऐसे क्रिया व्यापार, जो जेंज के शरीर पर प्रभाव और उसके विकास से सम्वन्ध रखते है कोषस्थ नही हो सकते।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण विभिन्न वैज्ञानिको ने अपने प्रयोगो से प्रस्तुत किये हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि जेंज से नियन्त्रित क्रिया-व्यापार गर्भस्थ शिशु (Embroy) के विभिन्न किन्तु निश्चित अगो में निश्चित समयो पर क्रियान्वित होते हैं और क्रमश अन्य अगो पर भी प्रभाव डालते है। हम्वर्जर Humburger ने ट्रिटुरुस—क्रिस्टाटुस (Triturus cristatus) टि टेन्याटुस (T. Taniatus) और ट्रिटुरुस पामाटुस (T. Palmatus) का मिलन करवाया और परिणाम में देखा कि गर्भस्थ शिशु विलकुल उत्तरावस्था में ही एक दूसरे से कुछ भिन्न होने प्रारम्भ होते थे, पूर्वावस्थाओ में वे माता के रज-जेंज से ही निर्धारित होते थे। (Goldschmidt) इससे स्पष्ट है कि गर्भस्थ शिशु में आयु की प्रारम्भिक और कुछ वाद की अवस्था में भी केवल माता के जेन केन्द्र (Egg Nucleus) में के जेंज ही एक मात्र नियामक होते हैं। इसी प्रकार गोल्डश्मिट ने उभयलिंगियो पर अपने प्रयोगो मे देखा कि लाइमेस्ट्रिया (Limestria) में नरत्व और स्त्रीत्व का निर्धारण तदीय जेंज की विशेष गति (Velocity)

से निर्णीत होता हैं । जेंज के ये गति-क्रम (Velocity) इस प्रकार अपना क्रिया-व्यापार क्रियान्वित करते हैं और इस प्रकार अपने प्रभाव को अन्तिम रूप से व्यापारित करने के काल-विन्दु निश्चित करते हैं कि इनमें से कोई एक आगे बढकर दूसरे पर विजयी हो जाता हैं। क्योकि कृमियो में उभयलिगिता की यह उत्पत्ति स्वत उत्पन्न प्रतीत होती है इसमे यह कल्पना की जा सकती हैं कि लिग-निर्धारण की क्रिया प्रत्येक कोष में होती है जिसमे कि तदीय प्रकृति के और तदीय आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अन्य रासायनिक और शारीरिक परिवर्तन भी उत्पन्न होते है । इससे यह अनुमान किया जा सकता हैं कि ये कोपस्थ लिग-निर्णायक पदार्थ (× – ५ जेन) इन हार्मंज के किसी न किसी प्रकार समान रासायनिक गुण के ही होगे । इनमें अन्तर केवल यही है कि एक सम्पूर्ण शरीर के कोष में विस्तृत होते है और दूसरे अपने निश्चित कोषो में केन्द्रित रहते हैं ।

इस प्रकार के प्रमाणो की सख्या निरन्तर बढ रही है जिन में जेनिक क्रिया और उनसे प्रेरित हार्मंज का पारस्परिक सबध स्पष्ट होता जा रहा है । ड्रोसोफिला की अनेक जातियो मे ऐसे उभय-लिंगी व्यक्ति स्पष्ट देखे जा सकते हैं जिनकी काम-ग्रथिया (gonads) यदि अडकोष हो तो वे सदैव गहरे लाल रग के होते है और यदि ओवरी (ovary) हो तो हल्के रग के होते है । इसी प्रकार, यदि ड्रोसोफिला नर (अडकोष) हो तो उसकी आँखो में भी गहरे लाल रग के धब्बे होते हैं जबकि मादा (ओवरी) होने पर ये धब्बे नही होते । इसका कारण यह है कि ओवरी के रस लाल रग के जेन की अभिव्यक्ति को दबाये रहते हैं, अथवा और भी ठीक शब्दो में, ओवरी में उपस्थित जेन इस प्रकार का हार्मन बनाता है जोकि आखो में लाल रग उत्पन्न करने वाले जेन की अभिव्यक्ति को रोक देता है ।

जेंज का स्थिति-परिवर्तन और क्रोमोसोम्ज का रुख-परिवर्तन भी प्राणी पर बडे गभीर प्रभाव छोडते है जिनकी व्याख्या जेनेटिक्स के पुराने तर्कों के साथ नही हो सकती । क्योकि इन परिवर्तनो में केवल क्रम ही परिवर्तित होता है कोई मौलिक परिवर्तन नही होता । इससे जिन व्यक्तियो के शरीर में इन परिवर्तनो से प्रेरित परिवर्तन हुआ हो उनमें जेन वही रहते हैं जो उनके पूर्वजो में थे । यद्यपि कभी कभी इस प्रकार के स्थिति-परिवर्तनो से कोई विशेष अन्तर नहीं भी दिखाई पड़ता किन्तु अनेक बार काफी गभीर

परिवर्तन भी देखे जाते हैं। जेंज इस प्रकार अपनी स्थिति-परिवर्तन से शरीर पर जो प्रभाव डालते हैं वह पुन जेंज और हार्मंज के पारस्परिक सबध को प्रभावित करता है ।

इसी प्रकार ड्रोसोफिला में चक्षु-रग का प्रधान जेन (अ अ) गौण (अ अ) हो जाने पर रग में परिवर्तन का कारण होता है, इससे आंखो का रग काले के बजाय लाल हो जाता है और (अड कोष) का रग गहरे लाल से सफेद हो जाता है। गास्पेरी ने दो भिन्न जाति के ड्रोसोफिला के (अड कोषो) को एक दूसरे में मिलाकर देखा। जब अ अ अडकोष अ अ अडकोष वाले व्यक्ति में स्थानान्तरित किया गया तो उसकी आखो का रग काला हो गया। चक्षु-रग को प्रभावित करने वाले ये जेन अन्यभी अनेक स्थानो पर इसी प्रकार प्रभाव डालते हैं। इनसे कैटरपिल्लर की त्वचा पीली हो जाती है, ओप्टीक स्नायुओ (Optic Nerves) के कोष-गुच्छो का रग भूरे से गहरा लाल हो जाता है तथा वृद्धि की गति (Rate of Development) और सशक्ता का स्तर गिर जाता है। इससे स्पष्ट है कि जेन शारीरिक वृद्धि या विकास में किस प्रकार हार्मंज के द्वारा क्रमश निर्णायक होते हैं। जैसा कि गास्पेरी ने दिखाया है अ अ जेन वाले व्यक्ति के अडकोष अ अ व्यक्ति में स्थानान्तरित करने पर आखें काली हो जाती हैं, जब कि अ अ (Dominant) के अअ (Recessive) में स्थानान्तरित करने पर काली ही रहती हैं—उनमें कोई परिवर्तन नही आता। इस प्रकार प्रधान (dominant) जेन वाले अंडकोष के रग –जेन ऐसे हार्मंज का निर्माण करते हैं जो कि सम्पूर्ण शरीर पर अपना प्रभाव छोडते हैं केवल आंखो और पखो के रगो को प्रभावित करने तक सीमित नही रहते। और ये केवल अडकोष ही नही हैं जो इस प्रकार के हार्मज बनाते हैं प्रत्युत अन्य भी कितनी ग्रथियां हैं जो इसी प्रकार के रस बनाती हैं। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि ये हार्मन सबधी प्रभाव कोष (Egg cell) पर भी उसके वपन (Fertilization) से पूर्व प्र ाव शाली हो सकते हैं। यदि अ अ मादा में अ अ जेन स्थानान्तरित कर दिया जाए तो उसके शुद्ध अ अ (Recessive) जेन वाले अडकोष-युक्त बच्चो की आंखें भी बहुत शीघ्र लाल धब्बो से युक्त हो सकती है जो कि अ अ (प्रधान जेन) में ही हो सकता है। गोल्डश्मिट के अनुसार अ अ अडकोष का हार्मन ओवरी में निहित रज-कण के साइटोप्लास्म (Cytoplasm) में प्रविष्ट हो कर गर्भस्थशु (Embroy) पर प्रभाव डालता है।

सभवत हार्मंज की जेंज पर आश्रितता और उनका शरीर पर प्रभाव उससे भी अधिक प्रभावशाली होते है जितने वे स्पष्टत प्रतीत होते हैं। ये प्रभाव मानसिक व्यापार-प्रक्रिया, प्रवृत्ति (Instinct इत्यादि) और बौद्धिक योग्यता (सीखने की योग्यता, learning capacity) जैसी अधिक उलझन पूर्ण समस्याओ को समझने में भी बहुत अधिक सहायक होते है। इसका हम एक उदाहरण देंगे —फेनाइल पाइरूविक एसिड (Phenyl Pyruvic Acid) में ऑक्सीजन के मिलाने और हाइड्रोजन परमाणुओ के अपसारण की क्रिया एक विशेष ऐंजाइम करता है। जिस व्यक्ति में इस ऐंजाइम के उत्पादक जेन अनुपस्थित रहते हैं उनमें यह ऐंजाइम भी उत्पन्न नही होता और इस प्रकार फेनाइल पाइर्यूविक एसिड की अन्तर्वर्तिनी क्रिया उन व्यक्तियो में नही होती। इसका परिणाम यह होता है कि इस अभाव से युक्त व्यक्तियो में इस विशेष एसिड की अधिकता हो जाती है जिससे उस व्यक्ति पर घातक प्रभाव होता हैं और वह दुर्बल हृदय का हो जाता है। इस उदाहरण से स्पष्ट देखा जा सकता है कि जेंज, ऐंजाइम्ज और शरीर की रासायनिक क्रियाओ में कितना घनिष्ट सबध है।(Morgan) सामान्यत मनुष्य में फेनाइल पाइरूविक तेजाव को ऐंजाइम्ज हाइड्रोजन-परमाणु-रहित करके ऑक्सीजन और पानी बना सकते हैं, इससे शरीर का सामान्य व्यापार जारी रहता है, किन्तु ऐसा न कर सकने वाले व्यक्तियो के मन पर इसका घातक प्रभाव होता है।

इस प्रकार के रोगी परिवारो का अध्ययन बताता है कि यह बीमारी उत्तराधिकार (Heredity) से सबध रखती है। जिनमें इन ऐंजाइम्ज के उत्पादक जेन गौण (Recessive) रहते है उनमें यह रोग अनिवार्य रूप से उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि अभी तक यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नही हो सका है कि कैसे इस रासायनिक क्रिया की कमी स्नायु ततुओ को भी दुर्बल कर देती है और इस प्रकार मन को निर्बल करती है किन्तु हम यह जानते हैं कि फेनाइल-पाइर्यूविक तेजाब एसेटाइल्कुलाइन (Acetyl choline — एक विशेष रासायनिक द्रव्य जो कि स्नायु कोषो में आवेग या उकसाहट के समय उत्पन्न हो जाता है) रस के प्रवाह को रोक देता है और सभवत इस प्रकार स्नायुओ की क्रिया-शक्ति को घटा देता है। इसी प्रकार थाइराइड की कमी या अधिकता और इसुलिन (Insulin) की अधिकता सीखने की शक्ति और बुद्धिमत्ता को कम कर देती है। यद्यपि खोई हुई योग्यता को इन हार्मंज के इजेक्शन लौटा नही सकते और इस प्रकार के कितने ही प्रयोग असफल हो चुके हैं किन्तु इससे कोई सिद्धान्तत अन्तर नही पड़ता। उदाहरणत, परिपक्व आयु के चूहों में इन ग्रथियो के स्वल्पापसारण या हार्मंज के अभिवर्धन

से कोई अन्तर नही पडता, किन्तु वचपन में इस प्रकार का अपसारण काफी गभीर और घातक प्रभाव डालता है। वास्तव में थाइराइड के किसी भी आयु में अपसारित करने पर भी उनके हार्मन एक दम वन्द नही हो जाते, इससे यदि पिच्यूइटरी के अपसारण द्वारा अथवा अन्य रासायनिक द्रव्यो से इस ग्रथि की क्रिया को सर्वथा वन्द कर दिया जाए तो इसका अवश्यभावी प्रभाव होगा—और यह प्रयोग सिद्ध भी है। Morgan

इसी प्रकार उत्तराधिकार या वशानुक्रम (Heredity) का प्रभाव आवेगात्मक निर्वलता (Schizophranic) और स्मृति भ्रश (Mnemic Deprissive) इत्यादि मानसिक रोगो में भी देखा जा सकता है। जैसा कि सहज ही अनुमान किया जा सकता है, इस प्रकार के मानसिक पहलुओं का जेनिक अध्ययन वहुत कठिन कार्य है। फिर इस प्रकार के मानसिक दुर्वलता जनित आचरणो को परिवृत्ति का प्रभाव भी कहा जा सकता है, यद्यपि यह एक दम व्यर्थ है, क्योकि परिवृत्ति का प्रभाव जव एक विशेष परिवार के सभी सदस्यो के अन्य आचरणो या शारीरिक रोगो में समान दृष्टिगोचर नही होता, इसी एक विशेष पहलू में वह समान क्यो हो। इस लिए, और अन्य अनेक प्रमाणो से भी, यही ठीक प्रतीत होता है कि इस प्रकार के रोग वशानुक्रम में ही निहित होते हैं। इसका प्रमाण यह भी है कि सहजात (Fraternal) शिशु युगलो में इस पहलू में उतनी ही समता होती है जितनी युग्म वच्चो में और अन्य पृथक् उत्पन्न भाइयो में, जो कि पुन इस वात को प्रमाणित करता है कि यह रोग माता पिता में होने पर ही उनकी सन्तानो को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त, इन भाइयों में तथा युग्म (Twins) तथा सहोत्पन्न (Fraternal) भाइयो में एक ही परिवृत्ति अथवा भिन्न परिवृत्तियो में भी रखने पर यह रोग एक निश्चित समय पर और निश्चित मात्रा में ही होता है।

यद्यपि इस समस्या का अभी तक कोई समाधान नही हो सका है कि इस रोग का शरीर-वैज्ञानिक आधार क्या है, तो भी इस रोग से पीडित व्यक्तियो के तथा इससे रहित व्यक्तियो के हार्मन सिस्टम में कुछ अन्तर देखा जा सकता है। इस रोग के रोगी में महत्वपूर्ण कुछ कमिया ये हैं—ऑक्सीजन की खपत को क्रियान्वित करने वाले आधार भूत रासायनिक परिवर्तन (Basic Metabolic rates of oxygen consumption) वहुत कम हो जाते है, (२) ऐसे व्यक्ति व्यायाम के पश्चात् लैक्टिक रस (Lactic Acid)

को खपाने मे सफल नही होते जिससे रक्त में इस रस की अधिकता हो जाती है, इससे वह व्यक्ति अपने किसी आवेग को सभाल नही पाते। (३) वे थाइराइड ग्रथि के विशेष हार्मन थाइरोक्साइन तथा इसुलिन की वडी वडी खुराको से प्रभावित नही होते। और (४) वे अपने रासायनिक शरीर को सामान्य रूप से कार्य करते रखने मे अपेक्षाकृत अधिक अस्थिरता और विविधता का प्रदर्शन करते है— दूसरे शब्दो मे, वे रासायनिक क्रियाओ में तीव्रता आने पर उन्हे सामान्य स्तर पर लाने मे अन्य व्यक्तियो से अधिक अशक्त प्रमाणित होते है। (Morgan)

ये कुछ शारीरिक गुण या दोष है जिन्हे उपयुक्त आधारो पर जेनिक कहा जा सकता है, किन्तु इस का अर्थ यह नही कि केवल यही अवस्थाए जेन सिस्टम की उत्पित्त है अथवा ऐसी सभी अवस्थाए जेन सिस्टम की उपज होती है, प्रत्युत् यह कि हम इनसे शरीर और मन तथा मस्तिष्क के निर्माण में जेज का और व शानुक्रम (Heredity) का कुछ महत्व समझ सकते है और यह जान सकते है कि जेन किस प्रकार शरीर और मन के आधार भूत अथवा मौलिक द्रव्य कहे जा सकते है। अनेक वा- दो भाइयो में आकृतिगत समता इतनी अधिक पाइ जाती है कि उन्हे एक दूसरे के स्थान पर भूल से समझ लिया जाता है। कभी कभी माता तक इसमें भूल कर जाती है। युग्म वच्चो में तो ऐसा प्राय होता ही है। इस प्रकार की बाह्य समता रखने वाले वच्चो या भाइयो में मानसिक समताकी भी सभावना की जा सकती है। युग्म भाइयो में तो यह प्राय होता ही है (बाह्य समता भी प्राय उन मे पूर्ण होती है) फिर चाहे उन्हे कितनी भी भिन्न परिवृत्तियो में क्यो न रखा जाय। यह होना स्वाभाविक भी है, क्योकि मानसिकता, जैसा कि हम पहले दो निबधो में भी देख आये है, मस्तिष्क के विशेष प्रबध, स्नायुओ के विशेष सस्थान और हार्मज्ञ के विशेष अनुपात पर बहुत निर्भर करती है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिनका शरीर-यत्र पूर्णत समान होगा उनकी मानसिक योग्यता (Mental capacity) भी ठीक एक ही सी होगी।

किन्तु अनेक लेखक इस समता और वशानुक्रम-प्राप्ति (Heritage) को बहुत गलत रूप में समझते है, वे ससझते है सगीत, काव्य और शास्त्र-ज्ञान में निपुणता इत्यादि भी ज्यो की त्यो वशानुक्रम में प्राप्त की जा सकती है—यह शायद गलत है, अथवा कमसे कम इसका कोई भी प्रयोग-सिद्ध आधार नही है। एक 'सगीतज्ञ' वशका बच्चा वशानुक्रम मे जो प्राप्त करेगा, वह है सगीतज्ञ होने की शारीरिक योग्यता,—जैसे उसका

कण्ठ-स्वर मधुर होगा (जैसाकि हम जानते हैं, कण्ठ-स्वर प्राय ही बच्चे का माता-पिता में से किसी एक से, जिस लिंगका वह हो, मिलता ही होता है, कभी-कभी तो पहचानना तक कठिन हो जाता है कि बोलने वाली माता है या लडकी), उसका आवेग सस्थान भी इस प्रकार का होगा कि वह गाना अधिक पसद करेगा—और यह सब केवल इसी रूप में कि उस की शरीर-रचना ही इस प्रकार की होगी। जैसा कि हम पीछे हार्मंज के प्रभाव को व्यक्तित्व पर देखते हुए शेली, कीट्स और विल्सन के व्यक्तित्वो का उस आधार पर वर्गीकरण कर आए है उसी आधार पर प्रत्येक व्यक्तित्व का और आचरण का वर्गीकरण वशानुक्रम के आधार पर हो सकता है, क्योकि बच्चा माता-पिता से यही प्राप्त करता है। इस प्रकार व्यक्ति वशानुक्रम में केवल विशेष शारीरिक परिस्थितियाँ प्राप्त करता है जो परिवृत्ति के प्रभाव में किसी दिशा विशेष की ओर ढलती या विकसित होती है। जैसे आईस्टीन के लिए, सभव था कि वह एक महान गणितज्ञ और वैज्ञानिक न बन कर वेदान्ती बनता, यह केवल उसकी परिवृत्तिपर निर्भर करता है कि वह वेदान्ती नही बना, किन्तु वह कवि कभी नही बन सकता था, फिर चाहे कोई भी परिवृत्ति उसको क्यो न प्राप्त होती। यौवन में गोनाड्ज के स्राव में तीव्रता होने पर और धमनियो में रस-स्राव तीव्र होने पर किसी रमणी के होंठ प्रिय लगने स्वाभाविक और सभावित है और उस अवस्था में यह आशा की जासकती है कि आईस्टीन भी कविता लिख डालता, किन्तु वह केवल अस्थायी वृत्तिही हो सकती थी। इस का अर्थ यह नही कि प्रत्येक व्यक्ति एक ऐसी निश्चित प्रवृत्ति के साथ उत्पन्न होता है जो उसमें प्रारभ से ही निश्चित और स्पष्ट होती है। कई एक व्यक्ति तो बिल्कुल धपला भी होते हैं—इतने अधिक कि वे कवि और वैज्ञानिक दोनो ओर की सभावनाए रखते हैं, किन्तु सभवत उस अवस्था में उन में दोनो सभावनाए उतनी प्रखर नही हो सकती। यह भी आत्यन्तिक नही है, कुछ व्यक्ति अनेक दिशाओ में सफल और महत् कार्य कर डालते हैं। जैसे अनेक व्यक्ति इतिहास में प्राप्त किए जा सकते है जो कवि, उपन्यासकार, गणितज्ञ और वैज्ञानिक साथ-साथ ही थे। न्यूटन कवि और वैज्ञानिक दोनोही था, यद्यपि सफल कवि उसे नही कहा जा सकता। ऐसे व्यक्ति जैसी परिवृत्ति प्राप्त कर लेते है उसी ओर अधिक सफल हो जाते है जब कि दूसरी ओर कम सफल रहते है। इस प्रकार व्यक्ति एक ऐसा चित्र-पट होता है जिस पर कुछ विशेष प्रकार के चित्र ही अकित किये जा सकते है और अन्य किसी प्रकार का चित्र उन पर ठीक नहीं उभर सकता। किन्तु उन विशेष प्रकार के चित्रो में से कौन सा उन पर अकित होगा, यह केवल

सयोग की बात ही हो सकती है। महात्मा गांधी अपनी जिस विशेष योग्यता (निष्ठा और जिद्द) से एक महान नेता बने उसी के कारण वे एक पुजारी या भक्त भी बन सकते थे और सनकी व्यक्ति भी, यह केवल सयोग ही की बात है कि वे नेता बने। इसी प्रकार यह सब के लिए कहा जा सकता है। इस प्रकार वशानुक्रम में प्राप्त शरीर के जेनिक निर्धारण से विकसित मानसिक योग्यता को समझना एक कठिन और उलझन-पूर्ण कार्य होने पर भी एक निश्चित और सुदृढ आधार पर स्थित है, यह हम इस अध्ययन से सहजही अनुमान कर सकते है।

अब हम कुछ प्रयोगो को देखेंगे और उनके कारणो पर पहुँचने का प्रयास करेंगे जिससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि कैसे एक अपराधी का पुत्र अपराधी और विवेकी का पुत्र विवेकी होने की सभावनाएँ अपने अन्त शरीर में निहित ले कर उत्पन्न होता है।

मानसिक दौर्बल्य—मानसिक रोगो में बहुत सामान्य रोग है, जिसके अनेक प्रकार हो सकते हैं। इनमें से कुछ परिवृत्ति के कारण जैसे अल्कोहल इत्यादि नशीली और विषैली वस्तुओ के अधिक प्रयोग से भी हो सकते हैं। किन्तु अधिकतर हमारे शारीरिक निर्माण में निहित रहते हैं—जैसे थाइ-राइड ग्रथिके अधिक बढ जाने से व्यक्ति में मानसिक दौर्बल्य उत्पन्न हो जाता है जो कि वशानुक्रम में चलता है।

अब हम इसके समर्थन में कुछ प्रयोग सम्मत तथ्य उद्धृत करेगे। गोड्डर्ड (Goddard) ने कुछ परिवारो में, जिनमें कि प्रवर्तक माता-पिता (Progenitor) दोनो ही दुर्बल हृदय व्यक्ति थे, पाया कि उनमें से ४७० बच्चे दुर्बल हृदय के और केवल ७ बच्चे सामान्य मानसिक योग्यता के थे। सभव है, ये बच्चे अगली किसी पीढ़ी में माता के किसी अन्य स्वस्थ मानसिक स्तर के व्यक्ति के साथ विवाह के कारण उत्पन्न हुए हो। दूसरे परिवारो में, जहाँ माता पिता में केवल एक दुर्बल हृदय का व्यक्ति था और दूसरा सामान्य मानसिक योग्यता का, ११३ बच्चे दुर्बल हृदय थे और १४४ सामान्य थे।

हृदय का यह दौर्बल्य निश्चित रूप से प्राणी के व्यवहार को भी प्रभावित करता है, जो अपनी प्रकृति के आधार पर और परिवृत्ति की सापेक्षा में उसे विभिन्न दिशाओ में प्रेरित करता है। उदाहरणत दुर्बल हृदय व्यक्ति चोर, हत्यारा और शराबी भी हो सकता है और सामाज या ईश्वर से डरकर बुरे कार्यों से बचने वाला भी, किन्तु जिनका स्नायु और अग्रिम मस्तिष्क (Fore Brain) दुर्बल होता है वे व्यक्ति अधिक आवेगात्मक

और रासायनिक प्रक्रियाओ में सन्तुलन खो बैठने वाले होते हैं, और अपनी इन दुर्बलताओ से हत्या, चोरी, इत्यादि अपराधो में प्रवृत्त हो जाते हैं। किन्तु कोई व्यक्ति कैसे अपराध में प्रवृत्त होगा, यह उसकी परिवृत्ति पर निर्भर करेगा। परन्तु परिवृत्ति के प्रभाव को कभी कभी आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे दिया जाता है। किन्तु एक व्यक्ति, जिसका मानसिक निर्माण उसे दूसरो के अधिकारो पर आक्रमण करने को वाध्य करता है, वह प्रत्येक अवस्था में वैसा ही करेगा, फिर चाहे कोई भी कानून उसे रोकने वाला क्यो न हो। शिक्षा और भय से ऐसे अपराधियो में वहुत अन्तर तो लाया जा सकता है किन्तु अधिक प्रयास से। इस प्रकार के उपायो से तो उन्हीं को सरलता से प्रभावित किया जा सकता है जो परिवृत्ति के कारण ही अपराधी वने हो। जन्मत अपराधी व्यक्ति परिवृत्ति से वनते नही परिवृत्ति को वनाते है। कोई व्यक्ति अपराधियो के ससर्ग में जाता ही क्यो है ?—अन्य क्यो इस प्रकार की परिवृत्ति में नही जाता और कभी कभी फँस जाने पर भी उसमें खप नही पाता ?—यह वात कम महत्वपूर्ण नही है। एक अपराधी-जिस सुविधा से एक अपराध-पूर्ण परिवृत्ति में पहुँच जाता है यह अपनी अन्तर्निहित अथवा शरीर-रचना में विकसित अपराधी प्रवृत्ति के कारण ही। जेनेटिक शरीर–निर्माण न केवल व्यक्ति की अपनी परिवृत्ति चुनने की योग्यता ही होता है प्रत्युत न मिलने पर उसे वनाने के लिए वाध्य भी करता है। यह ठीक है कि एक विशेष समाज-व्यवस्था में ऐसे व्यक्तियो को अपनी परिवृत्ति वनाने और खोजने में अधिक सुविधा रहती है और दूसरी में कम, किन्तु यह व्यवस्था उसे अपराधी वनाने की एक मात्र उत्तरदायी नही कही जा सकती। इसका अर्थ यह नही कि अपराधी को कम अपराधी नही किया जा सकता या उसे विल्कुल ठीक नही किया जा सकता, किन्तु जव तक आप उसके अन्त शरीर को नही वदलते तवतक उसे स्वस्थहृदय (Sound Minded) नहीं वना सकते और इस प्रकार उसमें से अपराध-वृत्ति निर्मूल नही कर सकते।

ऐसे कुछ निश्चित कारण और प्रमाण दिये जा सकते है, जिनमें कि वशानुक्रम में प्राप्त कमियाँ स्वभावत ही व्यक्ति को अपराध में प्रवृत्त करती हैं। एक निर्दय क्रूरता और अविचार-पूर्ण हिंसावृत्ति, जो कि शिजोफ्रेनिया (Schizophrania) के कारण व्यक्ति में उत्पन्न हो जाती है, वडी सुविधा से उसे अपराधी वना सकती है। अस्वस्थ मानसिक-स्थिति वाला व्यक्ति (Psychopathic), जो कि स्वत ही चिड़चिडा है, प्राय ही यह समझलेता है कि समाज ने उसे वहुत सताया है और उसकी

इस अस्वस्थता का उत्तरदायित्व उसी पर है। क्योकि वह स्वभावत ही चिडचिडा और असामाजिक होता है इसमे उसे प्राय ही इसकी पुष्टि में ठीक प्रमाण मिलते रहते है, क्योकि उसके साथी उससे बोलना तक पसन्द नही करते और न उसकी कभी सहायता ही करते है। इसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि वह समाज से बदला लेने का तर्क लेकर अपराध में प्रवृत्त हो जाता है। इपिलेप्टिक (Epilaptics) प्राय ही हत्या इत्यादि अपराधो में फस जाते है। वास्तव में दुर्बल हृदय व्यक्ति थोडी सी प्रतिक्रिया या उकसाहट से ही इतने अधिक अवश और आवेग-पूर्ण हो उठते है कि उनके लिये अपने आपको रोक सकना कठिन हो जाता है—वे अपने पर ऐसी किसी प्रतिक्रिया को होने से रोकने मे असमर्थ हो जाते है। यदि वे इस आवेग की तीव्रता का व्यय न करलें तो कभी २ यह दिनो तक उनमें बन रहता है और अन्त में और भी अधिक स्नायविक दुर्बलता के रूप में परिणत होता है। इसलिये यदि वे कुछ विवेक रखते भी हो तो भी वे उसका उपयोग करने मे असमर्थ रहते है और क्रमश अधिक निर्वल होते जाते है। अनेक अपराधियो के अध्ययन से देखा गया है कि उनमे काफी सख्या दुर्बल-हृदय व्यक्तियो की ही होती है, जब कि उससे भी बडी सख्या उन व्यक्तियो की होती है जिनके मस्तिष्क का विकास अपनी आयु के अनुसार बहुत कम हो पाया होता है। शल के अनुसार, ऐसे ४७० व्यक्तियो का अध्ययन करने के पश्चात् पाया गया कि उनमें से केवल ३० प्रतिशत तो बिल्कुलही स्पष्ट रूप से दुर्बल हृदय व्यक्ति थे, जब कि ७० प्रतिशत व्यक्ति अविकसित बुद्धि वाले थे। यद्यपि हम निश्चित रूप से नही कह सकते कि बुद्धि से उसका अभिप्राय शरीर वैज्ञानिक बुद्धि है या सामाजिक, जो भी हो, सभवत कम बुद्धि का अर्थ अदूरदर्शिता और कम मानसिक योग्यता (Mental capacity) ही होना चाहिये जिसका परिणाम कम से कम इस रूप में दुर्बल हृदयता होता है कि वह अपना मानसिक सन्तुलन ठीक नही रख पाता और न आवेग (Emotion) की अवस्था में तदीय क्रिया के परिणामो को समझने में ही समर्थ होता है। वेश्याए और अन्य अपराधी भी, जिनमें आत्म हत्या करने वाले भी सम्मिलित हैं, प्राय ही इस प्रकार मानसिक रोगो और मानसिक दौर्बल्य के शिकार होते है। ५०० वेश्याओ के वशानुक्रम का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि उनके परिवारो में अधिकतर व्यक्ति मानसिक अस्वास्थ्य (Psychopathy) और (Insanity) (Oligophrania) अल्कोहल-सेवन तथा आत्महत्या इत्यादि से पीडित रह चुके थे। युग्म लडको में अपराधवृत्ति का अध्ययन करते हुये

इस विचार की और भी अधिक पुष्टि हो चुकी है कि अपराध की जड भी बहुत कुछ मनुष्य की शरीर-रचना या जेनेटिक सिस्टम में ही निहित है। इस प्रकार के एक अध्ययन में पाया गया कि युग्मजो के दस युगलो में सभी युगल अपराधी थे, जबकि एक अन्य अध्ययन में युगल का केवल एक सदस्य अपराधी था। दो सहजात युगलों के अध्ययन में दोनो ही अपराधी थे जबकि एक अन्य अध्ययन में १५ ऐसे युगलो में प्रत्येक का केवल एक ही सदस्य अपराधी था। स्पष्टत ही यह अपराध परिवृत्ति के महत्व की स्थापना करता है, किन्तु यह अन्तर वास्तविक न होकर केवल प्रतीयमान है, क्योकि इससे केवल यही प्रमाणित होता है कि इसमें परिवृत्ति भी एक (Factor) है यह नही कि जेनिक सिस्टम नही है। सभव है कि शेप व्यक्ति अज्ञात अपराधी हो, क्योकि ऐसे अनेक 'अच्छे' व्यक्ति देखे जा सकते है जो समाज में काफी प्रतिष्ठित है, वे वास्तव में ही समझदार भी है किन्तु फिर भी छोटी मोटी वस्तुओ की चोरी, हस्त मैथुन, गुप्तद्वेप-भावना इत्यादि मे प्रवृत्त होते है। यह केवल इसलिये कि वे 'वडे' दोपो में अपनी प्रतिष्ठा के कारण या सामाजिक चेतना के कारण प्रवृत्त नही हो सकते। 'सामाजिक चेतना' शब्द यद्यपि यहाँ विचित्र प्रतीत होगा, क्योकि छोटी मोटी चोरियो के लिये भी यह लागू होता है, किन्तु इसमें आश्चर्य की कोई वात नही, क्योकि छोटी चोरियो को वे वुरा समझते हुये भी उससे अपने आप को रोक नही पाते और धीरे धीरे उनके लिये अभ्यस्त हो जाते है। यह भी हो सकता है कि युगलो में ज्ञात अपराधी व्यक्ति शरीर-रचना से अपराधी न हो कर केवल परिवृत्ति के कारण ही अपराधी वने हो और इससे दूसरे उससे वच गये हो।

इससे, और अन्य भी अनेक उदाहरणो से हम यह आसानी से समझ सकते है कि कैसे जेन-सिस्टम और शरीर-वैज्ञानिक प्रकृति अपराध-वृत्तियो को प्रेरणा दे सकती है। इसका प्रमाण हम ऐसे परिवारो में और भी स्पष्टता से प्राप्त कर सकते है जिनमें अपराध-वृत्ति एक पेशा ही वन चुकी हो। Dugdale के एक अध्ययन के अनुसार, एक परिवार में अपराध-वृत्ति कुल-क्रमागत थी। उसने इस अपराधी परिवार पर अपना अध्ययन १८७५ में समाप्त किया। उसके पश्चात् १९१५ में इस्ट ब्रुक ने इस परिवार पर फिर से अध्ययन प्रारभ किया। इन दो अध्ययन-कालो के अन्तर में उस परिवार में सख्या के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का परिवर्तन दृष्टिगोचर नही हुआ। इसके २१०० व्यक्तियो में से ३७८ वेश्याएँ थी, १८१ अलकोहल सेवन के अपराधी

घोरअपराध वृत्तियो में व्यस्त तथा ८६ कुत्सित तथा गदे साथियो और स्थानो पर रहने वाले थे। इस परिवार के लगभग आधे व्यक्ति दुर्बल हृदय के थे और घोर अपराधियो में आधे से कही अधिक व्यक्ति काफी दुर्बल हृदय के थे। वास्तव में, इस्टब्रुक के अनुसार तो इन सभी व्यक्तियो में किसी न किसी सीमातक मानसिक दौर्बल्य वर्तमान था। इस परिवार की आदि स्रोत-स्त्री एक वेश्या थी और इसका पति जगल-विभाग में नौकर एक डच था, सभवत ये दोनो ही मानसिक दौर्बल्य से पीडित थे। इसी प्रकार, मैं व्यक्तिगत रूप से तीन भाइयो को जानता हूँ जिनके माता-पिता का पता नही था, किन्तु सभवत माता एक मुसलमान के साथ घर से भाग गई थी और बच्चे भी उन्ही के पास चले गए थे। कुछ ही दिनो के पाश्चात् आर्य समाज को उनका पता लगने पर वे मुकदमा कर के लौटा लिये गए और एक शिक्षण-सस्था में भेज दिए गए। तब उनमें सबसे बडे लडके की आयु दस वर्ष से कुछ कम थी जब कि छोटा लगभग ५ वर्ष का रहा होगा। ये तीनो भाई आकृति में काफी भिन्न थे। इनमें पहले का मुख जब कि कुछ चौडा और माथा चपटा था, बिचले का मुँह तीक्ष्ण और माथा कुछ चौडा था, छोटे का मुँह कुछ गोल और कुछ लबाई में था। रूप में तो इनमें बहुत काफी अन्तर था। जब ये लडके शिक्षण सस्था में आये तब से मुझे उन्हे देखने का अवसर मिला है। उनमें बडा लडका काफी क्रोधी (crazy), लडाका और चोर तथा सिगरेट पान करने वाला था, जबकि बिचला कुछ अपेक्षाकृत भला यद्यपि गुस्सैल था, छोटा तब अभी स्पष्ट नही था। बडे लडके को सुधारने के काफी प्रयास किये गए, किन्तु वह ठीक नही किया जा सका और लगभग ६ वर्ष तक उस शिक्षण सस्था में रह कर एक दिन भाग गया। अब वह मिलट्री में है और अनेक बार अपने मित्रो के यहाँ से छोटी मोटी वस्तु चुरा कर ले जाता रहा है।

बिचला लडका प्राय प्राय काफी भला रहा, वह कुछ सुन्दर भी था (बडा भी सुन्दर था)। कुछ ही दिनो में वह पढने में भी होशयार हो गया और सगीत में सबसे आगे बढ गया। वह सितार तो सबसे अच्छी बजाता था। किन्तु दुर्भाग्यवश एक व्यक्ति ने उससे सेक्सुअल सबध स्थापित कर लिये और कुछ समय बाद वह उसे वहाँ से भगा ले गया। तब लडके की आयु १२-१३ रही होगी। इस बीच में ही उसे किसी सेठ ने अपने लडके के रूप में स्वीकार कर लिया था। अस्तु वह कुछ देर तक उसी कामुक व्यक्ति के साथ रहा, किन्तु, सभवत २½ वर्ष के बाद वह उसके चगुल से छूट आया। और अपने अभिभावक सेठ के पास पहुँच गया। सेठ ने उसे स्वीकार कर

लिया और अब वह कलकत्ता में उसके व्यापार का बड़ी योग्यता से सचालन कर रहा है।

तीसरा और सबसे छोटा लडका अभी उस शिक्षण सस्था में ही है। वह लगभग अपने वडे भाई के समान ही बना है। अब वह फौज में भर्ती होने का प्रयास कर रहा है। गत वर्ष उसे आयु छोटी होने से अस्वीकार कर दिया गया था, इस वर्ष वह भर्ती हो जाने की आशा करता है।

इन तीनो भाइयो में पूर्ण निश्चय के साथ कहा जा सकता है, कि अन्तर परिवृत्ति जन्य नही था। इसका प्रमाण विचला लड़का है। विचले लडके के भिन्न होने का कारण यह भी हो सकता है कि उसके पिता का उस पर प्रभाव हो (हम उसके पिता के वारे में कुछ नही जानते) अथवा उस पर माता का प्रभाव न हो सका हो, वास्तव में इन लडको के बौद्धिक स्तर और स्वभाव में भी काफी अन्तर है। आवेग का स्तर, आचरण और व्यवहार की प्रकृति तथा बौद्धिक स्तर सभी कुछ आपस में भिन्न थे। जब कि सबसे वड़ा और छोटा लड़का कभी भी सगीत में अच्छे नही हो सके, विचला उस सस्था भर में सबसे अच्छा रहा।

इसी प्रकार एक अन्य परिवार की दो शाखाओ को भी इसकी पुष्टि में रखा जा सकता है जिसका प्रवर्तक पिता (Progenitor) एक किन्तु माताएं भिन्न-भिन्न थीं। इस व्यक्ति (पिता) ने पहले किसी दुर्वल हृदय लडकी से अवैधानिक सभोग के द्वारा एक पुत्र उत्पन्न किया और उसके पश्चात् किसी अन्य स्वस्थ लड़की से शादी करली। परिणाम-स्वरूप दो वशावलियां चल पडी। इनमें से एक—दुर्वल हृदय लड़की की शृखला—में जबकि अनेक मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति पाये जा सकते हैं वहा दूसरी की वशावली में सभी के सभी व्यक्ति स्वस्थ हैं। पहली की सन्तानो में स्वस्थ व्यवितयों के होने का कारण यह है कि आगे जिन व्यक्तियो से इन शृखला के स्त्री पुरुष शादियां करते रहे उनमें से कई एक स्वस्थ भी रहे होगे। इससे इस शृखला के स्वस्थ व्यक्ति हमारे वंशानुक्रम-प्राप्ति के सिद्धान्त का खडन नहीं करते।

इसी प्रकार वशानुक्रम में विवेक शीलता और स्वस्थ हृदयता जैसे अच्छे गुण भी प्राप्त किये जा सकते हैं और इसका वहुत वडा महत्व है, किन्तु ऐसे किन्हीं भी परिक्षणों में काफी सावधान रहने की आवश्यकता है, क्योकि अनेक वार इस प्रकार के सद्गुण या दुर्गुणो का कारण परिवृत्ति भी हो सकतो है। जैसे, मर्फी (Murphy) के अनुसार, अमेरिका के स्कूलो मे हब्शी

और यूरोपियन लडको की बुद्धि-परीक्षा ली गई, जिन प्रान्तो में हब्शी विद्यार्थियो के लिये पृथक-स्कूल थे, और उन्हें यूरोपियनो से नीचा समझा जाता था उन स्कूलो के विद्यार्थी यूरोपियनो से इस परीक्षा में बहुत पीछे थे, किन्तु जिन प्रान्तो में हब्शियो के साथ समान व्यवहार होता था और सब जातियो के विद्यार्थी इकट्ठे ही स्कूलो में पढ़ते थे, वहा समान सुविधाए मिलने के कारण सभी जातियो के विद्यार्थी सामूहिक रूप से समान थे।* (व्यक्ति-भिन्नता तो सदैव रहती ही है, और वशानुक्रम का अध्ययन भी व्यक्तियो या विशेष वशो पर होता है—समूह पर नही, समूह पर उस समूह की आनुवशिक या जातीय उत्तराधिकार की योग्यता का अध्ययन होता है)। इस प्रकार, परिवृत्ति भी व्यक्ति के निर्माण में एक कारण हो सकती है। किन्तु इससे वास्तव में हमारे उपर्युक्त कथन का खडन नही होता और न किसी प्रकार की अन्य सभावना ही उसे फीका करती है, क्योकि मर्फी के प्रयोगो का उद्देश्य जातीय स्तर को नापना है किन्तु हम व्यक्तियो का अध्ययन कर रहे हैं। शल के अनुसार ४१ उत्तमश्रेणी के बुद्धिमान लडको में से केवल दो ऐसे थे जिनका कोई निकट सबधी उत्तम श्रेणी का बुद्धिमान नही था। इसी प्रकार, एक अन्य प्रयोग में एक जौडे की बुद्धि परीक्षा की गई। दोनो को आयु के आठवें मास से ही न केवल बिल्कुल पृथक् रखा गया था प्रत्युत उनकी शिक्षा-दीक्षा भी सर्वथा भिन्न हुई थी। उनमें से एक व्यापार कालिज में पढी थी और इस प्रकार की कुछ नौकरियाँ भी कर चुकी थी जबकि दूसरी अध्यापिका थी। इसके बावजूद इनकी आकृति प्राय प्राय समान थी और बुद्धि-परीक्षा में भी ये प्राय प्राय बराबर ही थी, किन्तु अपने सामान्य व्यवहार और रहन सहन में ये एक दूसरे से काफी भिन्न थी, जिसका कारण उनकी परिवृत्ति को कहा जा सकता है। इसी प्रकार एक अन्य जौडे की समानता के लिये कहा गया है कि न केवल उसके दोनो व्यक्तियों की आकृति और स्वभाव में ही पूर्ण समानता है प्रत्युत उन्होने एक ही समान पुरुषो से विवाह करवाया है, उनके एक ही जैसे कुत्ते हैं और एक ही जैसे वे कपडे और भोजन पसद करती है। इससे भी अधिक समता का एक उदाहरण हमने पिछले निबध के प्रारभ में दिया था। किन्तु अनेक प्रयोगो में ऐसी स्पष्ट समता कभी कभी प्राप्त नही होती, और कभी कभी तो आकृति में भी कुछ अन्तर आ जाता है। यदि ध्यान से देखा जाए तो यह कोई आश्चर्य

---

* यद्यपि अनेक वैज्ञानिक इससे सहमत नही हैं और उनके प्रयोगों के अनुसार, इन स्कूलो में भी यूरोपियन अफ्रीकनो से अधिक कुशल हैं।

की बात नही है, क्योकि किसी के समान होने का अर्थ प्रत्येक प्रक्रिया में समान होना नही है, प्रत्युत स्तर मे समान होना है, कभी कभी इसमें भी स्पष्ट समानता नही पाई जाती, जिसका कारण सभवत यह हो सकता है कि उन दोनो के समान जेंज ने समान शरीर का निर्माण नही किया। कभी कभी आकृति में पूर्ण समता होने पर भी सभव है दो भाइयो का बौद्धिक स्तर बिल्कुल समान न हो। सभव है उनकी आकाक्षाए और स्वभाव भी कुछ भिन्न हो—उस अवस्था में सभवत इसका कारण यह होगा कि उनके ग्रथि-जेन और मस्तिष्क-जेन समान विकसित नही कह सके। अन्य भी अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे सभव है वे दोनो युग्म-भाई न होकर केवल सहोत्पन्न भाई हो, सभव है वह भिन्नता जेनिकन ण होकर परिवृत्ति सबधी हो, और सबसे अधिक, सभव है उनके मन भौतिक (physical) परिवृत्ति भिन्न होने से, भोजन भिन्न होने से, भिन्न रूप में विकसित हुए हैं।

जब हम किसी भी प्रकार से वशानुक्रम में प्राप्त (Hereaitary) विशेषताओ के बारे में कुछ कहते हैं तब हमें यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि यह समता या भिन्नता प्रक्रियात्मक न होकर प्रक्रिया के स्रोतो में निहित हैं। जेन स्वय न प्रक्रिया है और न प्रक्रिया के स्रोत हैं, प्रत्युत प्रक्रिया स्रोतो के उन्नायक अथवा आधार है, यह हम इस निबध के प्रारभ में ही देख आए हैं। और ये प्रक्रिया-स्रोत किस प्रकार प्रक्रियाओ को जन्म देते हैं, यह हमने पहले निबध में देखा था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रक्रिया अनगढ पदार्थ के समान इन प्रक्रिया-स्रोतो में निहित रहती हैं, जब कि वह रूप ग्रहण परिवृत्तिकी सापेक्षता में, व्यक्ति की सुविधानुसार करती है। स्पष्ट ही परिवृत्ति भी इस प्रकार एक निर्णायक तथ्य (Factor) है, किन्तु पर्याप्त सापेक्ष। एक व्यक्ति जिसमें गोनाड्ज का प्रवाह अपेक्षा कृत अधिक तीव्र है, निश्चितरूप से ही अधिक कामी होगा और अपनी आवश्यकतानुसार अपनी परिवृत्ति खोजने के लिए सघर्ष करेगा, किन्तु सभव है एक व्यक्ति उतना कामी न हो और परिवृत्ति उसे अधिक कामी बना दे। इसी प्रकार प्रकृत्या एक अधिक कामी व्यक्ति भी अपनी इस प्रवृत्ति की अपेक्षा कम काम-प्रवृत्त हो सकता है। इस प्रकार हम इससे सहमत नही हैं कि परिवृत्ति व्यक्ति की एक मात्र नियामक है।

किन्तु वशानुक्रम को केवल माता पिता तक सीमित नहीं रखना चाहिए, जैसा कि प्राय किया जाता है, इसमें मेंडिलियन से छटनी (Segregation) और पुनरुद्भव तथा जेंज का भिन्न क्रम में होना

इत्यादि भी बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लेते है। उदाहरणार्थ आईस्टीन की महानतम प्रतिभा को सामान्य श्रखला में नही देखा जा सकता।

किन्तु सामान्यत लोग, जिनमें कभी कभी लेखक भी योग दे देते है, वशानुक्रम में प्राप्त प्रवृत्तियो के बारे में समझते हैं कि वे वैसी की वैसी ही प्रक्रिया रूप में प्राप्त होती है, जैसे-"एक सगीतज्ञ का पुत्र भी सगीतज्ञ ही होता है" इत्यादि। यह गलत है, सभव है एक सगीतज्ञ का पुत्र एक सगीतज्ञ न होकर कवि हो, सभव है वह केवल एक भावुक प्रेमी हो और यह भी सभव है कि वह बिल्कुल सामान्य व्यक्ति हो। यदि एक सगीतज्ञ का पुत्र भी सगीतज्ञ होता है तो वह केवल इसलिए कि उसे शैशव से ही उस परिवृत्ति में रहने का अवसर मिला होता है और शैशव से ही उसे इस ओर लगाया जाता है। उसे स्वयचुनाव का अवसर नही मिलता यह ठीक है कि यदि उसका वश अपनी सगीत की योग्यता के कारण सगीतज्ञ रहा है तो उसमें भी ऐसे जेन होगे जिनके कारण वह सगीत में दूसरो से आगे बढ जाएगा। किन्तु एक सगीतज्ञ या कवि का पुत्र वैज्ञानिक या दार्शनिक भी हो सकता है जिसके कारण हम पिछले निबध में और कुछ इस निबध में भी देख आए है।

यद्यपि इस प्रकार के अध्ययन में अनेक कठिनाइयाँ हैं किन्तु एक निश्चित और वैज्ञानिक निर्णय पर पहुँचने का यही एक मात्र रास्ता है। इसलिए किसी भी मानमिक योग्यता के लिए हमें यह मानकर ही चलना चाहिए कि इसके कुछ भौतिक-रासायनिक आधार है और यह केवल उनकी विशेष अभिव्यक्ति मात्र है। तोते को कुछ प्रयास से मनुष्य की भाषा के शब्द बोलना सिखाया जा सकता है और इन शब्दो के प्रयोग की एक विशेष प्रणाली भी सिखाई जा सकती है जिसे कि निर्धारित प्रभाव (Conditioned Effect) कहा जा सकता है, जैसे तोता किसी के आने पर कहे चलो चलो' इत्यादि किन्तु कबूतर या कुत्ते को यह कभी नही सिखाया जा सकता–यद्यपि कुत्ता काफी बुद्धिमान पशु है। सभवत इसके दो कारण हो सकते हैं-प्रथम तो कुत्ते या कबूतर के मुँह में वह योग्यता न हो और दूसरे उसके मस्तिष्क में ऐसा कोई विशेष विभाग न हो। नही तो कोई कारण नही कि वे क्यों तोते के समान बोल न सकें। तोता भी इन शब्दो के अर्थ कभी नही समझ सकेगा जब की मनुष्य बडी सुविधा से समझ सकता है और इसका कारण केवल यही है कि उनके मस्तिष्क में इसकी योग्यता है। योग्यता अयोग्यता को हम जेनिक कह सकते है।

किन्तु कुछ वैज्ञानिक, यद्यपि अधिकतर पुराने—व्यक्तित्व-निर्माण या प्रक्रिया निर्धारण में परिवृत्ति को अत्यधिक महत्व देते है, यहाँ तक कि वे प्रयोग-अप्रयोग के लामार्कियन सिद्धान्त को भी इसमें खीच लाते हैं। वे अपने पक्ष में ऐसे व्यक्तियो का उदाहरण देते हैं जो शैशव से ही पृथक् रखे जाने पर वोल तक नही सकते। सभवत यह तो कोई भी नही कहता कि भाषा उसी प्रकार सहजात है जैसे भूख, सहजात तो भाषा सीखने की योग्यता है। किन्तु वे कहते हैं कि यह योग्यता भी शैशव से निरन्तर परिवृत्ति मिलने के कारण ही मनुष्य में विकसित हो जाती है, यदि उसे वह परिवृत्ति न मिले तो न केवल उसमें तत्सवघी योग्यता ही नही आ पाती प्रत्युत् उसके तदीय यत्र भी अविकसित रह जाते है। इसके पक्ष में वे एक फ्रेंच वैज्ञानिक इटार्ड(Itard)के एक प्रयोग का उदारहरण देते हैं। उसने एक ऐसे लडके पर अपने परीक्षण किये जो ग्यारह वर्प की आयु में जगल से पकडा गया था। वह विल्कुल पशु के समान था, उन्ही के समान भीरु और जगली। उसके शरीर की परीक्षा करने से ज्ञात हुआ कि उसके शरीर के प्रक्रिया यत्रो का ठीक विकास नही हुआ था—ज्ञान ततु, प्रक्रिया ततु (motar) मस्तिष्क ततु और अन्य भी कुछ यत्र ठीक तरह से विकसित नही हो पाए थे। इटार्ड ने लडके को पाच वर्षों तक शिक्षित करने का अविरत प्रयास किया, किन्तु वह उसे उस सीमा तक शिक्षित नही कर सका जितनी उससे आशा की जा सकती थी। वह अपने पूर्ण प्रयास के वाद भी उसे शब्द स्पष्ट रूप से वोलना नही सिखा सका, यद्यपि वह सामान्य लिखी भाषा समझ सकता था और उसी के द्वारा अपनी आवश्य-कताएँ अभिव्यक्त कर सकता था। सब मिलाकर, लडका सामान्य स्तर तो क्या उसके समीप भी नही लाया जा सका, यद्यपि उसे उत्तम-तम परिस्थितिया प्रदान की गई। इस उदारहण से प्राय सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है कि परिवृत्ति, और वह भी शैशव के प्रारभ से, कितनी अधिक प्रभावशाली हो सकती है। किन्तु इस उदाहरण से हम किसी भी परिणाम पर नही पहुँच सकते, क्यो कि इसमें यह तो स्वीकार किया गया ही है कि उस का स्नायु ततुवाय पर्याप्त विकसित नहीं था, और इस वारे में यह कहना कि उसके विकसित न होने का कारण उसका अप्रयोग है—हमें उपयुक्त नहीं जान पडता। जैसा कि हम पिछले निवध में देख आए है, इसका कारण केवल यही कहा जा सकता है कि उसके कुछ जेंज किसी कारण से या तो गौण रह गए अथवा अपना ठीक विकास नहीं कर पाए, जेंज के क्रिया व्यापार में परिवृत्ति कितनी प्रभावशाली हो सकती है, इस विषय में हम पिछले निवध

में काफी विस्तार से लिख आए हैं। इस लडके के उदाहरण में यह कैसे सिद्ध किया जा सकता है—यह हम नीचे एक और उदाहरण से देखेंगे।

एक १७ वर्ष का लडका न्यूरबर्ग के बाजार में पागलो की तरह घूमता देखा गया। वह प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में केवल एक ही बात कहता था—मेरा पिता एक फौजी था, मैं भी वही बनूगा। उसका जन्म और वश उसके लिए भी एक रहस्य था। उसके लिए कहा गया कि वह किसी अत्यन्त समृद्ध परिवार का सदस्य था और उनके शत्रुओ के द्वारा वह शैशव से ही अँधेरी गुफा में बद कर दिया गया था। ट्रैडगोल्ड (Tredgold) नें उसे रख लिया और सिखाना-पढ़ाना आरम्भ किया। थोडे ही समय में उसने बडी तीव्रता से प्रगति करनी आरम्भ कर दी। यद्यपि वह सामान्य स्तर पर नही लाया जा सका किन्तु वह इस योग्य हो गया कि अपना दैनिक-जीवन ठीक प्रकार से चला सके। तब उसे एक कचहरी में कार्य पर लगा दिया गया। वहाँ वह ठीक तरह से अपना कार्य करता रहा। कुछ वर्षों के पश्चात् उसे एक व्यक्ति यह कह कर कही दूर निर्जन में ले गया कि वह उसे उसकी उत्पत्ति का रहस्य बताएगा और वहां उसे छुरा घोप कर मार डाला गया।

उसका पोस्ट मार्टम करने पर पाया गया कि उसका मस्तिष्क सामान्य से छोटे आकार का था और उसके विभिन्न भाग ठीक प्रकार से विकसित नही हुए थे। ट्रैडगोल्ड के अनुसार, यह उसके अप्रयोग के कारण था, जो कि उसके प्रारम्भ से ही बदी होने से उस पर ठूँसा गया था। उसके अनुसार, मस्तिष्क के छोटा होने का कारण यह हो सकता है कि दीर्घ एकान्तवास और अप्रयोग के कारण उसके मस्तिष्क के कोप विकसित नही हो पाए, जिससे उसका मस्तिष्क छोटा रह गया। किन्तु ऐसा मान लेने के लिए जैसे ठोस आधार की आवश्यकता है, वह उसने प्रस्तुत नही किया, उसके विरुद्ध कुछ ठोस तर्क अवश्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं—प्रथम तो, जब उसके शरीर के अन्य भागो और अगो का विकास अप्रयोग के बावजूद ठीक हुआ तो केवल मस्तिष्क का विकास ही ठीक क्यो नही हुआ ? दूसरे, उसकी खोपडी की आपेक्षाकृत मोटी थी—जिसका अर्थ है कि उसके मस्तिष्क-कोष के अविकसित रहने का कारण कुछ और है, क्योकि खोपडी के मोटा रहने न रहने का मस्तिष्क के प्रयोग-अप्रयोग से कोई सबध नही है। इसलिए यह अधिक तर्क-सम्मत प्रतीत होता है कि मस्तिष्क के अविकसित रहने का कारण किसी प्रकार के प्रयोग-अप्रयोग को न समझ कर किसी अन्य कारण की खोज की जाए। इस उदाहरण से परिवृत्ति के महत्व के बारे में चाहे कुछ भी कहा जाए, इससे कम से कम यह प्रमाणित

हो जाता है कि पहले लडके के भापा न सीख सकने और सामान्य स्तर से बहुत-अधिक कम रहने का कारण प्रयोग-अप्रयोग या परिवृत्ति नहीं है, क्योंकि दूसरा लडका पहले से छ वर्ष अधिक आयु से प्रारम्भ करके भी न केवल ठीक भापा तथा रहने-रहने की ठीक रीति ही सीख सका प्रत्युत् वह सामान्य मनुष्य की तरह कचहरी में कार्य भी करने लग गया। यदि किसी स्वस्थ बच्चे को इसी प्रकार सामाजिक-सपर्क से वचित रखा जाए तो हम अपने पिछले अध्ययन के आधार पर सहज ही यह कल्पना कर सकते हैं कि वह ठीक और पूरे मनुष्य के समान अपना विकास करेगा। जहाँ तक सामाजिक रीति-नीतियो को जानने का सबध है, वह उस ज्ञान से अवश्य ही वचित होगा क्योकि मनुष्य और शिंपेंजी जैसी विकसित जातिया अपने जीवन में बहुत कुछ सीखती हैं, बचपन से ही वे अपनी जातीय प्रवृत्तियो से अभिज्ञ नहीं होती है। जैसा कि हम अगले निवध में देखेंगे, एक जन्मान्ध मनुष्य दृष्टि-शक्ति प्राप्त हो जाने पर जहाँ दृष्टिगत सबधो (Visual Relations) को महीने तक भी ठीक प्रकार से स्थापित नहीं कर पाता वहाँ चूहा कुछ घटों में और कृमि बिना एक क्षण के विलव से ही अपने जातीय स्तर पर दृष्टिगत सबधो को जान लेता है। स्पष्टत ही इसका एक मात्र कारण शारीरिक विकास का स्तर है। जब कि कृमि अपने जीवन को एक निर्धारित यत्र के समान बिताता है, विकसिक प्राणी बहुत कुछ अपनी शिक्षा और इस प्रकार स्वतत्र इच्छा शक्ति (Free will) के अनुसार विताते है, मनुष्य में विचारणा (Intellect) होने से, इसमें और भी स्वतत्र हो सकत है क्योकि वह क्रमश विकास करता है। किन्तु यह शिक्षा जिस व्यक्ति को प्राप्त होती है उसकी योग्यता और पात्रता का प्रश्न बहुत अधिक महत्व पर्ण है, जिसे हम पीछे इस निवध में और प्रथम तथा द्वितीय निवधों में काफी विस्तार से देख आए हैं।

यद्यपि मनुष्य को एक दम उसी स्तर पर शरीर-विज्ञान का विपय नहीं बनाया जा सकता जैसे कृमियों या पक्षियों को बनाया जा सकता है, किन्तु उसके वे सब प्रक्रिया यत्र और स्रोत तथा नियामक अन्तत उसी प्रकार शरीर-विज्ञान के विपय हैं जैसे कृमियो के। यदि उसकी बहिर्वाहिनी धमनिया (Centrifugal nerves) ठीक कार्य करना बद कर दें तो वह देखते हुए भी उसकी अनुभूति नहीं कर सकेगा, सुनते हुए भी उसको प्रक्रियात्मक रूप नहीं दे सकेगा—इत्यादि। उसके मस्तिष्क का केवल एक भाग अपसारित किये जाने पर भी उसकी सम्पूर्ण विचारणा (Intellect) समाप्त की जा सकती है। इसलिये उसमें और अन्य प्राणियो में अन्तर पहिले शरीर-वैज्ञानिक है और फिर उसके परिणाम स्वरूप प्रक्रियात्मक भी। मनुष्य में, वाह्य

प्रभाव को केन्द्र तक ले जाने वाला अन्तर्वाही स्नायु तन्तु वाय(Centripetal Nervous System) और प्रतिक्रिया को बाहर लाकर शरीर को कार्य में प्रवृत्त करने वाला बहिर्वाही स्नायु ततु वाय(Centrifugal Nervous system)न केवल असख्य स्नायुओ से बुने असख्य कोषो वाले केन्द्र(मस्तिष्क) से ही बधा है, प्रत्युत अपने आप में भी असख्य उलझी हुई स्नायुओ और कोषो का जाल है, जिससे कोई भी प्रतिक्रिया भीतर अनेक पथो में उलझ कर चुनाव का विषय हो जाती है। इसके अतिरिक्त मनुष्य के मस्तिष्क में विभाग भी बहुत अधिक है जो विभिन्न प्रक्रियाओ के नियत्रण के लिए विशेष विकास कर चुके है (इसका अर्थ केवल यही है कि वे विभिन्न और विशिष्ट प्रक्रियाओ के लिए पृथक पृथक प्रयुक्त होते हैं) जैसा कि प्रथम निबध के अन्त में दिए मस्तिष्क के चित्र से भी देखा जा सकता है। स्नायुओ के विस्तृत जाल और मस्तिष्क के अधिक योग्य होने से ही मनुष्य में कोई भी प्रतिक्रिया उस प्रकार निर्धारित रूप से क्रियान्वित नही होती, और इस लिए मनुष्य प्रत्येक कार्य केवल अभ्यास वश या आन्तरिक प्रेरणा (Internal Stimuli) से नही करता। यात्रिक प्रक्रिया (Reflex action) में और वैचारिक प्रक्रिया में अन्तर जान लेने पर हम यह भी सहज जान लेंगे कि मनुष्य के और पशु के व्यवहार में या प्रवृत्ति और विचारणा में क्या अन्तर है। यात्रिक प्रक्रिया में केन्द्रानुगामिनी उकसाहट केन्द्र के द्वारा एक दम केन्द्रापगामिनी स्नायुओ में पहुँचा दी जाती है और पेशियो इत्यादि में खिचाव के द्वारा प्रक्रिया में परिणत हो जाती है। किन्तु मनुष्य के विशाल मस्तिष्क का कार्यालय इस क्रम को बहुत कुछ बदल देता है—उसमें बाहर के स्नायुओ पर होती हुई कोई भी उकसाहट केन्द्रापगामिनी स्नायुओं के कोषो और फिर पेशियो को प्रभावित करने की अपेक्षा पहले बुद्धि या मस्तिष्क ततुओ में उलझती है और वहां व्यक्ति के चेतन चुनाव का विषय होकर केन्द्रापगामिनी स्नायुओ में प्रविष्ट होती है। इस उलझन से कैसे लाभ पहुँचता है? यह निश्चतरूप से कहना कठिन है, फिर भी यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि मस्तिष्क के अग्र भाग के ज्ञानततुओ के कोष जो कि केन्द्रानुगामिनी स्नायुओ के और रोलेंडिक प्रदेश (Rolandic Area) के प्रक्रियात्मक कोषो को मिलाने वाले ततुओ के मोडो पर रहते हैं और बाहर से आने वाली उकसाहट को स्नायुओ के प्रक्रिया यत्र के किसी भी ऐच्छिक पथ की ओर प्रेरित करते हैं, जिससे प्रतिक्रिया निर्धारित न होकर व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर हो जाती है, जितने अधिक से अधिक

होंगे और जितनी अधिक देर ये प्रतिक्रिया ग्रहण कर प्रक्रिया यन्त्रों को सचालित करने वाली स्नायुओं तक पहुँचने में लगाएगे, उतने ही अधिक और विविध पथ उस प्रतिक्रिया के क्रियान्वित होने के लिये खुल जाएगे और परिणामत चुनाव की सभावनाए बढ जाएगी। क्योंकि प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय अपने प्रत्येक प्रभाव को मष्तिष्क-केन्द्र तक भेजती है, और क्योंकि सभी केन्द्रीय स्नायुतंतु और मीडुला ओब्लोगाडा (Medulla Oblonganda) अपने प्रतिनिधि इसमें रखते हैं इससे यह एक पूर्ण केन्द्र है, जिसमें उकसाहट किसी भी एक या दूसरे प्रतिक्रियात्मक स्नायुयन्त्र के विभाग में चुनाव के अनुसार, न कि पूर्व निर्धारित रूप से स्वत ही, पहुँचती है। इस प्रकार मष्तिष्क या वृद्धि-यन्त्र प्राप्त उकसाहट का विश्लेषण करता है और बाहर जाने वाली उकसाहट के लिये रास्ते का और दिशा का तथा मात्रा का निर्णय करता है, इसलिये मनुष्य का प्राय कोई भी व्यवहार या कार्य ऐसा नही है जो उसके जर्म में प्रविष्ट होकर उस प्रकार आनुवशिक हो जाए जैसे कृमियो इत्यादि में होता है।

यद्यपि यह मस्तिष्क की केवल यान्त्रिक प्रक्रिया का कुछ विवरण है, उसकी सजीव प्रक्रिया (कि कैसे वह किसी प्रक्रिया का चेतन चुनाव करता है) के बारे में अभी तक हम बहुत कम जानते हैं। वैज्ञानिक आगे कभी जान सकेंगे, यह केवल अनुमान की बात है। तो भी हम इन यन्त्रों की अन्य प्राणियो से तुलना करके और विभिन्न प्रदेशो को अपसारित कर यह जान सकते हैं कि इसका प्रक्रिया यन्त्रो पर कैसा और कितना नियत्रण है।

इस प्रकार मनुष्य का व्यक्तित्व केवल शारीरिकता से कुछ अधिक कहा जा सकता है, यद्यपि यह 'कुछ अधिक' एक दम इस शारीरिकता पर ही आश्रित है। अब हमें इस 'कुछ अधिक' और व्यक्तित्व का निर्णय करना है, जिसके लिये हमने यह भूमिका तैयार की है।

व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग हम प्राय अहम् (Ego) और आचरण या प्रक्रिया के एक सम्मिश्र के अर्थ में करेंगे। अहम् को जेनेटिक उत्तराधिकार, उससे विकसित शारीरिक प्रकृति और परिवृत्ति (Environment) का एक सम्मिश्र कहा जा सकता है और आचरण व्यक्ति का वह व्यवहार विशेष है जिसे हम इस सब की क्रिया-प्रति-क्रिया की प्रक्रियात्मक योजना कह सकते हैं। हम अहम् को किसी ऐसे अन्तर्मन के रूप में स्वीकार नही कर रहे जो किसी प्रकार की अपदार्थिक चेतना है, जैसा कि बर्गसा मानता है

(Matter and Memory), और न फ्रायड के समान कोई ऐसा रहस्य ही जिसकी अनेक तहो (Conscious, Subconscious Unconscious) में व्यक्ति उलझा रहता है। फ्रायड का मन भी वास्तव में एक रहस्यमय अपदार्थिक वस्तु है, जिसे उसने कभी भी स्पष्टत नही बताया। (Lectures by Freud)

मनुष्य की प्रवृत्तिया और शोक, आल्हाद तथा प्रेम द्वेष इत्यादि भावनाएं या मानसिक परिस्थितिया भी बहुत कुछ मनुष्य के शारीरिक सस्थान और स्नायविक व्यवस्था पर निर्भर करती है, क्योकि, जैसा कि हम पीछे भी कह आए है, मनुष्य का स्वभाव और व्यवहार तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण तक बहुत अधिक उसके हार्मंज इत्यादि पर और अन्तत जेंज पर अवलबित है। इसलिए जब हम किसी के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते है, तब हमारे सम्मुख इन स्थितियो के कारण का अथवा स्रोतो का, तथा उपमा रूप में, पशुओ की प्रवृत्ति का भी, एक चित्र रहना आवश्यक है, यद्यपि इन मानसिक प्रवृत्तियो के स्रोतो को कभी भी हम मानसिक अनुभव का विषय नही बना सकते। अस्तु, यदि हम इनकी प्रकृति को ठीक तरह से समझ सकें तो हम मानसिक प्रक्रियाओ की प्रकृति को भी ठीक तरह से समझ सकते है, क्योकि यह शारीरिक प्रकृति ही बहुत कुछ मानसिक क्रियाओ का निर्धारण करती हैं।

किन्तु कुछ वैज्ञानिक प्रवृत्ति (Instinct) से एक प्रकार के यान्त्रिक अभ्यास को अधिक महत्व देते है। ये वैज्ञानिक हमारी साधारण से साधारण और सहज से सहज प्रवृत्ति को भी अभ्यास जन्य मानते है। उदाहरणत होल्ट हमारी हथेली के खुलने तथा बन्द होने तक के व्यापार को अभ्यास जन्य मानता है। उसके अनुसार, शैशव में निरन्तर किसी वस्तु को पकडने का प्रयास हमें इस व्यापार में अभ्यस्त कर देता है और इस प्रकार हथेली की खुलने-बन्द होने की उकसाहट (Stimuli) पकडने के साथ सबद्ध हो जाती है। इसी प्रकार अन्य प्रक्रियाओ को भी अभ्यास के साथ जोडने के कितने ही विद्वानो ने प्रयास किये है। किन्तु आज हम जानते हैं कि हमारी प्रक्रियाओ और प्रवृत्तियो का एक बहुत बडा भाग हमारी शरीर-रचना से निर्धारित होता है। हाथ वाले उदाहरण में ही पूछा जा सकता है कि पकडने वाले में किसी वस्तु को पकडने की प्रवृत्ति ही क्यो हुई? फिर, वह पकडने में हाथ से ही क्यो प्रवृत्त हुआ?—पैरो या अन्य कही से क्यो नही?—यह सब आकस्मिक नही है। जैसे देखने की प्रवृत्ति होने पर आँखें

प्रवृत्त होती हैं, जैसे काम प्रवृत्ति होने पर तदीय इंद्रिया क्रियाशील होती हैं, और इनमें एक निश्चित और अनिवार्य सबंध है, उसी प्रकार पकडने की प्रवृत्ति और हाथ के उसको क्रियान्वित करने में प्रवृत्त होने में भी एक निश्चित कारण-कार्य सबंध है। इसी प्रकार, किसी उत्तेजना या अनुभूति में हम जो पेशियो में एक खिचाव सा अनुभव करते हैं, वह इसलिये नही कि हमारी पेशिया इस प्रकार खिचाव के लिए हमारी हँसने, रोने या अनुभव करने इत्यादि की क्रियाओ से अभ्यस्त होने के कारण वैसी होती है और इसलिए इनमें का खिचाव तदीय प्रक्रिया और तदीय अनुभूति को उकसा देता है, प्रत्युत् यह कि यह प्रक्रिया रक्त के रासायनिक रसो और ग्रथि रसो के सतुलन (Endocrine balance) तक में होने वाले परिवर्तनों के साथ बँधी है। इस प्रकार के परिवर्तन में एड्रेनल (Adrenal) ग्रथि के मध्य भाग से उत्पन्न होने वाले रस रक्त के प्रवाह में तीव्रता, हृदय की धडकन में वेग इत्यादि लहर प्रसार (Sympathetic Reaction) को उकसाते हैं और स्वय भी इनके साथ शरीर पर उसी प्रकार की उकसाहट के लिये प्रभाव डालते हैं। प्रयोगो से सिद्ध हो चुका है कि शरीर में ग्रथि-रसो की आनुपातिक क्रिया और आवेगात्मक (Emotional) तथा वासनात्मक (Appetitive) अभिव्यक्तियो में निकटतम सबंध है। एक बार प्रयोग के लिए अधिक और कम भीरु चूहे पकडे गए और पृथक् ही पाले गए तथा उनकी सन्तानोत्पत्ति को उनके अपने अपने गोत्रो तक ही सीमित रखा गया। तीसरी-चौथी पीढी में ही उनकी शल्य-परीक्षा करने पर देखा गया कि अधिक डरपोक चूहों की ऐड्रेनल, थाइराइड, और पिच्यूइटरी इत्यादि ग्रथिया अन्य चूहों से कहीं अधिक बढी हुई थी और वे पहले से कही अधिक भीरु थे, जब कि दूसरा वर्ग बिल्कुल ठीक था। इस प्रकार आवेग और शरीर-रचना तथा वशानुक्रम (Heredity) कितने अधिक परस्पराश्रित हैं, हम अनुमान कर सकते हैं। इस 'बुद्धिमान' मनुष्य के लिए भी यही सत्य है। मैं एक व्यक्ति को जानता हूँ, जो काफी समझदार और सज्जन है, किन्तु वह अँधेरे में अकेले जाने मे बहुत डरता है, वह कहता है कि मैं जानता हूँ वहाँ कुछ नहीं है, फिर भी नही जा सकता। उसकी पत्नी में यह रोग नही है, उसके कुछ बच्चे इससे एकदम मुक्त हैं, कुछ उतना ही डरते है और कुछ कम डरते है। इस प्रकार ये रस-स्राव करने वाली ग्रथिया (Endocrine glands) एक ओर रक्त में अपने रस छोड कर उसमें रासायनिक परिवर्तन सभव करती हैं और दूसरी ओर केन्द्रीय स्नायुततुओ

और अन्य भी स्नायुतन्तुओ पर प्रभाव डालती है। इस सब के आधार पर यह सुविधा से कहा जा सकता है कि मनुष्य का व्यक्तित्व भी बहुत कुछ उसकी शरीर-रचना पर निर्भर करता है। मनुष्य भी अन्य साधारण से साधारणतम पशुओ के साथ ही, उन्ही के स्तर पर खडे होकर अपने सुख-दुख, भूख-प्यास और अभाव-आकाक्षाएँ इत्यादि अनुभव करता है। जो इसमें अन्य पशुओ से विशेषता है, जिसे कि यहाँ हम देखेंगे, वह भी इसकी शरीर-रचना के कारण ही।

इस विशेषता को एक शब्द में कहा जा सकता है—'निर्वैयक्तिकता' या साधारणीकरण अथवा वस्तु-विशेष की अपेक्षा वस्तु-सामान्य के सबधो का विधान। ये शब्द ऐसे है जिनके बारे में देर से कुछ न कुछ लिखा जाता रहा है और आज तक इस सबध में एक बहुत बडा साहित्य तैयार हो गया है। हम यहाँ इनके विस्तार में न जाकर सक्षेप में इनकी व्याख्या भर करेंगे।

इन तीनो ही शब्दो को यहाँ हम एक अन्य नाम देंगे—विचारणा (Intellect)। विचार या अनुभूति से भिन्न निर्विशिष्ट और Abstract ज्ञान है—ज्ञान को बिलकुल साधारण अर्थ में लेते हुए—नवीन सबधो को स्थापित करने तथा पूर्व कल्पित सबधो में नवीन सबधो को अन्तर्हित करने का गुण है। प्यार या दुख का इस विभाग में स्वय एक अनुभूति के रूप में कोई मूल्य नही, इनका मूल्य यहाँ ठीक उसी रूप में है जो मूल्य गणितज्ञ के लिए १–२–३ या ५३ का होता है। इसमें मोहन की एक विशेष अनुभूति और क्रिया, जिसे हम प्यार कहते है, केवल सोहन की एक विशेष अनुभूति और क्रिया की एक दूसरी आवृत्ति है जो हम में एक ऐसे सबध ज्ञान को जन्म देती है जो अपनी निर्वैयक्तिकता और निर्विशिष्टता के कारण विशेषो (Particulars) से स्वतन्त्र और असपृक्त है। "मोहन सुशीला से प्यार करता है" इसमें स्वय मोहन की अनुभूति से कोई सबध न हो कर, जो अपने आप में एक और अद्वितीय है, केवल सोहन और श्यामा की एक विशेष क्रिया के पुन होने का सकेत है जिसमें उन विशेष व्यक्तियो या उनकी क्रियाओ से कोई सम्बन्ध न होकर केवल इस और उस का सबध ज्ञान है। बर्गसा इसे एक दूसरे ढग से कहता है—"हम अपनी अभिव्यक्ति शब्दो के द्वारा करते है और किसी घटना को दैशिक प्रतीको (Spacial terms) के द्वारा समझते हैं। शब्दो की उपयोगिता केवल उनके निवयक्तिक और निर्विशिष्ट प्रयोगो में ही है। एक शब्द कुत्ता 'एक ही जैसी' सहस्रो घटनाओ का ज्ञान देता है

और इसी से उसका किसी से भी सबंध नही है। देश केवल ज्यामितिक विन्दुओ की समष्टि मात्र है—अर्थात् हम किसी वस्तु को केवल उसकी अवस्थाओ के रूप में देखते और समझते हैं,—मैं कुत्ते का मुँह आदमी के लगा सकता हूँ, इसी प्रकार एक ऐसे तिकोन की कल्पना कर सकता हूँ जिस के कोने २७० या ३६० डिग्री के हो इत्यादि। वास्तव में मनुष्य की प्रत्येक 'नवीन' कल्पना इस तथ्य को प्रमाणित करती है जिससे कि उसके किसी वस्तु को 'जानने' की प्रकृति का भी अनुमान किया जा सकता है। पशु के लिए प्रत्येक वस्तु या घटना अथवा अवस्था एक निश्चित और वैयक्तिक तथा अद्वितीय है, एक पक्षी के लिए एक घोसला तीन पृथक् दैशिक स्थितियो में तीन पृथक्, भिन्न या अद्वितीय वस्तुएँ हैं। मनुष्य के लिए इससे भिन्न प्रत्येक घोसला अपनी किसी भी ऐसी विशेषता से रहित केवल एक विचार है, शब्द है। विचारणा की इस प्रकृति को निम्न कविता और भी सुन्दर ढग से प्रस्तुत कर सकती है—

Let x denote beauty, Y manners well bred,
z fortune (this last is essential)
Let L stand for love—Our philosopher said
Then L is a function of x, y and z
of the kind that is known as potential
Now integrate L with respect to dt
(t stands for time persuasion)
Then, between proper limits, tis easy to see
The definite integral marriage must be
(A very concise demonstration)

By Prof W J M Rankine, quoted by Eddington in the Philosophy of Physical Science from 'Songs and Fables

इस कविता को हम विचारणा की निर्वैयक्तिक प्रकृति का एक अच्छा उदाहरण कह सकते है। इसका अर्थ यह नही कि हम अपने या दूसरों के सुख दुख का अनुभव नहीं कर सकते, किन्तु यह एकदम दूसरी बात है, जिसका विचारणा से कोई सबध नहीं। एक भयपूर्ण चीख को सुनकर हम भी भयभीत हो सकते हैं और यह एक दम उसी स्तर की प्रतिक्रिया है जिस स्तर की पशुओ में होती है, इसे हम सहानुभूतिक ज्ञान (Sympathetic knowledge) भी कह सकते है। किन्तु हम इसको क्षीणतम अनुभूति के बिना भी

इसका स्मरण कर सकते हैं, जब कि पशु में इसका 'स्मरण' केवल उसी प्रकार की अनुभूति के रूप में ही हो सकता है।

अपनी इस विशेषता के कारण मनुष्य जहा अपनी आकाक्षाओ और वासनाओ को घपला देता है और अपने 'वास्तविक' जीवन से अनेक वार अनुपस्थित रहता है वहाँ वह ऐसा एक सामान्य और सामाजिक स्तर बना लेता है जो उसकी अपनी शारीरिक वासनाओ को कुछ दूर तक प्रभावित करता है। यह उसकी एक नवीन परिवृत्ति है जो अन्य प्राणियो के लिए प्राय नही है।

सभवत यही घपला फ्रायडियन मन का निर्माण करता है, और यही ऐड्लर की हैल्यूसीनेशन (Hallucination) की कल्पना को जन्म देता है। इसके अतिरिक्त, मनुष्य में कुछ ऐसी वासनाए भी उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हे हम 'सामाजिक' वासना का नाम देंगे, जैसे अधिकार भावना और यशोलिप्सा इत्यादि। ऐड्लर और जुंग इत्यादि वैज्ञानिक (समाज-वैज्ञानिक) इन्हें इतना महत्व देते हैं कि इन्हे ही मानव-मनकी एक मात्र प्रेरक वृत्ति मानते हैं, जैसे फ्रायड काम को मानता है। इस सबध में हम अन्यत्र लिख आये हैं यहाँ हमें केवल यही कहना है, कि यद्यपि हम इन वृत्तियो को इतनी प्रधानता नही देते, किन्तु ये महत्वपूर्ण है, इसमें सदेह नही। इतना महत्व न देने का कारण हमारे पिछले सपूर्ण अध्ययन से ही देखा जा सकता है। किन्तु जो भी महत्व इसका है, उससे जहा एक ओर समाज का व्यक्ति के मानसिक निर्माण में महत्व ज्ञात होता है, वहाँ दूसरी ओर व्यक्ति का सदैव समाज से विद्रोही होना भी प्रमाणित होता है।

वास्तव में ये सामाजिक वासनाए अन्तत व्यक्ति की उन शारीरिक वासनाओ की तृप्ति की पूरक भर है जिनका अस्तित्व उसे सदैव अपनी तृप्ति के लिये पुकारता रहता है। सभवतः समाज का निर्माण ही मनुष्य में उसके इस स्वार्थ का परिचायक है, अथवा कम से कम आज उसके लिए समाज का यही महत्व है। फ्रायड जिस प्रवृत्ति (Instinct) को वासना-तृप्ति के प्रयास (ढग) की प्रवृत्ति कहता है, वही व्यक्ति में समाज के प्रति उसके दृष्टिकोण या व्यवहार को बनाती है। इसलिये व्यक्ति का दृष्टि कोण समाज की ओर सदैव व्यक्तिगत स्वार्थों से

---

*व्यष्टि और समष्टि-प्रतीक—फर्वरी-मार्च १९५२।

ही निर्धारित हो सकता है। यद्यपि इससे समाज और व्यक्ति के स्वार्थों में निरन्तर चलने वाले अन्तर्विरोध का समर्थन होता है, क्योंकि समाज का अस्तित्व व्यक्ति के आत्म समपर्ण से ही सुरक्षित रह सकता है जब कि व्यक्ति समाज को केवल व्यक्तित्व-साधना के लिए ही स्वीकार करता है। किन्तु यह एक अनिवार्य सत्य है जिसका प्रमाण प्रारम्भ से आजतक व्यक्ति और समाज में चला आता हुआ सघर्ष स्वय है।[१]

किन्तु, जिस किसी भी तरह से हो, यह तो स्वीकार करना पडेगा ही कि व्यक्ति पर 'सामाजिक वासनाए' अपनी पूर्ति के लिए निरन्तर दबाव डालती रहती है, दूसरे, उसकी शारीरिक वासनाए भी केवल समाज मे ही ठीक तरह से सन्तुष्ट हो सकती है, फिर चाहे वे किसी तरह से क्यो न हो, इस लिए उसके व्यक्तित्व निर्माण मे भी समाज का बहुत बडा महत्त्व है— यह महत्व प्रक्रियात्मक योजना की दृष्टि से भी है और इस दृष्टि मे भी कि विचारो का सामाजिक सम्मिश्र उस पर शैशव से हावी रहती है। इसके अतिरिक्त, समाज भौतिक परिवृत्ति का भी निर्माण करता है-एक अर्थाभाव से पीडित व्यक्ति के लिए यह बडा कठिन है कि वह उतना ही अपनी अन्तर्निहित योग्यताओ (Capacities) का विकास कर सके जितना सपन्न व्यक्ति कर सकता है। आईस्टीन यदि किसी भारतीय अछूत के घर उत्पन्न होता और ग्रामवृद्ध उसको पढता देखकर उसपर आक्रमण कर देते तो वह कभी भी आइंस्टीन नही बन सकता था। इसी प्रकार व्यक्ति पर सामाजिक स्तर का भी प्रभाव पडता है। डारविन यदि सौ वर्ष भी पहले उत्पन्न हुआ होता तो भी सभव था कि वह विकासवाद के सिद्धान्त की खोज न कर पाता।

किन्तु डारविन की विकास वाद की खोज या आईस्टीन का सापेक्षता वाद के सिद्धान्त का आविष्कार उनके व्यक्तित्व से कोई बडा सम्बन्ध नही रखती, इस लिए किसी भी समाज में उपयुक्त परिस्थितियाँ मिलने पर आईस्टीन या डारविन वही होते जो वे अब है, उनका वैसा व्यक्तित्व होना उनके जेंज, जेंज के विकास और उपयुक्त सामाजिक परिस्थियो के त्रित्व पर निर्भर करता है यद्यपि इनके महत्व का अनुपात काफी भिन्न-भिन्न है। सभी जानते है कि अनेक व्यक्ति निर्धन परिवारो में जन्म लेकर भी अपने लिए परिस्थितियो का स्वय निर्माण कर लेते है, यद्यपि इस के लिए काफी अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है।

१व्यक्ति और समाज-अजन्ता, सितम्बर १९५६।

REFERENCES

1 *Dobzhansky* T — Genetics and Origin of Species

2 *Goldschmidt* — Phenogenetics (New York)

3 *Shull* — Heredity (New York)

4 *Sinnot and Dunn* — Principles of Genetics (New York)

5 *Sympson* — Meaning of Evo ution (New York)

१—प्रवृत्ति की प्रकृति

पिछले निवन्धो में हमने जो कुछ भी कहा, उसे इस निवन्ध की भूमिका कहा जा सकता है, क्योकि हमने वहाँ शरीर के उन व्यवहारो के कारणो को देखने का प्रयास किया है जो हमें प्राणी के 'मन' के अस्तित्व का वोध कराते हैं। इसके साथ ही, दूसरे निवन्धो में हमने उन व्यवहारो की प्रकृति के विषय में भी किसी निर्णय पर पहुँचने का प्रयास किया है, जो कि अत्यधिक विवादास्पद हैं। इस निवन्ध में हम प्राणी-व्यवहार का केवल समान्य विवरण मात्र देंगे और ऐसे व्यवहारो या प्रवृत्तियो को देखेंगे जिन्हे हमने या तो पिछले निबन्धो में देखा नही और या उन निबन्धो के वताए कारणो पर पूरे नही उतरते। कुछ व्यवहार तो ऐसे हैं जो एक दम अकारण और विचित्र प्रतीत होते है, कुछ व्यवहार ऐसे भी है जो मनुष्य की शव्दावली में केवल समझदारी पूर्ण ही कहे जा सकते हैं, किन्तु उन प्राणियो की अन्य प्रवृत्तियो का अध्ययन सिद्ध करता है कि वे व्यवहार भी उसी प्रकार रिजिड और प्रवृत्यात्मक है जिम प्रकार ऐसे अन्य व्या- पार होते है।

प्राणी-व्यवहार या प्रक्रिया के हम तीन भेद कर सकते है—प्रवृत्यात्मक अभ्यास-जन्य और विचारणात्मक (Intellectual or Intelligent)। इन तीनो में भेद करने से पूर्व अथवा इनकी परिभाषा देने से पूर्व हम इनका एक एक उदाहरण देगें—पुंस्कोकिल का वसन्त ऋतु के अतिम दिनो में काम पीडा से व्याकुल होकर गाना अथवा मैंटिस (Praying Mantice) का मैथुन के पश्चात् मैथुन-साथी (नर) को खा जाना प्रवृत्यात्मक व्यवहार कहा जा सकता है; घोडे का टागे में जुत कर आखे वन्द होने पर भी ठीक रास्तो पर चलते जाना अभ्यास जन्य प्रक्रिया है जव कि वन्दर और शिपेंजो का भोज्य पदार्थ के अधिक ऊचे स्थल पर पडे होने पर किसी सहायक वस्तु को नीचे रख कर अथवा अपने साथी के कन्धो पर चढ कर ऊपर कूदना विचारणात्मक व्यवहार कहा जा सकता है। स्पष्टत इन तीनो प्रकार के व्यवहारो में काफी वडा अन्तर है। विशेपत पहले और तीसरे तथा दूसरे और तीसरे में। इस भेद को हम कुछ इन प्रकार रख सकते है—जव कि प्रवृत्यात्मक व्यवहार सहज है वहा अभ्यास जन्य व्यवहार अभ्यास के पश्चात् सहज वना लिया जाता है। इन दोनो में प्राणी प्राय मशीन के समान कार्य

करता है। इसे इस प्रकार भी रखा जा सकता है कि यह व्यवहार केवल क्रिया रूप में ही जन्म लेता है, उससे पूर्व प्राणी को उसका कुछ अनुभव नही होता जबकि तीसरे में प्राणी क्रिया को क्रियान्वित करने से पूर्व उसकी रूप रेखा अथवा योजना बनाता है, अर्थात्, विचारणात्मक क्रिया पहले मानसिक रूप में अथवा एब्स्ट्रेक्ट रूप में जन्म लेती है और तब क्रिया रूप में परिणत की जाती है। इस प्रकार विचारणात्मक क्रिया एक सूक्ष्म विचारणा का अनुवाद मात्र होती है। मनुष्य में यह विचारणा इतनी अधिक विकसित अवस्था में पहुच चुकी है कि उसका क्रिया से आज अनिवार्य सम्बन्ध भी नही रहा—मनुष्य सम्पूर्ण ससार भर को मानसिक रूप में रख सकता है, किसी भी अनस्तित्व की कल्पना कर सकता है, कोई भी योजना बना सकता है और उसे क्रियान्वित होने से रोक सकता है। जैसे—वह गधे के सिर वाले मनुष्य की कल्पना कर सकता है, एक विशाल महल को एक धान्य कण में कल्पित कर सकता है, वह सम चतुर्भुज गोल की या २७° अथवा ३६° डिग्री के त्रिकोण की कल्पना भी कर सकता है और देवदत्त मे गधे का बिल्कुल भी विचार किए बिना गधेपन का आरोप कर सकता है, इत्यादि।

प्रवृत्ति को सहज और यान्त्रिक प्रक्रिया कहने से हमारा अभिप्राय केवल यही है कि प्रवृत्ति, चाहे उसे केवल शरीर-रचना की भौतिक और रासायनिक परिस्थितियो का परिणाम कहा जाए, चाहे केवल बाह्य विषयो के साथ उसके प्रक्रियात्मक सबन्ध का और चाहे किसी सजीव प्रेरणा का, प्राणी को विशेष भौतिक-रासायनिक और बाह्य परिवृत्ति सम्बन्धी परिस्थितियाँ यन्त्र के समान विशेष क्रिया–व्यापार में नियोजित करती है। ल्लायड मोर्गन प्रवृत्ति की परिभाषा करते हुए कहता है—"प्रवृत्ति हम कुछ एसी प्रक्रिया को कह सकते है जो अपने प्रथम प्रवर्तन में, पिछले सभी अनुभवो से स्वतन्त्र हो। जो व्यक्ति के लाभ और जाति की सुरक्षा में सहायक हो सकती हो, जिसका आविर्भाव जाति के सभी सदस्यो के समान प्रयास द्वारा हुआ हो और जो अनुभव के आधार पर सशोधित होती रहती हो।" स्पष्टत ही यह परिभाषा बहुत कुछ अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोनो ही दोषो से दूषित है। प्रवृत्ति को पिछले अनुभवो से स्वतत्र कहने का क्या अभिप्राय है जब कि वह स्वय ही कहता है कि 'जो अनुभव के आधार पर सशोधित होती रहती हो?' यद्यपि यह एक सीमा तक उन प्रवृत्तियो के लिए ठीक भी है जो अभ्यास से अपनी पूर्णता के लिए सहायता लेती है जैसे चलना-उडना इत्यादि, किन्तु-यहाँ शब्द सशोधन है, जो कि प्रवृत्ति में कम या अधिक लचक और परिवर्तन की सभावना को बल देता है और इस प्रकार प्रवृत्ति और अनुभव

को स्वतन्त्र नही रहने देता। अथवा, कम से कम यह स्वीकार करता है कि प्रवृत्ति को समझदारी के समान ही वदला भी जा सकता है। इसके अतिरिक्त जाति के लाभ या सुरक्षा के लिए होना भी प्रवृत्ति पर कोई शर्त नही है, ऐसी कितनी ही प्रवृत्तियो के उदाहरण हम दूसरे निवन्ध में दे आए हैं जो जाति या व्यक्ति के लिये अपकारक हैं। प्रवृत्ति सभी व्यक्तियो में यद्यपि समान रूप से पाई जाती है, और यह वात उसकी यान्त्रिकता को और भी अधिक प्रमाणित करती है, किन्तु प्रवृत्ति के विकास का जातीय स्तर पर होना प्रवृत्ति का कारण नही है, प्रवृत्ति तो केवल व्यक्ति से सम्वन्ध रखती है, यद्यपि वह सपूर्ण जाति में समान रूपसे और निरपवाद रूप से पाई जाती है। जैसे, प्रवास की प्रवृत्ति कोयल की सपूर्ण जाति में पाई जाती है, किन्तु यदि किसी भी व्यक्ति की परिवृत्ति में तापमान और प्रकाश को वदल दिया जाय तो वह प्रवास नही करेगा, इसी प्रकार, यदि किसी पक्षी की परिवृत्ति में तापमान और हार्मज को वदल दिया जाय तो वह घोसला नही वनाएगा। इस प्रकार प्रवृत्ति को एक ऐसा जातीय-व्यापार कहा जा सकता है जो व्यक्तिगत स्तर पर विकसित होता है। किन्तु हम मोर्गन के इस कथन को एक दम गलत नही समझते, क्योकि यदि प्रवृत्ति व्यक्ति की शरीर रचना में निहित है तो जेनिक आदान-प्रदान के द्वारा वह जातीय सपत्ति भी हो जाती है। किन्तु हमें प्रवृत्ति की लैश्ली द्वारा की गई परिभाषा अधिक उपयुक्त जान पडती है, वह रीफ्लेक्स और प्रवृति में भेद करते हुए कहता है—"रीफ्लेक्स सहज रूप से शरीर की अन्त प्रकृति से निर्धारित ऐसा व्यवहार है जिसका नियमन ज्ञान ततुओ का एक विशेष विभाग करता है और जो पेशियो के खिचाव के रूप में पहले से ही निर्धारित किया जा सकता है। प्रवृत्यात्मक व्यवहार रीफ्लेक्स मे कुछ अधिक है, यद्यपि इसमें रीफ्लेक्स-प्रक्रिया भी अन्तर्निहित रहती है किन्तु इसे सदैव किसी विशेष उकसाहट से नियमित नहीं कहा जा सकता, प्रत्युत इसे वाह्य आवश्यकता (Perceptual lack) अथवा अभावानुभूति के द्वारा अनुप्राणित कहा जा सकता है। प्रवृत्यात्मक व्यवहार पेशियो के खिचाव का एक पूर्व निर्धारित अनुक्रम मात्र नही है, किन्तु यह एक पूर्व-ज्ञात (Predictable) व्यापार है।" किन्तु यह परिभाषा भी पूर्ण नही है, क्यो कि यह केवल उन प्रवृत्तियो को प्रवृत्तियाँ स्वीकार करती है जो वाह्य उकसाहट अथवा केन्द्रीय स्नायुततुवाय में उकसाहट से उत्पन्न होती है, किन्तु, जैसा कि हम अपने प्रथम निवन्ध में देख आए है, शरीर की रासायनिक परिस्थितियाँ भी प्रवृत्ति को उत्पन्न करने में वहुत अधिक महत्त्वपूर्ण कारण है। तो भी लैश्ली की परिभाषा मोर्गन के समान अस्पष्ट नही है।

हम यहा प्रवृति की परिभाषा बनाने की उलझन में पडना नही चाहते, प्रवृत्ति के कारणो के सवन्ध मे हम पीछे काफी विस्तार से देख ही आए है, यहा हम केवल लैश्ली की परिभापा को उनके साथ और जोड लेते है। इन कारणो के आधार पर सभवत सभी प्रवृत्तियो की, अथवा कम से कम अधिकाश प्रवृत्तियो की व्याख्या की जा सकता है। किन्तु हम यहाँ सामान्यत विवरण ही अधिक देना चाहेंगे।

प्रवृत्ति की सभवत सबसे बडी विशेषता है उसमें लचक का अभाव और सहजता (ऑटोमेटिज्म)जिससे अनेक बार वह आश्चर्य जनक रूप से कौशल पूर्ण प्रतीत होती है, किन्तु वह कौशल या चातुर्य ने होकर केवल एक यात्रिक व्यापार है जो या तो प्राणी की शरीर-रचना की प्रेरणा है अथवा ऐसा प्रक्रियात्मक-व्यापार जिसका कारण ज्ञात नही। अनेक वैज्ञानिक ऐसी प्रक्रियाओ या प्रवृतिओ को भी प्रवृत्ति रूप में ही वशानुक्रम में प्राप्त मान लेते ह, उदाहरणत काडाव (Cadow) पक्षियो की प्रवास की प्रवृत्ति को वशानु-क्रम में प्राप्त गृह की मधुर स्मृति समझता है। किन्तु ऐसी 'मधुर' कल्पनाओ में हम यहाँ व्यर्थ ही नही उलझेंगे, जो या तो प्रयोग सम्म नही हैं अथवा जो अधिक रहस्यमय है। सभवत प्रवृत्ति की परिभाषा जानने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि विभिन्न प्रवृत्तियो का अध्ययन किया जाए। इसके लिए हम, यद्यपि कम प्राणियो में प्राप्य किन्तु टिपिकल प्रवृत्ति, कृमियो के समाज-निर्माण को पहले लेंगे।

जैसा कि हम सब जानते है, मधुमक्खियाँ एक छत्ते में इकट्ठी रहती है। चीटियाँ भी एक बस्ती में इकट्ठी ही रहनी है, इनका इकट्ठा ही भोजनालय होता है, इकट्ठा ही भडार-घर होता है और इकट्ठ ही बच्चे होते है, इस प्रकार इनमें एक व्यक्तिगत स्वार्थ से भिन्न सामूहिक स्वार्थ भी है, जिसे कि हम समाज निर्माण का नाम देते है। यह समाज कैसे और क्यो अस्तित्व में आया, इस बारे में हम कुछ भी अनुमान करने में असमर्थ हैं।

एक कृमि–समष्टि एक प्रवृत्यात्मक प्रक्रिया है, इससे उसमें एक पूर्ण रिजिडिटी है। इस समाज की सामूहिकता अथवा सामाजिकता पूर्ण है। हम उसे गुणित-इकाई (मल्टीपलयूनिटी) भी कह सकते है जिसमें व्यक्ति सामाजिक इकाई का केवल अश मात्र है, स्वत वह कुछ भी भिन्न नही है। अथवा इस समष्टि को एक ऐसी सावयव इकाई (ऑर्गेनिक यूनिटी) कहा जा सकता है, जिसमें व्यक्ति एक ऐसा अग मात्र है जो एक सजीव प्रेरणा से अथवा एक ऐसे नियम की अनिवार्य बाध्यता से, जो उसके स्नायुततुवाय के निर्माण में ही निहित है, एक निश्चित व्यापार को

क्रियान्वित करने के लिए एक साधन मात्र है। इन समष्टियो में जनन-व्यापार भी या तो एक ही व्यक्ति करता है, अथवा कुछ थोडे से निश्चित व्यक्ति ही करते है, और शेष उस छत्ते की सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओ (जैसे भोजन इकट्ठा करना, बच्चो को पालना और छत्ते की रक्षा करना इत्यादि) को बडे सुचारु रूप से पूरा करते है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये सब व्यक्ति एक निश्चित और अविभाज्य प्रक्रिया-योजना की पूर्ति के साधन भर हो। एक ही की सन्तान होने से सब मक्खियो की एकता और भी पूर्ण हो जाती है। यदि इस समष्टि की उपमा एक सगतरे से दी जाए, जिसके विभिन्न भागो को उसका छिलका एक बनाए हुए है तो अनुचित न होगा, क्योकि मक्खियो के इस बहुत्व पर भी एक अदृश्य छिलका विद्यमान रहता है। उनका अपने छत्ते के निर्माण की प्रक्रिया का रूप बडे रोचक ढग से इस पहलू को सामने लायेगा। यह तो सभी जानते है कि मधुमक्खियो का छत्ता कितना कलापूर्ण होता है। डारविन इसका वर्णन करते हुए कहता है "यह एक ध्यान देने की बात है कि एक चतुर कारीगर अपने हथियारो की पूर्ण कलात्मकता और माप तौल की पूर्ण सम्यक्ता के साथ भी इस प्रकार का सन्तुलित और सुघड मोम का छत्ता बना सकना बहुत कठिन कार्य पायेगा, किन्तु उसे अँधेरे में कार्य करती हुई विभिन्न मक्खियो का एक झुण्ड बना लेता है। डारविन ने परीक्षण के रूप में एक मोम का टुकडा छत्ते में फेंका और थोडी देर बाद पाया कि उसको दोनो ओर से और सभी कोठरियो में बराबर काटा गया था, उसकी प्रत्येक कोठरी एक जैसी थी।" डारविन आगे कहता है—इस विषय में कुछ भी अनुमान करना उलझन को और भी बढाने जैसे प्रतीत होता है कि कैसे ये छत्ते बनाए जाते हैं, कैसे बहुत सी मक्खिया एक साथ और एक ही समय में एक पूर्ण योजना से इस प्रकार कार्य करती हैं।

एक मक्खी एक कोठरी में थोडी देर कार्य करके दूसरी में चली जाती है और फिर उसके स्थान पर दूसरी आ जाती है और इस प्रकार बीसियो मक्खिया एक ही छत्ते को पूरा करने में भाग लेती हैं, मानो सब एक ही प्रक्रिया-योजना की विभिन्न पहलू भर हो। इससे स्पष्ट है कि मधुमक्खियों की समष्टि में व्यष्टिया केवल एक खड या अग मात्र हैं। डारविन इसका कारण बताने का प्रयास करते हुए कहता है—"क्यो कि प्राकृतिक चुनाव (Natural selection) व्यष्टि के जीवन की परिस्थिति के अनुसार व्यष्टि के लाभ की दृष्टि से धीरे धीरे एकत्रित या घनीभूत होते हुए प्रभाव के द्वारा आकृति या प्रवृति के क्रमिक परिवर्तन में होता है, इसलिए स्वभावत

ही यह पूछा जा सकता है कि कैसे एक दीर्घ कालिक और धीरे धीरे होता हुआ कोष-निर्माण की प्रवृत्ति का यह विकास सभी व्यष्टियो में वह कलात्मक पूर्णता प्राप्त कर सका जो हम अब इनमें पाते हैं, और कैसे यह इनके पूर्वजो में सभी व्यष्टियो के लिए इस प्रकार लाभ दायक रहा होगा ?" यहाँ डारविन प्राकृतिक चुनाव और आत्म सुरक्षा को इसका कारण बताता है, किन्तु पहला जहा केवल नकारात्मक पहलू है वहाँ दूसरी ऐसी कल्पना जिस के लिए कोई प्रमाण नही है। प्राकृतिक चुनाव हमें यह नही बताता कि सामाजिक प्रवृत्ति का विकास क्यो हुआ, इससे केवल यह ज्ञात होता है कि इस प्रवृत्ति से रहित व्यक्ति या जातिया विनष्ट हो सकती है, और इसके लिए भी कोई प्रमाण नही है।

अस्तु, मधुमक्खियो के समान ही चीटियो की बस्ती भी बहुत अधिक सुनियोजित होती है। इस समष्टि में ऐसे विचित्र व्यवहार भी पाए जाते हैं जिन्हे बहुत से वैज्ञानिक बुद्धिमत्ता पूर्ण अथवा युक्त-युक्त व्यवहार समझते रहे, किन्तु ऐसी किसी सभावना की गुजाइस वास्तव में नही है। चीटी-बस्ती में श्रम-विभाजन मधुमक्खियो से अधिक विविधता पूर्ण और बस्ती की सुचारुता के लिए अधिक लाभ-कर पाया जाता है। इनमें भोजन की खोज में प्रयाण करने वाले सैनिक दस्ते, बस्ती की रक्षा के लिए सैनिक दस्ते, बच्चों तथा रानियो के पालन के लिए नर्सें, सर्दार, कोषाध्यक्ष इत्यादि सभी पृथक् पृथक् होते हैं। सैनिक चीटियो का एक दस्ता सदैव द्वार पर सावधान रहता है कि कही शत्रु उन पर अचानक आक्रमण न कर दे। ये चीटियाँ अनेक बार लाखो की सख्या में भोजन की खोज में अपने सर्दारो की अध्यक्षता में बाहर निकलती हैं और उनके तैयार किए रास्ते पर चलती है। प्राय कभी ऐसा नही देखा गया कि ये चीटियाँ अपने नेताओ की आज्ञा का भग करें। एक बार निकारगा में मिस्टर बेल्ट ने एक बडा विचित्र दृष्य देखा। चीटियो की एक बहुत बडी सेना गाडी की लाइन पार कर रही थी। जब भी गाडी निकलती, हजारो चीटिया कुचली जाती। थोडी देर बाद बैल्ट ने देखा कि उस स्थान पर एक भी चीटी न थी, यह सेना अब लाइन के नीचे से रास्ता बना कर निकल रही थी। बेल्ट ने इस रास्ते को बन्द करा दिया। इस पर चीटियो के सर्दारो ने खतरा अनुभव किया और एक दम ठहर जाने की आज्ञा सभी पक्तियो में दे दी गई। चीटिया घटो उसी अवस्था में खडी नवीन आज्ञा की तब तक प्रतीक्षा करती रही जब तक कि नया रास्ता तैयार नही हो गया और आगे बढने की आज्ञा नही मिल गई। इसी प्रकार की सुचारुता इनकी बस्तियो की व्यवस्था में भी

पाई जाती है। जब कभी कोई खतरा उत्पन्न हो जाय तब प्रहरी–चीटी प्रत्येक अन्दर आने वाली चीटी की तलाशी ले कर उसे अन्दर जाने देती है, जिससे किसी शत्रु-बस्ती की चींटी अन्दर आकर अशान्ति उत्पन्न न कर दे। इसी प्रकार बच्चो के निवास, भोजन इत्यादि का प्रबन्ध भी बडा समझदारी पूर्ण इन बस्तियो में पाया जाता है। (Cheesman)

इस प्रकार के व्यवहार स्पष्टत समझदारी पूर्ण या विचारणात्मक प्रतीत होते हैं, क्यो कि द्वार पर आने जाने वाले की जाच का अर्थ है कि शत्रु अपने कुछ सदस्यो को सिखा कर उस बस्ती में भेजते हैं और वे सदस्य बडी चतुराई से धोखा दे कर अन्दर घुसने का प्रयास करते हैं। किन्तु ये केवल कल्पनाएँ हैं और इसका कोई प्रमाण नही है कि ऐसा होता ही है। आज अधिकतर वैज्ञानिक चीटियो में किसी बुद्धिमत्ता या समझदारी की बात स्वीकार नही करते।

अस्तु, मधुमक्खियो में यह श्रम विभाजन इतना नहीं पाया जाता, इनमें केवल एक रानी होती है, शेष सभी मजदूर होती है और सभी सब कार्यों को करती है। मधु-सचय के लिए जाते हुए ये मक्खियाँ एक विशेष व्यवहार करती हैं। जब वे छत्ते में खाली बैठी हुई शहद इकट्ठा करने के लिये बाहर निकलने की प्रतीक्षा करती हैं तब एक मक्खी अपने नृत्य से उन्हे कार्य पर चलने के लिए सदेश देती है। तब वे सब एक निश्चित दिशा में निश्चित दूरी तक जाती हैं, जिसका सकेत नर्तकी अपने नृत्य द्वारा करती है, और उन फूलो की खोज करती हैं जिनकी सुगध नर्तकी अपने साथ लाई होती है। वे शहद चूसती है और उन फूलो के स्थान का अध्ययन करके घर लौट आती है। (Tinbergen) चीज मैन के अनुसार चींटिया अधिक समझदार होती है, जब कि मधु-मक्खियो की समझदारी प्रवृत्ति तक ही सीमित है। उसके अनुसार, चीटियो की कुछ जातियो का मेरुदण्ड काफी विकसित है जिससे उनमें वितर्क की सभावना की जा सकती है। वह इसका श्रेय बहुत कुछ दास प्रथा को भी देता है। कुछ चीटियो की जातिया तो ऐसी है जो स्वय भी कार्य करती है और दास भी रखती है, किन्तु बहुत सी ऐसी जातियाँ भी है जो पूर्णत अपने दासो पर ही आश्रित है, यहाँ तक कि ये अपना खाना तक स्वय नही खा सकती। उनके दास उनके लिए न केवल भोजन-सग्रह करके ही लाते है, वे चबाते भी स्वय ही है और उसे पचने योग्य बनाकर उन के मुँह में डाल देते है। (Darwin) चीजमैन इन जातियो की चीटियो को सबसे अधिक वितर्क शक्ति से युक्त समझता है, क्योकि, उसके अनुसार, "इन्हे कोई कार्य विशेष नही करना होता, सिवाय किसी अन्य को

दास बनाने के, इसलिए ये अधिक बौद्धिक विकास कर सकती है"। ऐसा प्रतीत होता है, चीजमैन ने अपनी कल्पना के बल पर ही यह सब कुछ कह डाला है, नही तो इसमें कोई भी सगति और युक्ति-युक्तता नही है। जैवी क्षेत्र (biological field) में जिस प्राणी को जितनी अधिक समस्याओ का सामना करना पडेगा उसमें, अपनी शारीरिक योग्यता के अनुसार, उतनी ही अधिक 'समझदारी' होगी। जहाँ तक चीटियो का सम्बन्ध है, इनमें शारीरिक योग्यता इतनी कम होती है कि किसी प्रकार की समझदारी की कल्पना व्यर्थ है। उदाहरणत दासो पर जीवित रहने वाली ये चीटियाँ ही इतनी अधिक रिजिड होती है कि सामने भोजन पडा होने पर भी स्वय खा नही सकती जब तक कि उनके दास चबाकर उनके मुह में न डाल दें। यहाँ तक कि वे भूखो तक मर जाती है चाहे उनका भोजन उनके सामने ही क्यो न पडा हो। यह नहीं कि वे स्वय खा नही सकतीं, प्रत्युत यह कि एक प्रवृत्ति से निर्धारित, वे नही खाती। इसलिए स्वय दास प्रथा ही उनमें समझदारी का खडन करती है।

ये सामाजिक कृमि पूर्णत अपने समाज के लिए ही होते है, उससे भिन्न इनके अस्तित्व की कल्पना व्यर्थ है। इसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नही है, क्योकि इनकी यह प्रक्रिया शरीर रचना में निहित है, इसीसे इनमें समाज भी उतना ही आवश्यक है जितना भूख लगने पर भोजन। ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह प्रवृत्ति उनके स्नायुततुवाय में ही निहित हो, क्योकि चीटी यदि किसी प्रकार पृथक् भी पाली जाए तो भी वह अपनी सन्तान के साथ अथवा अन्य चीटियो के साथ समाज बना लेगी और उसकी बस्ती का प्रबन्ध ठीक ही होगा। वास्तव में कृमियो की किसी भी प्रक्रिया में पूर्व कल्पना निहित नही होती बल्कि एक निश्चित आन्तरिक धकेल या बाह्य उकसाहट की बाध्यता से ये कृमि एक निर्धारित प्रक्रिया करते हैं। सामाजिकता या समष्टित्व को भी यहाँ इसी प्रकार अन्त प्रेरणा से ही निर्धारित कहा जा सकता है, और कुछ नही।

इन सभी छत्तो और बस्तियो में एक छोटे से राज्य परिवार को छोड कर शेष सभी केवल मजदूर या दास होते हैं। ये मजदूर उसी जाति के अपने ही सदस्य होते हैं जिसके छत्ते में वे होते है, दासो के समान अन्य जाति के नही होते। ये मजदूर सब के सब, निरपवाद रूप से बाझ मादाए होती हैं जिन्हे केवल छत्ते या बस्ती के लाभ के लिए ही बाझ बनाया गया होता है। यदि इन्हे बडी आयु में भी राज्य परिवार का भोजन दिया जाय तो भी ये गर्भधारण कर सकती हैं। इस प्रकार ये केवल भोजन की भिन्नता से ही

राज्य परिवार से भिन्न की जाती हैं। किन्तु कुछ चीटियां, जैसे ड्राइवर और एनोंम्ना दो भिन्न प्रकार की चीटियो को उत्पन्न करती है जो कि सामाजिक आवश्यक्ताओ को और भी कुशलता से पूरा कर सकती है। इनमें एक सन्तान दूसरी से चार से पाँच गुणा तक आकार में बडी होती है। यद्यपि इस जेनेटिक योग्यता का कारण सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति नही है, किन्तु यह योग्यता उन्हें अधिक कुशलता पूर्ण समाज निर्माण मे समर्थ अवश्य करती है।

ये सब समाज व्यवस्थाए बहुत विचित्र हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे इनमें कुछ या सभी केवल शिशु-पालन के लिए ही हो। जैसे मधुमक्खियो की सभी जातियाँ मैथुन ऋतु के पश्चात् या तो नरो को मार ही डालती हैं या उन्हे छत्ते से बाहर धकेल देती हैं। सम्भवत इसका 'उद्देश्य' भोजन की खपत को कम करना है क्योकि नर कोई भी कार्य छत्ते के लिए या भोजन सग्रह के लिए नही करते, वे केवल खाली बैठे खाते हैं। इसी प्रकार मधुमक्खियो की कुछ जातिया अडो से बच्चे निकल आने पर, उनके लिए आवश्यक भोजन इत्यादि जुटा कर छत्ते मे निकल जाती हैं और आत्म हत्या कर लेती है—प्राय अनशन करके।

जैसा कि हम पीछे भी कह आए है, इन बस्तियो का जीवन पूर्णत मजदूरो के श्रम पर आश्रित है। रानी मक्खी केवल सन्तानोत्पत्ति ही करती है, उसका बस्ती की व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप या भाग नहीं होता। कुछ जातियो में तो रानी कोठरी में कैद तक होती है, वह उसमें से निकल ही नही सकती। किन्तु बबल जाति इसकी अपवाद है। यद्यपि इस जाति में भी एक छत्ते में एक ही रानी होती है किन्तु उनसे भिन्न यह रानी छत्ते के प्रबन्ध का नियत्रण स्वय करती है।

कृमियो में दास वृत्ति सभवत जन्म जात नही है, ये दास प्राय. पकडे जाते हैं और इस वृत्ति के लिए बाध्य किये जाते है, बाद में ये स्वय ही इसे स्वीकार कर लेते हैं। एक बार डारविन ने एफ० गुइनी चींटी और एफ० फुस्का दास जाति को कृमियो को लडते देखा। एफ० सेंगुइनी ने बडी निर्दयता से अपने इन छोटे छोटे शत्रुओ को मार भगाया और उसके बच्चो को दास बनाने के लिए पकडने का प्रयास किया, किन्तु वे इसमें सफल नहीं हो सकी। इसी प्रकार एक बार और डारविन को एक शिला के पीछे, एफ० फ्लावा और एफ० सेंगुइनी को एक दूसरे के समीप बस्तियो में देखने का अवसर मिला। एफ० सेंगुइनी चीटी फ्लावा को बहुत कम ही दास बनाती देखी गई है। डारविन ने इन दोनो बस्तियो को छेडा और उन्हे लडा

दिया। युद्ध में उसने देखा कि चींटियों ने एक दम एफ० फुस्का के बच्चों को एफ० फ्लावा में पहचान लिया और चुन लिया, क्योंकि ये अपेक्षाकृत अच्छे दास होते हैं। इसके पश्चात् वे एफ० फ्लावा का मुकाबिला किए बिना ही मैदान छोड़ कर भाग गईं। इससे स्पष्ट है कि अनेक जातियों को अपने दास प्राप्त करने के लिए उस जाति से युद्ध भी करना पड़ता है और उनके बच्चे प्राप्त करने पड़ते हैं जिससे वे उन्हें हानि न पहुँचा सकें। दास-प्रथा चींटियों में ही पाई जाती है। इनके ये दास इनकी बस्तियों में बचपन से ही रहकर इनके पूर्ण आज्ञा-पालक बन जाते हैं। अब न तो ये उत्पात ही करते हैं और न विश्वास-घात ही। कुछ जातियों में तो दास ही बस्तियों के सर्वेसर्वा होते हैं, क्यों कि इन जातियों की सभी चींटियां सुस्त और परोपजीवी होती हैं।

जैसा कि हम अभी पीछे कह आए हैं, राज्य परिवार के और मजदूर वर्ग के सदस्यों में अन्तर केवल भोजन का अन्तर है, जिससे उनकी शरीर-रचना में भी अन्तर आ जाता है। यद्यपि सभी प्रकार के भोजन मजदूर ही जुटाते हैं किन्तु राज्य परिवार को दिए जाने वाले भोजन का उपयोग वे स्वयं नहीं करते. वे श्रम की महत्ता (Dignity of labour) को अच्छी प्रकार से समझते हैं। अनेक बार राज्य परिवार में किसी मजदूर सदस्य को ग्रहण करने की आवश्यकता होती है। तब उसे राज्य परिवार को दिया जाने वाला भोजन ही दिया जाता है और वह शीघ्र ही उस भोजन से राज्य परिवार में रहने योग्य हो जाती है। अब वह सन्तानोत्पत्ति भी कर सकती है और निष्क्रिय तथा आलस्य पूर्ण जीवन भी बिता सकती है। मधुमक्खियों के छत्ते में भी यह प्रथा पाई जाती है। इनमें यद्यपि राज्य परिवार के अंडों में और मजदूर वर्ग के अंडों में (दोनों प्रकार के अंडे एक ही रानी मक्खी एक ही साथ देती है) कोई आकार गत अन्तर नहीं होता, जैसा कि अन्य अनेक कृमियों में होता है, किन्तु राजकीय अंडों के लिए कमरे यहां भी दूसरों से बड़े होते हैं। भोजन भी मजदूर बच्चों को राजकीय बच्चों से निम्न कोटि का मिलता है, जिससे वे मजदूर बनें, जिससे न तो उन्हें राज्य परिवार की सी सुविधाओं और आराम-चैन की इच्छा हो और न मैथुन व्यापार की वासना। भोजन का अन्तर मिटा कर वर्ग भेद भी समाप्त किया जा सकता है, किन्तु यह केवल बचपन की अवस्था में ही सम्भव है, बाद में नहीं। किन्तु सफेद चींटियों में यह परिवर्तन किसी भी अवस्था में किया जा सकता है। यह आश्चर्य की बात है कि यह सब तब होता है जब कि राज्य परिवार को मजदूरों के श्रम पर ही आश्रित रहना होता है। नियम का यह कड़ा पालन और राज्य-परिवार के प्रति यह सम्मान की भावना वास्तव में

प्रवृत्ति मात्र है, किसी प्रकार की भावना या विचारणा नही, सभवत इसी से यह 'पूर्णता' इनमें भी पाई जा सकती है।

कैटर-पिल्लर की कुछ उपजातियो में परिवार प्रथा तो विद्यमान है किन्तु समाज व्यवस्था नही है। कैटर-पिल्लर परिवार के सभी सदस्य अपने परिवार के निवास के लिए मिल कर छत्ते का निर्माण करते है। इगलैंड के ऐगार कैटर-पिल्लर तो काफी वडे-वडे घर बनाते है। इसी प्रकार एक मनोरजक कृमि एम्बिया भी है। इन कृमियो की वस्ती एक दूसरे के साथ सटा कर वने हुए प्राय पक्तिवद्ध कमरो के रूप में वनी होती है। पत्तो पर पलने वाले कृमियो (जैसे एफिड्ज–जिनकी उपजातियो में से कुछ एक को चीटिया शहद गाय के रूप में पालती है) में भी समाज व्यवस्था कैटर पिल्लरो से कुछ अधिक विकसित होती है, क्योकि इनमें भी एक रानी होती है जिसके शासन में ये सब अनुशासित रहते है।

एक छत्ते या वस्ती के कृमि प्राय एक ही मादा की सन्तान होते है, क्योंकि उपजाऊ मादा सन्तान केवल उन अडो में से ही उत्पन्न होती है जो अडे रानी अपने जीवन में अन्तिम वार देती है। उसके पश्चात् वस्ती उजड जाती है और नवीन वस्ती का निर्माण होता है। जिन बस्तियों में अनेक मादा मक्खियाँ भी उत्पन्न होती हैं वहाँ भी वे गर्भवती होनें पर अपनी अलग वस्ती वसा लेती है। रानी को यद्यपि एक वार वच्चें उत्पन्न कर पूर्ण विश्राम का अवसर मिल जाता है किन्तु इससे पूर्व उसे भी आवश्यक कार्य करना पड़ता है।

कृमियों के अतिरिक्त पक्षियो में भी कुछ समाज व्यवस्था पाई जाती है, यद्यपि इनका यह समाज उतना विकसित और व्यक्ति पर उतना हावी नही होता। कुछ चिडियो की उपजातियो में समाज व्यवस्था अन्य जाति के पक्षियो से अधिक विकसित है। कौओ और कबूतरो में भी समाज व्यवस्था कुछ सीमा तक पाई जा सकती है, कौओ में अपेक्षा कृत अधिक व्यवस्था है। समवत इस का कुछ कारण यह है कि इससे इन्हे कुछ सुरक्षा मिलती है। कौओ में एक दूसरे की सहायता की प्रवृत्ति तो सभी जानते हैं। चिडियो में तो यह और भी अधिक लाभदायक है। किन्तु इन पक्षी-समाजो या समष्टियो में वैसी कोई व्यवस्था नहीं है जैसी कृमियो की समष्टियो में पाई जाती है। सामान्यत: निर्वल पक्षियो की जातियो में समाज-व्यवस्था अधिक है और इसका सीधा कारण हम दे सकते हैं—शत्रु से रक्षा। इसका दूसरा कारण, और शायद पर्याप्त वडा कारण, भोजन की खोज भी

है। सभवत, उन्हें स्वभाव से भी अकेला रहना उतना पसद नही। इसका कारण बच्चो से प्यार भी हो सकता है। किन्तु सबसे प्रमुख और 'मौलिक' कारण भोजन की खोज और सुरक्षा की भावना है। शत्रु से वचने के मामले में सहयोग के काफी उदाहरण पाये जा सकते है। पक्षियो की अनेक सामाजिक जानियो में शत्रु को देखने पर खतरे के सकेत के लिए अनेक प्रकार की ध्वनियाँ मिलती है। यद्यपि इस प्रकार ध्वनि करना समाज के लाभ में है किन्तु स्पष्टत इसमें व्यक्ति को हानि पहुँच सकती है। इसके अतिरिक्त भय होने पर भी आवाज करना वैसे ही खतरनाक है। किन्तु झुड में होने पर यह सावधानी-सूचक ध्वनि व्यक्ति के लिए उतनी खतरनाक नही, क्योकि तब वह झुड में सभी की सहायता से ही बच सकता है। टिटमोस की जाति में बाज को देखने पर इसी प्रकार झुन्ड के सभी व्यक्ति खतरे की आवाज करते है और साथ ही साथ बचाव का प्रयास भी करते हैं। यदि यह झुन्ड कही बैठा हुआ हो तो खतरे की आवाज पर सब चुप होकर और ठिठक कर पास के आश्रयो में छिप जाते है। यूरोपियन स्टार्लिंग जब झुन्ड रूप में सामान्य अवस्था में उड रहे होते है तो उनकी पक्तियाँ बिखरी हुई सी होती है और वे एक दूसरे से कुछ दूरी पर उड रहे होते है, किन्तु ज्यो ही वे बाज को देख लेते है, प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से प्राय सट जाता है और अब ये आश्चर्य जनक रूप से व्यवस्थित होकर बडी तीव्र गति से गोलाकार रूप में चक्कर काटने लगते हैं। टिन्बर्जन के अनुसार, बाज के शिकार करने के ढग को देखते हुए स्टार्लिंग की यह प्रति-क्रिया और उपाय एक दम उपयुक्त प्रतीत होता है। उसके अनुसार, बाज उडते हुए पक्षी पर आक्रमण करते हुए प्राय १५० मील प्रति घन्टा की तीव्र गति से सर्राता हुआ झपटता है। उसकी यह तीव्र गति स्टार्लिंगो के लिए इस प्रकार लाभदायक हो जाती है कि वे झुन्ड रूप में तीव्र गति से गोलाकार चक्कर काटते हुए उसके लिए टकरा जाने का खतरा उतपन्न कर देते है। इतनी तीव्र गति से अपने शिकार पर कूद कर वह तभी टकराने से बच सकता है यदि वह पहले अपने सशक्त पजे उसके मारता है तो। किन्तु बडी तीव्र गति से चक्कर काटने से एकाकार हुआ यह झुन्ड उसके लिये यह असभव कर देता है। इससे यह वाज इन पर इस प्रकार आक्रमण नही करता, तब वह केवल अव्यवस्थित से आक्रमण करता है और प्रयास करता है कि कोई व्यक्ति इस झुन्ड में से टूट आए। यदि उनमें कोई निर्बल या बच्चा होता है और वह टूट जाता है तव तो वाज उसे पकडने में समर्थ होजाता है किन्तु यदि वह इसमें सफल नही होता तो उसका प्रयास विफल जाता है। टिन्वर्जन के अनुसार और भी अनेक

पक्षियो की जातियो ने बाज से बचने के लिए इसी उपाय को अपनाया है।

किन्तु बहुत सी जातियो में मिलकर शत्रु पर आक्रमण करने की भी प्रवृत्ति है । यह आक्रमण प्राय' इस प्रकार किया जाता है — कोई एक व्यक्ति खतरे की सूचना एक विशेष प्रकार की ध्वनि करके देता है, इस पर सभी व्यक्ति उसके साथ सट जाते हैं और एकत्रित हो कर शत्रु पर आक्रमण करते हैं। झुण्ड का इसके अतिरिक्त यह लाभ भी है कि शत्रु को देखने और उसको सूचना देने के लिए अधिक आँखें हो जाती हैं , क्यो कि शत्रु प्राय बहुत ही सावधानी से छिप कर आकस्मि आक्रमण करने का प्रयास करता है। कुछ पक्षी, जैसे कौए, काली चींडियाँ इत्यदि अपने शत्रु को प्राय ही तग करके भगा देते हैं–विशेषत बिल्ली इत्यादि को, किन्तु कुछ पक्षी केवल चिल्ला कर ही रह जाते हैं ।

पक्षियो में इस प्रक्रिया के अतिरिक्त अन्य प्रक्रियाओ और पहलुओ में भी सामाजिकता के कुछ चिह्न पाए जाते है, एक जाति के सभी व्यक्ति प्रवास के समय इकट्ठे हो जाते है। कुछ पक्षियो मे नर, और ऐसो की सख्या काफी अधिक है, एक ऋतु में एक ही या निश्चित दो-तीन मादाओं से ही सबध बनाता है और उसके साथ घोसला बनाने तथा शिशु पालन का कार्य करता है। कुछ जातिया में तो यह प्रवृत्ति और भी विकसित मिलती है, उदाहरणत कौओं की एक विशेष जाति जेकडॉ में व्यक्ति गत प्यार और विद्वेष की भावना पर आधारित सामाजिक सबध भी पाए जाते है। इस समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपनी बस्ती के अधिक शक्तिशाली और अत्याचारी साथी से बचता है, और उनसे सपर्क बढाने का प्रयास करता है जिनके साथ विश्रब्ध भाव से रहा जा सकता है। सशक्त व्यक्ति का सभी आदर करते हैं और उससे घबराते हैं। मादा व्यक्ति यहा भी शासित है जैसे मनुष्यो में। यदि कोई निम्नश्रेणी की मादा उच्चश्रेणी के नर के साथ सबध स्थापित करने में सफल हो जाती है तो बस्ती के सभी पक्षी उसका भी आदर करने लगते हैं । इस जाति में प्राय प्रत्येक व्यक्ति-नर एक ही मादा से आजीवन सबध रखता है, किन्तु उसके मर जाने र अथवा किसी अन्य कारणो से औरो को भी स्वीकार कर सकता है। (Larenz)

इस सामाजिकता की प्रवृत्ति को हम एक टिपिकल प्रवृत्ति कह सकते हैं, विशेषत. कृमियो में, क्यो कि उनमें यह प्रवृत्ति और इसके साथ जुडी हुई अन्य प्रवृत्तियाँ परिणाम में सामान्यत' चाहे कितनी लाभ दायक हो, पूर्णत रिजिड हैं, वे स्वत चालित (Automobile) मशीन के समान अन्तर या बाहय उकसाहट से प्रेरणा पाकर तदीय प्रक्रिया को क्रियान्वित

कर देते हैं। उदाहरणत, चीटिया अपने नेताओ से बनाए गए गध-पथ पर अधा धुध चली जाती है, किन्तु यदि उसमें थोडा सा भी विक्षेप डाल दिया जाए अर्थात् यदि उस रास्ते के छोटे से भाग को पोछ कर छोडी गई गध को साफ कर दिया जाए, तो वे एक दम झमेले में पड जाएँगी और अपने रास्ते से या तो भटक जाएगी अथवा आकस्मिक रूप से उसे प्राप्त कर सकेंगी। इसी प्रकार दास वृत्ति के लिए भी कहा जा सकता है। जो चीटिया पूर्णत या जिस भी अश तक दासो पर निर्भर करती हैं वे उसी सीमा तक उनके अभाव में पीडित भी होगी, किन्तु उनकी यह निश्क्रियता और दासो के विशेष स्पर्श की उकसाहट के साथ उनकी प्रक्रियात्मक योजन। इतनी रिजिडिटी से जुडी हुई हैं कि वे भोजन सामने पडा होने पर भी नही खा साकती, अथवा उस भोजन का अर्थ उनके लिए भोजन नही रहता। उनके लिए भोजन एक प्रक्रियात्मक व्यापार है, इसके अतिरिक्त उनके लिए कोई वस्तु भोजन (भोजन का स्वतत्र विचार नही। जहाँ तक जेकडा का सबध है, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि लारेंज का यह वर्णन कुछ अधिक रगीन है, उसमें अपनी कल्पना का समावेश काफी प्रतीत होता है, अन्यथा एक पलीत्व एक सीधा सा प्रवृत्यात्मक व्यापार है।

इस यात्रिक प्रक्रिया (प्रवृत्ति) के और भी कितने ही उदाहरण दिए जा सकते है और प्रवृत्ति को ठीक तरह से समझने के लिए यह आवश्यक भी है कि हम अधिक से अधिक उदाहरणो को देखें।

आँटलायन इस यत्रीकरण और रिजिडिटी तथा परिवृत्ति के साथ सबध का एक वहुत उपयुक्य उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह कृमि प्राय सूखी रेता और सूखी मिट्टी में ही रहना पसद करता है। यह अपने भोजन के लिए चीटियो तथा अन्य इसी प्रकार के छोटे कृमियो को एक विशेष ढग से पकडता है। इन कृमियो को पकडने के लिए यह एक विशेष प्रकार का गोलाकार सुराख सा जमीन में बनाता है, जो ऊपर से कुछ चौडा और नीचे की ओर क्रमश छोटा होता जाता है। पहले वह किसी सूखी मिट्टी की जमीन पर एक तरफ गोल रेखा बनाता है और तव सिर से तीव्र गति से मिट्टी वाहर की ओर फेंकते हुए पीठ की ओर से भीतर पैठता रहता है। इस क्रिया व्यापार के समय यदि किसी ऐसे रोडे इत्यादि को वह वाधा रूप में पाए जो इसके शरीर से वडा हो और जिसे यह सामान्य क्रिया से न हटा सकता हो, तो यह एक ओर से इसके नीचे जा कर इसे धकेल धकेल कर वाहर फेंक देता है। यह कर लेने पर यह पुन अपने कार्य पर लौट आता है। यदि कोई छोटा रोडा या अन्य कोई वस्तु वीच

में आ जाती है तो वह अपनी हँसिये के समान डाढो पर तौल कर पूरे जोर से वाहर फेंक देता है। जव यह गोलाकार विल आधा वन जाता है तव यह वीच से कुछ चपटे आकार का होता है किन्तु वाद में यह कृमि इसे नीचे से सूक्ष्म और ऊपर से वडे, ज्यामिति के त्रिशकु के समान वना लेता है और उसमें अपना शरीर मिट्टी में छिपाए केवल मुँह वाहर निकाले अपने शिकार की प्रतीक्षा में वैठा रहता है। यदि इस गोलाकार में कोई रोडा या कुछ मिट्टी पड़ जाए तो वह वही से वैठा ही उसे वाहर निकाल फेंकता है। किन्तु यदि यह मिट्टी किसी भोज्य कृमि के साथ लुढककर आई हो तो यह तुरन्त उसे हटा कर वडी चतुराई से उसे अपने क्रूर जवडो में ले लेता है।

आँटलायन सदैव अपना घोसला या शिकार-मच रेतीली अथवा सूखी मिट्टी वाले तथा वर्षा से सुरक्षित स्थान पर वनाता है, यद्यपि उस स्थान पर धूप का होना आवश्यक है। इससे यह प्राय किसी वृक्ष की वडी मोटी शाखा के नीचे होता है। ऐसा स्थान रेतीली ढलानो में, नदी के रेतीले किनारों पर या जगलो के किनारो पर अधिक सुविधा से प्राप्त हो जाता है, ऐसे स्थानो पर चीटिया और दूसरे कृमि भी काफी मात्रा में उपलव्ध हो सकते हैं।

यह छोटा सा कृमि अपने जीवन-व्यापार के ठीक सचालन के लिए कैसे ठीक स्थानो को खोज लेता है, यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है यद्यपि वहुत सीधा भी। प्रथम तो वह उत्पन्न ही ऐसे स्थानो पर होता है, क्यो कि उसकी माता के लिए भी ऐसे ही स्थान सुविधा जनक होते है, किन्तु यदि वे कही अनुपयुक्त स्थान पर भी उत्पन्न हो जाए तो भी वे थोडा वहुत भटकने के वाद अपनी जाति के लिए सुविधा जनक स्थान को खोज लेते हैं। यह कार्य यद्यपि प्रथम दृष्टि में आश्चर्य जनक प्रतीत होता है, किन्तु यह समझ लेने पर कि इन प्राणियो का जीवन निरन्तर अपनी परिवृत्ति की भौतिक-रासायनिक परिस्थितियो के साथ ऐसे ही वँधा हुआ है जैसे उनके अन्त-शरीर की भौतिक रासायनिक परिस्थितियो का आपस में सीधा सवध है तव यह कोई आश्चर्य की वात नहीं रहती। वे एक निश्चित कार्य-कारण सवध में वँधे कार्य करते है, मनुष्य के समान वे अपनी 'स्वतत्र मानसिक सत्ता' में नही रह सकते। इसीसे आँटलायन को जव तक अपनी शारीरिक माग के अनुसार परिवृत्ति प्राप्त नही हो जाती तव तक वह असुविधा और अकुलाहट का अनुभव करता हुआ निरन्तर उपयुक्त को खोजने के लिए दौड़ता है। इस खोज के लिए उसे किसी भी प्रकार की पैतृक-स्मृति वाच्य नहीं

करती प्रत्युत् असुविधानुभूति की अकुलाहट की यान्त्रिक प्रेरणा ही बाध्य करती है। यह एक ऐसी ही अचेतन क्रिया है जैसे मनुष्य सरदी में पास पड़े हुए किसी भी ओढन को विना उसका विचार किये ही ऊपर ओढ लेता है अथवा नीद में पडा हुआ मनुष्य गर्मी लगने पर स्वय अनजाने ही कपडा उतार देता है। इसी प्रकार आँटलॉयन सामान्यत अपना उपयुक्त स्थान खोज लेता है। प्राकृतिक परिवृत्तियो में वह सामान्यत २५°से ३०° सेन्टीग्रेड तापमान में सबसे अधिक क्रिया शील और सुविधा में होते हैं। यदि नवोत्पन्न वच्चे अपने आप को प्रच्छाय, पकिल या पथरीले स्थानो में पाते हैं, तब वे सूर्य की किरणो का स्पर्श पाते ही उपयुक्त स्थान की खोज में प्रकाश किरणो की ओर दौड पडते हैं। जब वह एक उपयुक्त सूखी, गर्म रेतीली जमीन प्राप्त करता है तभी यह शिशु आँट-लायन अपना शिकार स्थान खोदने लगता है। यदि यहाँ काफी शिकार प्राप्त हो जाय तो वह वही रहना प्रारभ कर देता है, किन्तु यदि शिकार पर्याप्त न हो तो वह उस स्थान को छोड कर दूसरे की खोज करता है। इस प्रकार उसे किसी प्रकार की स्मृति या 'अतिरिक्त-प्रवृत्ति' निर्धारित नही करती प्रत्युत् उसकी शारीरिक आवश्यक्ताएँ ही उसे नियोजित करती हैं। सभव है किसी प्रकार की स्मृति भी उसे प्राप्त हो, जो कि उसके प्रवृत्यात्मक व्यवहार में देखी जा सकती है—जैसे, वह एक विशेष प्रकार का ही शिकार-गृह या मच बनाता है जो कि सभवत इस प्रकार उसकी शरीर रचना में निहित न हो, किन्तु इन प्राणियो में आश्चर्यजनक रूप से एक व्यवहार के लिए जो रिजिडिटी पाई जाती है उससे ऐसा प्रतीत होता है, यह भी किसी न किसी रूप में शरीर-रचना में ही निहित प्रवृत्ति होगी जो कि विशेष वाह्य और आन्तरिक परिस्थितियो के उत्पन्न होने पर क्रियान्वित हो जाती है।

इसी प्रकार के कुछ और उदाहरण दिये जा सकते हैं। यहाँ हम फेबर द्वारा प्रदर्शित कैटरपिल्लरो के एक समूह का उदाहरण देंगे जो कि भोजन की खोज में जा रहे थे। ये कैटरपिल्लर चीड के वृक्षो पर एक बडी बस्ती के रूप में रहते हैं और भोजन के लिये छोटी छोटी यात्राए करते हैं। इन यात्राओ में ये विल्कुल एक दूसरे के पीछे, एक मिलकन सूत्र की रेखा पर, जो कि उनका लीडर वनाता है, चलते हैं। एक बार फेबर इस बस्ती के भोजन-यात्रा पर निकलने पर उसे एक वडे पत्थर के चारो ओर इस प्रकार घुमाने मे सफल हो गया कि एक पूरा और अटूट चक्कर वन गया। अब यह झुड उसी चक्कर में चलने लगा और पूरे एक सप्ताह तक इसी चक्कर मे चलता रहा। एक भी कैटरपिल्लर इस चक्कर को तोड कर भोजन और विश्राम खोजने के लिए वाहर निकलने मे समर्थ नही हो सका। अन्त में

आठवें दिन अचानक ही कुछ व्यक्ति उस चक्कर से निकल पड़े और वह सूत्र टूट गया, जिससे वे उस मुसीबत से छूट सके। (रसल द्वार विहेवियर आॅफ एनिमल्ज से उद्धृत)

एक भारतीय चीटी वार्वारुस अपने घोसले से आठ इच पर मिट्टी का ढेर लगाती है। इस पर वह प्राय वीजो के छिल्लक भी फेंकती है। एक बार हिंग स्टोन ने इस जाति का घोसला एक दीवार में देखा। उसने सोचा कि चीटियाँ घोसले के मुह से ही छिल्लक इत्यादि नीचे गिरा देंगी, किन्तु उसने देखा कि यह उसका गलत अनुमान था। चीटियाँ इन छिलको को आठ इच नीचे तक लाती और वहाँ से उन्हें छोड देती, उसी प्रकार सावधानी से मानो ढेर पर रख रही हों। यह व्यापार महीनो तक इसी प्रकार चलता रहा। वे अपनी सामान्य प्रवृत्ति के अतिरिक्त कुछ नही सीख सकी।

इसी प्रकार प्रवृत्ति की रिजिडिटी प्राणियो के किसी विशेष वस्तु के प्रति विशेष-व्यवहार अथवा प्राणी के वाह्य विषय के साथ प्रक्रियात्मक सम्वन्ध में भी पाई जा सकती है—कोई जाति-विशेष किसी विषय विशेष से अथवा किसी रूप विशेष से एक विशेष प्रकार का ही सम्वन्ध क्यो रखती है, उसका उसके लिए वही विशेष अर्थ क्यो है, अन्य क्यो नही ? इसके मुख्यत. दो कारण हो सकते हैं—प्रथम तो यह कि वह किसी विशेष वस्तु से किसी विशेष मानसिक स्थिति में ही सम्पर्क में आयी हो और वह वस्तु उसी रूप में उसके लिए अर्थ रखती हो, और दूसरा यह कि प्राणी अपनी अन्तरनुभूति से ही उसका विशेष अर्थ समझता हो। पहले का उदाहरण विल्ली के लिए चूहे का अर्थ भोजन होना हो सकता है और दूसरे का उदाहरण नर थ्रीस्पाइड स्टिक्कल वैक का केवल लाल पेट वाले स्टिक्कल वैक पर आक्रमण करना हो सकता है। यदि चूहे को विल्ली के सम्पर्क में पहली ही वार ऐसे लाया जाय कि विल्ली उससे डर जाए तो विल्ली के लिए चूहे का अर्थ भोजन न हो कर भयद वस्तु होगा, किन्तु कठिनाई यह है कि चूहा विल्ली को देख कर भागता है, इसलिए वह उससे, सम्भव है, सदैव डरती न रहे, किन्तु यदि प्रारम्भ से चूहे को उसके लिए स्नेह की वस्तु वना दिया जाए तो उसके लिए सभी चूहो का अर्थ स्नेह की वस्तु हो सकता है। थ्रीस्पाइड स्टिक्कल वैक मैं मथुन ऋतु में नर पर आक्रमण करता है। इसी प्रकार इगलिश रोविन भी नर रोविन के लाल पख देखकर उस पर आक्रमण कर देता है। किन्तु सम्भवत उसका अर्थ उसके लिए भी उसी प्रकार निश्चित नही हुआ जैसे विल्ली के लिए चूहे का होता है। इसमें सम्भवत. उसके अपने पेट का लाल होना भी उसे अपने प्रति-द्वन्दी का यह विशेष अर्थ समझने में कारण

होता है। किन्तु उसके लिए कोई प्रयोग-सम्मत प्रमाण नही दिया जा सकता है, यह केवल सम्भावना भर है। किन्तु पहले के लिए यदि कही प्रमाण नहीं भी है तो इसे पूर्णत. तर्क सम्मत सभावना तो कहा जा सकता ही है।

प्राय सभी प्रवृत्तियाँ किसी न किसी प्रकार से इन दोनो के अन्तर्गत आ सकती हैं। किन्तु कुछ प्रवृत्तिया ऐसी भी होती है जो उतनी स्पष्ट रूप से प्रक्रियात्मक अथवा इस प्रकार किसी विशेष से सबद्ध नही होती, जैसे हमने पीछे कैटर पिल्लरो का एक लाइन में चलने का उदाहरण दिया था। इसी प्रकार आँट लॉयन का अपने शिकार-मच को खोजना भी इसका उदाहरण कहा जा सकता है। आँट लायन के लिए यहाँ इस प्रकार से नही कहा जा सकता कि रेत का उसके लिए अर्थ है शिकार-मच बनाना, क्योंकि एक बार शिकार मच बन जाने पर वह वैसी अन्य स्थिति मिलने पर भी उसे नही बनाएगा। इस प्रकार कुछ व्यवहारो को केवल अन्त प्रेरणा का परिणाम भी कहा जा सकता है। इस प्रकार की प्रक्रियाओ के कारणो को हम प्रथम निबध में पर्याप्त विस्तार से देख ही आए हैं, इससे हम यहाँ दूसरी प्रकार की प्रवृत्तियो के उदाहरण ही अधिक देंगे।

अस्तु, हेरिङ्गल के नवोत्पन्न शिशु माता-पिता की चोच पर अपनी चोच लगा कर उनसे भोजन माँगते है। माता-पिता अपने गले की थैलियो में सँजोया हुआ भोजन नीचे उगल देते है और फिर थोडा-थोडा भाग उठा कर उनके मुँह में डालते है। थोडी भूल्तियो के पश्चात् शिशु भोजन ग्रहण कर लेता है और इसे निगल लेता है। हेरिन्गल की चोच कुछ पीली होती है और निचली चोच के अग्र भाग में एक लाल बिन्दु सा होता है। अब बच्चे के सम्मुख ठीक उसी रग की चोच वाली एक लकडी की विकृत सी आकृति रखी गई। शिशु में बडी उत्सुकता से उससे भोजन ग्रहण करने की प्रक्रिया देखी गई, किन्तु जब उसके सम्मुख बिलकुल ठीक आकृति की एक ऐसी लकडी की मूर्ति प्रस्तुत की गई जिसकी निचली चोच पर लाल बिन्दु नही था तो वह एक दम उलझन में पड गया। आगे फिर इसी बिन्दु को लेकर और भी प्रयोग किये गए। बच्चा इन लकडी की आकृतियो में किसी भी रग के बिन्दु वाली आकृति के प्रति अधिक परिचय-भावना प्रकट करता था। इन सभी आकृतियो की चोच का वही रग रखा गया था जो गल (Gull) की चोच का होता है, इससे स्पष्ट है कि बच्चे का प्रक्रियात्मक व्यवहार सबसे अधिक चोंच के विन्दु पर केन्द्रित है।

प्राय ही प्राणियो में देखा गया है कि उनका प्रक्रियात्मक सबंध बाह्य विषय के किसी एक पहलू के साथ ही रहता है जब कि शेष उससे उपेक्षित

रहता है, किन्तु इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि प्राणी विशेष के लिए एक वस्तु का केवल एक इद्रिय विषय के रूप में महत्व है और दूसरी का दूसरे इन्द्रिय-विषय के रूप में। इससे भी अधिक, एक ही वस्तु या विषय के विभिन्न पहलुओ के विभिन्न इन्द्रियो के साथ सबन्ध है और एक पहलू एक इद्रिय का विषय हो कर दूसरे के लिए विषय नही रहता। इसे हम इस प्रकार भी कह सकते है कि मनुष्य या विकसित प्राणियो के समान उनकी विभिन्न इन्द्रियो के विषय मस्तिष्क केन्द्र में सम्बन्ध स्थापित नही करते। यदि मनुष्य एक व्यक्ति की केवल आवाज ही सुनता है, वह दुबारा भी उसकी आवाज से ही उसे पहचान सकेगा किन्तु यदि किसी की वह आवाज उसकी आकृति के देखने के साथ सुनता है तो कभी भी उसकी आवाज श्रोता में उस व्यक्ति की दृष्टिगत स्मृति को भी उत्पन्न कर देगी। किन्तु बहुत से प्राणियो में यह शक्ति नही है। ब्रयूकनर के अनुसार घरेलू मुर्गी अपने बच्चो की भय-पूर्ण पुकार सुनकर तुरन्त उसकी रक्षा के लिए दौडेगी, किन्तु यदि उसके बच्चे उसके सामने ही चुपचाप तडप रहे हो तो उसमें कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न नही होगी। उसने एक बच्चे को एक बार उठाकर किसी अदृश्य स्थान पर रख दिया, मुर्गी उसकी पुकार सुनते ही उसकी रक्षा के लिए व्याकुल हो उठी, जब कि एक शीशे के बर्तन में उसके सामने तडपता बच्चा उसका बिल्कुल भी ध्यान आकर्षित नही कर सका। इसी प्रकार, चीटी अपने बच्चो को केवल सूघकर पहचान सकती है, देखकर नही। चीटी के लिए कहा जा सकता है कि उसके लिए सपूर्ण ससार ही केवल घ्राणेंद्रिय का विषय है। इसी प्रकार अन्य बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं—लेसियो केम्पा जाति की कुछ तितलियो में मादा केवल तभी नर के लिये मैथुन-विषय हो सकती है जब उसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध उत्पन्न हो, ग्रेलिंग जाति की तितलियो में नर केवल अपना सुगधित अग खोल कर ही मादा के लिए मैथुन-विषय हो सकता है अन्यथा नही। स्टिक्कलबैक में नर मादा के लिए लाल पेट और एक विशेष प्रकार के नृत्य के साथ ही मैथुन विषय हो सकता है अन्यथा नही। इसी प्रकार इपिफिग्गर जाति की टिड्डियो में केवल गाता हुआ नर ही मैथुन विषय हो सकता है। यदि एक नर उसके बिल्कुल समीप भी हो और मैथुन के लिए प्रस्तुत हो, तो भी वह दस गज की दूरी पर गाते हुए नर की ओर भागेगी, अपने समीप वाले नर की परवाह नही करेगी। (Tinbergen)

इस प्रकार की प्रक्रियाए सभवत इसलिए ऐसी हैं कि ये प्राणी दो भिन्न इद्रियो की स्मृति का सम्बध स्थापित नही कर पाते,

प्रतीत होता है कि इनके लिए विशिष्ट इन्द्रिय-विषय विशिष्ट प्रक्रिया के साथ इस प्रकार बधा होता है कि उसके प्रस्तुत होते ही उस प्रक्रिया के लिए जितनी वासना और शक्ति उसके पास होती है वह क्रियान्वित हो जाती है। इस प्रकार इन प्रवृत्यात्मक प्राणियो के लिए सपूर्ण विश्व विभिन्न प्रक्रियाओं का समूह मात्र है जो प्रक्रियाए एक दूसरे से स्वतत्र अस्तित्त्व रखती है। मादा ग्रेलिग के लिए दो स्थितियो में एक ही नर दो भिन्न विषयो के रूप में है, उसके लिए वह एक ही विषय नहीं जिसके विभिन्न पहलू हो सकते है। इसे और भी स्पष्ट करने के लिए कहा जा सकता है कि जैसे मनुष्य के लिए एक देवदत्त विभिन्न रूपो में भी वही देवदत्त है वैसा प्रवृत्यात्मक प्राणियो में नही है। हम कह सकते हैं कि देवदत्त खाता है, देवदत्त सोता है, देवदत्त पढ़ता है इत्यादि, ऐसा इन प्राणियो के लिए नही है।

उदाहरणत कृष्ण-शिर गल को लें। इसके लिए अपना ही अडा विभिन्न स्थितिओ में विभिन्न प्रक्रियाओ का विषय है, अथवा वह उसके लिए भिन्न भिन्न विषयो के समान है। यदि पक्षी अडा सेने वाला (Broody) है और अडा घोसले में पडा है तो उसके लिए यह सेने का विषय होगा। यदि घोसले में कोई ऐसी वस्तु भी रख दी जाय जो गोल हो और लगभग उसी आकार और बनावट की हो, फिर चाहे उससे काफी भिन्न भी प्रतीत होती हो, पक्षी उस पर उसी प्रकार बैठेगा जैसे अपने अडे पर बैठता है। यदि उसके घोसले में लौटने पर उसके अडे में छेद हुआ हैं तो उसके लिए वह कुछ पीने की वस्तु हो जाता है, चाहे बच्चा काफी बन चुका हो। इसी प्रकार किसी दूसरे पक्षी के घोसले में पडा अडा भी उसके लिए कुछ पेय पदार्थ ही होता है फिर चाहे वह उसका अपना ही अडा क्यो न हो। यदि उसका अडा उसके घोंसले के बिल्कुल समीप पडा हो तो उसके लिए वह कुछ घोसले में लौटाने की वस्तु होता है—प्रत्येक गल के लिए अडे का लौटाने की वस्तु होना उसके घोसले से एक से डेढ फुट तक के अतर पर पडे होने पर ही हो सकता है, उससे बाहर वह केवल उपेक्षा का विषय ही हो सकता है—पक्षी के लिए उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

इसी प्रकार एक और भी उदाहरण इस 'प्रक्रियात्मक सम्बन्ध परिवर्तन' का दिया जा सकता है। ब्रोक (Brock) ने पागारूस पक्षी के सागर्शिया पारासिटिका (Sagartia parasitica) के साथ प्रक्रियात्मक सम्बन्ध का अध्ययन करके बडा मनोरजक चित्रण प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार सामान्य अवस्था में पागारुस पक्षी गास्ट्रोपोड को अपने गृह के रूप में बर्तता है और इस पर सागर्शिया के पौधे लगाता है। यदि ये पौ` इस पर

से हटा दिये जाँय और पागारुस भूखा न हो तो वह पुन उन्हे उस पर चिपका देगा किन्तु भूख लगने पर वे उसके भोज्य द्रव्य होगे । यदि पागारुस को घर वनाने के लिए गास्ट्रोपोड न मिले तो वह सागर्शिया को दवा कर घर के समान वर्तता है । इस प्रकार सागर्शिया उसके लिए उसकी विभिन्न आवश्यकताओ के समय विभिन्न प्रक्रियात्यक सम्वन्व रखता है।

यह उदाहरण पिछले उदाहरणो से विपरीत है, क्योकि वहाँ एक ही विपय विभिन्न अवस्थाओ में भिन्न भिन्न विपयो के रूप में प्रतीत होता है और इसमें एक ही विपय एक ही स्थिति में भिन्न भिन्न वासनाओ में भिन्न भिन्न विपयो का पर्याय होता है। वास्तव में प्रक्रियात्मक सम्वन्व को निर्धारण करने में दोनो ही पहलू महत्व पूर्ण हैं ।

यह प्राय निश्चित ही है, जैसा कि हम दूसरे निवंध में भी विस्तार से देख आए हैं, कि कोई भी प्रक्रिया या प्रवृत्ति चाहे किसी समय प्राणी के लिए उपयोगी होने से ही उसके द्वारा अपनाई गई हो किन्तु वाद में वह केवल एक यांत्रिक व्यापार मात्र रह जाती है । ये 'उपयोगी' प्रवृत्तियाँ तव भी चलती रहती है जवकि उस जाति की परिवृत्ति विल्कुल परिवर्तित हो चुकी हो और उस परिवृत्ति में यह उपयोगी प्रवृत्ति हानिकारक हो । उदाहरणत कठफोडा अपने भोज्य वीज वृक्षो की फटनों में सग्रह करता है और अभाव के दिनो में उनका उपयोग करता है । टेलीफोन की तारो के लिये खभे लगने पर उस ने उन वीजो को उन खभो की दरारो में भी रखना प्रारम्भ कर दिया । जिस ऋतु में (सितवर-अक्तूवर में) यह वीजो का सग्रह करता है उन दिनो इनकी दरारें खूव खुली होती हैं किन्तु ये वर्पा होने पर वहुत तग हो जाती हैं, जिससे यह पक्षी इन वीजो का अभाव के दिनो (सर्दी) में उपयोग नही कर पाता, क्योकि तव वीज सड जाते हैं। इस तरह वे प्रति वर्पं करते है और प्रति वर्ष हानि उठाते हैं। इसी प्रकार कुछ कठफोडे एक टूटे फूटे सूने घर में रहते थे । वे अपने भोज्य वीज एकत्रित कर उस घर की दरारो में रख देते थे, किन्तु दरारें गहरी होने से वे वीज भीतर चले जाते और उनकी पहुँच के वाहर हो जाते । इस पर भी यह पक्षी प्रति वर्प उसी प्रकार हानि सहता रहा, उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नही आया ।

इसी प्रकार राईडफ्लोवर अपने अडे सागर या नदी के किनारे की पथरीले ककडो की जमीन में देता है जहाँ पर कि ये देखे न जा सकें। किन्तु जव यह पक्षी अपने अडे घास में भी देता है तो भी यह अपने घोसले को पत्थरो से ढँक देता है । इस प्रकार वह तव भी अपनी उस प्रवृत्ति को नही छोडता जवकि उसका कोई भी उपयोग नही होता । (Ritter)

इसी प्रकार एक मछली केवल उन्ही प्राणियो को खाती है जो कि उसकी नीचे की ओर तैर रहे हो। यह प्राय रात को शिकार करती है। यह अपने गले के नीचे लटकते ततुओ से अपने शिकार के होने का अनुमान करती है और शिकार के होने पर वह उस पर आक्रमण करती है, किन्तु यदि शिकार उसके ऊपर हो तो उसको देखने पर भी वह शिकार नही करती। यदि इसका शिकार उसे ऊपर से छू भी जाए तो भी वह उसे नही पकडती। इतना ही नही, अनेक बार तो यह अपने शिकार के ऊपर होने पर उससे बुरी तरह से डरती भी है जब कि उसके नीचे आते ही उस पर आक्रमण करती है। इसी प्रकार कुछ मछलिया शिकार के नीचे होने पर उनको नही देखती जब कि ऊपर आते ही उन्हें पकडने को दौड़ती हैं।

प्रवृत्ति के लिए सामान्य लोगो से लेकर बडे बडे दार्शनिक और वैज्ञानिक तक अनेक बार यह सोचने की भूल करते हैं कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो अतिप्राकृतिक रूप से समझदारी पूर्ण और अपनी सफलता में अथवा लक्ष्य बेध में अचूक है। यह एक बडी भूल है जो कि ऊपर दिये उदाहरणो से देखा जा सकती है। यह ठीक है कि प्रवृत्ति प्राय एक विशेष ढङ्ग से एक विशेष परिवृत्ति में बहुत अधिक 'अचूक' होती है किन्तु थोडे से भी परिवर्तन से यह एक नितान्त मूढता पूर्ण व्यापार हो जाती है, और प्राणी तब भी मशीन के समान उसी प्रकार व्यवहार करता रहता है। पक्षियो के नवजात शिशु अपनी माता को झट प्रवृत्ति से ही पहचान लेते हैं किन्तु वे उतनी ही अधिक भूलें भी करते हैं, उदाहरणत कोई उनकी माता के समान आवाज करके उन्हे अपने पीछे लगा सकता है, यहाँ तक कि काफी बडे बच्चे भी, जो उड तक सकते हैं, उनकी माता के समान आवाज करने पर भागे आते है और बोलने वाले के ऊपर आकर बैठ जाते हैं। छोटे बच्चो को तो केवल उगली दिखा कर अथवा किसी वस्तु से छूकर बहकाया जा सकता है, वे तुरन्त चिल्लाने लगते हैं और भोजन के लिए मुह खोल देते है। बर्गसा ने प्रवृत्ति की अचूकता और अति प्राकृतिक समझदारी पर इतना बल दिया है कि आश्चर्य होने लगता हे कि इतना बडा दार्शनिक भी इतनी भावुकता से क्यो बातें कर रहा है। किन्तु वास्तव में उसका वाइट-लिज्म का समर्थन उसकी इस बडी कमी का उत्तरदायी है। वह 'क्रीयेटिव इवोल्यूशन' में फेबर को उद्धृत करते हुए एम्मोफीलिया की अपने बच्चों के लिए ताजा भोजन जुटाने के लिए कैटरपिल्लर के एक विशेष ढग से डक मारने की प्रवृत्ति की अचूकता का बड़े उत्साह से वर्णन करता है। किन्तु ड्रेवर के अनुसार—

"डा० और श्रीमती पैकहैम ने दिखाया है कि ऐम्मोफीलिया का कैटरपिल्लर के डक मारना एक दम अचूक नहीं है, जैसा कि फेब्रर कहता है। प्रथम तो उसकी डक मारने की सख्या सदैव एक सी नही होती, इसके अतिरिक्त कभी कभी कैटरपिल्लर पूरी तरह से आहत नही होता और कभी कभी यह पूरी तरह से मर जाता है। इस प्रकार कभी कभी कैटरपिल्लर के न आहत होने से भी ऐम्मोफोलिया के वच्चो को उसके हिलने डुलने से कोई हानि नही पहुँचती और न उसके मर जाने पर उसके मास के सूख जाने से ही कोई हानि पहुँचती है।" इसी प्रकार हम एक और उदाहरण ड्रेवर से उद्धृत करेंगे, वह कहता है—

"लोमेचूसा मक्खी का वच्चा चीटियों के वच्चो को खाता है, जिसके कि घोसले में वह पलता है। फिर भी चीटिया लोमेचूसा के वच्चो को उतनी ही सावधानी से पालती है जितनी सावधानी से अपने वच्चो को। इतना ही नही, वडी जल्दी वे जान लेती हैं कि महमान वच्चो को उसी प्रकार पालना और खिलाना वच्चो के लिए घातक होगा जैसे अपने वच्चो को, इस प्रकार वे उन्हे पालने और खिलाने के ढग भी शीघ्र ही खोज निकालती हैं।" 'एनेलेसिस ऑफ माईंड' से उद्धृत)

इन दोनो उद्धरणो से स्पष्ट है कि कैसे प्रवृत्तियाँ न केवल अचूक ही नही होती प्रत्युत् किसी जैवी उद्देश्य से भी प्राय· रहित होती है, ऐसी प्रवृत्तियाँ प्राय प्रक्रियात्मक सम्वध से ही विकसित होती हैं, ऐसा हमारा विचार है। इन मूर्खता-पूर्ण और चूकने वाली प्रवृत्तियो के हम थोडे से और उदाहरण देकर इस प्रकरण से आगे वढेंगे।

प्रेंगमैंटिस अपना घोसला वनाने में वडी चतुराई का परिचय देती है, क्योंकि यह वहाँ घोसला वनाती है जहाँ पहचाना न जा सके। किन्तु यदि मैथुन ऋतु में गर्भाधान नही किया गया तो भी यह अपना घोसला वनाती है और कभी कभी तो दो से तीन तक घोसले वना डालती है, जिनमें वह खाली अडे देती है, जिनसे वच्चे उत्पन्न नही होते। इतना ही नही, कुत्ते जैसे समझदार प्राणी भी प्रक्रियात्मक सवध से या अन्तर्वासना से प्रेरित्त होकर भूलें करते है। उदाहरणत· एक वार एक कुत्ती के गर्भ-भ्रम (Pseudo Pregnency) हो गया और छाती में दूध उतर आया। वह अव वच्चो के लिए इधर-उधर रोती फिरती रही। वह इतनी व्याकुल थी कि जहाँ कहीं उसे कोई वोरी का टुकडा या ऐसी वस्तु भी दिखाई पडती वह उसे वच्चा समझ कर उसकी ओर दौडती। अन्त में वह कोठे के ऊपर पहुँची और भूसे के कोठे में उसने वच्चो के लिए गुफा सी वनाई। तव उसे चूहे के कुछ वच्चे दिये गए और उसने वड़ी ही उत्सुकता से उनका स्वागत किया और उन्हें

अपनी छाती के समीप ला कर दूध पिलाने का प्रयास किया। वह उन्हें बहुत देर तक चाटती रही। तब उसे वहाँ से हटाने का प्रयास किया गया, किन्तु वह स्वीकार न करना चाहती थी। जब उसे किसी प्रकार हटने के लिए राजी किया गया, उसने उनको भूसे से बडी सावधानी और प्यार से ढँक दिया। इस प्रकार यह सुविधा से कहा जा सकता है कि कृमि, पक्षी तथा मछलियाँ इत्यादि बडी रिजिडिटी से अपनी प्रक्रियात्मक योजना को मशीन के समान क्रियान्वित करते है, स्तनपायी यद्यपि उनकी अपेक्षा कम रिजिड होते हैं, किन्तु वे भी अपनी अन्तर्वासनाओ को व्यय करने के लिए यत्रवत् ठीक या गलत क्रियाए करते हैं।

जो प्राणी अपेक्षाकृत अधिक विकसित हैं जैसे बन्दर, शिम्पाजी इत्यादि, यहा तक कि कुत्ता, हाथी और गाय इत्यादि भी, उनमें प्रवृत्ति अधिकतर अन्त शारीरिक वासाओ की धकेल और आत्मव्ययी प्रक्रियाओ के रूप में ही अधिक पाई जाती है, किन्तु वे अपने प्रक्रियात्मक व्यापारो में उतने रिजिड नही हैं। बन्दर और शिम्पाजी तो अपेक्षा कृत बहुत ही कम रिजिड होते हैं। इनमें काफी से अधिक समझदारी और अतएव नवीन परिस्थितियो को नवीन ढग से स्वीकार करने की शक्ति रहती है। किन्तु जो शारीरिक वासनाए है, उनसे ये भी उतने ही बाध्य हैं जितने अन्य प्राणी, किन्तु यहाँ भी इनमें यह भिन्नता है कि ये आत्मव्ययी प्रक्रिया में काफी स्वतत्र हो सकते हैं। उदाहरणत शिम्पाजी जहाँ कुत्ते इत्यादि के समान मादा की पीठ पर चढ़ कर और पिछली टागें जमीन पर टिका कर भी मैथुन की व्ययशील प्रक्रिया करता है वहाँ कभी-कभी पिछली टागो पर कुछ झुक कर खडे होकर मादा को अपनी बाहो में कस कर भी मैथुन करता है। मादा भी पहले व्यापार में जहाँ अपनी पिछली टागो को कुछ खोल कर अपना भग उद्घाटित करती है वहाँ दूसरे में अपनी बाहें नर के गले में डालकर पिछली टागो से उसके नितबो के समीप आलिगन करती हैं। इसी प्रकार, बन्दरो को यदि मादा मैथुन व्यापार के लिए न मिले तो वे किसी नर से ही मैथुन कर लेते हैं। इसी प्रकार खाने के लिए भी बन्दर को ऐसी वस्तु खिलाई जा सकती है जिसे वह प्रकृति में नही खाता।

मनुष्य में प्रवृत्ति और शिक्षा बहुत अधिक घपला सा बन गई हैं, किन्तु वह भी अन्तत अपने मानसिक निर्माण में बहुत कुछ उसी प्रकार प्रवृत्तियो का दास है जैसे कोई भी अन्य प्राणी। उसमें न केवल अपनी वासनाओ की दासता ही है प्रत्युत् वह बहुत दूर तक प्रक्रियात्मक सबन्ध में भी प्रवृत्यात्मक हो जाता है। उदाहरणत प्रेम को लें—एक व्यक्ति अपनी प्रेमिका को बहुत

प्यार करता है, वह उसे सबसे अधिक सुन्दर लगती है, उसको देखते ही अथवा उसका विचार आते ही उसकी वासनाए जग जाती हैं इत्यादि, यह क्यो ? क्यो उसे दूसरी कोई लडकी, उसकी प्रेयसी से अधिक सुन्दर होने पर भी, यह आकर्षण नही दे पाती ? यह केवल सयोग पर निर्भर है। इस सयोग का कारण यह होता है कि उस व्यक्ति का उस विषय (प्रेयसी) के साथ एक प्रक्रियात्मक सबन्ध स्थापित हो गया रहता है। इसका मुख्य कारण यह भी होता है कि वह अपने किसी मधुर क्षण (Life of the moment) में उसको इस प्रकार देख सका होता है और उसमें अपनी तृप्ति की ऐसी आशा से आप्लावित हो चुका होता है कि वह क्षण उसके हृदय में स्थायी हो जाता है, लगभग उसी प्रकार जैसे विल्ली के हृदय में चूहे का भय। इस प्रकार उसके लिए वह लडकी परी हो जाती है। उनमें और किसी प्रकार का आध्यात्मिक सबन्ध नही होता। यदि ऐसा ही अवसर उसे किसी भी अन्य लडकी के साथ मिलता तो वही उसके लिए प्रेयसी हो जाती। इस प्रकार अनन्त काव्यो की स्रोतस्विनी प्रेयसी केवल मनुष्य की प्रक्रियात्मक प्रवृत्ति की परिणाम है। इसी प्रकार मनुष्य के किसी भी अकारण प्यार, अकारण द्वेष इत्यादि की अन्य क्रियाओ में भी देखा जा सकता है। 'वह व्यक्ति यद्यपि वहुत अच्छा है पर पता नहीं क्यो उसे देखते ही मेरा खून खौल उठता है" इत्यादि वातें हम प्राय. ही सुनते हैं और ये उसी प्रकार प्रक्रियात्मक सवध की सूचक हैं।

किन्तु मनुष्य इसमें अपेक्षा कृत काफी कम रिजिड है और अपने अधिकाश व्यापारो में तो काफी समझदार भी। जहाँ तक वासनात्मक धकेल (Appetitive push) का सम्बन्ध है, मनुष्य में वह उसके प्रक्रियात्मक सवन्ध तथा सामाजिक परिवृत्ति से वहुत अधिक प्रभावित होती है। कुछ दूर तक सामाजिक परिवृत्ति भी मनुष्य में प्रक्रियात्मक रिजिडिटी के रूप में ही होती है, जैसे सदाचारी (इसका अर्थ प्रत्येक का अपना होता है) रहने का विचार उसमें उसकी मानसिक योजना (Mental desposition) के रूप में निहित हो जाता है और दुराचार करते हुए उसको कुछ भद्दा और विचित्र लगता है। इस प्रकार यदि कहा जाय कि उसकी वासना उसकी विचित्र प्रक्रियात्मक-योजना से वहुत अधिक प्रभावित होती है, तो अधिक उचित होगा।

सभवत फायड के स्वप्न विज्ञान के आधार में मनुष्य की इसी शारीरिक वासना और उसके मन की प्रक्रियात्मक योजना का घपला ही है। कम से कम जागृत अवस्था में तो यह घपला काफी अधिक प्रभावशाली होता है।

सोते समय प्रक्रियात्मक योजना वासना पर सभवत कुछ इस प्रकार प्रभाव डालती है कि जब किन्ही भौतिक रासायनिक कारणो से प्रसुप्तावस्था में कोई वासना जन्म लेती है (मान लो वह भोजन की वासना है) तब व्यक्ति की वह वासना एक विशिष्ट प्रकार के स्वप्न को जन्म देगी, जैसे वह व्यक्ति अपनी विशेष वासना के समान एक विशेष भोजन को अपनी प्रक्रियात्मक योजना के अनुसार जुटाएगा और उसे अपनी विशेष प्रक्रियात्मक योजना के अनुसार खायेगा। जैसे, एक ऐसा व्यक्ति, जिसने कभी छुरी-काटा नहीं देखा, स्वप्न में कभी छुरी-काँटे से नही खाएगा।

मेरे विचार में स्वप्न का कारण किसी न किसी प्रकार की शारीरिक उकसाहट ही होती है। मान लीजिए किसी व्यक्ति को किसी ऐसी परी का स्वप्न आता है जो प्रतिक्षण दैत्य और परी बारी-बारी बनती है, इसका भी कारण किसी प्रकार की अन्त शारीरिक उकसाहट या अव्यवस्था को ही कहा जा सकेगा। हम प्राय ही ऐसे रोगियो को देखते है जो अपने चारो ओर भूत-प्रेत देखते हैं और डरते हैं। इसका कारण प्राय यह होता है कि अग्र-मस्तिष्क निर्बल पड जाता है और पृष्ठ मस्तिष्क की तथा स्नायुततुवाय की क्रियाओ पर नियत्रण नही रख पाता। किन्तु क्यो किसी व्यक्ति को भूत और किसी को शेर दिखाई पडते हैं, सभी को एक जैसी आकृतिया दिखाई नही पडतीं? इसका कारण विशिष्ट स-सम्बन्धो उकसाए जाना है, जो कि शरीर वैज्ञानिक तथ्य है। यह तो प्राय सभी ने अनुभव किया होगा कि यदि सोते समय दिल पर या छाती पर हाथ आ जाय तो अनिवार्य रूप से डरावने स्वप्न आते हैं। इसी प्रकार यदि किसी कारण से मस्तिष्क निर्बल पड जाय तो भी विचित्र विचित्र स्वप्त आते हैं और व्यक्ति प्राय बड-बडाने लगता है और कभी-कभी स्वप्न में चलने भी लगता है।

इससे भी आगे बढ़ कर यदि यह कहा जाय कि व्यक्ति एकात में बैठे क्यो एक विशेष स्मृति की आवृत्ति कर रहा है दूसरी की क्यो नही, अथवा क्यो वह अचानक किसी गीत की पक्ति गुन गुनाने लगा है दूसरे की क्यो नही? फ्रायड ने इस प्रश्न को भी उठाया है, किन्तु वह मन को एक रहस्यमय गुहा मानता था। उसके कारण उसके विश्लेषण से हम सहमत नही है। उसने यद्यपि इस प्रश्न का वहाँ कोई उत्तर नही दिया किन्तु हम उसके उत्तर का अनुमान कर ही सकते हैं। हमारे विचार में, इस प्रकार किसी विशेष अभावानुभूति का होना, किसी विशेष स्मृति का होना, अथवा किसी विशेष गीत को गुनगुनाना किसी प्रकार की केन्द्रीय स्नायुततुवाय में उत्पन्न उकसाहट के ही कारण कहा जा सकता

है। इन्हे क्रॉटज़िग (Kratizig) के शब्दो में वेक्यूमएक्टिविटीज़ भी कहा ज सकता है। लॉरेंज के अनुसार केन्द्रीय स्नायुतंतुवाय स्वय भी अनेक ऐसे आवेगो को जन्म देता है जो प्राणी को किसी व्यापार में प्रवृत्त करते है। सभवत मस्तिष्क ततुओ और मस्तिष्क के रासायनिक स्थलो में भी उकसाहट विशेष व्यापारो को जन्म देती है।

इस प्रकार मनुष्य भी बहुत दूर तक प्रवृत्ति (वासना और प्रक्रियात्मक योजना) तथा स-सबधों से ही परिचालित होता है। परिवृत्ति से उसका सबध यद्यपि बिलकुल प्रवृत्यात्मक ही नही है, जैसा कि हम पिछले निबध में देख आए है, किन्तु फिर भी वह कुछ प्रवृत्तिमय भी है।

पिछले अध्याय में हम प्रवृत्ति और विचारण में कुछ अन्तर कर आए है, किन्तु यह विचारणा कभी भी मनुष्य में पूर्ण नही हो सकती—कारण स्पष्ट है—क्योकि वह अपने शरीर से पूर्ण स्वतन्त्र नही हो सकता।

REFERENCES

1 *Bergson H* Creative Evolution, (New York)

2 *Cheesman* Chapters from Every day doings of Insects (London)

3 *Darwin* Migration of Birds (London)

4 *Darwin* Origin of Species (London)

5 *Freud* Introductry lectures on Psychoanalyses (London)

6 *Hebb D O* Integration of Behavior (New York)

7 *Russell B* The Analyses of mind (London)

8 *Russell E S* Behavior of Animals (London)

9 *Tinbergen* The Study of Instinct (London)

६—शरीर और मन

शरीर और मन के प्रश्न को लेकर हमने पिछले निबधो में मन के शरीर से स्वतन्त्र अस्तित्व न होने के पक्ष मे विभिन्न शरीर-वैज्ञानिक प्रमाण प्रस्तुत किये है। उन से यह प्रमाणित हो सकता है कि शरीर "मानसिक" घटनाओ का कारण है यद्यपि यह प्रमाणित नहीं होता कि मन मानसिक घटनाओ का कारण नही है। इसके अतिरिक्त कल्पना, स्मृति और विश्वास इत्यादि, विशुद्ध रूप से मानसिक कहे जाने वाले व्यापारो के स्वरूप पर भी हमने इन निबन्धो में विचार नही किया, जो कि मन के स्वरूपज्ञान के लिए आवश्यक है। यहाँ हम इन पहलुओं पर सक्षेप में विचार करेंगे।

मन की भौतिकता या अतिभौतिकता के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की निर्णयात्मक बात कहे बिना हम शरीर और मानसिक-प्रक्रियाओ या घटनाओ की पृथक्-पृथक् श्रेणियाँ बना सकते हैं। जब कि कल्पना, स्मृति और वितर्कना को मानसिक घटनाएँ कहा जा सकता है, आवेगो और स्नायविक-व्यापारो (रीफ्लेक्स एक्शस) को हम भौतिक-शारीरिक घटनाएँ कह सकते हैं। आग का भौतिक स्पर्श और शरीर में जलन की प्रतिक्रिया स्वरूप सम्बन्धित अग और फिर सम्पूर्ण शरीर का अव्यवस्थित स्फुरण एकदम शारीरिक घटनाएँ है जब कि इस घटना की कल्पना मानसिक घटना है। कल्पना में हम आग देख सकते है; उसका स्पर्श कर सकते है और यदि यह कल्पना पर्याप्त बलवती है, जैसे स्वप्न में, तो जलन की पीडा का अनुभव भी कर सकते है, किन्तु इस से शरीर जलेगा नहीं, इस स्वप्न के भग होने पर किसी प्रकार की पीडा नही होगी। इस प्रकार कल्पना निश्चित रूप से अग्नि-स्पर्श की भौतिक घटना से बहुत भिन्न है। यदि हम भौतिक पदार्थो के अस्तित्व को अपने से स्वतन्त्र मान लें, तो हम इन दो घटनाओ में कारण-सम्बन्धो की भिन्नता के आधार पर पार्थक्य कर सकते हैं। किन्तु यदि हम वेदान्तियो या कार्टे-सियनो के समान अपने से पृथक् किसी भी भौतिक अस्तित्व को अस्वीकृत कर दें तो हमारे लिए कल्पना और भौतिक घटना अथवा 'यथार्थ घटना' में अन्तर करना सभवत असभव हो जाएगा। इसी से ह्यूम कल्पना और

वास्तविक घटना में केवल तनाव का अन्तर ही मानता है। क्योकि वह कारण-सम्बन्धो को केवल नियमित अनुक्रम-मात्र स्वीकार करता है। इससे अग्नि-स्पर्श की अनुभूति और कल्पना में कोई कारणता-जन्य अन्तर नही रह जाता, क्योकि अग्नि-स्पर्श केवल नियमित-पूर्वगामी घटना-मात्र है जिस पर पश्चगामी घटना का होना दैशिक या कालिक-क्रम से निर्भर नही है किन्तु कारणता की यह कल्पना हमारे विचार में कुछ सगत नही है, जैसा कि हम अन्तिम निबन्ध में देखेंगे और इसी से कल्पना और 'वास्तविक घटना' में भी ह्यूम का स्वीकृत अन्तर मान्य नही है। 'तनाव का अन्तर' स्वय स्पष्ट परिभाषा नही है, क्योकि कोई सीमा-रेखा निश्चित नही की जा सकती जिससे इधर की ओर तक तनाव होने पर एक घटना को कल्पना कहा जाए और उसको लाँघने पर वह वास्तविक घटना बन जाए। फिर स्वप्न या सन्निपात में कल्पनाएँ उतनी ही या उससे भी अधिक बलवती होती हैं जितने सामान्य आवेग या स्नायविक क्रियाएँ। इसलिए कल्पना को तनाव की कमी के आधार पर अग्नि-स्पर्श की वास्तविक घटना से पृथक् नही किया जा सकता। इन दोनो की कारण-शृंखलाओ के प्रारम्भ के आधार पर ही इनमें अन्तर किया जा सकता है और उसी आधार पर उन्हें 'भौतिक और मानसिक' कहा जा सकता है। इसी प्रकार स्मृति के लिये भी। स्मृति, जिस रूप में वह सामान्यत समझी जाती है, किसी अतीत वास्तविक घटना की मानसिक पुनरावृत्ति है। स्मृति की घटना और भौतिक घटना को हम कुछ इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—जब कि भौतिक घटना की कारण-शृंखला के छोर उस से एकदम पूर्व की घटना—शरीर और अग्नि का स्पर्श—में निहित हैं, स्मृति की कारण-शृंखला का एक स्वतन्त्र छोर किसी दैशिक-कालिक रूप से विच्छिन्न पूर्व की घटना में विद्यमान होता है। शीशे का टूटना या आग के स्पर्श से जलन की पीडा और शीशा टूटने या जलनानुभूति की स्मृति इनके उदाहरण हो सकते हैं। इसी प्रकार कुछ विशुद्ध शारीरिक घटनाएँ भी हो सकती हैं। सभी प्रकार की स्नायविक क्रियाएँ शारीरिक व्यापार है। छीकना, पलक-झपकना इनके उदाहरण हो सकते हैं। किन्तु बहुत-सी शारीरिक घटनाएँ मानसिक घटनाओ से अनुगमित होती हैं। जैसे, सेंसेशन और आवेग। वास्तव में सेंसेशन और मानसिकता इतनी समवेत रहती है कि उन्हें पृथक् करना कठिन कार्य है। तो भी इन्हें कुछ इस प्रकार समझा जा सकता है—आग का स्पर्श और उसकी पीडा से हाथ का हटना दो घटनाएँ हैं, इनमें हाथ के हटने से पूर्व की घटना प्राय· सेंसेशन है, हाथ का हटना स्नायविक व्यापार और उसके पश्चात् मानसिकता बीच में आ जाती है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति की दृष्टि सेंसेशन है किन्तु उसका

जाति और व्यक्ति-प्रत्ययो का ज्ञान मानसिक घटना है। इसी प्रकार इच्छा और ज्ञान या अनुभूति भी मन के प्रत्यय हैं।

मानसिक और शरीरिक घटनाओ को इस प्रकार स्वीकार कर के हम देखते हैं कि मन और शरीर एक दूसरे से अत्यन्त समीपता से सम्बद्ध हैं और एक दूसरे को अनिवार्य रूप से प्रभावित करते है, जब तक कि प्राणी जीवित है। सकल्पात्मक और विकल्पात्मक कार्य ऐसे हैं जिनमें मन शरीर को प्रभावित करता है जबकि आग के स्पर्श से पीडा की अनुभूति में शरीर मन को प्रभावित करता है। इस शरीर-मन सम्बन्ध को लेकर कितनी ही विचार-प्रणालियाँ है। कुछ विद्वान् शरीर और मन में क्रिया-प्रतिक्रिया के सिद्धान्त की पुष्टि करते है, कुछ केवल मन के शरीर पर प्रभाव को स्वीकार करते है, कुछ दोनो में समानान्तर-सम्बन्ध (Parallalism) को मानते हैं और कुछ मन के अस्तित्व में ही सदेहशील है। यहाँ हम इस विवाद में तीन प्रकार से उलझ सकते है। (१)मन और शरीर के द्वैत को मान कर इनके सम्बन्ध का निश्चय करें (२) इनमें किसी एक के अस्तित्व का निषेध करने के लिए इनके पारस्परिक सम्बन्ध की असभवता प्रदर्शित करें (३) अथवा इनके सम्बन्ध का विचार न कर इनमें किसी एक का निषेध या दोनो की मान्यता स्वीकार करें। किन्तु जैसा कि हमारे पिछले निबन्धों से स्पष्ट है, हम मन के अतिभौतिक अस्तित्व में विश्वास नही रखते और उसके वैज्ञानिक कारण हमने पीछे दिये हैं। यहाँ हम इसके दार्शनिक कारण देंगे।

कल्पना मन की अतिभौतिकता का सब से बडा प्रमाण कही जाती है, क्यो कि इसकी कारणता भौतिक कारणता से भिन्न मानी जाती है। उदाहरणार्थ, हम एक मेज देखते हैं। यहाँ मेरे मेज के अस्तित्व-ज्ञान की कारण-शृखला मेरे से पृथक् और स्वतन्त्र अस्तित्व मेज[१] से प्रारभ होकर मेरे मस्तिष्क में कुछ घटनाओ के रूप में, और यदि मन स्वतन्त्र अस्तित्व है तो, मन में मानसिक घटनाओ के रूप में भी, पर्यवसित होती है। मेरे इस ज्ञान में यह विश्वास विद्यमान है कि जिस मेज को मैं आखो से देख रहा हूँ उसे स्पर्श से भी अनुभव कर सकता हूँ और खटखटाने पर उसकी आवाज भी

---

१ मेज का अस्तित्व विवादास्पद हो सकता है, यहाँ ज्ञान-मीमासा (Epistemology) सम्बन्धी कितने ही प्रश्न उठाए जा सकते है; इस सम्बन्ध में हम अगले निबन्ध में विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

सुन सकता हूँ और यदि इस पर मैं आरी चलाऊँ तो यह कट जाएगा, आग में डालने पर इस से लपटें उठेंगी और यह राख हो जाएगा और इसका एक भाग काट कर यदि किसी के सिर में मारा जाए तो वह एक विशेष प्रकार से व्यवहार करेगा इत्यादि। मेज अपने आप में कुछ भी हो और उसके ज्ञान की मेरी प्रकृति कैसी भी हो, हम यहां यह मानने के लिए सहमत होते हैं कि हमारे मेज के ज्ञान की कारण-शृखला उस दैशिक विन्दु से प्रारम्भ होती है, जहाँ मेज है। इसके विपरीत हमारी कल्पना की मेज के हमारे ज्ञान की कारण-शृखला बाह्य मेज से कोई सम्बन्ध नही रखती। बर्ट्रंड रसल कहते हैं—"चेतना और विचारो का कार्य यह है कि ये हमें देश या काल में सुदूर के विषयो से सम्पर्क स्थापित करने में समर्थ करते हैं" यही बात कल्पना के लिए भी कही जा सकती है।

अब हमारे पास कल्पना की अतिभौतिकता के दो प्रमाण हैं—प्रथम तो अतिभौतिक कारणता के प्रारम्भिक छोर के रूप में और दूसरा अतिभौतिक कारणता के अन्तिम छोर के रूप में—अर्थात् कल्पना की उत्पत्ति में एक स्वतन्त्र कारण के रूप में, एक अतीत घटना बिना किसी दैशिक और कालिक सबध के वर्तमान घटना-स्मृति को उत्पन्न करती है और दूसरे यह स्मृति वर्तमान स्मृति-चित्रो के ज्ञान में पर्यवसित न होकर दैशिक और कालिक रूप से सुदूर विषयो के ज्ञान में पर्यवसित होती है। किन्तु स्मृति-कारणता और स्मृति-ज्ञान की व्याख्या कारण-सिद्धान्त की सामान्य भौतिक प्रणाली से भी की जा सकती है। उदाहरणत सूई की चुभन सेंसेशन है जिसकी कारण-शृखला का प्रारभ उस दैशिक विन्दु से होता है जहाँ सूई की नोक है। किन्तु उसी प्रकार की चुभन अनेक बार हमारे शरीर में सुई बिना भी होती है, और यदि सुई बहुत धीरे से छुई जाय तो बहुत सभव है हम इन दो चुभनो में अन्तर ही न कर पाएँ। इसी प्रकार नाक के भीतर कुछ स्पर्श करने से छीक आती है और किसी आन्तरिक कारण से भी छीकें आ सकती है और यदि किसी सोए हुए व्यक्ति के नाक में धीरे से स्पर्श किया जाये तो वह इन दो कारणो में अन्तर नही कर सकेगा। अब यहाँ स्पष्ट है कि चुभन और छीक रूप घटनाओ की कारण-शृखला का प्रारम्भ कही से भी हो सकता है और इन दोनो ही अवस्थाओ में हम इन्हें सेंसेशन या स्नायविक व्यापार कहेगे। इसलिए केवल दैशिक स्तर पर कारणता की भिन्नता कल्पना सेंसेशन में अन्तर नही कर सकती। इस प्रकार मेरी मेज की कल्पना और मेज की पर्सेप्शन में उस अवस्था में कोई अन्तर नही हो सकता यदि अन्तर केवल कारण-शृखला के प्रारभ की दैशिक स्थिति को लेकर ही है—यदि इस दैशिक स्थिति के अन्तर का केवल इतना

अभिप्राय है कि कल्पना-मेज की कारण-शृखला का मूल उसी प्रकार शरीर के किसी भाग में है जैसे सूई की बिना चुभन की पीडा की कारण-शृखला का हमारे शरीर के भीतर ही है।

किन्तु कल्पना की मानसिक कारण-शृखला से अभिप्राय ऐसे दैशिक और कालिक अन्तर से नहीं है, यद्यपि हमारे विचार मे अन्तर केवल यही है। कल्पना या स्मृति की विशेषता दैशिक और कालिक स्तर पर सुदूर के विषयो से कारण-सम्बन्ध में है, और वास्तव में यह विशेषता विचारो की न हो कर कल्पना और स्मृति की है।

अब हमें देखना यह है कि क्या दैशिक और कालिक-रूप से विच्छिन्न घटनाओ में कारण-सम्बन्ध सभव है ? यहाँ हम इस प्रश्न को केवल प्राकरणिक रूप से ही देखेंगे। इस सम्बन्ध में विशेष विचार हम इस पुस्तक के अन्तिम निबन्ध में करेंगे। इसे देखने के लिए हम अपने एक मित्र का स्मृति-चित्र लेंगे। अब यह ठीक है कि मेरे मित्र का स्मृति-चित्र उसके दैशिक और कालिक स्तर पर मुझसे दूर होने पर भी मुझे उसका ज्ञान करवाता है। किन्तु, हमारे विचार में, यह घटना मित्र के मेरे पर्सेप्शन से आधारभूत रूप से भिन्न नही है, अथवा यह कि इस स्मृति-चित्र की कारण-शृखला का आरभ किसी सुदूर पूर्व की घटना से नही होता, जैसा कि रसल कहते है। रसल की स्मृति की व्याख्या को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—"वर्तमान उकसाहट अ एक पूर्व घटना घ की सहायता से वर्तमान स्मृति-चित्र स को जन्म देती है और यह स्मृति स घ का ज्ञान न हो कर केवल घ के साथ समता रखती है और उसमें एक प्रकार की परिचितता की अनुभूति होती है।" स्मृति की इस व्याख्या में स के कारण रूप में घ और अ दो स्वतन्त्र कारणो को रखा गया है जबकि घ का अस्तित्व वर्तमान में नही है। हमारे विचार में कारणता का यह रूप भौतिक विश्व में कही देखने में नही आता, जैसा कि हम अन्तिम निबन्ध में देखेंगे। किसी भी घटना घ का कारण केवल – १ + घ ही हो सकता है और कोई भी कारण – २ + घ, – १ + घ, के माध्यम से ही घ का कारण हो सकता है। अथवा – २ + घ केवल एक अनुक्रम में शृखला है जो – १ + घ से एकदम पूर्व या उसका कारण है और इसी प्रकार – १ + घ घ का कारण है। यद्यपि – १ + घ के अस्तित्व के लिए – २ + घ अनिवार्य है और इस प्रकार घ के अस्तित्व के लिए भी अनिवार्य है, किन्तु – १ + घ अकेली ही घ के अस्तित्व के लिए काफी है, यदि हम इसे – १ + घ के बिना भी प्राप्त कर सकें। इस प्रकार, यदि स्मृति को भी हम एक भौतिक घटना स्वीकार करें तो

उसका कारण अ और एक अतीत घटना घ न होकर अ और मस्तिष्क की एक परिवर्तित स्थिति म होगी। यह परिवर्तित स्थिति उस पूर्व घटना घ की मुद्रा (Trace) है जो घटना के घटित होने के समय मस्तिष्क में मुद्रित हो गई थी। स्मृति-कारणता की ये दो कल्पनाएँ क्रमश निम्न प्रकार से चित्रित की जा सकती है।
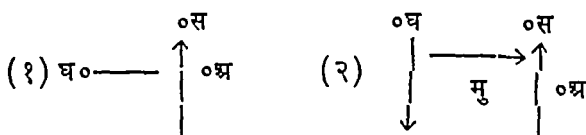
यहाँ प्रथम ग्राफ में अतीत घटना ध रहस्यमय रूप से वर्तमान उकसाहट अ के साथ स्मृति को उत्पन्न करती है, जो वर्तमान घटना है। ध और अ के बीच कोई दैशिक और कालिक सम्बन्ध नही है सिवाय नियमित अनुक्रम सबध के, जिसे कि रसल कारणता कहते हैं। इसके विपरीत दूसरे चित्र में ध म को जन्म देता है अथवा अतीत घटना मस्तिष्क में मुद्रण का कारण बनती है जो कि मस्तिष्क की एक परिवर्तित स्थिति-मात्र है और इस प्रकार वर्तमान उकसाहट वर्तमान मुद्रण के साथ स्मृति का कारण बनती है। यहाँ म और अ स की सघ पूर्ण की कारण घटनाएँ हैं।

यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि मुद्रा की हमारी कल्पना के क्या आधार हैं ? जहाँ तक हमारा वर्तमान ज्ञान हमें बताता है, अभी तक मस्तिष्क में ऐसी किन्ही मुद्राओं का अस्तित्व हमें पता नही है। इसलिए मुद्रा की कल्पना की वकालत को न्याय्य कैसे कहा जा सकता है ?—विशेषत उस अवस्था में जबकि स्मृति-चित्रो के सम्बन्ध में हमारी सहज अनुभूति हमें यह विश्वास प्रदान करती है कि हमारी स्मृति का कारण स्मृति घटना है और स्मृति में हमारा ज्ञान उस घटना का ही है। इस प्रकार सहज अनुभूति हमें रसल से भी अधिक 'स्मृति की मानसिकता' की ओर ले जाती है। इसके अनुसार घ न केवल अ के साथ स्मृति का कारण ही बनता है। प्रत्युत् यह भी कि घ अ मिलकर घ के ही स्मृति-ज्ञान को जन्म देते है, इस कल्पना को हम निम्न प्रकार से चित्रित कर सकते हैं—
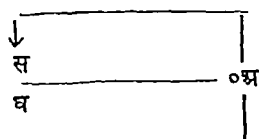
यह कल्पना हमारी भाषा में भी मूलित है। जैसाकि—"मुझे खूब याद है, जब

हम वहाँ मिले थे" से स्पष्ट है। किन्तु इन कल्पनाओं को स्वीकार करने का अर्थ है एक सर्वथा भिन्न प्रकार के कारण-सम्बन्धो की कल्पना करना जिनकी सम्भावना का कोई आधार नही है। भौतिक विश्व में हम केवल दो ही प्रकार से कारण-सम्बन्धो को जानते हैं (१) या तो किसी घटना के सम्पूर्ण स्वतन्त्र कारणो को घटना से सद्य पूर्व की घटनाओ में केन्द्रित होना चाहिए, (२) अथवा यदि कोई कारण सद्य पूर्व के क्षण में केन्द्रित नही हो सकता तो उसे कार्य-घटना के घटित होने तक शृखला में सहानुगमित होना चाहिए।

जहाँ तक मुद्रा-सिद्धान्त का सम्बन्ध है, उसकी पुष्टि में कुछ तर्क दिये जा सकते है। हम जानते हैं कि मस्तिष्क में से यदि विशेष प्रदेशो को घायल कर दिया जाए तो हमारी विशेष स्मृति-शक्ति जाती रहती है और यदि उन्हें ठीक कर दिया जाए तो स्मृति पुन लौट आती है। इसलिए उन प्रदेशो को स्मृतियो के स्थान या आधार कह सकते हैं और सम्भावना कर सकते हैं कि उनमें अत्यन्त सूक्ष्म स्मृति-मुद्राएँ होगी जो घटनाओ के घटित होने के पश्चात् उन प्रदेशो में उसी प्रकार चिह्नित हो जाती होंगी जैसे ग्रामोफोन-रेकार्ड में ध्वनियाँ मुद्रित हो जाती है। यह आवश्यक नही कि मुद्रण किसी ज्ञात ढग से होता हो, सभव है इस मुद्रण का कुछ अज्ञात ढग हो। यदि हम यह स्वीकार कर लें तो, स्मृति-चित्रो की उत्पत्ति के लिए अतीत घटना का घटित होना आवश्यक नही है, यदि उसके विना भी हमारे मस्तिष्क में वैसी मुद्राएँ मुद्रित की जा सकें तो भी हम उचित उकसाहट के होने पर स्मृतिचित्रो को उसी परिचित के साथ देखेंगे और उसी प्रकार हमें उनके पहले घटित हुए होने में विश्वास होगा। मुद्रा-सिद्धान्त के पक्ष में स्वप्नो को भी उदाहृत किया जा सकता है। अब मान लीजिए कि मैंने साड के सीग और शेर के दाँतों वाले मनुष्यो के सम्बन्ध में न कभी सोचा है और न कभी सुना है, किन्तु इन तीनो प्राणियो को देखा है। अब रात को सोते हुए अचानक मेरा हाथ हृदय पर टिक जाता है जिससे रक्त की स्वच्छन्द गति में वाधा पडती है और परिणामत मुझे भयानक स्वप्न आता है। यह निश्चित है कि इस प्रकार छाती पर हाथ आ जाने पर अवश्य ही भयानक स्वप्न आएगा। अब सभव है, इस स्वप्न में मैं एक ऐसा प्राणी देखूँ जो साँड के सीगो और शेर के दाँतो वाला मनुष्य हो। सामान्य भौतिक नियमो के अनुसार इसकी व्याख्या यह दी जा सकती है कि रक्त के दवाव ने मस्तिष्क के उन प्रदेशो को सक्रिय कर दिया जो भय-आवेग के आधार है और निद्रा के कारण हमारे मस्तिष्क के वे प्रदेश निष्क्रिय रहें जो आवेगो का नियमण करते हैं, इसने मस्तिष्क में आकृतियो के अधार-प्रदेश अनियन्त्रित रूप से सक्रिय हो उठे और परिणामत

उक्त प्रकार की आकृति हमें स्वप्न में दिखाई दी। स्वप्न में एसोसियेशन भी बडे सजीव रूप में क्रियाशील होती है। जागृति में भी हम में किसी मनुष्य को भयानक रूप में मुंह खोल कर काटते देख कर शेर की कल्पना घटित हो सकती है और भिडते देखकर सांड की, वही कल्पना, निद्रा में अधिक सशक्तता के साथ घटित हो सकती है। वैसे मनस्कारणता (Mnemic-causation) के पक्षपाती इस प्रकार के स्वप्नो की व्याख्या-निम्न प्रकार से कर सकते है—
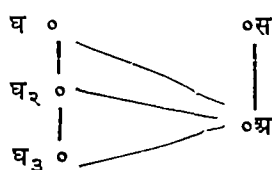
इस ग्राफ में १, २, ३ घटनाएँ सांड, मनुष्य और शरीर के दर्शन की घटनाएँ हैं जो उकसाहट अ के साथ स्मृति स का कारण बनती है। प्रथम दृष्टि में यह सम्भावना उतनी ही उचित प्रतीत होती है जितनी प्रथम सभावना, किन्तु वास्तव में यह सगत नही है। इसका कारण यह है कि ये तीन घटनाएँ अतीत में अपने आप में स्वतन्त्र घटनाएँ थीं। मनस्कारणता के अनुसार इन की स्थिति केवल कालिक ही हो सकती है और इसीलिए इसे एक ही क्षण में अविभाज्य रूप से समाहित होना चाहिए। अथवा बर्गसा के शब्दो में—"It is embraced in an intuition of mind," or "The whole of it is grasped instantaneously." और इस प्रकार ऊपर इनका पुनरुद्भव ऐसा नही होना चाहिए कि इनके कुछ अश विशेष एक में समाविष्ट कर लिए जाएँ और विशेष अश छोड दिये जाएँ। अब मान लीजिए, मैंने एक सांड को किसी मनुष्य पर आक्रमण करते देखा है और भय का अनुभव किया है। यहाँ दो घटनाएँ मुझ में घटित हुई हैं और एक की स्मृति दूसरे के बिना सभव है। किन्तु यदि यह घटना मनस्कारणता सम्बन्धी है तो इसका दैनिक अस्तित्व घटना की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो जाता है और यह एक अविभाज्य, पूर्ण तथा एक साथ ही पूर्ण प्रस्तुत (Instantaneous) होती है, इसलिए इन घटनाओ को एक साथ अ से इस प्रकार सम्बद्ध नही होना चाहिए कि ये अपनी कुछ ऐसोसिएशज को छोड दें और घटना के कुछ अगो को छोड दें और एक दूसरी में इस प्रकार मिल जाएँ जो कि उनकी मानसिक विशेषता के प्रतिकूल हो। हमारे विचार में ऐसी कोई घटना अथवा मानसिक विशेषता नही होती। बर्गसा एक कविता कण्ठ करने के उदाहरण से स्मृति के शारीरिक और मानसिक रूपो में भेद समझाते

हुए कहते है कि "कविता के शारीरिक स्मरण में हम कविता की जितनी वार आवृत्ति करते है उसमें हम क्रमश प्रथम से अन्तिम शब्द तक उसी प्रकार पहुँचते हैं जैसे हम उसे कण्ठ करते हैं। प्रत्येक आवृत्ति में एक नवीनता होती है क्योकि हमारा अभ्यास अधिक होता जाता है। किन्तु इसकी सवसे वडी विशेषता इसमें है कि इस में घटना का क्रम और काल की अवधि वही रहती है। इसके विपरीत प्रत्येक आवृत्ति की पृथक् स्मृति शारीरिक स्मृति नही है। इनका चित्र स्मृति में एकदम चिह्नित हो जाता है। क्योकि अपनी परिभाषा के अनुसार ही प्रत्येक पृथक् पाठ प्रत्येक पृथक् स्मृति-चित्र चिह्नित करता है। यह मेरे जीवन में एक घटना के समान है, इसकी विशेषता इसमें है कि यह कालिक सापेक्षता (Date) के साथ रहती है, अतएव पुन घटित नही हो सकती।" यहाँ रसल और वर्गसा में एक वात में मतैक्य और दूसरी में मत-भिन्नता है। मतैक्य कालिक सापेक्षता की स्वीकृति में है अथवा कालिक सापेक्षता को मानसिक स्मृति की एक अनिवार्य विशेषता मानने में है, जव कि मतभेद इस वात में है कि वर्गसा उस घटना को शरीर के स्थान पर मन में मुद्रित मानते हैं और इस प्रकार शरीर और मन में क्रिया-प्रतिक्रिया (Interaction) के सिद्धान्त को स्वीकार करते है जव कि रसल अतीत घटना को अतीत में ही रख कर उसको कुछ अव्याख्येय सा रूप दे देते है। किन्तु दोनों ही के अनुसार घटना को 'एक साथ पूर्ण प्रस्तुत' (इस्टेंटेनियस) होना चाहिए जो कि उसे आदत और शारीरिकता से स्वतन्त्रता देने के लिए आवश्यक है।

किन्तु हमारे विचार में स्मृति के इन दो रूपो में भेद मौलिक नहीं है। मान लीजिए, राम का स्मरण मुझ में घटित होता है। रसल इसे इस अवस्था में सच्ची स्मृति मानने को प्रस्तुत नही है यदि यह स्मृति कालिक-सापेक्षता युक्त नही है, अर्थात् यह राम के किसी पहलू विशेष को उसके घटित होने के काल विशेष के साथ यदि मुझमें घटित नहीं करती। किन्तु इस स्मृति में 'एक साथ पूर्ण प्रस्तुत' होने की विशेषता है। इसमें किसी निश्चित क्रम और निश्चित कालावधि (ड्यूरेशन) की आवश्यकता भी नही है—दूसरे शब्दो में यह आदत-स्मृति नहीं है और किसी भी अवस्था में इसे कविता-पाठ की उस मानसिक स्मृति से पृथक् नही किया जा सकता जो प्रथम-द्वितीय-तृतीय के सापक्ष कालिक-सम्वन्ध की स्मृति से स्वतन्त्र पाठ की सामान्य स्मृति है। वास्तव में कविता कठ करने और कविता-पाठ की किसी एक घटना की स्मृति में इतना ही अन्तर है कि एक हमारे स्नायु-यन्त्र के निम्न या स्थूल स्तरो से सवन्ध रखती है और दूसरी उन्नत या सूक्ष्म स्तरो से। इनमें एक

अन्तर और भी है जो अन्तर सामान्यत दृष्टि-विषयो और श्रोत्र-विषयो में होता है। एक में विषय को हम एक साथ देख सकते है और दूसरे में क्रमश, और जैसा कि हम अभी देखेंगे, इनकी स्मृति भी इसी प्रकार होती है। कविता कठ करने और कविता-पाठ की किसी घटना विशेष की 'एक साथ पूर्ण प्रस्तुत' स्मृति में भी यह अन्तर है कि जहाँ एक को हम क्रमश ग्रहण करते ~ दूसरे को एक साथ ही समवेत रूप में, ग्रहण कर लेते हैं।

इस विवेचन में इतना आगे बढ कर हम एक बार फिर पीछे की ओर लौटते हैं,—यदि मस्तिष्क के प्रदेश विशेष स्मृति-विशेषो के आधान होते हैं और इन प्रदेश-विशेषो की अनुपस्थिति स्मृति विशेषो की अनुपस्थिति का कारण बनती है तो उन प्रदेशो के पुन ठीक हो जाने पर भी वे स्मृतियाँ नही लौटनी चाहिएँ जो पहले इन प्रदेशो में मुद्रित थी। मान लीजिए, मैंने एक पुस्तक पढी है और उसकी स्मृति मुझमें इस रूप में विद्यमान है कि मैं उसका शब्दो में विवरण दे सकता हूँ, पुस्तक को देखकर पहचान सकता हूँ इत्यादि। अब मस्तिष्क के किसी भी प्रदेश के अपसारण के पश्चात् मैं पुस्तक को नही पहचान सकता और पृष्ठ भाग के अपसारण के पश्चात् पाठ का शाब्दिक विवरण नही दे सकता, अब इन प्रदेशो के ठीक होने पर मुझ में केवल उस पुस्तक को पुन पढ़कर उसी प्रकार उसकी स्मृति प्राप्त करने की शक्ति तो लौटनी चाहिए किन्तु पूर्व घटना की स्मृति क्योकर लौटनी चाहिए ? इस प्रकार हमारे प्रथम तर्क को हमारे ही विरुद्ध प्रयुक्त किया जा सकता है। स्वप्नो से भी निश्चित रूप से यह प्रमाणित नहीं होता कि स्मृति का आधार मस्तिष्क ही है। क्योकि यदि स्वप्नो का कारण शारीरिक भी हो तो भी उनकी उत्पत्ति मानसिक हो सकती है और इस कारण-शृखला में शरीर केवल एक कीर मात्र हो सकता है। इस प्रकार, इन प्रमाणों से हम किसी परिणाम पर नही पहुँच सकते।

किन्तु स्मृति की शारीरिकता अथवा उसकी कारणता की भौतिकता के पक्ष में कुछ और तर्क दिए जा सकते है हम यह तो जानते ही है कि मस्तिष्क के प्रदेश-विशेषो के अपसारण से स्मृति-विशेष की शक्ति जाती रहती है, जैसा कि हमने प्रथम भाग के प्रथम निबन्ध के अन्तिम पृष्ठो में देखा था। हम यह भी जानते हैं कि एफेसिया और एग्नेसिया (Aphasias and Agnesias) के कितने ही विभिन्न भेद है जिनमें स्मृति विभिन्न प्रकार से स्खलित होती है। हम यह भी जानते है कि स्मृति के बहुत से प्रकार केवल मनुष्य में ही पाए जाते हैं। एम्नेसिक-एफेसिया के एक प्रकार में मनुष्य जाति-प्रत्ययो का ज्ञान खो बैठता है, जब कि वह, यदि उसे बता दिया जाए'

तो किसी विशेष विषय की जाति-सज्ञा याद रख सकता है । उदाहरणत', ऐसा रोगी पुस्तक पढ सकता है किन्तु उसका अन्य पुस्तको से सम्बन्ध नही जान सकता और यदि उसे बता दिया जाए कि 'यह पुस्तक है' तो वह उस विशेष पुस्तक के लिए यह नाम याद रख सकता है, यदि उसे कुछ और पुस्तकें देकर बता दिया जाए कि 'वे पुस्तकें हैं, तो वह उनके लिए याद रख सकता है कि 'वे सब मिला कर पुस्तकें हैं' इत्यादि । जाति-प्रत्ययो का ज्ञान सम्भवत अत्यन्त निम्नस्तरीय चेतना के प्राणियो में भी पाया जाता है, किन्तु जैसा कि उनके व्यवहार से स्पष्ट है, उनका यह ज्ञान चेतन प्रकृति कोग्नीटिव-नेचर का न होकर प्रवृत्यात्मक प्रकृति का होता है । यदि हम यह मान लें, जैसा कि मानना उचित ही है, तो इन निम्न-स्तरीय चेतना के प्राणियो में हम स्मृति के उस रूप को स्वीकार नही कर सकते जिसे रसल मानसिक स्मृति (नेमिक) कहते है, दूसरे शब्दो में, जीवन के इतिहास के अधिकाश युगों में स्मृति नाम के गुण का कोई अस्तित्व नही है । किन्तु जाति-प्रत्ययो का 'ज्ञान' है और मनुष्य में भी यह 'ज्ञान' विशेष-समृद्ध आदत या अभ्यास से अधिक कुछ नही है, जैसा कि रसल मानते हैं । इस प्रकार हमारा जाति-प्रत्ययो का ज्ञान, जिसमें स्मृति आधार-भूत तत्त्व है एक शारीरिक घटना है ।

इसी प्रकार, मान लीजिए मै किसी से मिलने जा रहा हूँ । जाने से पूर्व मुझे कहा जाता है कि मै आते हुए कुछ सामान खरीदता लाऊँ, और ठीक जाने के समय मुझे वह वस्तु न लाने को कह दिया जाता है । अब अनेक बार ऐसा होता है कि जहाँ से मुझे वह सामान खरीदना था उस स्थान मे आगे निकल आने पर हाथ कुछ 'अभाव अनुभव' करता है, जैसे पहले इसमें कुछ उठाया हुआ था, जो अब नही है । कुछ सोचने पर ज्ञात होता है कि मैं वह सामान खरीद कर नही लाया जो लाना था, और तब क्रमशः ध्यान आता है कि वह मुझे न लाने को कह दिया गया था । किन्तु थोडा आगे चलने पर फिर उसी प्रकार अनुभव होता है और तब फिर उसी प्रकार क्रमश उनका समाधान करना पडता है । यदि रास्ता कुछ लम्बा है और ध्यान किसी अन्य चिन्तन में मग्न है तो इसकी आवृति अनेक बार हो सकती है । यहाँ यह स्पष्ट है कि मैंने वह सामान इस प्रकरण में पहले नहीं उठाया था, यह भी स्पष्ट है कि मै उसे कहीं खो भी नहीं आया था । अत हाथ के मस्सल्ज के अभ्यस्त होने का प्रश्न यहाँ नहीं उठता । यहाँ केवल मैंने कुछ सामान लाने के लिए आदेश प्राप्त किया था और चेतन रूप से यह विचार भी नही किया कि मै वह

सामान किस प्रकार थैले में उठा कर लाऊँगा, यद्यपि यह ठीक है कि पहले जब भी कभी वह सामान मैं लाया हूँ, उसी प्रकार थैले में लाया हूँ जैसे उस दिन मेरा हाथ उसका अभाव अनुभव करता है। अब इसकी व्याख्या मनस्कारणता से इस प्रकार की जा सकती है कि अतीत घटना-आदेश किसी वर्तमान उकसाहट के साथ कारणरूप में सयुक्त होकर मेरे हाथ में स्फुरण को उत्पन्न करता है। किन्तु यह व्याख्या एकदम जबरदस्ती है। इस विवरण में दो बातें स्पष्ट हैं—(१) आदेश कुछ एसोसियेशज के साथ वस्तु जतलाने की पूर्व क्रिया के साथ मस्तिष्क में सयुक्त हो गया और (२) हाथ के मस्सल्ज के अभ्यस्त न होने पर भी मस्तिष्क के किसी भाग में यह एसोसियेटिड घटना इस प्रकार मूलित हो गई कि इसे हम 'मस्तिष्क के प्रदेश-विशेष का अभ्यस्त होना' कह सकते हैं। अब हम अभ्यास के कुछ निम्न स्तरो की सक्षिप्त समीक्षा के पश्चात् स्मृति के उस पहलू को देखेंगे जिसे रसल और बर्गसा विशुद्ध स्मृति कहते हैं।

मान लीजिए, मैं एक कमरे में कुछेक बार जाता हूँ और इस प्रकार उस कमरे से, उसकी समस्तता के साथ, मेरा परिचय हो जाता है। मेरे उसकी व्यवस्था से अभ्यस्त होने पर उस व्यवस्था में कुछ सामान्य-सा परिवर्तन कर दिया जाता है। अब जब मैं उस कमरे में आता हूँ तो अनुभव करता हूँ जैसे कमरे में कुछ परिवर्तन हुआ है—कमरा 'वही नही है।' सभव है, मैं जोर देकर परिवर्तन की प्रकृति को जान सकूँ और सभव है, न भी जान सकूँ। पीछे प्रकृति और विचारणा के अध्ययन में हमने बन्दर के सम्बन्ध में दिखाया था कि उसके खाने के कमरे में नीले के स्थान पर लाल कपडा बदल देने पर वह उस कमरे को पहचान नही सका था। इसके विपरीत, एक कबूतर पर मैंने प्रयोग कर देखा था कि उसकी स्मृति में केवल दिशा की सापेक्षता का ही महत्त्व है। मैंने एक कबूतर का घोसला उसके पूर्व स्थान से लगभग २० इच की दूरी पर रख दिया और उसके स्थान पर एक बिल्कुल भद्दा-सा घोसला बनाकर उसमें मुर्गे के दो अडे रख दिये। इसके बावजूद दम्पति पूर्वस्थानीय घोसले पर ही बैठे और मुर्गे के बडे-बडे अडे सेते रहे। मैंने आस-पास रग बदल कर भी बहुत देखे, किन्तु उन्होने किसी और चीज की परवाह नही की। अन्त में मैंने उनके आने-जाने के रास्ते को उलट कर देखना चाहा, किन्तु वे आते उसी रास्ते से थे जो रास्ता उनका निश्चित था, मैंने उसे बन्द रखना प्रारम्भ किया किन्तु वे दूसरे रास्ते से, जिससे मैं उन्हें बाहर जाने को बाध्य करता था, नही अन्दर आते थे। हमारे विचार में इन तीनो स्मृतियो में

मौलिक अन्तर नही है, हम इस स्मृति-ज्ञान को मसलज्ञान (नॉलेज ऑफ मसल्ज) भी कह सकते हैं।

इसी प्रकार हमारे जाति-प्रत्ययों के ज्ञान की व्याख्या भी की जा सकती है। मान लीजिए, मैं एक कुत्ते को देखता हूं और जानता हूं कि—यह कुत्ता है। अब मेरे इस कुत्ते के ज्ञान की क्या प्रकृति है ? हम प्राय कुत्ते को चार प्रकार से जानते हैं—'कुत्ता' शब्द से, कुत्ते की आवाज से, दृष्टि से, और एक सीमा तक, उसके स्पर्श से भी। इनमें पिछले तीन प्रकार से ज्ञान स्पष्ट रूप से एसोसियेशन या आदत के कारण है। अब प्रथम प्रकार का ज्ञान अधिक स्पष्ट रूप से, कहा जा सकता है, विशुद्ध स्मृति से सम्बन्ध रखता है, क्योकि कुत्ता शब्द कहने से हमारे मस्तिष्क में कुत्ते का चाक्षुप, या स्पर्श सम्बन्धी अथवा उसकी ध्वनि का चित्र जागृत होगा। यहाँ हम 'कुत्ता' शब्द को उकसाहट कह सकते है, चित्र-विशेष की स्मृति की घटना और कुत्ते के हमारे किसी पूर्व दर्शन को, जिस कुत्ते के जिस भी रूप का चित्र हमारे सम्मुख आता है, स्मृति-कारणता (Mnemic causation)। किन्तु रसल यहाँ भी स्मृति-कारणता को स्वीकार नही करते, वे कहते हैं—"अगली स्टेज यह ज्ञान (Recognition) है। इसे दो अर्थों में लिया जा सकता है, प्रथम—जबकि एक वस्तु न केवल परिचित ही मालूम पडती है प्रत्युत् हम जानते भी है, हम बिल्लियो और कुत्तो को जानते है, जब हम उन्हें देखते है। यहाँ हम पर पिछले अनुभव का निश्चित प्रभाव रहता है किन्तु आवश्यक रूप से अतीत का वास्तविक ज्ञान नही होता। जब हम बिल्ली को देखते है, हम जानते हैं—यह बिल्ली है, क्योकि हमने पहले बिल्लियाँ देखी होती है, किन्तु हम उस विशेष समय को याद नही करते जब कि हमने किसी बिल्ली विशेष के पहलू विशेष को देखा हो। इसलिए बिल्ली' शब्द से हमारी बिल्ली की स्मृति एसोसियेशन की आदत से अधिक नही होती। वह विषय-विशेष, जिसे हम देख रहे है, बिल्ली शब्द के साथ एसोसियेटिड होता है अथवा बिल्ली की आवाज के श्रोत्रिय-चित्र से सम्बद्ध होता है।" इससे स्पष्ट है कि रसल केवल अतीत घटना के चित्र को ही स्मृति नही समझते और इस प्रकार यह चित्र अपने आप में स्मृति-कारणता से कोई सम्बन्ध नही रखता और यह भी कि स्मृति-चित्र का कारण शरीर में ही निहित है। हमारे इस परिणाम का कारण स्पष्ट है—रसल बिल्ली शब्द से बिल्ली के चाक्षुप चित्र की उत्पत्ति को स्मृति-कारणता के रूप में स्वीकार नही करते, जिसका अर्थ है कि बिल्ली का चाक्षुप चित्र, जिसमें किसी अतीतता की अनुभूति या ज्ञान सन्निविष्ट नहीं रहता—की उत्पत्ति हमारे मुद्रण-सिद्धान्त के अनुसार होती है, दूसरे शब्दों में, इस कारणता की प्रकृति

एकदम भौतिक है। अब रसल स्मृति-कारणता की पुष्टि में केवल एक विशिष्टता सुरक्षित रखते है, वह है अतीत घटना की स्मृति के साथ-साथ उसकी अतीतता का ज्ञान भी रहना। बर्गसा भी स्मृति की मानसिकता के पक्ष में इस विशेषता को विशेष प्रमुखता देते है। रसल कहते है—"मान लीजिए, आप मुझे पूछते है कि मैंने प्रातराश में क्या खाया था। मानलें कि इस बीच मैंने अपने प्रातराश के सम्बन्ध में कुछ नही सोचा, और जब कि मैं प्रातराश कर रहा था, मैंने उस सम्पूर्ण घटना को शब्दों में भी नही सोचा। इस केस में मेरी पूर्व घटना की स्मृति सच्ची स्मृति होगी, अभ्यास-स्मृति नही। यहां याद करने की प्रक्रिया मेरे प्रातराश के स्मृति-चित्रो से युक्त होगी और इन चित्रो के साथ मुझमें एक विश्वास-भावना होगी जो कि स्मृति-चित्रो को कल्पित चित्रो से पृथक् करेगी।" यहां रसल, वाट्सन इत्यादि बिहेव्यरिस्टो के विचारो और स्मृतियो इत्यादि को भाषा की आदत (Language Habit) कथन करने से प्रातराश की घटना को उन सब निषेधो से विशिष्ट कर देते है जिन से उसकी मानसिकता की रक्षा हो सकती है। किन्तु जैसा कि मैंने पीछे सामान लाने के आदेश और निषेध का उदाहरण दे कर दिखाया था, केवल सामान लाने का आदेश, जिसके घटित होने पर मैंने कोई बात नही सोची, उस सम्पूर्ण योजना से सम्बद्ध हो गया जो कि सामान लाने का आदेश पालन करने की अवस्था में क्रियान्वित होती। यही बात प्रातराश के लिए भी सत्य है। प्रातराश की क्रिया के घटित होने पर वे सम्पूर्ण एसोसियेटिड क्रियायें भी स्वत ही उसी प्रकार घटित हो जाती हैं, जैसे घडी में चाबी देने पर उसके सब पुर्जे सक्रिय हो उठते हैं। अब मान लीजिए, मैं प्रातराश करते समय उस सम्पूर्ण घटना को शब्दों में भी सोचता जाता हूं और बाद में पूछने पर मैं उसका विवरण दे देता हूं। क्या प्रातराश की घटना को उस या किसी और अन्तर में शब्दो में सोच लेने पर वह भाषा की आदत हो जाएगी और न सोचने पर वह मानसिक स्मृति होगी? मान लीजिए, प्रातराश की घटना को शब्दो में सोचने के पश्चात् मुझ में भाषा-स्मृति जाती रहती है, तब मुझे प्रातराश की घटना को याद नही कर सकना चाहिए? जबकि यह बात नही होती। मान लीजिए, हमारे ये सब तर्क गलत हैं, उस अवस्था में भी रसल की कल्पना अन्तर्विरोध-पूर्ण है। रसल ने जब प्रातराश करते समय या उसके बाद उस घटना को शब्दों में नही सोचा, अब जब मैं उनसे प्रातराश के सम्बन्ध में शब्दो में पूछता हूं तो उन्हें उस घटना का स्मरण नहीं होना चाहिए। क्योकि प्रातराश शब्द केवल उन्ही एसोसियेशज को जागृत कर सकता है जो इस शब्द से सम्बद्ध हों। मेरे प्रातराश शब्द कहने पर उन्हें केवल

तभी प्रात के प्रातराश का स्मरण होना चाहिए यदि प्रातराश के समय इस शब्द का प्रयोग हुआ हो तो। यदि इस शब्द के प्रयोग के बिना भी प्रात की प्रातराश की घटना का स्मरण होता है तो वह इसीलिए कि (१) प्रातराश की घटना घटित होने के साथ ही अपनी उन सब एसोसियेशज से मस्तिष्क में में सयुक्त हो गई थी जो प्रतिदिन की प्रातराश की घटनाओ के कारण मस्तिष्क में विद्यमान हैं और (२) प्रत्येक प्रातराश की नवीन घटना उसी प्रकार, एक जातीय-घटना है जिस प्रकार कोई भी नवीन पुस्तक जाति-वस्तु है। इसलिए रसल की मानसिक स्मृति की यह व्याख्या भ्रान्त है। रसल आगे स्मृति चित्र को सकेत कहते हैं और हमारी चेतना का विषय स्मृतिचित्र को न मान कर उस अतीत विषय को मानते है, स्मृतिचित्र जिसका सकेत है। वे कहते हैं "स्मृति-चित्र उसी प्रकार अतीत विषय का सकेत है जिस प्रकार सेंसेशन उकसाहट विषय का और हमारी चेतना-स्मृति में उसी प्रकार अतीत विषय की चेतना होती है जैसे सेंसेशन में उकसाहट विषय की।" यह प्रश्न ज्ञान-मीमासा से सम्बन्ध रखता है और हमारे वर्तमान प्रसग में यह विवाद अनावश्यक होगा, और सब से बड़ी बात यह है कि हमें भय है कि हम इस वाक्य को ठीक तरह से नही समझ रहे हैं, क्योकि रसल, जैसा कि हमने पीछे देखा था, केवल कारण को ही मानसिक (Mnemic) मानते हैं परिणाम (स्मृति-ज्ञान) को नही। और यह संभव प्रतीत नहीं होता कि रसल जैसा महान् दार्शनिक इतनी छोटी भूल करेगा। इसलिए उचित होगा कि हम रसल की आलोचना के प्रसग में केवल स्मृति-कारणता तक ही सीमित रहें और स्मृति-ज्ञान के सम्बन्ध में प्रथम वाक्य को ही उनका अभिप्रेत समझें।

जैसा कि हम देख रहे थे, केवल अतीतानुभूति के आधार पर स्मृति को मानसिक और शारीरिक कहना अनुचित है, क्योंकि इस अनुभूति से स्थिति में कोई आधारभूत अन्तर नही पड़ता। मान लीजिए, मेरे सामने कोई कुत्ता नही है और अचानक बैठे-बैठे मेरे मस्तिष्क में कुत्ते का चित्र जागृत होता है जो कि किसी विशेष का न होकर साधारण का है, तो भी वह एक चित्र है जो कि किसी उकसाहट के कारण मस्तिष्क में जाग्रत हुआ है, उसमें कोई शाब्दिक या चाक्षुप एसोसियेशन भी नहीं है किन्तु साथ ही साथ अतीतता की अनुभूति भी नही है। अब रसल के अनुसार यह स्मृति चित्र नही होगा। साधारण अर्थ में भी यह स्मृतिचित्र नहीं होगा। मान लीजिये, इस चित्र की हम शारीरिक कारणता के अनुसार व्याख्या करते हैं, क्योकि इस में अतीतानुभूति नही है जो कि तभी हो सकती थी यदि यह चित्र अपने साथ किन्ही अन्य अतीत घटनाओ की एसोसिएशन लिए होता, अर्थात् यदि वह किसी विशेष कुत्ते के विशेष काल

का चित्र विशेष होता। किन्तु तब केवल अतीतानुभूति के कारण स्मृति-विशेष की भौतिक-कारणता के सिद्धान्तानुसार व्याख्या क्यो नही की जा सकती ? अब जोज़ को लें। मान लीजिए, मैं जोज़ को याद कर रहा हूँ। अब उसकी स्मृति उसकी किसी मुद्रा-विशेष की भी हो सकती है और मुद्रा-सामान्य की भी हो सकती है और दोनो ही स्मृतियो में अतीतानुभूति नही भी हो सकती। जोज़ से सामान्य प्रतिनिधि चित्र को यदि स्मृति-कारणता के अतर्गत नही रखा जा सकता क्योकि यह चित्र जोज़ विशेष का चित्र नही है प्रत्युत इस घटना-समूह का सामान्य प्रभाव मात्र जिसे मैं जोज कहता हूँ, तो जोज विशेष का चित्र भी स्मृति-कारणता के अन्तर्गत नही आ सकता, क्योकि इस सामान्य और विशेष की स्मृति में केवल दो प्रकार से ही अन्तर हो सकता है और इन दोनो अन्तरो से जोज विशेष की स्मृति स्मृति-कारणता के अस्तित्व को प्रमाणित नही करती, यह अतर इस आधार पर होगा कि (१) जोज़ सामान्य की स्मृति में एसोसियेटिड घटनाएं उसी शृखला में से होगी जिसे मैं जोज़ कहता हूँ और ये किसी अतीत विशेष से सम्बन्ध न रखकर अतीत सामान्य से सम्बद्ध होगी, इसके विपरीत जोज विशेष की स्मृति में एसोसियेटिड घटना के रूप में जोज के उस पहलू-विशेष का अतीत काल-विशेष में मुझपर प्रभाव तथा वह दैशिक परिस्थिति होगी जिसमें वह पहलू-विशेष घटित हुआ था। दूसरे (२) वह पहलू विशेष वही या वैसा ही होगा जिस प्रकार उस समय मैंने उसे देखा था, जबकि जोज सामान्य पर यह बात लागू नही होती। हमारे विचार में रसल का जोज सामान्य के स्मृति-चित्र को भौतिक कारणता के अन्तर्गत रखने का यही अभिप्राय हो सकता है। जैसा कि वे कहते हैं—"जब हम एक बिल्ली देखते हैं, हम जानते हैं कि यह एक बिल्ली है क्योकि हमने पहले भी बिल्लियां देखी हैं, किन्तु उस समय हम किसी विशेष अवसर का स्मरण नही करते जब कि हमने कोई बिल्ली देखी होती है। पहचान, इस अर्थ में एसोसियेशन की आदत से अधिक कुछ नही है।" यहां एसोसियेशन से अभिप्राय है किसी समान वस्तु को देखकर वैसी ही समान वस्तु का स्मरण होना जो कि अतीत घटना होने पर भी अतीतता का विश्वास लिए हुये नही है। इसी से रसल मानसिक स्मृति के उदाहरणरूप में प्रात प्रातराश की घटना को प्रस्तुत करते हैं। उस प्रकरण में वे आगे कहते हैं कि "इस स्मृति में अतीतता का विश्वास किसी एसोसियेशन की आदत के कारण नही हो सकता।" किन्तु अनेक बार ऐसी एसोसियेशन किसी अतीत घटना-विशेष की स्मृति की कारण भी हो सकती है जिसमें अतीततानुभूति भी हो और जिसमें स्मृति के सभी लक्षण जिन्हें रसल स्मृति-कारणता के लिए

आवश्यक मानते हैं। रसल स्वय एक अन्य निबंध मे पीटस्मोक की गन्ध से किसी अतीत नगर यात्रा की स्मृति का उदाहरण देते हैं। इससे भी अधिक सूक्ष्म उदाहरण हो सकता है—बादलो की धूप इत्यादि के कारण किसी अतीत की स्मृति हो आना। स्मृति-कारणता के अनुसार अतीत नगर यात्रा की घटना पीटस्मोक की गन्ध के साथ अतीत घटना की स्मृति का कारण होगी और इसी प्रकार इसके उदाहरण में भी। इस के पक्ष में दो तर्क दिये जाएँगे (१) पीटस्मोक की गन्ध के एसोसियेटिव घटना होने पर भी नगर यात्रा की सम्पूर्ण घटना और पीटस्मोक में कोई समता नही है जैसे, बिल्ली वर्तमान और बिल्ली अतीत में है। (२) इस स्मृति के साथ विशेष नगर-यात्रा, जो कि अद्वितीय घटना है, की स्मृति ही होती है और उसमें अतीतता की अनुभूति विद्यमान रहती है। इसे हम एक और उदाहरण से स्पष्ट करेंगे—'दूध का जला छाछ फूंक फूंक कर पीता है, दूध से जले व्यक्ति के छाछ फूंक-फूंक कर पीने में दोनो प्रकार की 'स्मृति' हो सकती हैं—(१) छाछ देखकर दूध से जलने की घटना की स्मृति के बिना ही छाछ से भय आना और (२) छाछ को देखकर दूध से जलने की घटना-विशेष की स्मृति होना। सामान्यत प्रथम प्रकार की घटना बच्चों और मनुष्येतर प्राणियो में होती है और दूसरी प्रकार की मनुष्य में। इन में प्रथम को शारीरिक और द्वितीय को मानसिक कहा जा सकता है। यही बात पीटस्मोक से नगर-यात्रा की स्मृति के सम्बन्ध में कही जा सकती है। किन्तु बादलो की धूप से किसी अतीत की स्मृति हो आना स्वतत्र व्याख्या की अपेक्षा रखता है। मान लीजिए, सध्या समय कुछ हल्के बादलो के कारण धूप का एक विशेष सुहावना रग देख कर मुझे एक मधुर अभावानुभूति होती है और किसी स्मृति-चित्रका ज्ञान नहीं होता। इस स्थिति को निम्न प्रकार से चित्रित किया जा सकता है—
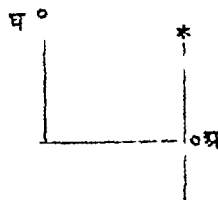
इस ग्राफ में हम घ और अ के अन्तर के सम्बन्ध में कोई धारणा नहीं बनाते। अब ऐसी स्थिति अनेक बार होती है, जैसा कि 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में अभिशप्त दुष्यन्त वीणा पर अपनी पत्नी को गाते सुन कर कहते है—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत् सुखितोऽपि जन्तु ....इत्यादि।

अब यह अभावानुभूति निश्चित रूप से किसी पूर्व घटना और वर्तमान उकसाहट का परिणाम है किन्तु इसमें कोई निश्चित अतीतानुभूति नही है और न किसी घटना-विशेष की स्मृति ही है। मान लीजिए, कुछ ज़ोर देने पर अथवा मस्तिष्क को ढीले छोडने पर मुझे किसी अतीत घटना-विशेष की नही, प्रत्युत अतीत समय-सामान्य की स्मृति हो आती है जबकि मैं, कहूँ, "किसी विद्यालय के होस्टल में रहता था। उन दिनो भी कभी-कभी सध्या के समय इसी प्रकार की धूप होती थी, शायद मैं कुछ अच्छा भी अनुभव करता था किन्तु कोई अभावानुभूति तब इस प्रकार उद्बुद्ध नहीं हुई थी।" अब इस स्मृति में अतीतानुभूति तो होगी किन्तु स्मृति घटना-विशेष की न होकर घटना-सामान्य की होगी। यह उकसाहट एक सहयोगी कारण के रूप में किसी अतीत घटना नही घटनाओ को साथ लिए होगी। इसमें एक और तत्व का अभाव भी होगा जोकि मानसिक कारणता के लिए आवश्यक हैं, वह है यह विश्वास कि—"ऐसा पहले हुआ था।" इस विश्वास को रसल सबसे अधिक ठोस प्रमाण मानते हैं मनस्कारणता के होने का। इस स्मृति में यह विश्वास न होने का कारण यह है कि जबकि मुझमें अभावानुभूति उत्पन्न हुई, मुझमें कोई स्मृति-चित्र स्वत उत्पन्न नही हुआ और जब हुआ तो वह इस प्रकार, मानो कल साथ ही विविध चित्र घूम गए हो और इस चित्र-विशेष के उपस्थित होने पर प्रतीत हुआ हो कि "यह अच्छा है, सुहावना है" और इस प्रकार अभाव की कुछ पूर्ति हुई हो। इस अवस्था में ऐसा प्रतीत नही होता जैसे कि इस धूप-दर्शन का उस अतीत घटना-सामान्य से कोई सम्बन्ध है और वह घटना सामान्य विद्यालय के होस्टल की साझ—की स्मृति ऐसी स्पष्ट भी नही होती कि उसके लिए कहा जा सके, "हाँ, वह ऐसा ही था" सिवाय उसके उन पहलुओ के जिनका उस अभावानुभूति से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसे हम और स्पष्ट करेंगे—'मान लीजिए मै सध्या के समय नियमानुसार भ्रमण को जाता था।' यह घटना सामान्य घटना है और इसकी जब कभी सामान्यत स्मृति आती है तो मुझे कुछ भी विशेष आकर्षक इसमें दिखाई नहीं पडता, किन्तु जब कभी बादलों के धूप-दर्शन के साथ इस सैर की स्मृति होती है तो मुझे इस स्मृति में विशेष सुख मिलता है, किन्तु यह सुख इस भ्रमण के चित्रो के ज्ञान के साथ नही प्रत्युत उस अस्पष्ट मन स्थिति के साथ होता है जिसकी कोई स्पष्ट अनुभूति या ज्ञान मुझे अब नही होता। इस उदाहरण की व्याख्या की सार्थकता को हम एक और उदाहरण से स्पष्ट करेंगे और इस प्रकरण को आगे बढ़ाएगे। हमने बिल्ली के वर्तमान दर्शन या 'बिल्ली' शब्द के श्रवण से बिल्ली के सामान्य चित्र की उत्पत्ति का उदाहरण

पीछे दिया था और देखा था कि किस प्रकार रसल इसे मनस्कारणता के अन्तर्गत स्मृति नहीं मानते। अब हम इस उदाहरण को थोड़े से परिवर्तन के साथ रखेंगे और पिछले उदाहरण के साथ मिलायेंगे। मान लीजिए, मैं उत्तरी-ध्रुवप्रदेश में चला जाता हूँ जहाँ मैं कभी बिल्ली नही देख पाता। किसी दिन अचानक मैं कोई ऐसा शब्द सुनता हूँ अथवा ऐसा दृश्य—कही वर्फ में देखता हूँ जो 'बिल्ली' शब्द से अथवा बिल्ली की आकृति से किसी न किसी प्रकार मुझे मिलता प्रतीत होता है, अथवा और भी ठीक शब्दो में, वह शब्द या चित्र मुझमें बिल्ली की स्मृति उत्पन्न करता है। यह स्मृति ठीक उसी प्रकार क्रमश उत्पन्न हो सकती है जैसा बादलो के धूप-दर्शन से विश्वविद्यालय-होस्टल के साव्य भ्रमण की स्मृति और इसमें वैसी ही अतीततानुभूति भी अनिवार्य रूप से होगी जैसी पिछले उदाहरण में, क्योकि बिल्ली अब मेरे लिये एक ऐसा प्राणी होगा जिसे मैं वर्तमान में नहीं देखता, इसमें स्मृति घटना-विशेष की न हो कर घटना-सामान्य की होगी, चाहे वह घटना सामान्य ऐसी हो कि मुझे इससे अपने घर की बिल्ली की ही स्मृति आए, और इसके साथ एक मधुर अभावानुभूति भी होगी।

अब इस अन्तिम उदाहरण से स्पष्ट है कि केवल बिल्ली को बहुत दिनो से न देख सकने के कारण 'बिल्ली शब्द का सम्पूर्ण प्रकरण ही बदल गया और इस प्रकार 'बिल्ली' शब्द एसोसियेशन की आदत का कारण न होकर रसल की मनस्कारणता का कारण हो गया। किन्तु वास्तविकता यह है कि केवल कुछ और एसोसियेशज के बदल जाने के कारण हमारी आदत का सम्पूर्ण प्रकरण भी बदल जाता है और कोई अन्तर नहीं पड़ता। जहाँ बिल्ली सामान्यत मैं देखता हूँ वहाँ उसे चाहे मैं वर्ष भर न भी देखूं तो भी 'बिल्ली' शब्द मुझमें उन अनुगामी घटनाओ से एसोसियेटिड नहीं होगा जिनसे ध्रुव प्रदेश में पहुँचने पर केवल दस-दिन का बिल्ली का पार्थक्य एसोसिएटेड होगा। यह ऐसा ही है जैसे दिल्ली से मेरठ जाने पर मुझे दिल्ली से एक वर्ष का पार्थक्य भी इतना सुदीर्घ प्रतीत नहीं होगा जितना दिल्ली से साइबेरिया जाने पर दस दिनो का पार्थक्य भी सुदीर्घ प्रतीत होगा। इसलिए बिल्ली शब्द से बिल्ली का किन्ही भी एसोसियेशज के साथ स्मृति-चित्र केवल एसोसियेशन की आदत है और इसी प्रकार धूप-दर्शन और पीटस्मोक के उदाहरणो के लिए भी।

मनस्कारणता की असम्भवता एक दूसरी युक्ति से भी दर्शायी जा सकती है—यह है स्मृति-ज्ञान की व्याख्या के द्वारा। अब तक हमने केवल स्मृति के

कारणो की अमनस्कता को स्वतन्त्र रूप से देखा है, अब हम स्मृति-चित्रो के ज्ञान की अमनस्कता दर्शाकर उसके द्वारा स्मृति कारणो की अमनस्कता दर्शायेंगे।

स्मृति-ज्ञान की तीन सभव प्रकृतियाँ हो सकती हैं। इन तीनो को निम्न प्रकार से चित्रित किया जा सकता है—
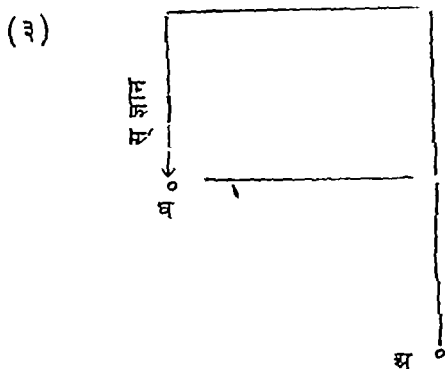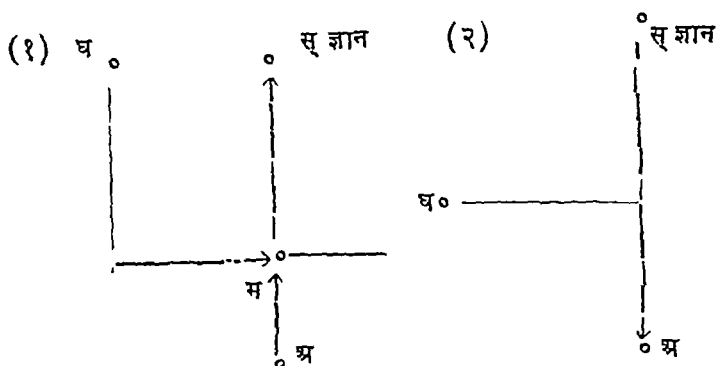
इनमें प्रथम चित्र के अनुसार अतीत घटना मस्तिष्क में मुद्रा अकि करेगी जो कि मस्तिष्क में विद्यमान रहेगा और उकसाहट के साथ हमा मस्तिष्क में ऐसी घटनाओ को जन्म देगा जो उसी प्रकार से मस्तिष्क चित्र उत्पन्न करेगी, जिस प्रकार बाह्य वस्तुओ से हमारा चाक्षुष सम्प मस्तिष्क में चित्रो को उत्पन्न करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, जहाँ त हमारा विचार है, कल्पना-चित्रो की उत्पत्ति के लिए मस्तिष्क के उ प्रदेशो का क्रिया में आना आवश्यक है जो तत्सबधी इन्द्रियो के सम्पर्क-जन चित्रो की उत्पत्ति के कारण होते है। इस प्रकार प्रथम चित्र की कारण शृखला में सद्य पूर्व की घटना ही उत्तर की कारण होती है जोकि भौति कारणता के अनुकूल है। इसमें हमारा ज्ञान उसी प्रकार नव्य

त्क्रान्त (इमर्जेंट) होता है जिस प्रकार रग या ताप, और यह ज्ञान उन घटनाओ से सम्बद्ध होता है जो कारण-शृखला में उसके सद्य पूर्व की और सहानुयायिनी भी होती है। दूसरे चित्र के अनुसार स्मृति-ज्ञान वे घटनाएँ जो अपने साथ ये विश्वास लिए होती हैं कि ज्ञात विषय उस घटना के ही समान हैं जिन के ये सकेत अथवा चित्र है, किन्तु ये सकेत अथवा चित्र स्वय क्या हैं ? यदि ये मस्तिष्क में घटित होती हुई कुछ भौतिक घटनाएँ है, तो इनकी उत्पत्ति कैसे हुई ? रसल इसका उत्तर देते हैं—क्योकि अतीत घटना भी उन कारण-शृखलाओ मे से एक है जो मस्तिष्क की स्मृति-कालीन घटनाओ को जन्म देती हैं। किन्तु रसल यह स्वीकार करते है कि अतीतघटना का अस्तित्व वर्तमान में नही हैं। इस प्रकार स्मृति का का कारण जहाँ मानसिक है, स्मृतिज्ञान स्वय एक भौतिक घटना है। अब, यहाँ एक और उलझन उत्पन्न हो जाती है—स्मृतिज्ञान के दो स्वतत्र कारणो में एक उकसाहट है और दूसरा पूर्व घटना जिसका परिणाम हमारी स्मृति-ज्ञान की घटना होती है। अब ज्ञान एक वर्तमान घटना है, यह रसल मानते हैं और यह भी मानते हैं कि यह ज्ञान पूर्व घटना का नही होता प्रत्युत उसमें सहकारी कार्य के रूप में यह विश्वास रहता है कि वर्तमान स्मृति-चित्र पूर्व घटित घटना जैसा ही है अथवा उसी का चित्र है। तो हमारा यह ज्ञान किस वस्तु का ज्ञान है ? स्वभावत स्मृतिचित्र का। अब प्रश्न यह है कि ये स्मृतिचित्र क्या हैं ? ये पूर्व घटना नही है, यह निस्सदेह है, तो यदि ये पूर्व घटना की प्रतिलिपि ही है, तो हम इनकी पूर्व घटना से समता के बारे में निश्चित कैसे हो सकते हैं ? हमारा यह ज्ञान सर्वथा एक नवीन घटना हैं। इस समाधान के लिए पूर्व घटना को भी उतना ही हमारे 'वर्तमान' ज्ञान का विषय होना चाहिए जितना और जिस प्रकार 'पूर्व घटना के वर्तमान सकेत हैं' अन्यथा समता के सम्बन्ध में कुछ नही जान सकते। इसके उत्तर में रसल दुहरे स्मृतिचित्रों की कल्पना करते है, एक वे जिन्हे हम जानते है और दूसरे वे जिन से हम ज्ञात-चित्रो का मिलान करते है (१) किन्तु इससे समस्या सुलझती नही प्रत्युत् बुरी तरह से उलझ जाती है और उपहासास्पद भी हो जाती है क्योकि तब उन चित्रो का मिलान करने के लिए भी और दूसरे चित्र चाहिएँ ? इस समस्या को हम कुछ और स्पष्टता से समझने का प्रयास करेंगे। मान लीजिए, मुझमें लय का स्मरण होता है।* सम्भवत इस स्मरण के सूक्ष्मतम (अथवा अस्पष्ट से अस्पष्टतम) रूप में घटित होने पर भी

---

* क्रिया का इस प्रकार प्रयोग कर्ता से सम्बद्ध हमारी धारणाओ से बचने

हमारे मस्तिष्क और कठ के सम्बन्धित प्रदेश हल्के से व्यापारित होते हैं। मेरे विचार में, इसके बिना मुझमें यह स्मरण घटित नही हो सकता। अब मान लीजिए मैं वह लय गुनगुनाता हूँ किन्तु अभ्यास न होने से उसकी स्वर-साधना ठीक नही होती। चाहे मैं काफी बार प्रयास भी कर लूं कि मेरी यह स्वर-साधना शायद ठीक न हो। किन्तु इसके साथ-साथ मुझ में ठीक लय का ज्ञान भी होगा, मैं गलत लय गुनगुनाने पर भी इस ज्ञान से युक्त होऊँगा कि लय की साधना ठीक नही है और यदि कोई उस समय ठीक गुनगुनाता है तो मैं झट पहचान लूंगा कि यह ठीक है। अब रसल कहेंगे कि मुझ में लय की स्मृति एक कल्पना-चित्र है जिसे मैं जानता हूँ और इसके अतिरिक्त एक और चित्र भी है जिससे मैं ज्ञात चित्र की सम्भवता असम्भवता का ज्ञान प्राप्त करता हूँ। किन्तु हमारे विचार में यह अवसम्भावित है। यह कहा जा सकता है कि लय की स्मृति मस्तिष्क और कण्ठ के सम्बद्ध प्रदेशो के व्यापार के अतिरिक्त और कुछ नही है और इसमें कठ उतना ही आवश्यक है जितना मस्तिष्क और यह उस गुनगुनाहट से जरा भिन्न नही है जिसे मैं स्वय या समीपवर्ती सुन सकता हूँ। और ठीक गा सकना अभ्यास पर निर्भर है और इसी प्रकार गुनगुनाहट से पूर्व की लय की स्मृति की सम्भवता भी अभ्यास पर निर्भर करती है। किन्तु गुनगुनाहट से पूर्व की लय-स्मृति को सम्यक् प्रकार से दुहरा सकना उतना अभ्यास-साध्य नही है जितना गुनगुनाहट को ठीक तरह से दुहरा सकना। अब यह सभव है कि मस्तिष्कप्रदेश के एक भाग में, जहाँ परमाणु अधिक स्वतत्र और सक्रिय हो, लय की मौलिक घटना अधिक ठीक प्रकार से चित्रित हुई हो, अथवा वे उस लय को चित्रित करने में उससे कही कम अभ्यास की अपेक्षा रखते हो जितने कि हमारे कठ इत्यादि रखते है। हम लय का तब तक स्मरणजन्य ज्ञान प्राप्त नही कर सकते जब तक कठ भी व्यापारित न हो, क्योकि लय का हमारा ज्ञान ध्वनियो का ज्ञान है इसी से ठीक न गुनगुना सकने पर हम ठीक को केवल इसी रूप में जानते है कि हम गलत को पहचान सकते है। एक सीमा तक यह भी अभ्यास पर निर्भर है—एक व्यक्ति, जिसका सगीत का ज्ञान बहुत अल्प हो अथवा उसने सगीत का काफी श्रवण नही किया हो, वह लय की सूक्ष्म गलतियो को नही पकड सकता जबकि 'अभ्यस्त कान' झट पहचान लेते है। यही बात चाक्षुष चित्रो के लिए भी है। इन चित्रो को भी

के लिए किया गया है। हमारी कारणवाद की व्याख्या के अनुसार कर्ता और क्रिया का यह सम्बन्ध समाप्त हो जाता है।

तभी हम कल्पित कर सकते है जब हमारा इसका कुछ अभ्यास हो और चाक्षुप-चित्रो के ज्ञान के लिए भी मस्तिष्क के और रेटिना के विभिन्न प्रदेशो को व्यापारित होना पडता है, ऐसा मेरा विचार है। लय के उदाहरण में यह बात एकदम स्पष्ट है क्योकि वह अधिक स्थूल ज्ञानेन्द्रिय है। स्पर्श के विषय में यह स्थूल कथन और भी स्पष्ट सत्य है। क्योकि स्पर्श की स्मृति तबतक हो ही नही सकती जबतक वही स्पर्श पुन न हो। स्पर्श की उष्णता-शीतलता इत्यादि स्मृति के विषय एक तो भाषा की आदत (लेंग्वेजहेबिट) के रूप में बनते है और दूसरे प्रभाव-स्मृति के रूप में इनका स्वय स्पर्श से कोई सम्बन्ध नही है। चाक्षुप-स्मृति के प्रदेश मनुष्य में बहुत अधिक विकसित है और दूसरे चाक्षुप-स्मृति में स्पष्ट चित्र आता है। श्रोत्रिय-स्मृति में भी कठ का अत्यन्त हल्का व्यापार पर्याप्त रहता है जब कि स्पर्श-स्मृति में यह सुविधा नहीं है। किन्तु अभ्यास की आवश्यकता सब कहीं है। यदि एक जन्माध व्यक्ति की आँखें बीस वर्ष की आयु में ठीक कर दी जाती है तो उसके लिए चाक्षुप-स्मृतियाँ तो दूर, चाक्षुप-विषयो को प्रत्यक्ष पहचानना तक असम्भव होगा और इसके विपरीत, कुशल-चित्रकार में अतीत चाक्षुप-घटनाओ का स्मृतिचित्र दूसरो के बजाय अधिक ठीक घटित होगा। किन्तु सब में ज्ञान-विषय स्मृति-चित्र समधिक धुंधला होता है और सभवत. चित्रकार भी चित्रित करने पर चित्र की सम्यक्ता-असम्यक्ता का ज्ञान किसी और चित्र के साथ मिलान करने पर ही जानता है। किन्तु इस व्याख्या में एक असगति है—जब हम जानते केवल धुंधले चित्र को ही है तब ठीक-गलत का अनुमान अज्ञात चित्र के आधार पर कैसे कर सकते है ? हमारे विचार में, इसका समाधान केवल स्मृति को भौतिक कारणता के अनुसार मान कर ही हो सकता है। यदि हम कहें कि स्मृति के विभिन्न शारीरिक स्तर होते है, तो अनुचित न होगा, और ये स्तर हमारे शरीर के विभिन्न प्रदेशो के विभिन्न-मात्रा म मुद्रण की स्पष्टता या सम्यक्ता के आधार पर होगे। इसके अनुसार कल्पना-चित्र की द्वैतता का आधार यह है कि चित्र मस्तिष्क के किसी भीतरी और अधिक सूक्ष्म प्रदेश में अकित होता है जो अधिक सुविधा से बाह्य प्रभाव के अनुसार परिवर्तित हो जाता है। यह प्रदेश उकसाहट पाकर उस चित्र या चिन्ह को किसी प्रकार हमारे मस्तिष्क के उन तन्तुओ को प्रसारित करता है जो प्रस्तुत चित्र की सम्बद्ध ज्ञानेन्द्रिय के भीतरी भाग है और इस प्रकार हम स्मृतिचित्रो को जानते है। चाक्षुप-स्मृतिचित्रो को हम जब अस्पष्ट रूप से जानते हुए यह भी जानते है कि हमारे मित्र की आँखें ठीक ऐसी ही नही है तब इसका कारण यह हो सकता है कि मूल-चित्र इस असम्यकता का ज्ञान देता हो, किन्तु चित्र को दृष्टि-

ततुग्रो तक प्रसारित करन में ग्रनभ्यास इत्यादि के कारण चूक ग्रा जाती है। इसी प्रकार ध्वनि-चित्रो के लिए भी है। इसको दो प्रकार से प्रभावित किया जा सकता है (१) जैसा कि हमने कहा था, हम ग्रनभ्यास के कारण लय ठीक जब नही गुनगुना पाते तब भी उसकी ग्रसम्यक्ता को जानते होते है ग्रौर यह भी कि लय की स्मृति-चित्र के रूप में केवल कठ को व्यापारित करने पर ही हो सकती। यदि लय की स्मृति ग्रौर चाक्षुष-घटना की स्मृति में कोई मौलिक ग्रन्तर नही है तो चाक्षुष-चित्र को भी ज्ञानगत होना चाहिए जब दृष्टि के भीतरी केन्द्र व्यापारित हो। किन्तु लय की स्मृति कठ में नही है, यह कठ को प्रसारित की जाती है, यह इससे स्पष्ट है कि केवल कठ को उकसाकर यह स्मृति उत्पन्न नही की जा सकती। (२) इसका ग्रौर भी स्पष्ट प्रमाण है किसी ध्वनि का स्मरण न कर सकना। एक मनुष्य एक स्त्री की ग्रावाज याद नही कर सकता यदि मनुष्य की ग्रावाज एकदम भारी है तो, क्योकि वह उस प्रकार बोल नही सकता। लय की स्मृति नही है, प्रत्युत् ध्वनि के क्रमिक ग्रारोह-ग्रवरोह की स्मृति है। इसलिए किसी भी लय की स्मृति हो सकती है यदि स्मरण करने वाले का कठ कुछ भी ग्रभ्यस्त है किन्तु ध्वनि की स्मृति नही। किन्तु ध्वनि की स्मृति ह, यह स्पष्ट है, स्मृति केवल ज्ञान में तभी ग्राती है जब कि वह व्यक्ति पुन बोलता है ग्रौर हम जानते है, यह उसी की ग्रावाज है। इस प्रकार स्मृति-चित्र जिन्हें रसल कहते हैं कि शारीरिक प्रतीत नही होते, पूर्वत शारीरिक कारणता के ग्रनुसार व्याख्येय हैं।

किन्तु कल्पना-चित्र एक दूसरी प्रकार के भी होते है जिनमें उस व्यक्ति का कर्तृत्व पाया जाता है जिसके मस्तिष्क में ये चित्र घटित होते है। काव्य में ग्रलकारो का ग्राधार भी यही कल्पनाएँ हैं। कहा जाता है कि ये हमारे मस्तिष्क में मुद्रित नही होते—शेखचिल्ली के पोते-पोतियाँ कभी नही हुई थी ग्रौर न उसका कोई भवन ही था। मेरी प्रेयसी कभी क्वीन एलिजाबेथ के सहासन पर भी नही बैठी। कहा जा सकता है कि यह प्रक्रिया यात्रिक नही ग्रौर इसमें मन का कर्तृत्व पाया जाता है। इसी प्रकार हम में ग्रनेक ार विचार घटित होते है ग्रौर वहुत बार हम स्वय विचार करते है। कहा जा सकता है प्रथम प्रकार की घटनाग्रो में कारण-शृखला का ग्रादि का छोर मन के साथ सम्बद्ध होता है ग्रौर कहा जाता है कि इन घटनाग्रो की व्याख्या मन का ग्रस्तित्व ग्रस्वीकार कर नही की जा सकती।

जहाँ तक मन के ग्रस्तित्व का प्रश्न है, उसको इस प्रकार ग्रस्वीकार नही किया जा सकता, किन्तु इन घटनाग्रो में ऐसा कुछ नही है जिसकी

व्याख्या शारीरिक स्तर पर न की जा सके। दूसरी और महत्वपूर्ण बात कारण-सबन्धो की व्याख्या है जो मन के अस्तित्व की पुष्टि नही करती।

मानसिकता के समर्थक तर्क करते है कि हम प्राय दो विरोधी स्थितियाँ देखते है जिनमें मन शरीर पर व्यापारित होता है और शरीर मन पर व्यापारित होता है अथवा नही होता। 'एक व्यक्ति विचार करता है कि उसका अमुक कार्य करना अधिक लाभप्रद होगा और वह उसके अनुसार कार्य करता है।' इसमें मन शरीर को व्यापारित करता है। दूसरी स्थिति वह है जब कि उसे भूख लगती है और वह खाना खाना चाहता है। अथवा, उसे छींक आती है और वह छींक देता है। इनमें प्रथम और द्वितीय स्थिति में विद्यमान अन्तर दो भिन्न स्थितियो अथवा कारणसम्बन्धो की सूचना देता है। किन्तु जैसा कि ब्रॉड कहते है—"हम उन स्थितियो में अकर्तृत्व (पेसिवपार्सक्सीलेंस) का अनुभव करते है जब कि एक शारीरिक व्यापार, जोकि चेतना से युक्त नही होता, ऐसे शारीरिक व्यापार में परिणत हो जाता है जो एक विशेष प्रकार की चेतना से युक्त होता है और उस अवस्था में कर्तृत्व (एक्टिव पारएक्सीलेंस) का अनुभव करते है जब कि एक शारीरिक व्यापार, जोकि चेतना-युक्त होता है, उन शारीरिको को प्रेरित करता है जो चेतना-युक्त नही होते।"

मन के चेतन-अचेतन प्रत्ययो के लिए भी ऐसी व्याख्या दी जा सकती है—हम अनेक बार किन्ही अचेतन इच्छाओ और अचेतन-विचारो से प्रेरित कार्य करते है, इस अचेतन प्रक्रिया को मन का ठीक प्रमाण माना जाता है, फ्रायड का अचेतन मन भी एक ऐसा चैम्बर हाउस है जिसमें दमित वासनाएँ विद्यमान रहती हैं। साइकोएनेलेसिस में प्रयोग करने वाले जिस प्रकार से बात करते है उनसे भी कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है, जैसे कि मन शरीर से कोई पृथक तत्व हो, किन्तु साइकोएनेलेसिस के प्रयोगो की व्याख्या यदि कुछ इस प्रकार दी जाए कि—शारीरिक घटनाएँ जो कि सामान्यत चेतना से युक्त होती है, जब चेतना से युक्त नहीं होती तब हम उन्हे अचेतन मानसिक घटनाए कह सकते है। इसलिए अचेतन मानसिक घटनाओ का अतस्सघर्ष विभिन्न शारीरिक व्यापारो का ऐसा अन्तस्सघर्ष है जोकि चेतन मानसिक व्यापारो को प्रभावित करता है। अब रोगी इस प्रकार प्रभावित कुछ मानसिक घटनाओं की शृखला को देखता है और वह दूसरी किसी भी ऐसी चेतन मानसिक घटनाओ को नही जान पाता जोकि परिवर्तित घटनाओ का कारण हो सकती हो। मान लीजिए, उस रोगी का डाक्टर मन के अभौतिक अस्तित्व में विश्वास नहीं करता, उस अवस्था में वह केवल ऐसे शारीरिक व्यापार की कल्पना करेगा (१) जोकि ऐसी किसी भी मानसिक घटना से सहानुगमित नहीं है

हम केवल इतना ही कह कर आगे बढते है कि शक्ति का सम्बन्ध गति और पेशियो इत्यादि के तनाव से हैं और गति तथा पेशियो के तनाव की व्याख्या प्राचीन प्रणाली से नही की जा सकती। गति (Acceleration) केवल एक गाणितिक अनुक्रम-सस्थापन है और पेशीय-तनाव एक ऐसी अवस्था है, जिसे अविछिन्न परिवर्तन अथवा प्रक्रिया कहा जा सकता है। जैसा कि हम आगे देखेंगे, इनकी व्याख्या कारण-कार्य की प्राचीन परिभाषा के अनुसार नही की जा सकती।

इसी प्रकार कारण-कार्य की प्राचीन परिभाषा को क्वाटम सिद्धान्त ने एक दूसरी दिशा से चोट पहुँचाई है। क्वामसिद्धान्त से पूर्व भूतविज्ञान में निर्धारिततावाद Determinism का बोल वाला था, जिसका कारण परमाणु के विषय में भ्रान्त धारणा का होना था। इस सम्बन्ध में हम पिछले निबन्ध में विस्तार पूर्वक देख आए हैं। यह मान लिया गया था कि विश्व एक सार्वभौमिक नियम में शृखलित और निर्धारित है—काय कारण में पहले से ही निहित रहता है और प्रत्येक क्षण वही होता है जो उसे होना होता है। इसलिए भूत और भविष्यत् केवल हमारे ज्ञान की सीमाए है, अन्यथा भविष्य उतना ही प्रत्यक्ष और निश्चित है जितना भूत। आज भी बहुत से ऐसे व्यक्ति है जो इस दृष्टि कोण को एक मात्र वैज्ञानिक दृष्टि कोण मानते है। जेम्ज-जीज भी, जो बीसवी शताब्दी के महान् भूत वैज्ञानिको में से एक था, निर्धारिततावाद Determinism के इस सिद्धान्त का बडा समर्थक था। उस का विचार था कि ईश्वरीय प्रतिभा किसी भी भावी क्षण पर होने वाली घटना का पूर्व कथन कर सकती है, यदि उसे 'वर्तमान' की सपूर्ण स्थिति का ज्ञान हो, इस प्रकार उसके लिए अखण्ड काल हस्तामलकवत् होगा।

किन्तु ऐसा मान लेने में कुछ आधार भूत कठिनाइयां हैं—ज्योतिषी हमें गिन कर बता सकते है कि आज से कितने वर्ष-मास-दिन और क्षण पहले सूर्य ग्रहण लगा था और भविष्य में कब लगेगा। वह प्रत्येक क्षण की सूर्य-चन्द्र इत्यादि की सापेक्ष स्थिति को बता सकता है, किन्तु क्या यह कारण-कार्य सम्बन्ध ज्ञान है? क्या कोई भी क्षण अ किसी भी दूसरे क्षण ब के होने को निश्चित् करता है? क्या यह केवल उसी अर्थ में परिसख्या (Number) नही है जिस अर्थ में कोई भी गति एक परिसख्या मात्र है—भौतिक यथार्थ नही? दूसरी कठिनाई ज्ञान-मीमासा से सम्बन्ध रखती हैं—चन्द्र ग्रहण को हम केवल अपनी दृष्टि गत सवेदो Visual-

Stimulations के रूप मे ही जानते है, और पृथ्वी इत्यादि की, वर्तमान ग्रहण में, सापेक्ष स्थिति का हमारा ज्ञान उतना ही आनुमानिक होता है जितना सुदूर अतीत या सुदूर भविष्य की किसी भी घटना का हमारा ज्ञान होता है । इसी प्रकार डिनेमिक्स में, ज्ञान की परिभाषा के अनुसार, कोई भी घटना दूसरी घटना के होने में उस से अधिक उत्तरदायी नही हो सकती जितनी दर्पण में एक छाया दूसरी छाया को धकेलने अथवा ठहरान इत्यादि में उत्तरदायी हो सकती है ।

कारण-कार्य सबधी इन आधार भूत प्रश्नो पर पुन लौटने से पूर्व हम कुछ अन्य पहलुओ पर विचार करेंगे । जैसा कि हमने पीछे देखा था, जेम्ज-जीज भूत विज्ञान में निर्धारकतावाद का पक्षपाती है, और ज्योतिष में वास्तव में किसी भी भावी क्षण को निर्धारित किया जा सकता है, जैसा कि हमने चन्द्र ग्रहण के सम्बन्ध में कहा है । किन्तु यह निर्धारितता जितनी पूर्ण ज्योतिष और बडे पिंडो के व्यवहार में है उतनी छोटे पिंडो या परमाणुओ के व्यवहार में नही । परमाणु का व्यवहार और तत्सम्बन्धी ज्ञान अत्यअधिक रहस्यमय है, और ऐसा वह रहेगा, किन्तु यह समझना हमारी एक दम भूल है कि हम इससे अधिक किसी अन्य पिड के सम्बन्ध में जानते है । परमाणु को हम उसके रेडियेशन के द्वारा जानते है और इसी प्रकार तारो को भी हम उनकी किरणो के द्वारा ही जानते है । किन्तु परमाणु के घटक (Composit) एलेक्ट्रन की गति के निर्धारण में हम उस पूर्णता तक नही पहुँच सकते जिस पूर्णता तक तारो की गति के निर्धारण में पहुँच सकते हैं । जैसा कि इडिंगटन कहता है—"लेपलेस की आदर्श ईश्वरीय प्रतिभा वडे से वडे ज्योति- पिंडो से लेकर छोटे से छोटे परमाणुओ की भावी स्थिति (Position) का निर्धारण कर सकती है । तो इसके लिए हमें छोटे से छोटे कण एलेक्ट्रन को परीक्षण के लिए लेना चाहिए । मान लीजिए कि एलेक्ट्रन को एक दम साफ रास्ता दिया जाता है (जिससे वह किसी अज्ञात टकराव से बच रहे) और हम उसकी वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में वह सब जानते है जो जानना आवश्यक है । हम एक क्षण के पश्चात उसकी स्थिति को कितनी निश्चितता से बता सकते है ? उत्तर है कि पूर्ण निश्चित और आदर्श स्थिति में हम उसकी स्थिति को डेढ इच के अन्दर-अन्दर बता सकते है, इससे कम नहीं । यह समीप से समीपतर है जो हम लेपलेस की आदर्श प्रतिभा से सभावना कर सकते है । यह गलती बहुत बडी गलती नही है जब कि हम जानते है कि

एक क्षण में इलेक्ट्रन ने १००० मील या इससे भी अधिक तय कर लिया हो सकता है।

"किन्तु यह अनिश्चितता और भी अधिक गभीर होगी यदि हमें यह जानना हो कि एक इलेक्ट्रन एक ऐसे छोटे पिंड, जैसे परमाणु गर्भ, से टकराएगा या नही।"

इडिंगटन आधुनिक भूत विज्ञान में चास और अनिर्धारिततावाद के सबसे बडे समर्थको में से एक हैं और वास्तव में 'सभाव्यता का सिद्धान्त' (Law of Probability) उनके लिए एक बहुत बडा चेलेंज है जो कारण-वाद को पुरानी निर्धारिततावादी प्रणाली पर प्रतिष्ठिति करते हैं। आज परमाणु विज्ञान (Micro Physics) अनिर्धारिततावाद अथवा सभाव्यता के सिद्धान्त पर प्रतिष्ठित है न कि निर्धारिततावाद के सिद्धान्त पर। यद्यपि महान वैज्ञानिक आईस्टीन बलपूर्वक इस सिद्धान्त का विरोध करता है और मानता है कि कोई भी विज्ञान ऐसे अस्थिर आधार पर स्थापित नही होना चाहिए, और वह बहुत देर से सापेक्षता सिद्धान्त (Relativity Theory) को परमाणु विज्ञान पर भी लागू करने का प्रयास कर रहा है किन्तु, अभी तक उसे इसमें सफलता नही मिली। उसके विचार में अनिर्धारिततावाद अतर्क सम्मत है "विज्ञान में हम केवल इस विचार के साथ ही आगे बढ सकते हैं कि कोई आधार-भूत सिद्धान्त और एक निश्चित कारण-कार्य सम्बन्ध विश्व की घटनाओ में विद्यमान है।"

जहाँ तक इडिंगटन का सम्बन्ध है, वह जीज और लेपलेस से अधिक दृढ आधार पर प्रतीत होता है, क्योंकि यदि विश्व की घटनाओ में कारण-कार्य सम्बन्ध विद्यमान है तो भी वह उस प्रकार का नही है जैसी कल्पना वे करते हैं।

इसका अर्थ यह नही कि भविष्य ज्ञान असभव है, किन्तु अभी तक ऐसा कहने के लिए कोई प्रमाण नही है कि भविष्य निर्धारित अथवा पूर्व-ज्ञेय हो सकता है। किन्तु उतना ही यह कहना भी कठिन है कि भविष्य निर्धारित नही है और उसका पूर्व कथन नही किया जा सकता। हमारे विचार में, कारण-कार्य सम्बन्ध का होना घटनाओ के निधारित होने को अवश्यम्भावी नही बना देता। आज हम कोष विभाजन (Cell devision) के कुछ निश्चित समय के पश्चात विकसित होने वाले प्राणी के लिंग के सम्बन्ध में बता सकते है, यह बहुत सभव है कि किसी समय हम यह कोष-विभाजन के एक दम

पश्चात् अथवा वपन (fertilization) के ही पश्चात् यह बता सकेंगे, किन्तु यह एक दम असंभव प्रतीत होता है कि हम किसी भी समय यह भी बता सकेंगे कि उत्पन्न होने वाला प्राणी जीवन में कितने कदम चलेगा अथवा उसकी मृत्यु कब और किन कारणो से होगी।

किन्तु हम उस प्राणी के लिंग के सम्बन्ध में किस प्रकार जानेंगे? यह प्रश्न कारणवाद को समझने में विशेष महत्व पूर्ण है। यदि हम किसी विन्दु अ१ पर काल क१ में किसी घटना घ१ को जानते हैं तो कारण-सम्बन्ध में सबद्ध किसी भावी घटना घ२ को जानने की सभावना का क्या आधार हो सकता है? रसल के अनुसार कारणता वह सिद्धान्त है जिसके द्वारा हम पर्याप्त काल विन्दुओ अथवा क्षणो पर पर्याप्त घटनाओ के ज्ञान द्वारा नवीन एक या अनेक काल विन्दुओ पर एक या अनेक घटनाओ को अनुमित कर सकते हैं। मान लीजिए कि इस सिद्धान्त के द्वारा यदि हम घ१ के सपर्क में काल क१ पर आते हैं, घ२ के काल क२ पर घ३ के क३ पर तो हम घ१—१ को क१—१ पर अनुमित कर सकते हैं। "यह कारण वाद की गाणितिक व्याख्या है, भौतिक विश्व में इस व्याख्या का क्या आधार है? मान लीजिए हमारा प्राणी का लिंग ज्ञान घ१ है जिसे हम क१ पर जानते है और प्राणी की लिंगोत्पत्ति $घ_न$ जो कि $क_न$ पर घटित होती है। अब इस घन का अनुमान हमें किसी भी काल विन्दु क२ क३ क४··· —१कन पर हो सकता था। इस प्रकार यदि $घ_र + १ \overset{=}{>} घ_र$ और यदि काल क२ सुविधापेक्ष (Arbitrary) है, सिवाय इसके कि क२ + १ क२ के पश्चात् ही आता है, तो हम मूल घटना से किसी भी काल विन्दु पर कुछ घटनाओ को अनुमित (Infer) कर सकते हैं।' किन्तु प्राणी का लिंगानुमान घ१ क१ पर तभी हो सकता है यदि पहले से ही हमने घ१ और घ२ में सम्बन्ध की चरितार्थता को देखा हो। एक बार इस सम्बन्ध को देख कर हम आगे उनकी पुनरावृत्तियो को जान लेते हैं। इस प्रकार का कारण वाद विशेष का साधारणीकरण है जो अत्यन्त स्थूल आधारो पर होता है। साधारणीकरण की स्थूलता से अभिप्राय केवल यही है कि जब कि हम साधारणीकरण में समान कारण—समान कार्य की कल्पना को मान कर चलते है, कभी भी वही कारण दोबारा अस्तित्व में नही आता और इसी लिए कभी भी वही कार्य पुन घटित नही होता। इसलिए भौतिक विश्व में कारण से कार्य का अनुमान एकदम श्रद्धा पर निर्भर होता है और कार्य का उसी प्रकार घटित होना, जैसा वह अनुमित होता है कम या अधिक सभावित ही होता है निश्चित नही। चाहे व्यवहारिक रूप से, अनुमित

कार्य की उत्पत्ति निश्चित ही होती है—उदाहरणत प्रत्येक चेतन मनुष्य को सूई चुभोने पर पीड़ा का अनुभव निश्चित रूप से होगा—किन्तु सिद्धान्तत इसे प्राय निश्चित अथवा बहुत अधिक सभाव्य ही कहा जा सकेगा। (इडिंगटन)

कारणवाद को इस रूप में प्रस्तुत करना कि 'कार्य अपने कारण का अनिवार्य परिणाम है' भ्राति जनक प्रतीत होता है। यह भ्राति 'वही कारण वही कार्य' की उक्ति से प्रेरित प्रतीत होती है। किन्तु कोई भी कारण कभी भी 'उसी प्रकार' घटित नही होता, किसी भी घटना की कभी ठीक पुनरावृत्ति नही होती, क्योकि प्रत्येक घटना उस आयोजन का अविभाज्य अग बन जाती है जो कि नवीन घटना के घटित होने का आधार प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त, यह कल्पना अत्यन्त अव्याप्ति दोष पूर्ण भी है, इसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है, क्योकि यह अनुमितियो (Inferences) के विस्तृत क्षेत्र को आवृत नही करती, जब कि कारण सिद्धान्त एकदम अनुमान पर आधृत है।

जैसा कि हमने पीछे कहा था, डिनेमिक्स मुख्यत विवरणात्मक है, इसका अभिप्राय यह है कि इसमें शक्ति की कल्पना के लिए अब कोई स्थान नही है। गति भौतिक वास्तविकता न होकर मात्र एक सख्या है। इसी प्रकार हमने आगे 'पदार्थ और मन' निबन्ध में देखा है कि ऐटम (परमाणु) भी एक वस्तु न होकर मात्र एक प्रक्रिया (Process) है। किन्तु अनुमान का आधार यह विश्वास है कि वर्तमान भूत से और भविष्यत् वर्तमान से निर्धारित होता है। हमारे विचार से यह विवरण-सिद्धान्त के विपरीत भी नही है यदि इसकी व्याख्या कुछ उसी प्रकार की जाए तो। जैसा कि हमने अगले निबंध में देखा है, दो समयो पर 'चाँद' को वही मानने का आधार कारणता सिद्धान्त ही हो सकता है, अन्यथा चाँद कभी भी वही नही होता, इसी प्रकार क१ पर भावी घटना घ२ को अनुमित करना कारणता सिद्धान्त के अनुसार ही सभव है। किन्तु कारण-कार्य सम्बन्ध का पूर्ण विश्लेषण प्राय असभव है। कारणता की प्रक्रिया विभिन्न घटनाओ से प्रेरित होकर देश और काल में कार्यों (Effecte) के सरल योग के साथ व्यापारित होती है। इसी प्रकार वर्तमान का भी भूत की अधिक सरल घटनाओ में विश्लेपण किया जा सकता है। और इस प्रकार यदि हम वर्तमान से भविष्यत् को अनुमित कर सकते हैं और वर्तमान भूत की अधिक सरल घटनाओ में विश्लेषित किया जा सकता

हैं तो यह समझना काफी सरल हो जाता है कि कैसे कारण और कार्य का सम्बन्ध देश और काल में दो घटनाओ की सहानुयायिता (Successive correlation) का सम्बन्ध है। प्रकृति में प्रत्येक वस्तु निरन्तर परिवर्तन की 'अवस्था' मात्र है, इसलिए जिसे हम घटना कहते हैं वह भी मात्र एक धारा या प्रक्रिया मात्र रह जाती है। थीयरी ऑफ क्वाटा (स्तोक-सिद्धान्त) यद्यपि हमें वताती है कि नैरन्तर्यता केवल प्रतीति है, यथार्थ नही, यदि ऐसा है तो हम सिद्धान्तत ऐसी घटनाओ को प्राप्त कर सकेंगे जो धारा (Process) नही हैं, किन्तु उस अवस्था में भी कोई घटना पूर्वानुगामी अथवा पश्चानुगामी घटना का 'कारण' नही हो सकती। किन्तु हमारे वर्तमान उद्देश्य के लिए विच्छिन्नता उपयोगी नही है और न वह अभी तक पूर्णत प्रमाणित ही है। किन्तु किसी भी अवस्था में कारण-कार्य सम्वन्ध के रूप में हम केवल मात्र एक दिशा की ओर निरन्तर परिवर्तन की प्रक्रिया को जानते हैं। मान लीजिए मैं एक तारे को देखता हूँ, सामान्यत कहा जाएगा कि तारे को मेरे देखने के कार्य का कारण तारा है, किन्तु मेरे देखने और तारे-एक भौतिक विपय-के वीच में कारणो की असीम शृखला है जिसमें मेरी पुतली (रेटीना) इत्यादि में होता हुआ स्फुरण भी एक भाग है। इस सारी प्रक्रिया अथवा धारा में हम किस विन्दु को कार्य और किसे कारण कह सकते हैं ? हम यहाँ मान लेते हैं कि तारा वह विन्दु है जहाँ से कारण शृखला व्यापारित होती है (जैसा कि हमने अगले निवन्ध में मान लिया है), किन्तु शृखला में कार्य-कारण के विभाजन का, जिसमें कारण-कार्य के अस्तित्व को वाध्य करता है, कोई अर्थ नही रह जाता। इस प्रकार "भूत वैज्ञानिक सिद्धान्त यह नहीं कहेगा कि अ व से अनुधावित होता है, प्रत्युत् यह कि एक कण (Particle) प्रस्तुत परिस्थितियों में कैसी गति प्राप्त करेगा, अर्थात् यह हमें वताता है कि कैसे प्रस्तुत कण की गति प्रत्येक क्षण में वदल रही है"—दूसरे शब्दो में, प्रत्येक नवीन घटना अपनी पूर्वानुगामी घटना को समावृत करती चलती है अथवा प्रत्येक पूर्वानुगामी घटना पश्चानुगामी घटना में समाहित होती चलती है। वर्ट्रंड रसल इस तथ्य को वडी सुन्दर उपमा देकर प्रस्तुत करते है, वे कहते है—"यह कहना कि परमाणु की अवस्थिति है (It persists) उतना ही सार्थक है जितना यह कहना कि ट्यून की अवस्थिति है। यदि ट्यून पाँच मिनट समय लेती है, हम यह नही मानते कि यह कोई एक वस्तु है जो इस सम्पूर्ण समय में अवस्थित रहती है, प्रत्युत यह कि यह स्वरो का एक अनुक्रम है जो इस प्रकार सवद्ध है कि इसमें एक प्रकार की एकता है। "अव हम एक स्थूल

उदाहरण समस्या को चित्रित करने के लिए देंगे--यदि हम दूध में थोडा दही डालते हैं और इसे उपयुक्त परिवृत्ति प्रदान करते है, यह घोल कुछ समय के पश्चात् दही बन जाएगा। अब हम बाद की घटना--दही से पहली घटना--दूध में दही मिलाना-अनुमित (Infer) कर सकते हैं जो कि कारणो की एक शृखला (Train) से पश्चानुगमित हुई होगी, और यह उतना ही स्वाभाविक है जितना दूध में कुछ दही डालकर हम दही जमने की घटना, जो कि एक कारण शृखला से पूर्वानुगमित हुई होगी, की आशा करते है। परन्तु कोई भी इस विचार को पसद नहीं करेगा कि दूसरी घटना (दही जमना) ने पहली घटना और कारणो की शृखला को घटित होने के लिए बाध्य कर दिया था, इसी प्रकार पहली घटना ने भी अनुगामी कारण शृखला और दही जमने की घटना को बाध्य नही किया, यह केवल आरोह या अवरोह (Ascending or Descending) दिशा का सख्यानुक्रम है। जहाँ तक अनुमान का प्रश्न है, वह एक सीमा तक सदैव पूर्वानुगामी अथवा व से अ की ओर उन्मुख होता है, क्योकि जब तक एक बार दूध में दही पडने की आकस्मिक घटना को फलित होते हुए देख नही लिया जाता, हम इन दो घटनाओ के सम्बन्ध को नही जान सकते, अर्थात हम सदैव कारण-कार्य सम्बन्ध को दही से दूध अथवा दही घोलने की प्रथम घटना को अनुमित करने के में जानते हैं, और कारण कार्य सम्बन्ध की प्रकृति की यह विशेषता है कि हम यह नही कह सकते कि पहली घटना में आगे की कोई भी घटना पूर्व निश्चित (Prefigured) होती है । इस प्रकार यह न केवल पूर्वोन्मुख ही है प्रत्युत इसमें एक प्रकार की विषयीता (Subjectiveness) भी आ जाती है, क्योकि हम उस अवस्था में भी कार्य में कारण अथवा ब में अ को समाहित नही देख सकते और न ब से अ तक की शृखला के सम्पूर्ण बिन्दुओ को कभी गिन ही सकते हैं । रसल कहते है—

"कारण सिद्धान्त से मेरा अभिप्राय किसी भी ऐसी सामान्य प्रतिजा से है जिसके द्वारा एक घटना का होना दूसरी घटना या घटनाओ से अनुमित किया जा सकता है।" उदाहरण के रूप में विजली की चमक और कडक में अथवा आग और धूए में सबध को प्रस्तुत किया जा सकता है।

इस स्थापना के पश्चात् अब हमें एक बार फिर अपने 'दूध से दही' को उदाहरण पर लौटना चाहिए । इस प्रकरण में सख्या और

रेखा की प्रकृति (Property) को समझना विशेष रूप से उपयोगी रहेगा। अब हम यह अच्छी प्रकार से जानते है कि दो घटनाओं, अथवा दो सख्याओ अथवा दो विन्दुओं में असख्य अथवा असीम घटनाओ, सख्याओं अथवा विन्दुओ का अनुक्रम विद्यमान है, और हम कभी भी प्रथम से द्वितीय तक 'प्रत्येक' विन्दु को गिनते हुये नही पहुँच सकते; घटनाओ अथवा विन्दुओं की व्याख्या कुछ दूसरे ढग से भी की जा सकती है जहाँ घटनाएं अथवा क्षण कुछ कालिक परिमाण रखते हैं, और रसल ने यह (our knowledge of the External world) में लिखा भी है, परन्तु हमारे प्रस्तुत उद्देश्य के लिए उसकी आवश्यकता नही है। इसलिए कोई भी गणितज्ञ दो घटनाओ के वीच के अन्तर को नही माप सकता और इस प्रकार एक दम वाद (Immediate Next) की घटना को नहीं प्राप्त कर सकता। वह किन्हीं दो विन्दुओ को चुन लेता है जो उसे सुविधा जनक प्रतीत हो। किन्तु ठीक यह है कि हम व को तव तक नही जान सकते जब तक कि वह वास्तव विषय (Actual Data) नही हो लेता। पुराने दार्शनिक, जो 'वही कारण वही कार्य' की वात कहते रहे हैं, यद्यपि उसमें साधारणीकरण ही है, किन्तु साधारणीकरण में जो आधार भूत विशेषता है उस पर ही इसमे सवसे गभीर आघात होता है, क्योंकि 'वही' शब्द विशेष के लिए है। ईश्वरीय प्रतिभा वाला गणितज्ञ भविष्य निर्धारण में समर्थ समझा जाता है—कि वह प्रत्येक परमाणु की गति और दिशा (Velocity) तथा स्थिति (Position) का पूर्व निर्धारण कर सकता है, जैसे ज्योतिषी तारो का करते हैं, किन्तु यदि यह सभव भी हो, तो भी यह गणित वस्तुओ की अन्तर्निहित प्रकृति के वारे में कुछ नही वताता। इलेक्ट्रन एक क्षण के पश्चात् किस विन्दु पर होगा वताना इससे एक दम भिन्न है कि उसका कव विस्फोट होगा। यदि हम यह मानलें कि परमाणु का आज दस वजे विस्फोट उसमें कल या करोड़ वर्ष पूर्व विद्यमान था, जिसे मानने के लिए हमारे पास कोई कारण नही है, तो यह एक दम उसकी गति और स्थिति के ज्ञान से भिन्न है।

"परमाणु का विस्फोट हमें कारण-कार्य सम्वन्ध के एक अन्य पहलू से परिचित कराता है, 'इस विस्फोट को हम वि$_\alpha$ प्रतीक देते हैं जो कि परमाणु विशेष का अन्तर्निहित गुण है। अब यहाँ कठिनाई यह है कि हम इस वि$_\alpha$ का ज्ञान कव प्राप्त करते हैं? उस समय जब कि वि$_\alpha$ का कोई अस्तित्व नहीं होता?" यदि हम विस्फोट से वि$_\alpha$ का परमामाणु विशेष में होना स्वीकार करते हैं तो यह अतीतोन्मुख विश्लेषण के रूप में ठीक है, किन्तु तब

हम यह भी अनुमित कर सकते हैं कि आज दस बजे वि० होने की विशेषता इस परमाणु विशेष में सैदव रही होगी, और अनुमान को केवल अतीतोन्मुख होने से ही सशयास्पद और हास्यास्पद नही कहा जा सकता। आज दस बजे विस्फोट का परमाणु विशेष में पहल से ही विद्यमान होना अथवा उसकी अवश्यभाविता का यह अभिप्राय नही है कि यह वि० कोई ऐसी घटना थी जिसने आगे की घटनाओ को घटित होने के लिए वाध्य कर दिया प्रत्युत् यह कि यह परिवर्त्तन की ऐसी दिशा थी जो क्रमिक गत्यात्मकता में विकसित हो रही थी। यह है जिसे हम किसी वस्तु की अन्तर्निहित विशेपता अथवा गुण कहते है। ब्रिजमैन (Bridgeman) कहता है कि "हम एक सरल घटना अ को सरल घटना ब से कारण-कार्य रूप में सबद्ध नही प्राप्त करते, परन्तु उस आयोजना की सपूर्ण पृष्ठ भूमि उस में समाविष्ट होती है जिसमें कि घटनाए घटित होती है। इस लिए कारणता एक सापेक्ष कल्पना है क्योकि यह उस सपूर्ण आयोजना को ही आविष्ट करती है जिसमें कि घटना अस्तित्व में आती है।" किन्तु इस आयोजना में वह कारण-कार्य सम्वन्ध को जिस प्रकार प्रस्तुत करता है वह उचित प्रतीत नही होता, वह कहता है--"अ और ब के बीच का सम्बन्ध एक असम (Asymitricle) सम्वन्ध है जो कि इस की परिभाषा में ही निहित है। जहां कारण एक सुविधापेक्षी और बदलने वाला (Variable) तत्व है, कार्य वह है जो उस के अनुगत होता ह। इस के अतिरिक्त अ एक से अधिक घटनाओ का कारण हो सकता है और घटनाओ की एक पूर्ण शृखला को जन्म दे सकता ह।" यहाँ कार्य को एक निश्चित और अन्तिम मान लिया गया है, जो कि भ्रन्ति पूण है, क्योकि कार्य भी उतना ही सुविधापेक्षी और बदलने वाला (Variable) तत्व है जितना कारण। मान लीजिए कोई घटन घ[१] घ[२] की कारण है और घ[१] आरविट्रेरी है, अब घ[२] को हम कैसे जानेगें और किस घ[२] को कार्य कहेगे? घटना घ[२] को घटित होने में कुछ न कुछ समय लगेगा ही, चाहे वह कितना ही थोडा क्यो न हो और उस अवस्था में घटना की कुछ प्रथमावस्था और अन्तिमावस्था भी होगी, और इसी प्रकार घ[२] की भी। तो यहाँ हम किसे कारण कहें और किसे कार्य? यहाँ हमें कारण और कार्य का सुविधापेक्षी चुनाव नही करना होगा? इसी प्रकार कार्य के 'एक' और 'निश्चित' होने के लिए भी। मान लीजिए हम एक पत्थर शीशे पर मारते हैं और वह टूट जाता है। यहाँ वह पत्थर की चोट शीशे के टूटने, आवाज होने, शीशे के नीचे गिरने और टूटने

और आवाज करने तथा विशेष केसो में, शीशे के स्वामी के क्रुद्ध होने इन सब की कारण हो सकती है। वास्तव में यहाँ भी एक कार्यों की शृंखला है और हम सुविधापेक्षी कार्य का चुनाव करते हैं।

यहाँ एक और समस्या उठ खड़ी होती है, हम घ१ और घ२ के बीच कैसे विभाजन कर सकते हैं? क्या इन के बीच कोई कालिक अन्तर होता है? रसल कहते हैं—होता है। उन के अनुसार "क्योंकि कोई भी दो घटनाएँ एक दम एक दूसरे के पश्चात् नही हो सकती, इसलिए कुछ सीमित काल क दो कारण-कार्य घटनाओ के बीच अवश्य होना चाहिए। यद्यपि यह कुछ अलघ्य कठिनाइया उत्पन्न करता है।" वे इस की पुष्टि करते हुए कहते हैं—"यह स्पष्ट है कि प्रथम घटना के घटित होने का कोई समय होगा। इसलिए कारणता को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जाना चाहिए ' यदि घटना घ१ काल क१ पर घटित होती है तो यह घ२ से अनुगमित होगी।" कारणता एक सार्वभौमिक नियम के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत की जाएगी "यदि कोई घटना घ१ विद्यमान है तो घ२ भी उपस्थित होगी और इस अनुक्रम सम्बन्ध का यह नियम होगा कि जब भी घ१ अस्तित्व में आती है घ२ उस के पश्चात् अस्तित्व में आती है। किन्तु इससे पहले कि हम इसे कुछ निश्चितता देते हैं, हमें यह अवश्य निश्चित रूप से कहना चाहिए कि कितने काल बाद घ२ घटित होगी। इस लिए निम्न सिद्धान्त उद्भूत होता है।

"किसी भी घटना घ१ के उपस्थित होने पर घ२ का अविर्भाव होता है और यह इस प्रकार कि जब भी घ१ घटित होती है घ२ काल क के पश्चात् उसका अनुगमन करती है।"

किन्तु हमारे विचार में घ१ और घ२ को किसी क से विभाजित करना अतर्क सम्मत है, इसका अर्थ यह भी है कि घटनाएँ स्वतन्त्र इकाइयाँ हैं, जो कि न केवल इसलिए गलत मालूम पड़ता है क्योंकि ऐसी घटनाएँ कार्य-घटनाओ का कारण नही हो सकेंगी प्रत्युत इसलिए भी कि इस प्रकार हम प्रत्येक वस्तु अथवा शृंखला को इस काल क पर अनस्तित्व मानेंगे। जहाँ तक दूसरी आपत्ति का प्रश्न है, हम यहाँ इस पर विचार नही करेंगे, यहाँ हम केवल पहली आपत्ति पर ही अपना ध्यान केंद्रित करेंगे। अब मान लीजिए, प्रत्येक घटना स्वतन्त्र इकाई है और दो घटनाएँ क से पृथक्कृत है—तो क्या प्रथम घटना प्रारम्भ से अन्त तक एक समान रहती है? यदि उसमें कुछ अन्तर आता है तो वह अपने रूप में एक प्रवाह है इकाई नहीं, अथवा उसमें

पुन क से विभाजित छोटी घटनाएँ हैं। किन्तु जैसा कि ह्वाइट हेड ने प्रमाणित किया है, और जिसे रसल स्वय प्रशसित करते है, घटनाएँ इन्फेनेटेसिमल (असीमल्प) नही होती, उनकी कुछ कालिक सीमा होती है। दूसरे, यदि वह इकाई (Entity) भी है तो वह किस प्रकार दूसरी घटना की कारण हो सकती है? उसका प्रथम भाग कारण होगा या अन्तिम या सपूर्ण? यदि सपूर्ण-जैसा कि इकाई के लिए होना आवश्यक है, तो वह दूसरी घटना की कार्य किस प्रकार होगी? क्या दूसरी घटना वहाँ पहले से ही विद्यमान होगी और पहली घटना केवल उसको व्यापारित कर देगी? यदि वह पहले से ही नही होगी तो एक इकाई दूसरी का कारण कैसे बनेगी? और उसके पहले से वहाँ होने का अर्थ है, किसी भी नवीन घटना का न होना। इसके अतिरिक्त घ[1] जिसकी सीमा क से पहले ही समाप्त हो जाती है उस घ[2] का कारण कैसे हो सकती है जो क के पश्चात् प्रारम्भ होती है? और फिर प्रारम्भ और अन्त का प्रश्न भी निरर्थक है क्योकि घटनाओ का कारण-कार्य होना वैसा ही है जैसे पक्ति में कुछ गोलियाँ पिरो कर किसी बच्चे को कहना कि वह गिने। यहाँ प्रत्येक वाद वाली गोली की क्रम-सख्या अपने से पहले वाली की क्रम सख्या पर निर्भर करेगी और इसी अर्थ में एक घटना दूसरी की कारण होगी। इस प्रकार काल क को घ[1] और घ[2] के बीच रखना तर्क सगत प्रतीत नही होता। हमारे विचार में कारण-कार्य सबध निर्दिष्ट-निरन्तर-अनुक्रम-परिवर्तन (Continuous Successive change towards Certain direction) मात्र है और हम इस अनुक्रम में किन्ही भी दो घटनाओ को सुविधापेक्षया (Arbitrarily) चुन कर कारण-कार्य कह सकते है। कारण से कार्य का ज्ञान पूर्णत अनुमान पर आधारित है, जो कि दूसरे शब्दो में साधारणी-करण है, किन्तु इसीलिए हम कभी भी निश्चित रूप से भविष्य को निश्चित नही कर सकते। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निर्धारिततावाद एक तरह से अस्वीकार्य है, यद्यपि अतर्क सम्मत नहीं है।

किन्तु निर्धारिततावाद को हम एक दूसरे रूप में स्वीकार कर सकते है, जो कि हमारी कारण सिद्धान्त की विश्लेषणात्मक व्याख्या के विपरीत नही है। हमने अगले निबध में देखा है कि एक वस्तु अथवा पदार्थ की एकता आधार भूत कारणता (Intrinsic causality) पर आश्रित है, और हमने इस निवध में कारण-सिद्धान्त को निर्दिष्ट-निरन्तर-अनुक्रम—परिवर्तन कहा है, जिसका अर्थ है कि कारण कार्य में एक निश्चित सम्बन्ध है और परिवर्तन निर्धारित रूप में होता है, जिसे हमने वि$_4$ के रूप में पीछे देखा

था। हम जानते हैं कि दो युग्मज (Twins) एक दूसरे के समान या बहुत अधिक समान होते है, और हम यह भी विश्वास करते हैं कि यदि एक कप दूध दो भागो में बाँट दिया जाए और उसे पूर्णत समान परिवृत्ति में रख दिया जाए तो वह सदैव समान रहेगा। किन्तु एक कप के दूध के सम्बन्ध में अनुभव के आधार पर कहा ला सकता है। यद्यपि हम एक वार एक विशेष दूध के विकास को, अथवा परिवर्तन क्रम को देख कर दूसरे लगभग वैसे ही दूध के सम्बन्ध में भविष्य वाणी कर सकते है, किन्तु परमाणु जगत में यह कठिनाई अलंघ्य है। इसी प्रकार अतीतोन्मुख (Retrospetive) सभी प्रकार के अनुमानो में कठिनाई है। "मानलीजिए हम किसी रासायनिक नमक की रासायनिक प्रकृति को जानना चाहते हैं और इसे टेस्ट ट्यूब में डालकर इस पर विभिन्न प्रयोग करते हैं और परिणाम पर पहुँचते हैं कि यह सिलवर नाइट्रट (Silver nitrate) था। किन्तु हमारे इस प्रयोग के पश्चात यह सिलवर नाइट्रेट नही रहा। इस प्रकार जिस गुण (Property) को हम अनूमित करते हैं वह य होने का गुण नही प्रत्युत य 'रहे होने' का गुण है। इस कठिनाई को हम नाईट्रेट का कुछ अश अपने हाथ में वचा कर रख कर दूर कर सकते हैं, किन्तु परमाणु जगत में यह नही कर सकते। पोटाशियम में दो प्रकार के परमाणु होते हैं, यह हम जानते है, जिनमें एक रेडियो सक्रिय और दूसरा निष्क्रिय होता है। इनमें एक को हम $प^{अ}$ और दूसरे को $प^{न}$ कहते है। हम यह भी जानते हैं कि $प^{अ}$ का विस्फोट होना है और हम उसको पहले से ही वता सकते हैं। किन्तु हम विस्फोट के काल के सवध में कुछ नहीं जानते, सिवाय इसके कि यह लगभग एक अरब वर्ष तक किसी भी समय होगा। अब यदि हम देखते हैं कि यह काल क पर फटता है तो हम परमाणु को अतीतोन्मुखी विशेपण $प^{क}$ दे सकते हैं—यह मानते हुए कि इसमें काल क पर फटने की विशेपता सदैव विद्यमान थी।" (इडिंगटन)

यहाँ कठिनाई वास्तविक है, और जैसा कि इडिगटन वताता है भूत विज्ञान या गणित के अनुसार यह विशेपता परमाणु में पूर्व प्रत्यक्ष नही होती, इस लिए निर्धारिततावाद के लिए कोई स्थान नहीं है, किन्तु यदि हम कारण-सिद्धान्त और निर्धारिततावाद को घपला नहीं देते, तो हमारे लिए इसमें कोई चिन्ता की वात नही हे। मैं फूल सू घता हूँ, एक निश्चित आशा के साथ कि परिणाम घ्राणेन्द्रिय की केन्द्रानुगामिनी और केन्द्रापसारिणी धमनियो में अनुगत होगा, सभव है कि फूल सूँघने की बाह्य क्रिया

और सुगन्धि के अनुभव के बीच कोई अन्य घटना घटित हो कर उसको रोक दे, किन्तु इस व्याघात से पूर्व एक शृखला प्रारभ हो चुकी होगी और हमारा अभिप्राय उस शृखला से ही है, उस की अनुभूति या ज्ञान में परिणति से नही। अनेक बार यह छोटी सी वात समझने में भूल कर दी जाती है। रसल कहते हैं कि 'यदि कारण कुछ हैं ही तो उन्हे उनके कार्यों (Effects) से सीमित काल व्यवधान के द्वारा पृथक् किया जाना चाहिए ही। इस प्रकार कारण-कार्यों को उत्पन्न करता है जब कि वह स्वय समाप्त हो चुका होता है।' वह एक उदाहरण भी अपने इस कथन को स्पष्ट करने के लिए देते है—'मान लो, हम एक आना भार बताने वाली मशीन में डालते हैं और हमारे भार का एक टिकट ऊपर आ जाता है, किन्तु यहां घ[1] और घ[2] में एक निश्चित व्यवधान है, और सभव है कि उसी समय कोई बम्ब विस्फोट इस व्यवधान में गिर कर घ[2] के कार्य को चरितार्थ होने से रोक दे।' किन्तु यहाँ स्पष्ट है कि कारण और कार्य का चुनाव सुविधापेक्षी (Arbitrary) है क्यो कि कारण शृखला आना फेंकने से कही पहले मशीन को देखने और इच्छा करने से प्रारम्भ हो चुकी होती है और इस की समाप्ति कहा होती ह, यह नही कहा जा सकता, क्योकि टिकट निकल आने के पश्चात् टिकट मिलने वाले की विचार धारा की एक शृखला प्रारम्भ हो सकती है। सच तो यह है कि कार्य शृखला का प्रारम्भ भी इसी प्रकार और भी अधिक विस्तृत हो सकता है, सम्भव है वह व्यक्ति दुर्भाग्य शाली हो और कुछ दिनो से मशीन में आना फेंक कर अपने भाग्य की परीक्षा के लिए लालायित हो, किन्तु उसके पास इसके लिए एक आना न हो। इस प्रकार हमें कोई कारण दिखाई नही देता कि हम कारण और कार्य के बीच किसी व्यवधान की कल्पना करें जब कि कारण-कार्य इस प्रकार एक दम ऐच्छिक या सुविधापेक्षी है।

जैसा कि हम ने पीछे भी देखा था, हम कारण और कार्य को ऐच्छिक रूप ही चुन सकते है, क्योकि हम सपूर्ण कारण-शृखला को नही देख सकते, इस लिए कारण से कार्य का ज्ञान सैदव पहले देखे हुए, समान सम्बन्धो के ज्ञान पर निर्भर करता है, हम इस ज्ञान को अन्वय के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त Laws of psycological Association का ही एक रूप कहें तो भी उपयुक्त ही है। हम बिजली (तडित) की चमक देख कर गर्जन की प्रतीक्षा करते हैं। यद्यपि यह एक भौतिक व्यापार है, और सभव है हम गर्जन को कभी नही सुन सकें, क्योकि सभव है इस बीच में ही

शेर की गर्जन अथवा और कोई व्याघात इसको रोक दे, किन्तु हम पीछे तडित और गर्जन को अनुक्रम मे देखते रहे है, इस लिए हम अनजाने ही उसकी प्रतीक्षा करते है, यद्यपि इस विश्वास के साथ कि यह एक निश्चित भौतिक नियम है। कोई सदेहवादी यदि तडित की चमक देख कर गर्जन के अस्तित्व में तब तक सदेह करता है जब तक वह भी हमारे शरीर में एक कारण-शृखला को जन्म नहीं दे देती तो वह उपहासास्पद नहीं है, क्योकि सभव है विशेष चमक गर्जन से अनुगत ही न हुई हो, क्योकि यह उस किसी भी तडित-चमक के समान नही थी जिसे हम पहले देखते आए होते हैं, किन्तु जितने ही अधिक ऐसे सम्बन्ध हम देखते हैं उतनी ही अधिक मनोवैज्ञानिक अनुमान की भौतिक न्याय्यता दृढ होती जाती है। हमारे चार्वाक दार्शनिक न्याय के अनुमान प्रमाण को गलत बताते हुए यही तर्क देते थे कि किसी ने सारे धूम्र और अग्नियो को नही देखा और इसीलिए किसी के पास धूम्र को देख कर अग्नि के सद्भाव के अनुमान की कोई न्याय्यता नही है, किन्तु इस तर्क के ठीक होते हुए भी इस सम्बन्ध को स्वीकार किया जाना चाहिए, क्योकि यद्यपि यह चाहे सब कालो में अवश्यम्भावी नहीं हो, यह बहुत अधिक सभाव्य अवश्य होगा।

किन्तु धूम्र-अग्नि सम्बन्ध या तडित-गर्जन-सम्बन्ध कारण सिद्धान्त के बहुत उपयोगी उदाहरण नही हो सकते, क्योकि ये कभी भी हमारी इन्द्रियो की दिग्भ्रान्ति के कारण हो सकते हैं, हम ओस को धूम्र समझ सकते हैं और विना किसी तडित चमक के आकाश में चमक देख सकते हैं, फिर भी सामान्य अवस्थाओं में इस प्रकार के अनुमान न केवल उपयोगी और स्वाभाविक ही हैं प्रत्युत न्याय्य भी हैं क्योकि इस प्रकार से अनुमानो के आधार में साधारणी-करण की प्रक्रिया क्रियाशील होती है और कारण-कार्य सम्बन्ध का आधार साधारणी करण ही है, अन्यथा विशेष घटनाओ में अथवा विशेषो (Perticulars) में इस सिद्धान्त को लागू करने का कोई अर्थ नही है। यहाँ इडिंगटन प्रश्न कर सकते हैं कि साधारणी-करण में आप की क्या न्याय्यता है जब कि आप वही कारण वही कार्य (Same cause same effect) के विचार का विरोध करते है?' मै अपने अत्यधिक आदरणीय दार्शनिक से निवेदन करना चाहूँगा कि साधारणीकरण किसी भी तरह से विशेषों में पूर्ण समता का समानार्थक नही है और न कभी विशेषो में पूर्ण समता होती ही है। यहाँ फिर साधारणी करण ही है किन्तु विशेषो के सम्पूर्ण युगलो में समता के अर्थ में नही प्रत्युत विशेषो की सम्पूर्ण श्रेणी के सम्बन्धों में समता के अर्थ में। यह है

जो कारण सम्बन्ध में समता से अभिप्रेत होना चाहिए। मान लीजिए मैं एक फलङ्ग से एक वाली बाल मैंच देख रहा हूँ। पन्द्रह मिनट समय में मैं प्रत्येक हिट को ध्वनि से अनिवार्य रूप से अनुगमित देखता हूँ। अब मान लीजिए कि मैं इसके पश्चात एक हिट के बाद ध्वनि नही सुनता। इस विक्षेप के अनेक कारण हो सकते हैं—सभव है हिट इतनी धीमी हो कि ध्वनि हमारे श्रवण के सम्पर्क में न आई हो, सम्भव है ध्वनि-लहरो को वायु के किसी तीव्र झोके ने हम तक न पहुँचने दिया हो, सम्भव है कोई अन्य ध्वनि हिट की ध्वनि से अधिक तीव्र हो और सम्भव है कि हमारी श्रोत्रेन्द्रिय के सम्पर्क में ध्वनि-लहरो के आने पर भी मस्तिष्क केन्द्र का विशेष भाग किसी और क्रिया में सलग्न हो और आल्फेक्टरी (Olfactory) धमनी में व्यापारित कारण-शृखला उस केन्द्र को क्रिया शील न कर सकी हो। इसी प्रकार सम्भव है कि विषय और ज्ञान ततुओ के मध्य-स्थित अन्तराल में किसी घटना के कारण हम हिट को देख न सकें किन्तु उसकी ध्वनि सुन लें, बाह्य अन्तराल या व्यवधान के निर्बाध होने पर हमारी मानसिक अनुपस्थिति इसका कारण हो सकती है, ऐसी अवस्था में हम यदि हिट से ध्वनि अथवा ध्वनि से हिट को अनुमित करते हैं तो यह न्याय्य है और कारणवाद के सिद्धान्त के अनुकूल है, (१) क्योकि ऐसी अवस्था में हम अनुमान करते हैं कि यह किसी मध्यस्थ व्यवधान के कारण था (२) क्योकि साधारणी करण का आधार घटना विशेष न होकर सम्बन्ध-विशेष की प्रकृति है। इनमें प्रथम उत्तर ज्ञान मीमासा से सम्बन्ध रखता है, जिसकी कुछ चर्चा हमने अगले निबन्ध में की है। क्या इस अनुमान का अर्थ किसी भी प्रकार से निर्धारिततावाद या 'वही कारण-वही कार्य' हो सकता है ? नही, इसका केवल इतना ही अर्थ है कि मैं हिट-ध्वनि सम्बन्ध का साधारणी करण कर रहा हूँ, जिसका विशेष हिट और ध्वनि से कोई सम्बन्ध नही है। इस प्रकार कारणता अपनी पूर्ण न्याय्यता रखती है, चाहे रसायण शास्त्री भविष्य वक्ता न भी हो सके।

जहाँ तक नेपलेस की ईश्वरीय प्रतिभा का प्रश्न है, जो विश्व की एक क्षण पर सम्पूर्ण स्थिति या अवस्था को जान लेने पर भविष्य के किसी भी क्षण पर विश्व की अवस्था को जान सकती है, हमें इस सम्बन्ध में कुछ निश्चित या अन्तिम बात कहने की आवश्यकता नही है, हमारे लिए जिस बात का महत्व है वह यह है कि क्या भूत या भविष्यत हमारे लिए उसी प्रकार ज्ञेय हो सकते है जिस प्रकार वर्तमान ? जहाँ तक कारणवाद का

सम्बन्ध है, उसके लिए भूत और भविष्यत में कोई अन्तर नही है। हम यह निश्चय के साथ कह सकते हैं कि "दो समान वस्तुए समान परिस्थितियों में रखने पर भूत और भविष्त में सदैव समान रहेगी, जब भी हम उनका परीक्षण करें।" यहाँ हम जीज और लेपनेस से उसी आदर का दावा कर सकते हैं जो वे अपने ईश्वर के लिए रखते हैं, किन्तु यहाँ हम गाणितिक नियमो से पूर्व निर्धारित व का पूर्व कथन नही करते हैं, प्रत्युत दो समानान्तरो के बीच एक सम्बन्ध की प्रकृति बता रहे है।

कारण से कार्य और कार्य से कारण को अनुमित करने की प्रवृत्ति विज्ञान और अनुभव दोनो में वद्ध मूल है। भूत वैज्ञानिक तारो की किरणो के रगो से उनकी वनावट को अनुमित करते है, जेनेटिस्ट जेन (Gen) को उसकी अभिव्यक्ति से अनुमित करते हैं, और यदि एक कदम और आगे वढा जाए तो, हम अस्तित्व मात्र को विभिन्न शारीरिक कारण शृखलाओ से अनुमित करते है। उस व्यक्ति से, जो विशेष केसो में प्रमाण की माग कर रहा हो, हम उसके जन्म का प्रमाण-पत्र माग सकते हैं, उसकी पैतृकता को ही चेलेंज किया जा सकता है। इसमें सदेह की कोई गुजाइश नही है कि एक मनुष्य का पिता मनुष्य ही हो सकता है, इसलिए यद्यपि पूर्ण साधारणीकरण चाहे कुछ केसो में समव न हो, और हमारे यत्र परमाणु के व्यवहार में काफी अनिश्चितता दर्शाते हैं, तो भी (सभाव्यवाद के समर्थको से शव्द उधार लेते हुए) यदि हम यह स्वीकार करते हैं कि उपयुक्त प्रकार का निर्धारितता वाद वहुत अधिक सम्भाव्य है तो यह अनुचित नही होगा। इस प्रकार हम एक ओर इढिगटन की आपत्तियो को रास्ता देते है और दूसरी ओर कारण सिद्धान्त का समर्थन कर सकते है, क्योकि कारण-कार्य सवधों को स्वीकार करके हम आवश्यक रूप से भविष्य वक्ता होने का दावा नही करते, किन्तु दूसरी ओर यदि एक वार किन्ही विशेष रासायनिक क्रियाओं के कारण दूध फट जाता है, हम वडी सुविधा से यह अनुमान कर सकते है कि वैसी ही अवस्थाओ में यह पुनः फटेगा। यह 'वही कारण-वही कार्य' को स्वीकार करना नहीं है, यह "समानान्तर परिवर्तन" के नियम को स्वीकार करना है। भूगर्भ वैज्ञानिक जव शिलाओ का काल निश्चय करते हैं और भूत वैज्ञानिक जव थर्मोडिनेमिक्स के सिद्धान्त को स्वीकार करते है तो वे इसी नियम के अनुसार कार्य करते है।

× × ×

हमारे विचार में, अव हम कारण सवधो के वारे में कुछ समझ रहे है

श्रौर इसके प्रकाश में स्वतन्त्रेच्छा की समस्या का अध्ययन हम कुछ अधिक वैज्ञानिक दृष्टि कोण से कर सकते हैं। हम यह मानने में सहमत है कि विश्व की घटनाओ में कुछ नियमित कारण-सबध हैं। इसलिए हम सुविधा पूर्वक इस परिणाम पर पहुँच सकते है कि वैज्ञानिक-भौतिक-विश्व में स्वतन्त्रेच्छा जैसी कोई चीज नही है। कोई भी परमाणु अपना रास्ता, अपनी इच्छानुसार चुनने में स्वतत्र नही है, क्योकि यहाँ कोई विकल्प सभव प्रतीत नही होता, इसका व्यवहार कुछ निश्चित नियमो के अनुसार शासित होता है।

किन्तु इस सिद्धान्त को लागू करने में तब कुछ कठिनाई प्रतीत होती है जब हम पदार्थ की एक दूसरी श्रेणी के सपर्क में आते है, जिसे हम जीवित पदार्थ कहते हैं। यह कठिनाई तब और भी बढ जाती है जब यह परीक्षण मनुष्य पर किया जाए। यह बडी सुविधा से प्रमाणित किया जा सकता है कि मनुष्य किन्ही बाहरी शक्तियो अथवा नियमो के आधीन अपनी इच्छाओ के शासित होने को स्वीकर नही कर सकता, वह अपनी स्वतन्त्रेच्छा से कार्य करना पसद करेगा। इसलिए स्वतन्त्रेच्छा को प्राय सभी स्वीकार करते है। यदि यह सत्य है तो पदार्थ और मन अथवा निर्जीव पदार्थ और जीवित पदार्थ में अन्तर के क्या आधार हो सकते है ? क्या इनमें कुछ आधार भूत अन्तर है अथवा यह केवल जीवित पदार्थ के घटक तत्वो के मिलन की विशेषता मात्र है ? यदि हम दूसरे अभ्युपगम को स्वीकार करते है तो इस का अभिप्राय है कि जीवित पदार्थ के परमाणु भी उसी प्रकार कारण-सिद्धान्त के विषय है, क्योकि वे जड पदार्थ के परमाणुओ से भिन्न नही है। इस प्रकार, मनुष्य या पशु किसी की भी स्वतन्त्रेच्छा का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता। किन्तु इडिगटन सम्भाव्यता के सिद्धान्त (Law of Probability) के धुंधले प्रकाश में स्वतन्त्रेच्छा की पुन स्थापना के लिए टटोलते है। वे कहते है "यदि हम अपने शरीरो के क्रिया-व्यापार को ऐसे कुछ मस्तिष्क केन्द्र के परमाणुओ की खूंटी क्रिया से सबद्ध करते है जिन का व्यवहार पूर्ण निर्धारित नही है, तो समस्या सरल हो जाती है क्योकि स्वतत्र परमाणु व्यवहार में बहुत अधिक अनिर्धारितता रखते हैं। मेरा अपना दृष्टि कोण है कि 'चेतना का केन्द्र निर्जीव सिस्टम से इस बात में भिन्न है कि यह अपने व्यवहार में अत्यधिक अनिर्धारितता या स्वतन्त्रता रखता है—केवल अपनी उस प्रकृति के कारण, जो एक दम पदार्थ से भिन्न है, जिसे हम अहम् (Ego) कह सकते हैं।"[1]

[1] New Pathways in Science

यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि इडिंगटन अपनी कल्पनाओ को उस से कही अधिक ढील दे रहे हैं जितनी वैज्ञानिकता की सीमा में उपयुक्त हो सकती है। अभी तक कोई भी ऐसे प्रायोगिक या तार्किक (Logical) आधार हमारे पास नहीं हैं जिन से यह प्रतीत होता हो कि सजीव पदार्थ अथवा 'चेतना-केन्द्र' के परमाणु इडिंगटन की इच्छानुसार कार्य करते हो, अर्थात् जो अपने व्यवहार में अधिक अनिर्धारितता प्रदर्शित करते हो। एक वैज्ञानिक के लिए यह वहुत अधिक है कि वह केवल कल्पित सभावनाओ के आधार पर आत्मा या चेतना की वकालत करे। यहाँ इडिंगटन यह प्रमाणित करते हैं कि कोई अपदार्थिक तत्व—चेतना अपनी स्वतन्त्रेच्छा की चरितार्थता के लिए परमाणुओ की अनिर्धारित प्रकृति का लाभ उठाती है। किन्तु यह अन्तर्विरोध-पूर्ण है, जैसा कि इडिंगटन स्वय अन्यत्र कहते हैं। और दूसरा दोष आधार भूत है जो कि ऐसे सव दर्शनो में मूलित है जो किसी भी प्रकार की द्वैतता का समर्थन करते हैं। *वैसे इडिंगटन अपने आप को सम्भवत* द्वैतवादी नही मानते। द्वैतवादी दार्शनिक पदार्थ और चेतना के किसी मिलन-विन्दु की कल्पना करते हैं। जिस पर कि हम (कोई तीसरा अस्तित्व ?) चेतना का अनुभव करते हैं। किन्तु यह एक दम अस्पष्ट, कल्पित और निरर्थक है, क्योकि यदि चेतन कोई ऐसी वस्तु है जो पदार्थ से एक दम स्वतत्र है, और जैसा कि इसे होना भी चाहिए, और इसी प्रकार पदार्थ भी, तव चेतना और पदार्थ का कोई सम्मिलन विन्दु नहीं हो सकता, और यदि पदार्थ और चेतना एक दूसरे के लिए गम्य है तो वे तव क्या होगे जव एक दूसरे से पृथक् होगे ? और फिर वे क्या नियम है जिन के अनुसार वे मिलते हैं ? यदि चेतना पदार्थ के विना भी चेतन है तो वह पदार्थ के सम्पर्क में क्यो आती है ? यदि वह पदार्थ के सपर्क के विना चैतन्य को चरितार्थ नहीं कर सकती, तो वह चेतना कैसे कही जा सकती है ? यदि उसके सपर्क से निर्जीव पदार्थ सजीव होता है, तो क्या चेतना कोई ऐसी रासायनिक शक्ति रखती है जिस से निर्जीव पदार्थ में कुछ विशिष्ट रासायनिक क्रियाएँ घटित हो कर उसे सजीव वना देती हैं ? ये ऐसे प्रश्न हैं जो सदैव उत्तर-रहित रहे हैं। क्योकि 'चेतना' कुछ ऐसा तत्व है जो पदार्थ नही है और पदार्थ में कुछ ऐसे गुण हैं जो चेतना में नहीं है इसलिए चेतना पदार्थ को अनुभव नही कर सकती और पदार्थ कभी चेतना के लिए अनुभूति नही रख सकता। जीवित पदार्थ के परमाणुओ में अधिक निर्धारितता की कल्पना भी अन्तर्विरोध पर्ण है, जिसे इडिंगटन ने स्वयं अन्यत्र स्वीकार किया है। वे कहते हैं—"अभ्युपगम अ का दोष इसमें था

कि यह अ-ससबन्ध अथवा चास के सिद्धान्त के साथ, जीवित पदार्थ के व्यवहार को भूत विज्ञान के सामान्य नियमो से निर्धारित स्वीकार करती थी और फिर आगे फिर नान् चास फैक्टर—इच्छा से उसे निर्धारित अथवा शासित मानती थी, किन्तु हम व्यवहार को एक साथ ही चास और नॉ-चास अथवा ससम्बन्ध और अ-स-सम्बन्ध (Correlation and Non correlation) से निर्धारित नही मान सकते ।'(फिलासफी ऑफ फिजिकल साइंस)

यह उद्धरण बताता है कि कैसे वैज्ञानिक आज तर्क शास्त्री बन रहे है, और यह विज्ञान के लिए एक शुभ-चिह्न है, किन्तु यहाँ इडिंगटन बहुत आगे बढ गए प्रतीत होते है । यहां यह स्पष्ट है कि इडिंगटन ने दूसरे उद्धरण में आधार भूत असगति को कुछ धुंधला कर दिया है, किन्तु वास्तव असगति उसी प्रकार विद्यमान है । यह ठीक है कि अभ्युपगम अ अन्तर्विरोध पूर्ण है, किन्तु अभ्युपगम व केवल भाषा के मार्जन से सगत नही हो जाती । यद्यपि उनके परिणाम तर्क सगत है किन्तु फिर भी वे ठीक नही भी हो सकते, क्योकि वे ऐसे आधारो पर आधृत है जो अतर्क सम्मत और भ्रान्त है । इडिंगटन का दूसरा उद्धरण वास्तव में पहले से कही अधिक अभ्युपगमिक है । यह समझना कठिन है कि जीवित पदार्थ के परमाणुओ को इडिंगटन किन आधारो पर लॉ ऑफ नॉन् चास से शासित मानते हैं, जब कि वे भूत विज्ञान में लॉ ऑफ प्रॉबेबिलिटी अथवा लॉ ऑफ चास का घोर समर्थन करते है ।

जहाँ तक भूत विज्ञान का सम्बन्ध है, आईंस्टीन तीव्रता से, विज्ञान में चास फैक्टर का विरोध करते है । वे कहते है--"अनिर्धारितावाद पूर्णत अतर्क सम्मत कल्पना है . यदि मैं कहूँ कि परमाणु का औसत जीवन मान इस अर्थ में अनिर्धारित है कि वह कारण-सम्बन्ध से स्वतत्र है, तो मैं एक दम मूर्खता पूर्ण बात कर रहा हूँ।" और दूसरे क्वाटम्फिजिक्स में सभाव्यता का सिद्धान्त (Law of Probability) भी परमाणुओ को मटर गश्ती के लिए बहुत विस्तृत क्षेत्र नही प्रदान करता, वह अनिश्चितता इतनी निश्चित और आनुपातिक है और उसको भी समाप्त करने की इतनी सभावनाए है कि उससे किसी प्रकार की अटकल बाजी व्यर्थ है । यही कारण है कि इडिंगटन ने जीवित पदार्थ के परमाणुओ के लिए या तो पूर्ण स्वच्छन्दता की माग की अथवा पूर्ण निश्चितता की, जिससे तथा कथित चेतना उनसे अपनी स्वतत्रेच्छा के अनुसार काम ले सके ।

\+ \+ \+

जैसा कि हम पीछे कह आए हैं, हम कारण से कार्य या कार्य से कारण का निर्धारण नही कर सकते क्योकि घ१ और घ२ केवल इस अर्थ में कारण-कार्य हैं कि ये हमारी सुविधा-सापेक्ष हैं, अन्यथा कोई कारण नहीं कि इनके बीच का कोई भी क्षण या विन्दु (Point and instant) क्यो कारण-कार्य नही कहा जाए। और यदि हम यह मान लेते हैं तो यह स्पष्ट है कि हम घ१ और घ२ के बीच की विन्दु-शृखला को नही गिन सकते, क्योकि यह असीम है। यह आवश्यक नही कि हम इन विन्दुओ को विन्दु या क्षण कहें (यदि बिन्दु या क्षण विवादास्पद शब्द हैं) हम इन्हें मात्र अवस्थाए भी कह सकते हैं। इन अवस्थाओ की असीमता को भी चेलेंज किया जा सकता है, जैसा कि असीमल्प (Infinitesimal) को लेकर दार्शनिको में विवाद है, किन्तु अवस्था को एक काल्पनिक अस्तित्त्व मानते हुए हम उसकी परिभाषा कुछ इस प्रकार कर सकते हैं—अ' अ'' अ''' अ^{न} यदि एक घटना घ१ है तो अ' से अ^{न} तक यह विभिन्न अवस्थाओ में से हो कर गुजरी है और कोई भी दो अवस्थाए अपने से छोटी अवस्थाओ का समूह हैं। इसलिए हम इन आनुक्रमिक (Successive) अवस्थाओ को न जान सकने के कारण अ' पर अ^{न} का और अ^{न} पर व का निर्धारण नही कर सकते। इसलिए साधारणीकरण की व्यापकता को मानते हुए हम कारण-कार्य सबंध ज्ञान की प्रकृति को फिर दुहराएगे —दो सर्वथा समान क्रम समान परिस्थितियो में सर्वदा समान अवस्थाओ में से बीतेंगे, यदि कभी इनमें भिन्नता उत्पन्न हो जाती है तो इसका कारण उन अन्तर्निहित विशेषताओ को समझा जाएगा, जो इन स्पष्ट रूप से समान क्रमो में विद्यमान होने पर भी ज्ञात नहीं थी, और यह भूत विज्ञान के लिए उतना ही सत्य है जितना जेनेटिक्स [Genetics] के लिए। यहाँ हमें एक बात स्पष्ट करनी चाहिए. कि हमारा इस साधारणीकरण का अर्थ रसल के उस साधारणीकरण से सर्वथा भिन्न है जिसे वह "अनुक्रम की नियमित आवृत्ति" Observed Uniformities of Sequence कहते हैं।

अब हमारे लिए मुख्य समस्या इन सबधो को जीवित पदार्थ और मन

"Indeterminism is quite an illogical concept .. if I say that the average life span of such an atom indeterminaet in the sense of not being caused then I am talking non-sense.

पर लागू करना रह जाती है। हमने 'पदार्थ और मन' निबध में जीवित और जड पदार्थ तथा मन में एकता का प्रतिपादन किया है, इसलिए यहाँ पुन उस प्रश्न को उठाने की आवश्यकता नही है, किन्तु कारण-कार्य सबध को लेकर इस प्रश्न पर हमें पृथक् विचार करना होगा।

जैसा कि हमने देखा था, इडिंगटन जीवित पदार्थ के सम्बन्ध में सोचते हुए मस्तिष्क-केन्द्र में भिन्न प्रकार के परमाणुओ की और फिर अहम् या चेतन-तत्व की कल्पना पर पहुँच जाते है। इसका मुख्य कारण उनकी दृष्टि का बहुत अधिक विकसित जीव-मनुष्य पर केन्द्रित होना है। किन्तु यदि हम मन और जीवित पदार्थ की प्रकृति पर वैज्ञानिक अनुसधान के लिए पहले छोटे प्राणियो और जेन अथवा कोष [Gene or cell] को लें तो भ्रान्ति की सम्भावनाए बहुत कम रह जाएगी। मनुष्य पर दृष्टि केन्द्रित करके मन के सबध में बहुत सी ऐसी धारणाए और दर्शन प्रणालिया विकसित हुई हैं, जो हमारे विचार में निराधार है। एक बार मेरे एक मित्र ने कहा कि "सम्भवत केंचुए और मिट्टी में कोई आधार भूत अन्तर नही है, किन्तु मनुष्य और केंचुए में आधार भूत अन्तर प्रतीत होता है।" सम्भवत उस समय वह सहज-भावना से उत्प्रेरित होने के कारण ही ऐसा कह रहा था, नही तो वह प्राय ही कहा करता है कि मनुष्य और एक कोष वाले प्राणियो में कोई आधार भूत अन्तर न हो कर केवल 'समय' का अन्तर है। किन्तु बर्गसाँ यह मानते हुए भी कि मनुष्य और अमोयबा में केवल समय का अन्तर है, काल [Time] की परिभाषा को रहस्यमय बना देते है और द्वैतवाद की वकालत करते है। यह आश्चर्य की बात है कि जब कि वे विकास पर काल को लागू करते हैं तब अमोयबा और मनुष्य में मौलिक अन्तर नही करते, किन्तु जब आत्मतत्व की वकालत करने लगते हैं उस समय अपने विचार की पुष्टि के लिए जो तर्क देते हैं वे केवल मनुष्य के उलझन पूर्ण व्यवहार पर ही केन्द्रित रहते है। जड और जीवित पदार्थ में भेद बताते हुए वे कहते है—"किन्तु हमने जो तर्क प्रस्तुत किये है उनसे स्पष्ट है कि प्राणी, जिन्हें कि प्रकृति ने व्यष्टित्व प्रदान किया है (Closed off by nature) जड पदार्थ से, जिसे हमारा विज्ञान पृथक् [Isolate] कर लेता है, भिन्न है। ये तर्क कम विकसित प्राणियो को दृष्टि में रखते हुए कम ठोस प्रतीत होते हैं, हम यह स्वीकार करते हैं, किन्तु जब हम ऐसे प्राणियो पर जो कि शैशव से वार्धक्य तक एक निश्चित परिवर्तनक्रम (Transformation) में से हो कर बीतते हैं, दृष्टि पात करते है, हमारे तर्क अधिक ठोस प्रतीत होते हैं।" (Creative Evolution)

किन्तु जैसा कि हमने देखा है और आगे और भी निश्चित रूप से देखेंगे, ये तर्क ठोस आधार पर नही हैं। वर्गसा अपनी सुरक्षा का खूब प्रवन्ध करते हैं अवश्य, किन्तु यह किले वन्दी कार्डो के घर से अधिक सुरक्षित नही है। वे कहते हैं काल प्रवाह (Duration) जितना ही अधिक अपने चरण-चिह्नो से जीवित प्राणी को अकित करता है उतना ही अधिक प्राणी मात्र-यत्रिकता से, जिसे काल सक्षत नही करता, भिन्न होता है।" किन्तु काल क्या है और यह जड और 'कम जीवित' को अपने क्षतों से क्यो उपकृत नही करता ? और दूसरे, मनुष्य किसी भी तरह से अमोयवा से अधिक व्यष्टित्व पूर्ण Closed off) नही है। यह ठीक है कि मनुष्य अमोयवा से 'अधिक मजीव' और कम यात्रिक है किन्तु यह अन्तर केवल उलझन (Complexity) का है। विज्ञान मनुष्य के शरीर को अमोयवा से भिन्न करके नही देखता, उसे वर्गसा के समान काव्यात्मक रहस्यवाद में कोई दिलचस्पी नही है। कुछ कवि वैज्ञानिक पर दोषारोपण करेंगे कि वह फूल को उसकी 'पूर्णता' में नही देखता, जो कि रगमय, सस्मित और मधुर है और उसे वुरा भला कहेगे कि वह नीलम पर जडित मुक्ताओ जैसे तारकित नभ को एक ऐसा शून्य वताता है जिसमे करोडो-अरवो अग्नि-पिड, जो कि पृथ्वी से करोडो गुणा वडे हैं, घूम रहे हैं। किन्तु क्या यह उसका दोप है ?

यह ठीक है कि जीवित और निर्जीव पदार्थ में अन्तर है जो कि जीवित पदार्थ और निर्जीव पदार्थ की अपनी श्रेणियो में पाए जाने वाले अन्तर से अविक स्पष्ट और भिन्न है, किन्तु यह अन्तर आधार भूत और मौलिक प्रतीत नही होता, क्योकि जेनेटिस्ट और जीव वैज्ञानिक (Biologist) कुछ निश्चित नियमो को जो, कि अमोयवा मे मनुष्य तक समान रूप से लागू होते हैं, प्राप्त करते है और ये नियम भूत विज्ञान और रसायण शास्त्र से मौलिक रूप से भिन्न नहीं हैं। जेनेटिक्स में एक्सकिरणों तथा दूसरी कास्मिक किरणो और रासायनिक द्रव्यो के प्रयोग ने और शरीर-विज्ञान में रासायनिक द्रव्यो के प्रयोग ने निश्चित और प्रत्याशित परिणामो द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि जीवित पदार्थ और जड पदार्थ में कोई आधार भूत अन्तर नहीं है और जीवित पदार्थ के परमाणुओं के नियन्त्रण (Correlation) के लिए किसी आत्म-तत्व की आवश्यकता नही है।

यह ठीक है कि हम कोप (Cell) के घटन (Compositson) को अच्छी तरह से नही जानते ज्ञात घटक-तत्वो को ज्ञात परिमाण में मिला कर हम जीव कोप नही प्राप्त कर सकते(यद्यपि कुछ दिन हुए, अमरीकन रिपोर्टर

में सूचना आई थी कि एक अमरीकन वैज्ञानिक ने प्रयोगशाला में 'पहला प्राणी' तैयार कर लिया है, किन्तु यह सूचना अभी पुष्ट नहीं है—यद्यपि इसमें कुछ भी आश्चर्य जनक बात नहीं है)। एक कोष के मुख्यत तीन भाग होते हैं—मैम्ब्रेन (बाहरी बारीक पर्दा), साइटोप्लास्म (पर्दे के अन्दर का रासायनिक पानी) और न्यूक्लियस (पानी के बीच में सेल-केन्द्र)। इन भागो के आगे उप विभाग है। साइटोप्लास्म और न्यूक्लियस में हजारो कण होते हैं, न्यूक्लियस के कणो को जेन कहते हैं। ये जेन प्रोटीन-कण होते है जो कि तागे के समान वस्तु, जिन्हें क्रोमोसोम (Chromosom) कहते है, लिपटे रहते हैं। ये जेन ही सामान्यत जीवन के ज्ञात आधार हैं। जेन अपनी वैयक्तिक और सापेक्ष (क्रोमोसोमो में अन्य जेनो की सापेक्ष स्थिति के अनुसार) विशेषताएँ रखते हैं। "अक्लेद्य आत्म तत्व युक्त" प्राणी-मनुष्य के और दूसरे विकसित प्राणियो के भी, कोष श्रम-विभाजन (Divsion of labour) के अनुसार विभक्त हो गए है, जब कि अविकसित या बहुत कम विकसित प्राणियो के कोष परिवृत्ति के प्रति प्रतिक्रिया की, तथा अन्य प्रकार की सब विशेषताएं अविकसित रूप में सजोए रखते हैं। विकसित प्राणियो में यह अविकसित कोष चार मुख्य भागो में विभक्त हो जाता है—जनन कोष, प्रतिक्रिया कोष (Receptor cell), पेशीय कोष (Muscel cell) तथा गेंग्लियन सेल (Ganglion cells)। ये कोष आगे अपने कार्य की प्रकृति के अनुसार विभिन्नता रखते हैं। यद्यपि हम कोष के घटन को आज अच्छी तरह से नही जानते, किन्तु जेनेटिस्टो और शल्य वैज्ञानिको (Anotomists) ने यह प्रमाणित कर दिया है कि इस सजीव इकाई का व्यवहार उतना ही नियमित और भौतिक हैं जितना किसी भी निर्जीव पदार्थ का।

जेनेटिक्स में रासायनिक द्रव्यो और कॉस्मिक किरणो के प्रयोग बर्गसानियन वाईटलिज्म के लिए कोई स्थान नही रहने देते। यहाँ इडिगटन आपत्ति करेंगें कि 'यह मात्र सिलेक्टिव साब्जेक्टिविज्म[1] Selective Subjectivism का ही उदाहरण है, क्योकि उक्त परिणाम हमारे Subjectively equipped यत्रो पर अकित प्रतिक्रियाए मात्र हैं। इसलिए हमारे प्रयोग

---

[1] सिलेक्टिव साब्जेक्टिविज्म को समझाने के लिए हम इडिगटन की ही एक उपमा यहाँ उद्धृत किये देते हैं—हम सागर में एक जाल फैलाते है और उसमें कुछ मछलियाँ अटक जाती हैं, हम उन को मछलियाँ कह देगें, किन्तु हमारे जाल के सुराखो से जो छोटी है, वें कभी हमारी पकड में

विषयों की तद्गत प्रकृति Objective Nature का उद्घाटन नहीं करते। इन प्रयोगों से हम केवल ज्ञानेन्द्रियो पर अंकित भाषा को स्मृति और विश्वास इत्यादि से और भी विषयीगत Subjective बना कर पढते हैं। इसलिए विजयगत पदार्थ ObjectiveReality वह नहीं है जो हमें परोक्ष या अपरोक्ष सम्पर्कसे प्रतीत होता है।' हम इडिंगटन के साथ पूर्णत' सहमत हैं, जब वे यह कहते हैं, किन्तु तब इडिंगटन ही विषयो के तद्गत यथार्थ को जानने का दावा कैसे कर सकते हैं? विषयों का ज्ञान सदैव अपूर्ण और विषयीगत प्रकृति का ही हो सकता है, हमारे ज्ञान की यह आधार भूत प्रकृति है, किन्तु प्रायोगिक ज्ञान में यह सुविधा है कि वह सब के लिए सामान्य होता है। और दूसरे, यदि हमारे यत्र दो विषयो की उपस्थिति में समान रूप से प्रतिक्रिया करते हैं हम सुविधा से यह परिणाम निकाल सकते हैं कि ये विषय उस पहलू में समान हैं जिस पहलू को हमारा यत्र अंकित करता है, यद्यपि हम उस पहलू की स्वलक्षण प्रकृति को जान नही सकते। यदि दो गाडिया समानान्तर पर चल रही हो, तो हम उन की स्पीड को न जानते हुए भी कह सकते हैं कि 'इन दोनो की स्पीड एक ही है।' यही थर्मामीटर और माइक्रोस्कोप से प्राप्त ज्ञान के लिए भी सत्य है। हम गर्मी और सर्दी इत्यादि को उन के स्वलक्षण रूप में नहीं जान सकते और थर्मामीटर पर अंकित डिग्री हमारी गर्मी की अनुभूति के समान भी नही है, और ये दोनो ही विश्व में घटित होने वाले उस विशेष व्यापार के समान नहीं हैं जिसे हम गर्मी कहते हैं—हम केवल कारण शृखला के एक छोर को एक विशेष प्रकार से जानते हैं, जो छोर शृखला की कुछ पीछे की कडियो से, जिन्हें हम विषय गत कारण शृखला की कडियाँ कह सकते हैं, भिन्न प्रकृति का है। इसी प्रकार हमारे ज्ञान और इस छोर की प्रकृति में भी कोई समता नही है, किन्तु यदि थर्मामीटर किन्हीं दो क्षणो पर एक ही डिग्री को अंकित करता है तो हम कह सकते हैं कि इन दो क्षणो पर विश्व एक विशेष पहलू में समान अवस्थाओ में था। इसका अर्थ यह नहीं कि हम केवल प्रायोगिक ज्ञान को ही विश्वसनीय ज्ञान समझते हैं अथवा इस ज्ञान को उत्तम प्रकृति का ज्ञान समझते हैं, किन्तु जहाँ तक संभव है, इसे हमारे अप्रायोगिक ज्ञान का आधार होना चाहिए।

नहीं आएंगी और हम उनका समावेश अपने ज्ञान में नही कर सकेंगे, इस प्रकार हमारा सागर के प्राणियो का ज्ञान सब्जे-क्टिव सिलेक्टिविज्म कहा जाएगा।

बर्गसा विज्ञान और गणित को (वास्तव में सभी प्रकार की विश्लेषणात्मक प्रणाली को) ज्ञान के साधन के रूप में अनुपयुक्त समझता है, और प्रातिभ ज्ञान (Intuition) का समर्थन करता है जो कि प्रकृत्या ही सश्लेषणात्मक है। उसके विचार में कालिक विकास सश्लिष्ट, निरवच्छिन्न और अतएव प्रतिपल नवीन (Noval) है, और इसकी इस नवीनता के सौंदर्य का उपभोग प्रातिभ से ही हो सकता है। वह काल की इस निरवच्छिन्नता को ही स्वतत्रता का आधार बताते हैं। यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होना चाहिए कि स्वतत्रेच्छा का काल की नूतनता और निरवच्छिन्नता (Real duration) से कोई सम्बन्ध नही है, जैसा कि हम आगे देखेंगे।

मनुष्य को छोडते हुए, विकासवाद के जीव वैज्ञानिक सिद्धान्त में कोई भी ऐसी चीज नही है, जो स्वतत्रेच्छा के बर्गसॉनियन विचार के समीप बैठ सके। अमोयबा और बन्दर के व्यवहार में एक मात्र भिन्नता उनकी परिवृत्ति का उपभोग (Manipulate) करने की सामर्थ्य मे है। पक्षी घोसल बनाते हैं, यह परिवृत्ति का मैनीपुलेशन (Manipulation) है। कभी-कभी ये अपने व्यवहार में बडे चतुर और बुद्धिमान प्रतीत होते हैं, किन्तु वे कितने अधिक यान्त्रिक होते है, यह बडी सुविधा से देखा जा सकता है, यहाँ तक कि बन्दर भी बहुत अधिक यान्त्रिक होता है। यह ठीक है कि हम यह निश्चित नही बता सकते कि अमुक बन्दर प्रहार करने पर प्रति प्रहार करेगा या भाग जाएगा, किन्तु यह चुनाव उसके भी अहम् की स्वतत्रेच्छा पर अवलबित नही है, यह उसकी शारीरिक अवस्था और प्रकृति पर निर्भर करता है, जो प्राकृतिक नियमो के अनुसार शासित होते हैं। पॉवलॉव का निर्धारित प्रतिक्रिया (Conditioned Reflex) का सिद्धान्त और प्रतिलिपि (Trace) का सिद्धान्त भी प्राणी व्यवहार में इसी प्रकार की निर्धारितता की पुष्टि करता हैं। आज हम मस्तिष्क में स्मृति-चिन्हो (Traces) और प्राणी व्यवहार के शारीरिक आधारो के सबन्ध में बहुत कम जानते है, इसलिए जेनेटिस्ट और जीव वैज्ञानिक आज सब कुछ विस्तृत रूप में नही बता सकते, किन्तु विशुद्ध तर्क और प्रयोग, दोनो दृष्टियो से, हमारे विचार में, मानसिक प्रक्रिया का आधार शरीर को मानना सुविधा जनक है।

मनुष्य अपनी इच्छाओ में स्वतत्र है, इसे प्राय सब स्वीकार करेंगे, किन्तु वास्तव में यह भी सदैव यान्त्रिक रूप से ही कार्य करने में प्रवृत्त होता है और जब कभी उसे भिन्न प्रकार से कार्य करना पडता

है, वह एक तनाव और भार का अनुभव करता है। जैसा कि हमने पिछले नवधो 'फिनो जेनेटिक्स और व्यक्तित्व' तथा 'प्रवृत्ति की प्रकृति'—में देखा है, मनुष्य की अनुभूतिया, विचार और व्यवहार आनुवशिकता (Heredity) और परिवृत्ति के सामान्य क्षेत्र (Common field) है और वह उससे कही अधिक यान्त्रिक और प्रवृत्यात्मक (Instinctive) ह जितना हम समझते हैं।

जैवी विकास के कारण और विकसित समाज का सदस्य होने के कारण मनुष्य कुछ ऐसी विशेषताएं रखता है जिनसे कुछ दार्शनिक उसे ईश्वर से प्रेषित समझने लगे और वर्गसां जैसे द्वैतवादी हो गए। वर्गसा ने अपनी 'पदार्थ और स्मृति' (Matter and Memory) पुस्तक में अभ्यास और स्मृति में वडी योग्यता से अन्तर वताया है, और इस भेद के आधार पर वे द्वैतवाद के सिद्धान्त की वकालत करते है। वे भूमिका में लिखते हैं—"यह पुस्तक पदार्थ और आत्म तत्त्व की यथार्थता को मान कर चलती है और एक निश्चित उदाहरण—स्मृति के आधार पर इनके पारस्परिक सवध को निश्चित करने का प्रयास करती है।"

विशुद्ध स्मृति, रसल जिसे नॉलेज मेमोरी (Knowledge Memory) कहते हैं, की मानसिकता के सम्बन्ध में हम पीछे विस्तार से देख आए हैं, यहां हमें उस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना है कि यह स्मृति वन्दरो में वहुत कम स्पष्ट होती है, और कुत्ते की श्रेणी के जीवो में यह प्राय विल्कुल ही नही पाई जाती, वे केवल अभ्यास-स्मृति (Habit Memory) ही रखते हैं। वर्गसा का विशुद्ध स्मृति का विचारशील (Intellectual) प्राणी-मनुष्य में होने का सुझाव और इसकी अन्य प्राणियो में अनुपस्थिति (यद्यपि वे इसका अभाव अन्य प्राणियो में नहीं वताते, किन्तु एक तो उन्होंने जो उदाहरण दिए है वे मनुष्य के ही हैं और दूसरे, उन्होने क्रियेटिव एवोल्यूशन में प्रकृति की व्याख्या करते हुए उसमें स्मृति के अस्तित्व को नही माना) और काल की सृजनशीलता (Creativeness) की प्रवृत्यात्मक प्राणियो में स्वीकृति और विचारणा के साथ उसके विपरीत-भाव की वकालत असम्भव परिणामो पर हमें पहुँचाती है—कि मनुष्य चेतन तत्त्व युक्त होने पर भी (विशुद्ध स्मृति के कारण) स्वतन्त्रेच्छा से रहित है और अन्य प्राणी स्वतन्त्रेच्छा रखने पर भी आत्म तत्त्व से रहित हैं। इसका अर्थ हुआ कि चेतन तत्त्व और स्वतन्त्रेच्छा एक साथ नही रह सकते।

किन्तु यह एक अत्यत उलझनपूर्ण प्रश्न है जो विस्तृत विवेचन की अपेक्षा

करता है। यहाँ हम इस सम्बन्ध में केवल सक्षिप्त रूप से अपन विचार स्पष्ट करेंगे। हम एक अभ्युपगम (Hypothesis) प्रस्तुत करेंगे, हम कहेगे कि प्रत्येक मानसिक व्यापार मस्तिष्क-कोषो के यत्र में विद्युत्-लहरो और शक्ति विस्फोट के रूप में उत्पन्न होता है, इसलिए मानसिकता शारीरिक यत्र के काय के अतिरिक्त और कुछ नही है, जिसका अर्थ हुआ कि हमारी इच्छाएँ हमारी भौतिक परिस्थितियो से स्वतत्र नही हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि दो भिन्न व्यक्ति कभी समान इच्छाएँ नही रख सकते और एक व्यक्ति कभी दो एक जैसी इच्छाएँ नही रख सकता। और यह बर्गसाँ की यथार्थ कालिकता (Real Duration) से भी भिन्न नही है। इससे हम सुविधा से परिणाम निकाल सकते है कि मनुष्य इडिंगटन के सुभाव अ अथवा ब+ अहम की स्वतत्रता के अर्थ में स्वतत्र नही है और न बर्गसा की रीयल ड्यूरेशन के अर्थ में ही स्वतत्र है। मान ले कि हम एक दम समान प्राणियो को प्राप्त करते है, और मान लें कि यदि हम उनमें से किसी एक पर प्रहार करते है और वह प्रति प्रहार करता है, तो हम यह परिणाम निकालने में पूर्णत न्याय्य हैं कि दूसरे ने भी ठीक उसी प्रकार प्रति प्रहार किया होता यदि हम तब उस पर आक्रमण करते, किन्तु यदि दो बिल्कुल एक ही जैसे रास्ते किसी एक ही स्थान को ले जाते है, तो दोनो और बराबर चास है कि वे किसी भी एक या दूसरे रास्ते को चुन लें। यद्यपि ऐसे प्रयोग किए नही गए है किन्तु प्राय सभी युग्मज (Twins) अपने व्यवहार में बहुत कुछ समता प्रदर्शित करते हैं। जैसा कि रसल कहते है—हम सभावना करते है, यद्यपि यह सन्देह जनक है, कि मानसिकता और भौतिकता के निश्चित नियम हैं, जिनके अनुसार, यदि सम्पूर्ण पदार्थ की प्रकृति ज्ञात हो (जिसमें कि सम्पूर्ण शरीर और मस्तिष्क भी सम्मिलित है) तो ससार के सम्पूर्ण हृदयो की किसी भी क्षण पर स्थिति अनुमति की जा सकती है।"

और यह अको की असीम शृखला (इन्फिनिट सीरीज आफ नबर्ज) के अनुसार होना चाहिए, जैसा कि हमने पीछे देखा था। कारण-कार्य सम्बन्धो की स्वीकृति स्वय ही यह प्रमाणित नही कर देती कि कारण-कार्य के होने को बाध्य कर देता है और न ही कारण-सम्बन्धो का अर्थ वही कारण वही कार्य ही है, यह केवल दो समीपतम घटनाओ में कालिक और दैशिक सम्बन्ध का प्रतिपादन करता है। कारण सिद्धान्त की इस व्याख्या से इस सम्बन्ध में यह भ्रान्ति दूर हो जानी चाहिए कि कारण कार्य को निर्धारित करता है। कारण शब्द केवल पहली घटना से सम्बन्ध रखता है, जिसके आधार पर पीछे की घटना या घटनाओ का साधारणीकृत अस्तित्व जाना जाता है।

कारणता की यह व्याख्या हमें चुनाव की स्वतन्त्रता से वचित नहीं करती, किन्तु इसका यह अर्थ भी नही है कि हमारे चुनाव और हमारी अन्तर्निहित (Initial) प्रकृति या अवस्थाओ में कोई सवध नही हैं। यदि मैं पूर्व की वजाए पश्चिम मे जाने का निर्णय करता हूँ, यह मेरी स्वतन्त्रेच्छा पर अवलवित है, किन्तु इसका कभी यह अर्थ नही होना चाहिए कि इस घटना की कोई पूर्वगामी घटना (कारण) नही थी। केवल इसी अर्थ में इच्छा की स्वतन्त्रता का कारणता के साथ समन्वय किया जा सकता है।

× × ×

कारण सवध की दृष्टि से प्राणी-व्यवहार या मानसिक घटनाओ के बारे में हमने एक साधारण नियम प्रस्तुत किया है, जिसके अनुसार (१) मन शारीरिक यत्र में घटित होता है, (२) विशेष शारीरिक घटनाओं, जिन्हें हम मन कहते हैं, के अनुक्रम सवध की प्रकृति भौतिक घटनाओ में कारण-कार्य सवन्ध की प्रकृति के समान ही है। यहाँ हम इस सवन्ध में सक्षेप में विशेप रूप से विचार करेंगे।

मन की भौतिकता, अथवा मन की शरीराश्रितता के पक्ष में हमने अपने विचार पीछे प्रस्तुत किए थे, अत यहाँ हम पुन उस समस्या को नहीं उठाएगे, यहाँ हम केवल यह देखेंगे कि कैसे इतिहास या अतीत-मानसिक घटनाए वर्तमान मानसिक घटनाओ पर प्रभाव डालती हैं, और इस प्रकार इस प्रदेश में कारण-कार्य सवध की क्या प्रकृति है। हमने पीछे कहा था—"कारण शृ खला घटनाओं का वह अनुक्रम है जिसमें उत्तरगामी अवस्थाओ की दिशा सपूर्ण पूर्वगामी अवस्थाओ (Positions) के 'परिवर्तन की दिशा' के अनुसार होती है, और यह कि कारण और कार्य में दैशिक और कालिक सवध अनिवार्य है। अव इसे हम मानसिक घटनाओ पर कैसे लागू कर सकते हैं? इसके उत्तर में हमने पीछे कहा कि—"दो समान प्राणी समान परिस्थितियो में सदैव समान रहेंगे"—अर्थात् उनकी मानसिक प्रवृत्ति (Mental Desposition) एक सी होगी। अव मान लीजिए एक मनुष्य को एक विशेप सुगंध को सूंघने पर किसी पुरानी घटना की याद हो आती है, यहाँ हम कहेंगे कि वर्तमान उकसाहट (Stimuli) उ, के कारण काल क पर एक अतीत घटना अ का प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु उ और अ के सवध की क्या प्रकृति है? वर्ट्रेंड रसल कहते हैं—"अ, आ, ई अतीत घटना वर्तमान उकसाहट के साथ वर्तमान स्मृति स को उत्पन्न करती है। क्योंकि यह सफलतापूर्वक प्रमाणित नही किया जा सकता कि हमारा किसी शब्द विशेष का ज्ञान उस समय भी

हमारे मन में अपना अस्तित्व (Actual existence) रखता है जब कि हम उस शब्द के सबध मे नही सोच रहे होते। यह केवल एक गुण विशेष है जिसे हम मन का स्वभाव (Desposition) कह सकते हैं, अर्थात् शब्द का ज्ञान पुन उत्पन्न किया जा सकता है, जब भी हम इसके सबध मे सोचना चाहे। किन्तु मन का स्वभाव (Desposition) कोई वास्तविक अस्तित्व (Actual existence) नही है, यह केवल स्मृति सम्वन्धी कारण-सम्बन्ध का स्मृति सम्बन्धी पहलू है।☆ इसका अभिप्राय यह हुआ कि वर्तमान घटना, उकसाहट किसी अतीत घटना के साथ एक अन्य वर्तमान घटना, जिसे हम स्मृति कहते है, उत्पन्न करती है और यह वर्तमान घटना स्मृति अतीत घटना ही न होकर केवल उस जैसी होती है। किन्तु ऐसा मान लेने में कुछ कठिनाइयाँ है। यदि अतीत घटना उस समय अविद्यमान रहती है जब कि वह हमारे चेतन व्यापार का विषय नही होती और डिस्पोजीशन वास्तविक (Actual) नही है, तो वर्तमान उकसाहट, जो कि दैशिक और कालिक रूप से उससे सम्बधित नही है, के साथ वह स्मृति का कारण कैसे हो सकती है? दूसरे, यदि अतीत घटना का अस्तित्व नही है और वह अनुक्रम सम्बन्ध के अनुसार† वर्तमान घटना का कारण है तो भी वर्तमान घटना के अतीत घटना के 'समान' होने का बोध हमें कैसे हो सकता है? तीसरे, यदि अनुक्रम सम्बन्ध में कोई कालिक और दैशिक सपर्क नही है तो वर्तमान उकसाहट का स्मृति को उत्पन्न करने के लिए एक या दूसरी घटना के साथ सम्बन्ध होना सायोगिक होना चाहिए नियमित नही। तीसरे प्वाइट प्र तिपादन को हम रसल के ही एक 'कारण-कार्य' के उदाहरण की व्याख्या कर स्पष्ट करेंगे। वे कहते हैं कि किन्ही भी दो या अधिक मिलो के हूटर यदि नियमित रूप से एक ही समय पर बजते हैं तो वे समान रूप से एक या दूसरी मिल के मजदूरो के कार्य छोडने के कारण कहे जा सकते है,जैसे कलकत्ता की किसी मिल का हूटर बम्बई की किसी मिल के मज़दूरो की छुट्टी का उतना ही कारण कहा जा सकता है जितना बम्बई की मिल का,

---

☆"A Desposition is not Something actual but mentle mnemic portion of a mnemic Causal law"

† बर्ट्रंड रसल की अनुक्रम सम्वन्ध की व्याख्या हमारी अनुक्रम सम्वन्ध की व्याख्या से इस अर्थ में भिन्न है कि रसल इस सम्वन्ध में किसी दैशिक और कालिक सपर्क की अनिवार्यता स्वीकार नही करते, वे केवल अनिवार्य अनुक्रम की आवृत्तियो को ही काफी समझते है। हमारे विचार में यह वास्तविकता से सम्वन्ध नही रखती।

यदि दोनो एक ही समय बजें तो। किन्तु हमारे तीसरे प्वाइंट के अनुसार, स्पष्ट रूप से कलकत्ता के हूटर बम्बई के मिल मजदूरो के अवकाश के साथ केवल सायोगिक रूप से सम्बद्ध हैं। यह भूल तब और भी स्पष्ट हो जाएगी यदि हम उस हूटर के बजने के समय लंडन में भोजन करने वाले किसी व्यक्ति के उस कार्य का कारण हूटर को इसलिए बताए क्योंकि उनमें अनुक्रम सम्बन्ध है। किन्तु हम देखते हैं कि स्मृति के साथ उकसाहट और पूर्व घटना का सम्बन्ध सायोगिक (Accidental) नही है। इस प्रकार रसल की स्मृति-कारणता (Mnemic causation) की कल्पना, हमारे विचार में, वास्तविकता से सम्बन्ध नही रखती।

तो स्मृति की समस्या की विवेचना हम किस प्रकार करेंगे? हमने पीछे कहा था कि 'प्रत्येक मानसिक घटना हमारे मस्तिष्क तन्तुओ अथवा शरीर के अन्य किसी भाग में घटित होती है।' यदि हम यह स्वीकार कर लें तो हम वर्तमान स्मृति को भी मस्तिष्क तन्तुओ में घटित मान सकते हैं, और इस प्रकार स्मृति किसी पूर्व घटना की वर्तमान उकसाहट के साथ आनुक्रमिक पश्चानुगामी घटना न होकर उकसाहट और मस्तिष्क तन्तुओ का कार्य कही जाएगी। स्मृति कारणता के इस लक्षण को हम अब बडी सुविधा से कारण सबध की अपनी व्याख्या पर घटित कर सकते हैं। इसके अनुसार अतीत घटना वर्तमान घटना के समान ही हमारे मस्तिष्क में घटित होती है और अपना एक चिन्ह उस पर छोड जाती है। इन प्रकार घटना का अस्तित्व उस चिन्ह के रूप में हमारे मस्तिष्क में रहता है—इस प्रकार की भविष्य में कोई भी घटना, जो शरीर वैज्ञानिक अर्थ में अतीत घटना के किसी एक पहलू से कुछ मिलती है अतीत घटना की स्मृति को कुछ जागृत कर देती है, और अतीत का यह जागरण हमारे मस्तिष्क तन्तुओ में उस चिन्ह को व्यापारित कर देता है। एक तरह से यह पॉवलॉव के कडीशडरीफ्लेक्स (Conditioned Reflex) से भी मिलता जुलता है। अतीत घटना का यह चिह्न और उकसाहट स्मृति के आनुक्रमिक कारण कहे जा सकते हैं, क्योंकि इनका स्मृति ज्ञान के साथ आनुक्रमिक दैशिक-कालिक सबध रहता है। यहाँ आपत्ति की जा सकती है कि मस्तिष्क में इस प्रकार के चिन्हो का अस्तित्व मात्र एक कल्पना है, क्योंकि ऐसे चिन्ह किसी ने नही देखे और शरीर को भौतिक मानते हुए उसमें ऐसे चिन्हो को स्वीकार करने में कोई सगति नही है, क्योकि भौतिक विश्व में स्मृति जैसी कोई विशेषता हम नही देखते।' किन्तु इसकी पुष्टि में कुछ तर्क दिए जा सकते हैं यद्यपि वे अन्तिम (Conclusive) नही कहे जा सकते। (१) कडीशडरीफ्लेक्स में हम अतीत घटना के किसी एक पहलू के घटित होने पर प्राणी को इस प्रकार

व्यवहार करते हुए देखते हैं जैसे शेष सपूर्ण घटना भी घटित हुई हो, यदि कडीशडरीफ्लेक्स को शरीर वैज्ञानिक घटना स्वीकार किया जाता है। स्मृति को उकसाने वाले कारण को हम उसी प्रकार अतीत घटना का एक पहलू कह सकते हैं जैसे कडीशडरीफ्लेक्स में उकसाहक घटना को। कडीशडरीफ्लेक्स और स्मृति में अन्तर केवल इतना ही है कि पश्चानुगामी घटना का कार्य प्रथम में वाह्य या द्रष्टव्य है और द्वितीय में आन्तरिक या अद्रष्टव्य। (२) अतीत घटना और वर्तमान उकसाहट के बीच के अन्तर को भरने के लिए और इन दोनो घटनाओ को आनुक्रमिक कहने के लिए किसी ऐसे तत्व की आवश्यकता है जो पूर्ण घटना की चैतन्य अनुपस्थिति के बावजूद इन दोनो (पूर्व घटना और वर्तमान उकसाहट) में एकता स्थापित कर सकें, जिसके आधार पर हम कह सकें कि ये 'एक ही मन की कारण शृ खला की दो कडियाँ हैं, जैसे भौतिक पदार्थ की एकता के लिए। (३) यदि मानसिक घटनाए शरीर से स्वतत्र हैं तो मस्तिष्कि में घाव होने पर भी विशेष उकसाहट को स्मृति उत्पन्न करने में समर्थ होना चाहिए, जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है। (४) यदि मानसिक घटनाए स्वतत्र हैं तो सन्निपात इत्यादि में उन्हें किसी ज्ञात उकसाहट के बिना उत्पन्न नही होना चाहिए और उनमें ऐसी अवस्था नही होनी चाहिए कि वे अव्यवस्थित यत्र के कार्य जैसी प्रतीत हो। (५) यदि मानसिक घटनाए शरीर से स्वतत्र हैं तो उन्हें शरीर के निष्क्रिय हो जाने पर भी सक्रिय रहना चाहिए अथवा मृत्यु के पश्चात् भी मन को जीवित रहना चाहिए, जो कि नही होता अथवा कम से कम जिसके होने का कोई तर्क सम्मत प्रमाण नही हो सकता।

किन्तु मन की शरीराश्रितता के विरुद्ध भी कुछ तर्क दिए जा सकते हैं और इसी प्रकार मन की स्वतत्रता का पक्ष भी पुष्ट किया जा सकता है, यद्यपि हमारे विचार में ये तर्क विशेष औचित्य नही रखते। उदाहरणत' वर्गसा मानसिक स्मृति अथवा यथार्थ स्मृति (Real Memory) के पक्ष में तर्क देते हुए कहते हैं—"पाठ की स्मृति, इस अर्थ में कि हम उसे याद अथवा कठकिया हुआ कह सकें, सब प्रकार से 'अभ्यास' (Habit) के चिन्ह रखती है। आदत के समान, यह भी उसी प्रयास की आवृत्ति से सीखी जाती है, आदत के समान ही यह भी सपूर्ण क्रिया के पहले विश्लेषण (Decomposition) और फिर सश्लेषण (Recomposition) की अपेक्षा करती है। और अन्त में, किसी भी प्रकार की आदत सबधी क्रिया के समान ही, यह भी एक यत्र में सग्रहीत की जाती है जो कि उपयुक्त उकसाहट से सपूर्ण क्रमशः व्यापारित हो हो जाता है।

"इस के विपरीत, प्रत्येक पाठ-क्रिया की पृथक्-पृथक् स्मृति (जैसे, प्रथम-

वार इस प्रकार पढ़ा गया और द्वितीय वार इस प्रकार) अभ्यास का कोई भी चिह्न नही रखती। इसकी छाया कृत (Image) एक दम मेरी स्मृति पर अकित हो गई थी। यह मेरे जीवन में एक घटना है, इसका स्वभाव है कि यह एक निश्चित् तिथि रखती है और परिणामत यह पुन घटित नही हो सकती। किसी विशेष पठन की स्मृति एक प्रतिनिधित्व है और केवल प्रतिनिधित्व (Representation) है, यह मन की इन्च्यूइशन (Intuition) में आलिगित रहती है जिसे कि मैं अपनी इच्छानुसार छोटा-वडा कर सकता हूँ। वर्गसा इस स्मृति को 'मानसिक' कहते हैं और इसे कारण सबध से स्वतत्र मानते हैं, क्योकि उनके अनुसार "यह 'छायाकृति' यद्यपि अपने रूप में वही है किन्तु जितनी ही वार हम इसका स्मरण करते हैं उतनी वार उसकी मूल प्रकृति में अन्तर आता है।" वास्तव मे वर्गसा के कारण सबध के निषेध का आधार उनका इस सबध को 'वही कारण-वही कार्य' के रूप में समझना है। जहाँ तक उनके आदत और विशुद्ध स्मृति में अन्तर करने का प्रश्न है, उस पर हमें कोई आपत्ति नही है किन्तु हमारा 'चिह्न का सिद्धान्त' (Trase Theory) इसे सगति देने में उतना ही उपयुक्त है। किन्तु इस पर कुछ और अधिक ठोस आपत्तियाँ भी हो सकती हैं, जिन्हें ब्रॉड ने वडी योग्यता से प्रस्तुत कर उनका उत्तर दिया है। यहाँ हम उनके विचारो को सक्षेप में प्रस्तुत करेंगे।

मन के शरीराश्रित होने के विरुद्ध कहा जा सकता है कि (१) हम कुछ ऐसे अनुभव करते हैं जब कि हमें प्रतीत होता है कि हमारा मन हमारे शरीर को व्यापारित कर रहा है, और इसी प्रकार हम कुछ दूसरे अनुभव करते हैं जिनमें शरीर मन को व्यापारित करता है। इच्छा पूर्वक अपने शरीर को क्रिया में लगाना प्रथम प्रकार के अनुभव का उदाहरण है और किसी नवीन सवेद का घटित होना दूसरे प्रकार के अनुभव का। अब कहा जा जा सकता है कि यह दो प्रकार के 'सक्रिय' (Active) और 'निष्क्रिय' (Passive) अनुभव तब तक नही हो सकते जब तक कि मन का पृथक अस्तित्व न हो। दूसरे प्रकार के अनुभव वास्तव में शारीरिक प्रकृति के है, क्योकि यदि मन शरीराश्रित है तो उसे शारीरिक क्रियाओ में घटित होना चाहिए न कि शरीर को मन के अनुसार घटित होना चाहिए। यह ठीक है कि इन दो अनुभवो में अन्तर है, किन्तु यह ऐसी समस्या नही जिसका उत्तर मन की शरीराश्रितता के अनुसार न दिया जा सके। हम इन दोनो अनुभवो में प्रतीयमान अन्तर की प्रकृति को देखेंगे। इनमें प्रथम एक चेतन व्यापार के साथ प्रारम्भ होकर अन्य मानसिक क्रियाओ से अनुगमित होता है, किन्तु ये क्रियाएँ इच्छा की निरंतरता का अग

नही होती। अनुगमित क्रियाएँ, जो इच्छा के साथ सबद्ध होती है। केवल शारीरिक व्यापार जनित सवेद (Sensations) होती हैं, अब इसका नवीन सवेदो से मुकाबिला किया जाए, ये पहले से जारी मानसिक व्यापार की निरतरता से सम्बन्धित नही हैं, यद्यपि ये नवीन मानसिक क्रियाओ को जन्म देती है। पहली घटनाएँ, जिनसे यह नवीन सवेद समीपता से सबद्ध है, हमारे शरीर में होने वाली घटनाएँ हैं जो कि अचेतन मानसिक घटनाओ से सहानुगमित नही होती। हम उन स्थितियो में निष्क्रियता अनुभव करते है जिनमें शारीरिक व्यापार, जो कि चैतन्य से युक्त नही हैं चेतनायुक्त शारीरिक व्यापार में परिवर्तित हो जाता है और हम उस समय सक्रिय (Active par excellence) अनुभव करते है जब कि शारीरिक व्यापार, जो कि चैतन्य युक्त है, चैतन्य रहित शारीरिक व्यापार में परिणत हो जाता है, जो उसकी निरन्तरता (Continuation) में नही है। सक्षेप मे इसका अभिप्राय यह है कि चेतन और अचेतन व्यापार दो भिन्न प्रकार के शारीरिक व्यापार ही है और कभी भी एक दूसरे में परिणत हो सकता है। इस प्रकार, जिसे हम सवेद कहते हैं, वह थोडी देर के अचेतन शारीरिक व्यापार के पश्चात् चेतन शारीरिक व्यापार—सवेद के ज्ञान (Cognition of Sensation) में परिवर्तित हो जाता है और इच्छा का ज्ञान अचेतन शारीरिक व्यापार में परिवर्तित हो जाता है।

कभी-कभी मन के अस्तित्व को अन्तर्ज्ञान (Introspection) से भी प्रमाणित किया जाता है, जिसके अनुसार इस अन्तर्ज्ञान के कारण भौतिक नही हैं। इसका उत्तर भी उसी प्रकार दिया जा सकता है, जैसे ऊपर की आपत्तियो का दिया गया है। छायाकृतिया (Images) उदाहरणत अन्तर्ज्ञान की प्रमाण हो सकती हैं। मान लीजिए मै कल्पना में अपने एक मित्र को देखता हूँ। किन्तु वास्तव में छायाकृतिया अन्तर्ज्ञान की उपयुक्त उदाहरण नही है क्योकि (१) हम जानते हैं कि हम बाहर किसी वस्तु को आखो से देखे बिना ही केवल विशेष प्रकार से रेटिना को उकसा कर वस्तु विशेष को देख सकते है। इसलिए यह बहुत अधिक सभव है, जैसा कि शरीर वैज्ञानिक हमें बताते है, कि छायाकृतिया हमारी ज्ञानेन्द्रियो के उन छोरो की उकसाहट के रूप में घटित होती है जो मस्तिष्क में अपना प्रतिनिधित्व रखते हैं। इनकी दूसरी विशेषता इनके सवेदो की प्रतिलिपि होने में है, इसी से छायाकृतियो या कल्पनाकृतियो को कारण रूप से (Causally) सवेदो से भिन्न बताते हैं। रसल और हमारी इस कारणता की व्याख्या में वही अन्तर है जो

स्मृति की व्याख्याओ मे है। इस सम्बन्ध में हम पिछले निबन्ध में अत्यन्त विस्तार से देख आए हैं ।

इस भौतिक और मानसिक की (कारणता के प्रकरण में) व्याख्या के पश्चात् हम कुछ परिणामो पर पहुँचते हैं —(१) भौतिक घटनाएँ किन्ही सबधो मे घटित होती हैं। (२) ये सबध इस प्रकार के नही है कि उनके अनुसार किसी एक घटना में सम्पूर्ण विश्व को समाहित किया जा सके। (३) कारण-सबध घटनाओ की वे शृंखलाएँ हैं जिनके अनुसार कोई भी घटना अपनी पूर्वगामी और पश्चगामी घटनाओ की दिशा का सकेत करती है। इन सबधो का आधार देश-काल और इन सबधो की विशेष प्रकृति है। (४) मानसिक घटनाएँ भी उसी प्रकार कारण सबधो का विषय हैं जैसे भौतिक घटनाएँ (५) इसलिए स्वतत्रेच्छा का प्रश्न इस अर्थ में निरर्थक है कि किसी इच्छा विचार कल्पना अथवा भावना की कोई पूर्वगामी घटना नहीं है जो कि अपनी पश्चगामी घटना—इच्छा की दिशा का सकेत करती है। (६) यदि कारण सबधो को मानसिक क्रियाओ पर भी भौतिक घटनाओ के समान लागू होना है तो स्मृति की इस रूप में कोई सार्थकता नही है कि वह किसी अतीत घटना की स्वतत्र प्रतिलिपि है और अतीत घटना किसी रहस्यमय ढग से अनस्तित्त्व से उकसाहट के साथ मिलकर स्मृति (वर्तमान घटना और पूर्व घटना की प्रतिलिपि) को व्यापरित करती है। प्रत्युत् यह कि अतीत घटना हमारे मस्तिष्क में चिह्न के रूप में मस्तिष्क की कारण शृंखला का एक भाग बन जाती है और एक अन्य कारण के सहयोग से एक नवीन कारण शृंखला 'स्मृति-ज्ञान' को व्यापारित करती है। इस प्रकार हमारी मानसिक प्रकृति भी कारण शृंखला से स्वतत्र नहीं है और परिणामत स्वतत्रेच्छा नही हो सकती। (७) किन्तु कारण शृंखला की हमारी व्याख्या के अनुसार मनुष्य की चुनाव शक्ति अक्षुण्ण रहती है।

सहायक पुस्तकें

1 Bergson H — Creative Evolution, English Ed 1910 (New York)

2. — Matter and Memory, English Ed 1910 (London)

3 Bridgeman — Logic of Modern Physics 1927 (New York)

4 Broad C D — The Mind and Its place in Nature 1925 (London)

5 Eddington, S A — New Pathways in Science 1920 (Cambridge)

6 — The Philosophy of Physical Science 1949 (Cambridge)

7 Russll, B — The Analysis of Maid 1921 (London)

8 — Mysticism and Logic 1925 (London)

9 — An out Line of Philosophy 1929 (London)

10 — Our Knowledge of the External World 1020 (London)

11 Bergson, H — Time and Free will 1920 (London)

12 Bose, D M — Living and Non Living (Presedential Address to the 40th Indian Science Congress)

13 Cuhen — Studies in Philosophy and Science (New York)

८—पदार्थ और मन

एक समन्वित वैज्ञानिक अद्वैतवादी दर्शन

पिछले दो निबन्धो में हमने मन के सम्बन्ध में सामान्य रूप से मानसिक और भौतिक कारणता के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार किया है और वहां हमने लगभग पदार्थवादियो के समान ही मन को भौतिक-द्रव्य का गुण माना है, जबकि लगभग 'मानसिकता वादियों' के समान कारणता की व्याख्या की है । किन्तु 'भौतिक द्रव्य क्या है ?' इस सम्बन्ध में हमने इन निबन्धो में कोई विचार नही किया । किन्तु इस सम्बन्ध में निर्णय किये बिना हमारा कार्य अधूरा है । वास्तव में, वह दार्शनिक दृष्टि से निराधार है, क्योंकि यदि बर्कले के समान यह प्रमाणित किया जा सके कि पदार्थ केवल मानसिक प्रत्यय है, तो हमारा सम्पूर्ण दुर्ग कार्डों के घर के समान गिर जाएगा । अत यहां हमें पहले पदार्थ के स्वरूप पर विचार करना है और देखना है कि किस प्रकार हमारे पिछले निबन्धों के निष्कर्षों का इससे व्याघात नही होता ।

जैसा कि हमने पिछले निबन्धो में स्वीकार किया है, विश्व में कुछ घटनाएँ ऐसी है जिन्हे हम निस्सन्देह मानसिक कह सकते है । मानसिक इस अर्थ में कि वे सर्व-सामान्य नही हैं, अर्थात् उनसे प्रेरित होनेवाली कारण-श्रृखला केवल एक ही देश में घटित होती है—जिसे हम एक मस्तिष्क कह सकते हैं । 'शरीर और मन' निबन्ध में हम इस निर्णय पर पहुँचे थे कि कल्पना, स्मृति तथा इच्छा इत्यादि का अन्तर्भाव सवेद (Perception) और अन्वय (Association) में किया जा सकता है । किन्तु सभव है भौतिक पदार्थ तथा मन अथवा भौतिक घटना तथा मानसिक घटनाओ के गुण में अन्तर हो । जहाँ तक कारणता का सम्बन्ध है, हमने पिछले निबन्ध में कारण-श्रृखला की व्याख्या निगमन के आधार पर की है, जिसका अभिप्राय है कि कारणता का अन्तिम आधार प्रत्यय ही है । इस प्रकार, यह व्याख्या व्याघातपूर्ण हो सकती है—यदि मानसिक घटनाओ का विश्लेषण हम भौतिक घटनाओ में करते है तो हमें कारण-सम्बन्धो की व्याख्या अगमन की रीति से मन से स्वतन्त्र करनी होगी, और यदि हम कारण-सम्बन्धो की व्याख्या निगमन के आधार पर करते हैं तो हमें मन का स्वतन्त्र अस्तित्व ही नही स्वीकार करना होगा, प्रत्युत् स्वय भौतिक घटनाएँ मानसिकता से स्वतन्त्र नहीं हो सकेंगी । इसलिये हमें यहां मन का प्रश्न भी पुन उठाना होगा ।

कल्पना और स्मृति के सम्बन्ध में विचार करते हुए हमने 'मन और शरीर' निबन्ध में देखा था कि जहाँ तक कारण-सम्बन्धो का प्रश्न है, इनमें तथा सवेद में कोई अन्तर नही है। किन्तु एक अन्तर स्पष्ट है, जिसे हम अन्वयात्मक (Associative) अन्तर कह चुके है। अन्वय मनोविज्ञान में कारण-शृंखला के उस भाग को कहते हैं जो कथित घटना (सवेद) के घटित होने पर सहानुगमित होती हैं। ये सहानुगामी शृखलाएँ अतीत सवेदो और सहानुगमित घटनाओं से निर्मित होती हैं। अब यहाँ 'अतीत घटनाओ' का अर्थ स्पष्ट नहीं है। 'मन और शरीर' निबन्ध में हमने यह माना था कि अतीत घटनाएँ हमारे मस्तिष्क में चिह्नित हो जाती हैं और उचित उकसाहट मिलने पर ये चिह्न क्रियान्वित हो उठते हैं। इस पर दो आपत्तियाँ हो सकती हैं—इसके लिए हमारे पास क्या प्रायोगिक आधार हैं ? और दूसरे, जब कि पदार्थ के सम्बन्ध में हम किसी निर्णय पर नही पहुँचे हैं तब हम शरीर में 'चिह्नित होने' को कैसे सार्थकता दे सकते हैं ? जहाँ तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है, उसका उत्तर हमारे विचार में, सहज है—हम प्रत्यक्ष प्रमाणो के आधार पर अनुमान करते हैं—ग्रामोफोन रिकार्ड प्रत्यक्षत ध्वनि अथवा हमारे उच्चारित शब्दों को न रखने पर भी सूई लगने पर उन्हें प्रदर्शित करते हैं, अत यह अनुमान किया जा सकता है कि हमारा मस्तिष्क भी इसी प्रकार अथवा किसी अन्य प्रकार से घटनाओ का सचय रखता है। इस सम्बन्ध में हमने पिछले दोनो निबन्धों में सविस्तर विचार किया है। जहाँ तक दूसरी आपत्ति का प्रश्न है, उसका उत्तर हम आगे देंगे, किन्तु यहाँ एक तात्कालिक उत्तर दिया जा सकता है—कारण-शृखला का अभिप्राय है 'नियमित-निरन्तर-अनुक्रम-परिवर्तन', जैसा कि पिछले निबन्ध में हम बता आए हैं। यह अनुक्रम घटनाओ में होता है। प्रत्येक वर्तमान घटना अतीत होती है, अर्थात् वह भविष्य और वर्तमान नहीं रहती, किन्तु यह अस्तित्वहीन हो जाती है, ऐसा नही कहा जा सकता। यह एक विशेष अर्थ में 'विद्यमान' रहती है। इसमें तथा वर्तमान और भविष्य की घटनाओ में अन्तर केवल इनकी सापेक्षताओ में अथवा सम्बन्धो में अन्तर होता है। इसी प्रकार, अनुक्रम का यह अभिप्राय नहीं कि प्रत्येक पीछे आने वाली घटना पहली घटना से सम्पूर्णत भिन्न हो, सभव है पीछे आने वाली घटनाएँ पहली घटनाओ के बिल्कुल ही समान हो—सिवाय सापेक्षताओ की भिन्नता के। इसी प्रकार, कारण शृखलाएँ एक-साथ ही अनेक भी चलती रह सकती हैं, जैसे हमारे बोलने से ग्रामोफोन रिकार्ड में एक घटनानुक्रम प्रसारित होता है और दूसरी ओर वायु में ध्वनि लहरें भी प्रसारित होती हैं, और यदि कोई सुनने वाला व्यक्ति भी वहाँ कही उपस्थित हो तो बहुत से दूसरे

घटनानुक्रम भी व्यापारित होते हैं। अत अतीत मानसिक घटना भी अन्य वर्तमान भौतिक घटनाओ के समान सम्बन्ध परिवर्तन के साथ विद्यमान रहती है। अत चिह्न का अभिप्राय है—घटनानुक्रम, जोकि एक विशेष घटना से व्यापारित होता है और परिवर्तित सम्बन्धों के साथ अथवा एक बढते हुए घटनानुक्रम के साथ विद्यामान रहता है।

इस प्रकार सवेद (Sense Perception), कल्पना तथा स्मृति में अन्तर केवल सम्बन्ध जनित है, न कि मौलिक, मौलिकता से हमारा अभिप्राय गुणो से है—निरपेक्ष और स्वत. प्रमाण। एक विशेष गुण वह है जो वह अन्य किसी भी सन्दर्भ से निरपेक्ष हो कर है; अर्थात् गुण का विश्लेषण नही किया जा सकता, केवल इसके उदाहरण दिये जा सकते हैं। इस प्रकार गुण की अवधारणा श्रेणी की अवधारणा है। किन्तु भूत विज्ञान गुणो को स्वीकार नही करता, वह केवल गाणितिक मात्राओ को स्वीकार करता है। किन्तु यदि हम गुणो को भौतिक विश्व में स्वीकार नहीं करेंगे तो मनोविज्ञान और भूत विज्ञान का भी समन्वय नही किया जा सकेगा, क्योंकि हमारे सवेद गुणात्मक हैं।

सवेद का सम्भवत सर्वाधिक निर्विवादास्पद लक्षण हो सकता है—निशुद्ध वर्तमान चाक्षुप अथवा श्रौत अथवा कोई भी ऐंद्रिय घटना। इस घटना में कोई ऐसा गुण नही है जिसके कारण इसे मानसिक कहा जा सके और भौतिक नही कहा जा सके। यह केवल इस घटना के सवध है जो इसे विलक्षणता देते हैं। किन्तु इस कारण-शृखला में अथवा सम्बन्धो में भी स्वत ऐसी कोई विशेषता नहीं है जिसके कारण इन्हें सवेद से भिन्न गुणो को कहा जा सके, यह केवल सन्दर्भ की भिन्नता ही है जो इन्हें सवेदो से पृथक करती है। असवेदित घटना (जिसे हम भौतिक कहते हैं और जिसके अस्तित्व को स्वीकार करने के कारण हम आगे देंगे) सवेदित घटना से इस अर्थ मे भिन्न है कि सवेदित घटना हमारे मस्तिष्क में घटित होती है, और उस से प्रेरित होने वाली कारण-शृखला एक दम 'व्यक्तिगत' है, जबकि बाह्य घटना से प्रेरित कारण-शृखला के सम्बन्ध सर्व-सामान्य हैं। जहाँ तक मानसिक कारणता अथवा स्मृति-कारणता (Mnemic Causation) का सवध है, उसे हम स्वीकार नही करते, जैसा कि हमने 'शरीर और मन' निबन्ध में स्पष्ट किया है। घूमते ग्रामोफोन रिकार्ड पर सूई लगने की घटना वर्तमान घटना है और उससे उकमाई हुई ध्वनि का सम्बन्ध अतीत से है, किन्तु वास्तव में यह सब वर्तमान घटना है।

किन्तु मन का गुण चैतन्य समझा जाता है। इस प्रकार मानसिक घटनाओ को भौतिक घटनाओं से इस गुण के आधार पर पृथक किया जाता है।

जो शरीर परिवृत्ति पदार्थों के प्रति प्रतिक्रिया करता है, अथवा आन्तरिक या बाह्य घटनाओ के होने की स्मृति रखता है तो हम उसे मानसिक गुण-युक्त कहते हैं। इसप्रकार, जो घटना 'सम्बन्धित अतीत कारण-शृखला' को नही प्रजागरित कर सकती वह घटना मनसिक नही कही जा सकती। किन्तु चेतना को सम्बन्धित कारण-शृखला कहने का अभिप्राय है कि यह मनका मौलिक गुण नही है क्योकि, जैसाकि हमने 'शरीर और मन' निबन्ध में देखा है, स्मृति और सवेद में अन्तर केवल सापेक्ष सम्बन्ध जनित है। स्वत सवेद की कल्पना भी गाणितिक सीमा की कल्पना के समान है जिससे हम अनुगामी कारण-शृखला को सर्वथा पृथक नही कर सकते, और दूसरी ओर अनुगामी कारण-शृखला चेतना को मात्रात्मक (Matter of Degree) बना देनी है, क्योकि एक घटना जितनी ही अधिक सम्बन्धित कारग-शृखला मे अनुधावित होगी उतनी ही अधिक वह चैतन्य से ज्योतित कही जाएगी।

इसके अतिरिक्त, चैतन्य को 'किसी विषय के प्रति चेतन होने की क्रिया' समझा जाता है। किन्तु, जैसा कि जेम्ज़ ने कहा है, यह दर्शन के इतिहास में एक बहुत पुरानी सुपर्स्टिशन है। यह समझना अत्यन्त कठिन है, कैसे पदार्थ और चेतन होने की क्रिया सम्पर्क में आते है। मान लीजिए मैं एक मेज देखता हूँ। यह एक चाक्षुष घटना है जो मेरे मस्तिष्क में घटित होती है। अब यदि इस घटना को चैतन्य का गुण कहा जाए तो यह अधिक उपयुक्त जान पडता है। चाक्षुष घटना को क्रिया और विषय में विश्लेषित करने का अभिप्राय है चेतना को विषय से पृथक् मानना। किन्तु यह स्वीकार करना अन्तर्विरोध पूर्ण होगा, क्योकि यदि क्रिया विषय के बिना सभव ही नही है तो चैतन्य क्रिया न होकर अधिक से अधिक एक गुण हो सकता है, और क्योकि यह गुण विषय के साथ ही उत्पन्न होता है अत उसे विषय का गुण ही कहा जा सकता है। अत चाक्षुष या अन्य ऐंद्रिय घटनाओ को विषय और क्रिया अथवा विषय और विषयी में विभाजित करना निरर्थक है।

ऐंद्रिय घटनाओ को मस्तिष्क में घटित होने वाली घटनाए कहने का अभिप्राय यह है कि जब मैं मेज देखता हूँ, उस समय मेज, जो कि मुझे अपने से कुछ दूरी पर दिखाई देता है, वास्तव में एक घटना समवाय है जो मेरे मस्तिष्क में घटित होता है, और इसी प्रकार का घटना समवाय यदि वहां भी हो, जहां मैं मेज को देखता हूँ, तो भी यह स्थान मेरे मस्तिष्क से बहुत दूर है और मेज के मेरे चाक्षुष प्रत्यक्ष का अनिवार्य और सद्य कारण नही है। स्वप्न में दिखाई देने वाला मेज, स्पष्टत मेरे मस्तिष्क से बाहर नही

घटना के सम्पर्क में आती है और अमानसिक से मानसिक हो जाती है? मानसिक घटना और अमानसिक घटना के निजी स्वरूपो में क्या अन्तर है? ये सब प्रश्न इस कल्पना को कठिन बना देते हैं। हमारी व्याख्या के अनुसार, मानसिक घटनाएँ वे घटनाए होगी जो ऐंद्रिय सवेद के रूप में घटित होकर हमारे मस्तिष्क मे एक कारण शृखला को व्यापारित कर देती हैं, जब कि अमानसिक घटनाएँ वे घटनाएँ हैं जो इस कारण शृखला से अनुधावित नहीं होती। पिछले दोनो निबन्धों में अचेतन घटनाओ के प्रकरण में हमने इस प्रकार की कुछ घटनाओ के उदाहरण दिये थे, किन्तु सभी अचेतन घटनाएँ भौतिक घटनाएँ नहीं होती, इसके लिए कुछ और विशेषताओ की भी आवश्यकता है, जिनके सम्बन्ध में हम आगे विचार करेंगे।

पदार्थ क्या है? इस प्रश्न पर शताब्दियो से विचार होता रहा है, किन्तु विचार अथवा अनुसन्धान की प्रविधि ही भ्रान्ति पूर्ण होने से उसका कोई निश्चय नही किया जा सका। पदार्थ को सत् या असत् कहने के आधार विशुद्ध रूप से दार्शनिको की रुचियो पर निर्भर करते थे। किन्तु डेकार्ट तथा जेम्ज ने इस ओर एक नवीन तथा उपादेय प्रणाली का प्रवर्तन किया, जिसका अनुसरण आज तक हो रहा है। डेकार्ड ने देखा कि सम्पूर्ण सवेद्य विश्व उसके प्रत्यय पर निर्भर करता है, और असवेद्य के अस्तित्व के सम्बन्ध में अपरोक्ष रूप से वह कुछ नही जान सकता। अत वह केवल अपने प्रत्यय के सम्बन्ध में ही निश्चित हो सकता है, शेप सब भ्रान्त शिक्षा का परिणाम है। प्रत्यक्ष का अस्तित्व निश्चित है क्योकि उसे प्रत्यक्षत मैं देखता हूँ और वह मेरा अग है, इसलिए मेरा अस्तित्व निस्सदेह है—क्योकि मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ।' किन्तु वास्तव में इस वाक्य में भी वह प्रत्यक्ष और निश्चित की सीमा से बाहर जा रहा है। उपर्युक्त वाक्य में 'मैं और सोचना' शब्द सन्देहास्पद हैं, क्योकि 'मैं' शब्द जिस मानसिक इकाई की ओर सकेत करता है वह एकदम काल्पनिक है, उसी प्रकार जिस प्रकार मेज़ काल्पनिक है, 'मैं' केवल अनुभवों और सवेदो की कारण शृखला मात्र है और मन की एकता केवल अनुक्रम की एकता है। इसलिए, जैसा कि हमने पीछे देखा है, किसी कर्ता के होने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार सोचना शब्द भी अविश्लेष्य नहीं है। विचार अनेक मानसिक घटनाओ का समवाय है। जो बात एकदम निश्चित है वह यह है कि ऐंद्रिय घटनाए घटित होती हैं और वे विशुद्ध रूप से वर्तमान में घटित होती हैं।

डेकार्ट मन और भौतिक पदार्थ को है।
गति तथा आकार को वह भौतिक पदार्थ कि

होता यद्यपि मुझे वह बाहर दिखाई देता है । स्वप्न म एक अन्धा भी मेज़ देख सकता है । इसी प्रकार जागृति में भी। विक्षत अग वाला व्यक्ति असावधानी में उस स्थान पर, जहाँ पर उसका अग कटा हुआ होता है पीडा अनुभव कर सकता है । अव यह ऐंद्रिय घटना क्या है ? मनोवैज्ञानिको के अनुसार वाह्य विपय के प्रति हमारे मस्तिप्क की यह प्रतिक्रिया है । हमारे पिछले निवन्ध की व्यख्या के अनुसार, एक कारण शृखला, जो वहाँ से प्रसारित होती है जहाँ हमारा अभ्युपगमित मेज़ है, हमारी आँखो और फिर रेटिना से होती हुई मस्तिष्क में एक रगीन सस्थान के रूप में परिणत होती है, इसी को हम मेज का चाक्षुप प्रत्यक्ष कहते हैं । किन्तु मेज़ के चाक्षुप प्रत्यक्ष के लिए कारण शृखला की सम्पूर्ण लडी आवश्यक नही है, आवश्यक केवल अन्तिम कड़ी है । मस्तिष्क यहाँ केवल विशिष्ट स्थान का वाचक है, क्योकि स्नायुओ का अस्तित्व स्वीकार करने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नही है । यहाँ हम कारण शृखला की कल्पना को भी छोड़ सकते है और कह सकते है कि चाक्षुप घटना एक घटना है जो रगीन सस्थान के रूप में घटित होती है। यह घटना विशुद्ध सवेद (Sensation) है और इसे क्रिया और विपय मे विभक्त नही किया जा सकता । अव इससे प्रेरित कारण शृखला को हम इसमें आने देते हैं, यह शृखला कल्पना और स्मृति से निर्मित है । यह स्मृति इतनी सहज होती है कि इसे रिफ्लेक्स के अन्तर्गत लिया जा सकता है, अत. यहाँ भी क्रिया की कोई आवश्यकता नही है । वास्तव में विपय और क्रिया का भेद हमारी भापा में ही निहित है, जैसे 'राम मेज देखता है', यहाँ मेज को एक स्वतत्र और काल में निरपेक्ष भौतिक वस्तु (Entity) कल्पित किया गया है, किन्तु, यदि मेज चाक्षुप प्रत्यक्ष से स्वतत्र है भी तो भी वह केवल दैशिक और कालिक घटनाओ की शृखला है, वस्तु नही । '

जहाँ तक चैतन्य के मन का गुण होने का प्रश्न है, यह एक ऐसा गुण है जो अकेले ही पर्याप्त है । उस अवस्था में हमारे शरीर और इस भौतिक विश्व के होने की कोई आवश्यकता नही है, ये केवल इस अस्तित्व के व्यापार भी हो सकते हैं । यह तर्क अकाट्य है, किन्तु इसे पचा सकना कठिन जान पड़ता है । चैतन्य के सापेक्ष गुण होने के विरोध में हम तर्क दे चुके हैं। चैतन्य को सापेक्ष कहने का एक और अर्थ भी हो सकता है—जिस प्रकार फोटो को डिवेलप करने के लिए कुछ रासायनिक द्रव्यो का प्रयोग किया जाता है और उनके प्रयोग से नेगेटिव में विद्यमान किन्तु अप्रत्यक्ष चित्र प्रत्यक्ष हो जाता है उसी प्रकार वाह्य विपयो के सम्पर्क से चैतन्य के गुण उद्भासित हो उठते हैं । किन्तु किस प्रकार एक भौतिक घटना मानसिक

घटना के सम्पर्क में आती है और अमानसिक से मानसिक हो जाती ह ? मानसिक घटना और अमानसिक घटना के निजी स्वरूपो में क्या अन्तर है ? ये सब प्रश्न इस कल्पना को कठिन बना देते हैं। हमारी व्याख्या के अनुसार, मानसिक घटनाएँ वे घटनाए होगी जो ऐंद्रिय सवेद के रूप में घटित होकर हमारे मस्तिष्क म एक कारण शृखला को व्यापारित कर देती हैं, जब कि अमानसिक घटनाएँ वे घटनाएँ हैं जो इस कारण शृखला से अनुधावित नहीं होती। पिछले दोनो निबन्धो में अचेतन घटनाओ के प्रकरण में हमने इस प्रकार की कुछ घटनाओ के उदाहरण दिये थे, किन्तु सभी अचेतन घटनाएँ भौतिक घटनाएँ नहीं होती, इसके लिए कुछ और विशेषताओ की भी आवश्यकता है, जिनके सम्बन्ध में हम आगे विचार करेंगे।

पदार्थ क्या है ? इस प्रश्न पर शताब्दियो से विचार होता रहा है, किन्तु विचार अथवा अनुसन्धान की प्रविधि ही भ्रान्ति पूर्ण होने से उसका कोई निश्चय नही किया जा सका। पदार्थ को सत् या असत् कहने के आधार विशुद्ध रूप से दार्शनिको की रुचियो पर निर्भर करते थे। किन्तु डेकार्ट तथा जेम्ज ने इस ओर एक नवीन तथा उपादेय प्रणाली का प्रवर्तन किया, जिसका अनुसरण आज तक हो रहा है। डेकार्ड ने देखा कि सम्पूर्ण सवेद्य विश्व उसके प्रत्यय पर निर्भर करता है, और असवेद्य के अस्तित्व के सम्बन्ध में अपरोक्ष रूप से वह कुछ नही जान सकता। अत वह केवल अपने प्रत्यय के सम्बन्ध में ही निश्चित हो सकता है, शेष सब भ्रान्त शिक्षा का परिणाम है। प्रत्यक्ष का अस्तित्व निश्चित है क्योकि उसे प्रत्यक्षत मै देखता हूँ और वह मेरा अग है, इसलिए मेरा अस्तित्व निस्सदेह है—क्योकि मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ।' किन्तु वास्तव में इस वाक्य में भी वह प्रत्यक्ष और निश्चित की सीमा से बाहर जा रहा है। उपर्युक्त वाक्य में 'मैं और सोचना' शब्द सन्देहास्पद हैं, क्योकि 'मैं' शब्द जिस मानसिक इकाई की ओर सकेत करता है वह एकदम काल्पनिक है, उसी प्रकार जिस प्रकार मेज काल्पनिक है, 'मैं' केवल अनुभवों और सवेदो की कारण शृखला मात्र है और मन की एकता केवल अनुक्रम की एकता है। इसलिए, जैसा कि हमने पीछे देखा है, किसी कर्ता के होने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार सोचना शब्द भी अविश्लेष्य नहीं है। विचार अनेक मानसिक घटनाओं का समवाय ह। जो बात एकदम निश्चित है वह यह है कि ऐंद्रिय घटनाए घटित होती हैं और वे विशुद्ध रूप से वर्तमान में घटित होती हैं।

डेकार्ट मन और भौतिक पदार्थ को दो स्वतत्र इकाइया मानता है। गति तथा आकार को वह भौतिक पदार्थ के मौलिक गुण मानता है जबकि

रग तथा शीतोष्णता और कठोरता-कोमलता इत्यादि गुणो को प्रतीयमान गुण। किन्तु आज भूत विज्ञान में गुणो का इस प्रकार मौलिक और प्रतीयमान (Primary and secondary) में भेद नही किया जाता, क्योंकि तथा-कथित मौलिक गुण उतने ही प्रतीयमान और देश-काल के अनुसार परिवर्त— मान हैं जितने तथा-कथित प्रतीयमान गुण। यह बात चित्रकार और फोटो-ग्राफर बहुत अच्छी तरह से जानते है। जहाँ तक गति का प्रश्न है, यदि पदार्थ घटनाओं की शृखला मात्र है तो गति का केवल इतना ही अभिप्राय है कि घटनाओ के एक समवाय का अन्य घटनाओ के समवायो के साथ वही दैशिक सम्वन्ध नही रहता जो पहले था। मान लीजिए एक घटना समवाय घ^{न} का अन्य घटना समवायो घ$^{न'}$ के साथ काल क पर सम्वन्ध स है और पुन. काल क' पर स' तो हम कहेगे कि अमुक पदार्थ गतिमान था। इस प्रकार गति केवल सापेक्षता है, मौलिक गुण नही।

आकार को भूतत्व का गुण इस आधार पर कहा जाता था कि जबकि रग अथवा उष्णता इत्यादि व्यक्ति भेद के साथ भिन्न-भिन्न है और इसी प्रकार देश भेद के साथ परिवर्तमान हैं तो आकार में इस प्रकार कोई परिवर्तन नहीं देखा जाता। किन्तु यह एकदम भ्रान्ति हैं। आकार अथवा रूप मे भी देश अथवा कोण भेद के साथ अन्तर पडता है। उदाहरणार्थ, पैसे के चाक्षुष प्रत्यक्ष को लें। उसके पृथ्वी पर पड़े होने पर वह केवल ठीक ऊपर से देखने पर ही गोल प्रतीत होगा, अन्यथा नहीं, और इसी प्रकार जितने ही कोणो और अन्तरों से उसे देखा जाएगा उसके उतने ही भिन्न आकार देखे जा सकेंगे। अब, कुछ लोग पैसे के गोल आकार को उसका वास्तविक आकार कहना चाहेगे, किन्तु यह एक दम अतर्क सम्मत है, क्योंकि इस तर्क के अनुसार किसी विशेष कोण और विन्दु से प्रतीत होने वाले विशेप रग को भी उसका वास्तविक रग कहा जा सकता है। इसी प्रकार गोल आकार भी विभिन्न कोणो से विभिन्न परिमाणो का प्रतीत होगा, इनमें किस परिमाण के गोल आकार को पैसे का वास्तविक आकार कहा जाएगा ? अत दोनो ही अवस्थाओ में निर्णय सुविधापेक्ष (Arbitrary) होगा क्योंकि किसी एक रूप को दूसरे से अधिक महत्व देने के पक्ष में कोई तर्क नही दिये जा सकते। इस प्रकार, रूप और आकार, दोनो हमारे ऐंद्रिय सवेद के विपय है और उतने ही मानसिक हैं जितनी कोई भी अन्य घटना हो सकती है।

हमारा तथाकथिक भौतिक पदार्थो का ज्ञान उनके इन गुणो का ही ज्ञान है। एक चाक्षुप घटना रग तथा आकार का समवाय है, अथवा रंगीन

घटना के सम्पर्क में आती है और अमानसिक से मानसिक हो जाती है ? मानसिक घटना और अमानसिक घटना के निजी स्वरूपो में क्या अन्तर है ? ये सब प्रश्न इस कल्पना को कठिन बना देते है। हमारी व्याख्या के अनुसार, मानसिक घटनाएँ वे घटनाए होगी जो ऐंद्रिय सवेद के रूप में घटित होकर हमारे मस्तिष्क म एक कारण शृखला को व्यापारित कर देती हैं, जब कि अमानसिक घटनाएँ वे घटनाएँ हैं जो इस कारण शृखला से अनुधावित नहीं होती। पिछले दोनो निबन्धों में अचेतन घटनाओ के प्रकरण में हमने इस प्रकार की कुछ घटनाओं के उदाहरण दिये थे, किन्तु सभी अचेतन घटनाएँ भौतिक घटनाएँ नहीं होती, इसके लिए कुछ और विशेषताओ की भी आवश्यकता है, जिनके सम्बन्ध में हम आगे विचार करेंगे।

पदार्थ क्या है ? इस प्रश्न पर शताब्दियो से विचार होता रहा है, किन्तु विचार अथवा अनुसन्धान की प्रविधि ही भ्रान्ति पूर्ण होने से उसका कोई निश्चय नही किया जा सका। पदार्थ को सत् या असत् कहने के आधार विशुद्ध रूप से दार्शनिको की रुचियो पर निर्भर करते थे। किन्तु डेकार्ट तथा जेम्ज ने इस ओर एक नवीन तथा उपादेय प्रणाली का प्रवर्तन किया, जिसका अनुसरण आज तक हो रहा है। डेकार्ड ने देखा कि सम्पूर्ण सवेद्य विश्व उसके प्रत्यय पर निर्भर करता है, और असवेद्य के अस्तित्व के सम्बन्ध में अपरोक्ष रूप से वह कुछ नही जान सकता। अत वह केवल अपने प्रत्यय के सम्वन्ध में ही निश्चित हो सकता है, शेष सब भ्रान्त शिक्षा का परिणाम है। प्रत्यक्ष का अस्तित्व निश्चित है क्योकि उसे प्रत्यक्षत. मैं देखता हूँ और वह मेरा अग है, इसलिए मेरा अस्तित्व निस्सदेह है—क्योकि मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ।' किन्तु वास्तव में इस वाक्य में भी वह प्रत्यक्ष और निश्चित की सीमा से बाहर जा रहा है। उपर्युक्त वाक्य में 'मैं और सोचना' शब्द सन्देहास्पद हैं, क्योकि 'मैं' शब्द जिस मानसिक इकाई की ओर सकेत करता है वह एकदम काल्पनिक है, उसी प्रकार जिस प्रकार मेज काल्पनिक है, 'मैं' केवल अनुभवों और सवेदो की कारण शृखला मात्र है और मन की एकता केवल अनुक्रम की एकता है। इसलिए, जैसा कि हमने पीछे देखा है, किसी कर्ता के होने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार सोचना शब्द भी अविश्लेष्य नहीं है। विचार अनेक मानसिक घटनाओ का समवाय है। जो बात एकदम निश्चित है वह यह है कि ऐंद्रिय घटनाए घटित होती हैं और वे विशुद्ध रूप से वर्तमान में घटित होती हैं।

डेकार्ट मन और भौतिक पदार्थ को दो स्वतत्र इकाइया मानता है। गति तथा आकार को वह भौतिक पदार्थ के मौलिक गुण मानता है जबकि

रंग तथा शीतोष्णता और कठोरता-कोमलता इत्यादि गुणो को प्रतीयमान गुण। किन्तु आज भूत विज्ञान में गुणो का इस प्रकार मौलिक और प्रतीयमान (Primary and secondary) में भेद नही किया जाता, क्योंकि तथा-कथित मौलिक गुण उतने ही प्रतीयमान और देश-काल के अनुसार परिवर्त—मान हैं जितने तथा-कथित प्रतीयमान गुण। यह बात चित्रकार और फोटो-ग्राफर बहुत अच्छी तरह से जानते हैं। जहाँ तक गति का प्रश्न है, यदि पदार्थ घटनाओ की शृंखला मात्र है तो गति का केवल इतना ही अभिप्राय है कि घटनाओं के एक समवाय का अन्य घटनाओ के समवायो के साथ वही दैशिक सम्बन्ध नहीं रहता जो पहले था। मान लीजिए एक घटना समवाय घ^{न} का अन्य घटना समवायो घ$^{न'}$ के साथ काल क पर सम्बन्ध स है और पुन काल क' पर स' तो हम कहेगे कि अमुक पदार्थ गतिमान था। इस प्रकार गति केवल सापेक्षता है, मौलिक गुण नही।

आकार को भूतत्व का गुण इस आधार पर कहा जाता था कि जबकि रग अथवा उष्णता इत्यादि व्यक्ति भेद के साथ भिन्न-भिन्न है और इसी प्रकार देश भेद के साथ परिवर्तमान हैं तो आकार में इस प्रकार कोई परिवर्तन नही देखा जाता। किन्तु यह एकदम भ्रान्ति है। आकार अथवा रूप में भी देश अथवा कोण भेद के साथ अन्तर पड़ता है। उदाहरणार्थ, पैसे के चाक्षुष प्रत्यक्ष को लें। उसके पृथ्वी पर पडे होने पर वह केवल ठीक ऊपर से देखने पर ही गोल प्रतीत होगा, अन्यथा नही, और इसी प्रकार जितने ही कोणो और अन्तरो से उसे देखा जाएगा उसके उतने ही भिन्न आकार देखे जा सकेंगे। अब, कुछ लोग पैसे के गोल आकार को उसका वास्तविक आकार कहना चाहेगे, किन्तु यह एक दम अतर्क सम्मत है, क्योकि इस तर्क के अनुसार किसी विशेष कोण और विन्दु से प्रतीत होने वाले विशेष रग को भी उसका वास्तविक रग कहा जा सकता है। इसी प्रकार गोल आकार भी विभिन्न कोणो से विभिन्न परिमाणो का प्रतीत होगा, इनमें किस परिमाण के गोल आकार को पैसे का वास्तविक आकार कहा जाएगा ? अत दोनो ही अवस्थाओ में निर्णय सुविधापेक्ष (Arbitrary) होगा क्योंकि किसी एक रूप को दूसरे से अधिक महत्व देने के पक्ष में कोई तर्क नहीं दिये जा सकते। इस प्रकार, रूप और आकार, दोनो हमारे ऐंद्रिय सवेद के विषय है और उतने ही मानसिक हैं जितनी कोई भी अन्य घटना हो सकती है।

हमारा तथाकथिक भौतिक पदार्थों का ज्ञान उनके इन गुणो का ही ज्ञान है। एक चाक्षुप घटना रग तथा आकार का समवाय है, अथवा रगीन

आकार है। इसी प्रकार स्पर्श सम्बन्धी घटना तापमान तथा आकार का समवाय है। जब एक चाक्षुष घटना घटित होती है उस समय हम एक रगीन आकार बाहर देखते हैं, जहाँ कि कुछ कदम चलने के पश्चात् पहुँचा जा सकता है। मान लीजिए इस स्थान पर पहुँचने पर स्पर्श सम्बन्धी घटना भी घटित होती है, उस अवस्था में हम समझते है कि यह स्थान किसी भौतिक पदार्थ से अनुमित है, जो हमारे सवेदन का साक्ष नही है। किन्तु यदि स्पर्श सम्बन्धी घटना यहाँ घटित नही होती तो हम इसे अपना भ्रम समझते हैं। किन्तु यह स्थिति सरल (Primitive) न होकर सम्पृक्त (Complex) है, इसमें चाक्षुष तथा स्पर्श सबधी अन्वय (Associations) सपृक्त है, अन्यथा चाक्षुष घटना अपनी यथार्थता के लिए स्पार्श घटनाओ पर निर्भर नही करती। अत जब हम कहते है कि 'वह मेज है' उस समय हमारी मानसिक स्थिति सम्पृक्त होती है। स्पर्श सम्बन्धी घटनाओ को चाक्षुष घटनाओ से यथार्थ के अधिक निकट कहना केवल, विश्वास जन्य और सुविधापेक्षी (Arbitrary) है, अन्यथा दोनो की स्थिति में कोई अन्तर नही हो सकता। जो भी हो, दोनो ही अवस्थाओ में सामान्यत यह स्वीकार किया जाता है कि ऐंद्रिय घटनाओ का स्रोत बाहर है और वह एक ऐसा केन्द्र है जिससे सब प्रकार की कारण शृखलाए प्रसारित होती है और हमारी इन्द्रियो के सम्पर्क में आकर किसी रहस्यमय ढग से हमें प्रत्यक्ष होती हैं, अथवा स्वय वह केन्द्र ही किसी रहस्यमय ढग से समारे सवेद का विषय हो जाता है।

यदि पदार्थ इस प्रकार का कोई स्वलक्षण अस्तित्व है भी तो भी उसे एक अविभाज्य इकाई नही कहा जा सकता। वह इस प्रकार के अस्तित्वो की कारण शृखला है। अत जब किसी काल विशेष पर ऐंद्रिय घटना घटित होती है उस समय हम कह सकते है कि काल क^{१} में देश द^{१} पर एक चाक्षुष घटना घ^{१} घटित हुई जो भौतिक घटना घ$^{१'}$ से सम्बन्ध स से सयुक्त है। यह घटना घ$^{१'}$ अन्य अनेक घटनाओ प^{न} से, जिन्हे सम्मिलित रूप से हम पदार्थ कहते हैं, सम्बन्ध स' से सयुक्त है। प्रथम सम्बन्ध जहाँ सवेद्यता का है, दूसरा सम्बन्ध वर्ग-सदस्यता का। सवेद्य सम्बन्ध पुन वर्ग-सम्बन्ध को जन्म देता है — एक ही घटना चाक्षुष, श्रौत्र और स्पार्शन इत्यादि सवेदो का विषय हो सकती है। पुन, प्रत्येक सवेद्य घटना विभिन्न कोणो से सवेद्य है और इस प्रकार उनके कितने ही सम्बन्ध हैं। मान लीजिए, घटना घ$^{१'}$ का चाक्षुष प्रत्यक्ष काल क पर जितने बिन्दुओ से घटित होता है उन सब का

कैमरों द्वारा सकलन किया जाता है, तब हम कहेगे $घ^{1'}$ जो प से सबध स' द्वारा सयुक्त है और $घ^{1}$ से सम्बन्ध स द्वारा, वह इन सम्बन्धो के साथ काल $क^{1}$ में देश $द^{1}$ पर घटित हो रहा है, जो कि मेरा मस्तिष्क है और यह देश $द^{1}$ अन्य चाक्षुष देशो $द^{न}$ से सम्बन्ध स' द्वारा सयुक्त है, जो कि वर्ग-सदस्यता का सम्बन्ध है। अत. पदार्थ काल क पर असख्य घटनाओ और सम्बन्धो का समवाय है। हीसन्वर्ग-स्क्रॉडिजर के क्वाटम सिद्धान्त में परमाणु इन सम्बन्धो और घटनाओ का ही समवाय है, किन्तु उस सिद्धान्त के अनुसार घटना समवाय $प^{न}$ का अस्तित्व काल्पनिक है और सो से $घ^{1}$ को $प^{न}$ से सयुक्त करने वाला सम्बन्ध स' भी।

किन्तु यह आवश्यक नही कि पदार्थ को इस प्रकार प्रत्यक्ष घटनाओ का समवाय ही माना जाए, जो एक केन्द्र में सहावस्थित हैं। मान लीजिए, मैं एक व्यक्ति को घटी बजाते देखता हूँ और शब्द सुनता हूँ, जिसे मैं घटी का स्वर कहता हूँ। प्रयोग के लिए मैंने कुछ मूवी कैमरे रखे है जो चित्र भी लेते है और ध्वनि भी रिकार्ड करते हैं। उन सबको पीछे मैं देखता और सुनता हूँ और पाता हूँ कि इन यत्रो ने भी मेरे ही समान चाक्षुप और श्रौत्र घटनाओ का 'सवेद' किया है। उस अवस्था में यह भी सभावना की जा सकती है कि जहा कोई व्यक्ति नही खडा था अथवा कैमरा नही रखा था वहाँ भी मेरी प्रत्यक्ष के 'समान' ही घटनाएँ घटित हो सकती थी यदि वहाँ कोई कैमरा अथवा मस्तिष्क होता तो। अत हम अनुमान करते हैं कि उस केन्द्र में, जहा सब चाक्षुप और श्रौत्र घटनाए समन्वित की जा सकती है, कुछ घटनाएँ घटित हो रही हैं जहाँ से सब ओर को कारण शृखलाएँ प्रसारित होती है और हमारी इन्द्रियो से सम्पर्क होने पर चाक्षुप और श्रौत्र रूपो में परिणत हो जाती हैं। ये घटनाए इस पदार्थ के इतिहास में एक सर्वथा नवीन और विचित्र अध्याय का आरभ करती हैं, किन्तु पदार्थ का अस्तित्व इन घटनाओ पर निर्भर नही है, वह इनसे स्वतत्र है और उन शृखलाओ का अजस्र स्रोत है जो इन्द्रियों से सम्पर्क होने पर पुन लगभग उसी प्रकार की घटनाओ में घटित हो सकती हैं। यह सवेद की कारण-सम्बन्धो में व्याख्या है। किन्तु बर्कले इसका विरोध करते हुए कहता है कि कार्यो और कारणो का सामान्यत एक ही गुण होना चाहिए। इस प्रकार, जो भी हमारे मानस-प्रत्यक्ष होता है उसे मूलत हमारी मानसिक घटनाओ के समान ही होना चाहिए। अत' बर्कले ने तर्क किया कि क्योकि सवेद्य घटनाएँ मानसिक हैं अत बाहर घटित होने वाली कारण घटनाओ को भी मानसिक ही होना चाहिए।

किन्तु यह तर्क दुधारू है। यदि कारण और कार्य को समान गुण ही होना चाहिए तो मानसिक कही जाने वाली घटनाओ के लिए भी उतने ही निश्चय से कहा जा सकता है कि वे भौतिक हैं और उनका मानसिकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। बर्गसा ने मैटर एड मेमोरी (matter and Memory) में यही प्रतिपादित किया है। वे कहते है "मै पदार्थ को रूपो (Images) का समवाय मानता हूँ और पदार्थ के प्रत्यक्ष अथवा सवद को इन्ही रूपो में से एक विशेष रूप—शरीर के साथ सम्पर्क होना मानता हूँ।" और आगे "इधर रूपो का एक समवाय है जिसे मै वाह्य विश्व का मन द्वारा प्रत्यक्ष कहता हूँ और जिसे कि एक विशेप रूप—मेरे शरीर में, थोडा-सा परिवर्तन करने पर बहुत अधिक परिवर्तित किया जा सकता है। यह रूप केन्द्राध्युषित होता है, इससे सम्पूर्ण अन्य रूप निर्धारित होते है, इसकी प्रत्येक क्रिया अथवा स्थान परिवर्तन से सम्पूर्ण क्रम ही परिवर्तित हो जाता है, बिल्कुल केलीडियोस्कोप के घुमाने से उत्पन्न परिवर्तन के समान और दूसरी ओर, वही रूप है जो कि अपने आप में स्वतन्त्र वृत्त है, यद्यपि यह एक दूसरे को प्रभावित करते है, इसमें सन्देह नही, किन्तु यह कार्य निरपवाद रूप से कारण के अनुपात में होता है। इसे ही मै भौतिक विश्व कहता हूँ। प्रश्न है, ये दो प्रक्रियाए (System) कैसे साथ-साथ रह सकती है, क्यो वही रूप भौतिक विश्व में अपेक्षाकृत अपरिवर्तमान है और सवेदो के सम्पर्क में असीम रूप से परिवर्तमान है?" इस प्रकार उन्होने प्रत्यक्ष रूपो और भौतिक घटनाओ को समान ही माना है और प्रत्यक्ष या सवेद्य रूप भौतिक रूपो पर निर्भर हैं। वे आकस्मिक क्रिया (Eventual action) तथा रहस्यमय स्मृति को भी बीच में लाते है, किन्तु यहाँ उस सम्बन्ध में कुछ कहना प्रासगिक नही होगा। जहाँ तक बर्गसा के पदार्थ सम्बन्धी विचारो का प्रश्न है, हम उनसे सहमत नही है और साथ ही यह कह देना भी आवश्यक है कि यह समझना सहज नही है कि वे क्या कहना चाहते है। वे कुछ अस्पष्ट शब्दो और परिभाषाओ का प्रयोग करते हैं, जिन्हे सभवत उनके अतिरिक्त कोई भी स्पष्टता नही समझता। जी० ई० मूर ने भी सवेद्य रूपो को भौतिक रूपो के समान ही माना है और उनका विश्लेषण अत्यन्त स्पष्ट और तर्क सम्मत है, यद्यपि हम उनसे सहमत नही हैं, क्योकि उनका अभिमत स्वीकार करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं।

किन्तु जहाँ तक बर्कले का सम्बन्ध है, उनका विश्लेषण भी कम त्रुटिपूर्ण नही है। उनका उद्देश्य ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करना है। यदि ईश्वर और अहम् को उनके विश्लेषण से हटा दिया जाए तो वास्तव में वही पहला कदम है जहाँ से

पदार्थ का आधुनिक दर्शन आरम्भ होता है। बर्कले पहला दार्शनिक था जिस ने विशुद्ध विश्लेषण प्रणाली पर ज्ञान मीमांसा के सहारे पदार्थ का सवेद से भिन्न स्वतन्त्र अस्तित्व अस्वीकार किया था।

हमने पीछे देखा है कि हमारा पदार्थ का ज्ञान उन घटनाओ का ज्ञान है जो हमारे मस्तिष्क में घटित होती हैं। मेरा मेज़ का चाक्षुष प्रत्यक्ष एक विशेष देश और काल में घटित होने वाली घटना है और उसका गुण विशेष रग, जिसकी कुछ दैशिक और कालिक स्थितियाँ हैं। यद्यपि इसे मैं अपने शरीर से कुछ दूरी पर देखता हूँ किन्तु यह केवल अतीत सम्बन्धो के कारण ही, अन्यथा जहाँ यह घटना घटित हो रही है, और जहाँ मैं इसे देखता हूँ वह देश में दो भिन्न स्थितियाँ हैं। मेरे मस्तिष्क में घटित होने वाली यह घटना निश्चय ही उस घटना से भिन्न है जिसे हम पदार्थ कहते है, क्योंकि यह घटना उस कारण शृखला को प्रेरित करती है, जिसे हम कल्पना, स्मृति, आवेग इत्यादि कहते हैं, और यदि सवेद्य घदनाओ को भौतिक घटनाओ वे समान भी कहा जाए तो भी सवेद्य घटना से प्रेरित कारण शृखला भौतिक घटनाओ की कारण शृखला के समान गुणवाली नही कही जा सकती। किन्तु वास्तव में कल्पना तथा सवेद में कोई मौलिक अन्तर नही है, जैसा कि हम ने पिछले निबन्ध में माना है। कल्पना तथा सवेद में अन्तर केवल अन्वय जनित है। कल्पना जब कि कोई दैशिक सम्बन्ध नही रखती, सवेद के दैशिक सबन्ध होते हैं—यह उस विशेष काल पर घटित होने वाले अन्य सवेदो से सम्बन्धित की जा सकती है। सवेद भौतिक घटनाओ के भी बिल्कुल समान नही हो सकते, क्योंकि भौतिक घटनाएँ, यदि वह हैं तो, सवेदो से इस बात में भिन्न हैं कि जब कि भौतिक घटनाएं अनेक सम्बन्धित सवेद्य घटनाओ की केन्द्र हैं, सवेद्य घटना के ऐसे कोई सम्बन्ध नही हैं। इसी प्रकार भौतिक घटनाएँ जब कि उस वर्ग की सदस्य हैं जिसे हम मेज या कुर्सी या पुस्तक कहते है, सवेद्य घटनाए उस वर्ग की सदस्य है जिसे हम मन कहते हैं।

जब मैं कहता हूँ—"मैं मेज देख रहा हूँ' उस समय वास्तव में एक चाक्षुप घटना घटित होती है जहा पर मेरा मस्तिष्क है, और सम्बन्धित कारण शृखला घटित होती है। इसी प्रकार, मेरे पास विद्यमान अन्य व्यक्तियो में भी, जिनकी आँखें उस केन्द्र की ओर है, जहाँ मेरे सवेद का अभ्युपगमित मेज है, मेरे मस्तिष्क में घटित होने वाली घटना के लगभग समान ही घटनाए घटित होती है। यह मुझे उनके कथनो से ज्ञात होता है। अन्य मस्तिष्को में घटित होने वाली घटनाए मेरे सवेदो के बिल्कुल समान नही हो सकती, कम से कम आकारो में कुछ भिन्नता अनिवार्य है, किन्तु यदि

मै उन स्थानो पर जाऊं जहाँ पहले कोई अन्य मस्तिष्क था तो मै भी लगभग उसी प्रकार का रगीन सस्थान देख सकता हू। (यहाँ लगभग शव्द का प्रयोग इसलिये किया गया है कि एक ही दैशिक विन्दु पर ये दो घटनाए एक ही कालिक विन्दु पर भी नही हो सकती, कालिक विन्दुओ मे आनुक्रमिक सम्वन्ध होगा।) अव मेरे इस स्थान परिवर्तन के साथ मुझमें जो दो सवेद घटित होते है, उनका केन्द्र एक ही रहेगा। और यदि अन्य मस्तिष्क, जिसका स्थान मैंने अव लिया है, ठीक मेरे पीछे हटकर है तो उसकी आखो की दिशा ठीक वही कोण वनाएगी जो मेरी आँखो की दिशा। इसी प्रकार, जव मै स्थान परिवर्तन करूगा तो इस के साथ मै देखूंगा कि प्रथम विन्दु से उस विन्दु तक पहुँचने के अन्तर में, जहाँ पर पहले अन्य मस्तिष्क था, कुछ सवेद घटित होते हैं, जो प्रथम मे द्वितीय विन्दुके अ'तर को एक क्रम से भरते हे। यह शृखला वृत्त और लवाई में द्विविध है। यदि सभी द्रष्टा उ केन्द्र की ओर वढें तो एक स्थान ऐसा आएगा जहाँ पहुँचकर स्पार्शन घटन घटित होगी और चाक्षुप घटनाएँ समाप्त हो जाएगी। उस स्थान को हम केन्द्र कहेगे, और यही वह स्थान है जहाँ पर कि अभ्युपगमित (Hypothetical) पदार्थ है। जहा तक हमरे ज्ञान का सम्वन्ध है, इस तथा कथित-पदार्थ के सम्वन्ध में हम कुछ नही जानते, हम केवल उस घटना क्रम को जानते हैं जो हमारा सवेद है। अत यह पदार्थ उन घटनाओ का नियमित क्रम मात्र है जिनमें से कुछ मेरे मस्तिष्क में घटित होती हैं। विभिन्न कालो और विभिन्न देशो में घटित होने वाली इन घटनाओ को कारणता तथा अन्वयो द्वारा सकलित किया जा सकता है, जो पुन हमारे सवेदो के ही सम्वन्ध है। अत वह केन्द्र जो इन सव घटनाओ को, जो इसके चारो ओर घटित होती है, अन्वयित करता है, पदार्थ है। ये घटनाए जव कि वास्तविक है, क्योकि सवेद्य है, स्वय यह केन्द्र केवल अभ्युपगम है जो इन विभिन्न घटनाओ के सम्वन्ध की व्यख्या को सहज वनाता है। पदार्थ की यह व्याख्या वर्ट्रेड रसल के अनुसार है। वे सवेद तथा पदार्थ के स्थानो का निर्णय इस प्रकार करते है—

१—वह स्थान जहाँ कि विभिन्न केन्द्रो के प्रत्यक्ष एक साथ सकलित होते हैं और एक सस्थान का निर्माण करते हैं, जैसे जव मैं काल क पर तारकित आकाश की ओर देखता हूँ।

२—सभी सवेद, जिनका केन्द्र एक ही है, जैसे, जव वहुत से व्यक्ति एक साथ 'एक' तारे को देखते हैं।

इनमें प्रथम स्थान वह है जहाँ पर मानसिक घटनाए घटित होती हैं

और द्वितीय वह जहाँ पर अभ्युपगमित पादार्थिक घटनाए घटित होती है। रसल पदार्थ को उन घटनाओ का अन्वय मात्र मानते है जो हमारे मस्तिष्क में घटित होती है। वे कहते हैं—"विभिन्न प्रत्यक्षो के समीकरण के लिए एक तटस्थ स्रोत की कल्पना करने के बजाय हम यह तटस्थता सम्पूर्ण वर्गो को समान प्रतिनिधित्व देकर भी प्राप्त कर सकते हैं। जिनके लिए यह कहा जाता है कि वे मेज देख रहे हैं, उनके सम्वेदो के मूल में किसी अज्ञात कारण की कल्पना करने के बजाय हम इन प्रत्यक्षो के सम्पूर्ण समवाय को ही, इनके पूरक कुछ अन्य सम्भावित सवेदो के साथ, मेज कह सकते हैं। अर्थात् मेज, जो कि विभिन्न दर्शको (वास्तविक और सभाव्य) के बीच तटस्थ है, उन सवेदो का समवाय मात्र है जो स्वभावत उस मेज के विभिन्न कोणो के सवेद है।"

किन्तु पदार्थ की इस कल्पना को स्वीकार करने में अनेक कठिनाइयां है—क्यो मेज एक विशेप काल और विशेप देश में ही सभी को एक साथ दिखाई देता है, क्यो उन सब के पीठ फेर लेने पर वह नहीं दिखाई देता ? अथवा, क्यो सबके मस्तिष्क में एक विशेप देश और एक विशेप काल में ऐसी घटनाए घटित होती है जिन्हें वे एक मेज के विभिन्न पहलू कहते हैं ? इसका उत्तर रसल यह देते हैं कि हम सवेदो के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते और सवेदो के अनिवार्य और पर्याप्त कारण हमारे मस्तिष्क में ही विद्यमान हैं, अत किन्ही वाह्य घटनाओ की कल्पना केवल अभ्युपगम मात्र है। इन सवेदो को वे ठोस से ठोसतर ज्ञान (Hardest of hard data) कहते है। किन्तु इस ठोस ज्ञान तक सीमित रह कर भौतिक विश्व की कल्पना नही की जा सकती, क्योकि उस अवस्था में तो भौतिक विश्व केवल तेजी से उडते हुए एक व्यक्ति के सवेदो तक ही सीमित रहेगा। अत. वे अपने ही समान अन्य मनो के अस्तित्व को भी स्वीकार करते है और अपने अतीत सवेदो को भी। अतीत सवेदो का अस्तित्व केवल हमारा विश्वास ही है, क्योकि जो अब है ही नही उसके हुए होने का प्रमाण केवल हमारा विश्वास ही है। इसी प्रकार दूसरे व्यक्तियो के अस्तित्व के सम्बन्ध में भी। उनका शरीर उतना ही परोक्ष ज्ञान (Soft data) है जितना मेज, और जहाँ तक मन का प्रश्न है वह इससे भी अधिक परोक्ष और आनुमानिक है। इसी प्रकार, सवेद, चाहे वे स्वप्न के हो, ठोस से ठोस ज्ञान है।

रसल के उक्त विवेचन में स्पष्टत सुविधापेक्षता (Arbitrarines) से काम लिया गया है, क्योकि ज्ञान के ठोसपन के मात्रा-क्रम (Gradation) का आधार केवल जैवी विश्वास (Animal faith) ही है। किन्तु इस कल्पना के बिना रसल का पदार्थ वाष्पित हो जाता है, किन्तु हमें यह समझने

में अत्यन्त कठिनाई अनुभव होती है कि कैसे ज्ञान के इस मात्राक्रम की कल्पना को पचाया जाए और क्यो कुछ बाह्य घटनाओ को स्वीकार किया जाए और अन्य में सन्देह किया जाए। इस प्रकार अन्य मनो पर सन्देह करके हम पदार्थ का लक्षण कुछ इस प्रकार कर सकते हैं--विशिष्ट सवेदो का अनुक्रम सम्बन्ध, जिनका एक ही केन्द्र है।

किन्तु इस सिद्धान्त को स्वीकार करने में अनेक कठिनाइया है, जैसा कि स्पष्ट ही है, हम मेज को केवल वही नही मान सकते जो हमें वह एक विशेष काल में दिखाई देता है, हम उसकी दैशिक सम्पूर्णता भी बनाए रखना चाहते है। इसी प्रकार, जब हम मेज नही देख रहे होते उस समय उसका तिरोभाव स्वीकार नही करना चाहते। हम उस समय भी उसे विद्यमान मानना चाहते हैं, रसल भी यह मानते है, किन्तु जब मेज किसी का भी सवेद्य नही होता उस समय उसके अस्तित्व की स्वोकृति का क्या आधार है, यह समझना कठिन है। रसल इस अस्तित्व को कारणता के आधार पर स्वीकार करते है। वे कहते है--"अब भूत विज्ञान ने सवेद्य विषयो (Sense data) को एक शृखला में सकलित करने को अनुभव के स्तर पर (Emperically) सभव कर दिया है। प्रत्येक ऐसी शृखला 'एक वस्तु' समझी जाएगी और इस शृखला का व्यवहार ऐसा होगा जैसा अन्य वस्तु से सबन्धित शृखला का नही होगा। कि अमुक सवेद अथवा प्रतोतियाँ एक ही वस्तु की प्रतीतियाँ है या नही, यदि इसे स्पष्ट रूप से समझने योग्य होना है तो सकलन का केवल एक ही ढग होना चाहिए और वह यह कि वस्तुए भूत विज्ञान के सिद्धान्तो के अनुकूल हो।" और ये सिद्धान्त कारणता के सिद्धान्त हैं। "यहाँ अभीष्ट है कारण सिद्धान्तो की अनुकूलता। यह कथन बहुत अस्पष्ट है, किन्तु हम इसे स्पष्टता तथा विनिश्चता देने का प्रयास करेंगे। जब मै कारण सिद्धान्तो की बात करता हूँ, मेरा अभिप्राय उन सब सिद्धान्तो से होता है जो घटनाओ को विभिन्न कालो में सम्बन्धित करते हैं अथवा सम कालिक घटनाओ को भी, यदि इनमें सम्वन्ध तार्किक रूप से द्रष्टव्य नही हैं तो।" और आगे कहते है (किन्तु) "यह सिद्ध करना अत्यन्त कठिन (असभव) होगा कि वास्तव में ऐसी बात है ही।" (Our Knowledge of the External world) किन्तु ये कारण सिद्धान्त अधिक से अधिक एक व्यक्ति के अपने सम्वेदो के सह-सम्बन्धो (Correlations) के सम्बन्धमें निश्चित रूप से बता सकते है और अतएव यह सह-सम्बन्ध केवल आनुक्रमिक ही हो सकते है सह-कालिक नही। किन्तु केवल एक व्यक्ति के तीव्र गति से उडते हुए सवेद 'मेज' का निर्माण करने के लिए काफी नही है। इस उलझन से बचने का

एक और उपाय है . सवेद, जैसा कि हमने पीछे देखा है, सवेदन की क्रिया और सवेद-विषय में विश्लेपित नहीं किये जा सकते, सवेद अपने आप में पूर्ण एक अस्तित्व है और इसका विषय वास्तव मे इसका अपना आधार भूत गुण है। इसी प्रकार, सवेद मेरे या उसके सवेद नही है, यह केवल आकस्मिक सयोग है कि देश के उस विशिष्ट विन्दु पर घटनाओ का वह समवाय है जिसे "मैं" कहा जाता है, अन्यथा कोई भी मस्तिष्क अथवा कैमरा इत्यादि वहाँ हो सकता था और प्रत्येक अवस्था में वह सवेद-विषय घटित हुआ होता। इन घटना समवायो के, जिन्हें हम मस्तिष्क अथवा आपरेटस कहते हैं, विना भी ये सवेद घटित हो सकते अथवा ये नही यह विवादास्पद है, और इसे हम कुछ देर के लिए स्थगित कर सकते है। किन्तु यदि यह संवेद, मस्तिष्क अथवा आपरेटस के साथ ही घटित होता है तो भी यह उस घटना समवाय का भाग नही है, हम इसके स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना कर सकते है। अव मान लीजिए इन सवेदो से अतिरिक्त अन्य कुछ भी अस्तित्व नही है, उस अवस्था में केवल इन सवेदो से ही सम्पूर्ण विश्व का 'निर्माण' किया जा सकता है। सह-सम्वन्धो के द्वारा इन सवेदो में सहकालिकता और आनुक्रमिकता के सम्वन्ध स्थापित किये जा सकते है। रसल और वर्कले इसी सिद्धान्त को मान कर चलते है, किन्तु रसल और वर्कले दोनो सम्भवत सवेदो को इस प्रकार आत्म-स्वतन्त्र अस्तित्व नही मानते, रसल इनके होने के लिए मस्तिष्क को आवश्यक मानते हैं और वर्कले मन को। सह-सम्वन्ध के लिए वर्कले एक सार्व ौम मन की कल्पना करते हैं जव कि रसल केवल 'अनुभव' को (Experience को) पर्याप्त मानते हैं। किन्तु यदि सवेदो के अतिरिक्त अन्य सव केवल अनुमान और कल्पना है तो अन्तत मस्तिष्क और मन को भी (चाहे वह सार्वभौम मन ही क्यो न हो) सवेद ही होना चाहिए, और यदि वह सवेद नही हैं तो उनका अस्तित्व उतना ही काल्पनिक है जितना स्वय 'मेज' का, एक स्वतन्त्र अस्तित्व के रूप में। किन्तु रसल मस्तिष्क को भी सवेद ही मानते हैं, यद्यपि एक भिन्न प्रकार का, अथवा कहे, भिन्न सह-सम्वन्धो वाला सवेद। किन्तु रसल का आशय एकदम स्पष्ट नही है (कम से कम हमारे लिए)। जव मेज को कोई नहीं देखता अर्थात् जव मेज किसी मस्तिष्क अथवा ऑपरेटस का सवेद्य नही है उस समय भी उसका अस्तित्व रहता है या नहीं? रसल मानते हैं कि वह रहता है, किन्तु किस रूप में? यह स्पष्ट नही है। रसल सभाव्य सवेदो का अस्तित्व स्वीकार करते हैं किन्तु इसके लिए कम से कम एक वास्तव सवेद का होना आवश्यक है जिसके सह-सम्बन्धो के आधार पर सभाव्य सवेद अनुमित किये जा सकें।

अतः जब मेज का कोई भी वास्तव सवेद[1] घटित नही होता उस समय सह-सम्बन्धो का प्रश्न भी उत्पन्न नही होता। उस अवस्था में रसल मेज का अस्तित्व किस रूप में स्वीकार करते है, यह हमें ज्ञात नही है।[2]

सवेदो को, जिन्हें हम सवेदित करते हैं, सवेद्य वस्तु–जैसे मेज–से स्वतत्र मानने के पक्ष में प्रमाण यह दिया जाता है कि स्वप्न में अथवा बीमारी में हम मेज् के बिना भी मेज को देखते हैं। किन्तु सवेद्य रूप से भी स्वप्न और जागृति के सवेदो में सम्बन्धो की भिन्नता होती है, इस सम्बन्ध में हम पीछे देख ही आए है। इसके अतिरिक्त 'इस विशेष काल में, विशेष देश में एक विशेष केन्द्र के साथ ही इस सवेद के घटित होने' में कुछ विशेषता है जो स्वप्न-सवेदो में नही होती। यदि मैं उस केन्द्र से आँखें हटा लेता हूँ जो मेरे सम्वेदो का मनोवैज्ञानिक स्थान है तो मुझमें वे सवेद घटित नही होते। इसी प्रकार, यदि मै ठीक वृत्त में उसके चारो ओर घूमता हूं और उस केन्द्र के साथ मेरी आंखो की दिशा ठीक वही कोण बनाती है तो मं मेज को निरन्तर परिवर्तमान आकारो के साथ देखता रहूँगा। अत यह सभावन प्रबल होती है कि हमारे से बाहर उस कॆंद्र में कुछ घटनाएँ घटित हो रही है जहाँ मेरी दृष्टि का मेज है अथवा जिस केन्द्र के साथ विभिन्न सह-सम्बन्धित घटनाओ में सम्बन्ध स्थापन सहज हो जाता है। सन्तयाना मेज को अथवा उस केन्द्र को, जो हमारे मेज सम्बन्धी प्रत्यक्षो का आधार हैं, वास्तविक अस्तित्व मानते हैं, किन्तु स्वय सवेदो को मेज अथवा उसका अग नहीं मानते। उनके अनुसार, हमारा विषय का प्रत्यक्ष विषय से भिन्न अस्तित्व रखता है किन्तु फिर भी वह विषय के गुणो और सम्बन्धो का भावन करता है। अर्थात् यद्यपि पदार्थ और उसके सवेद अस्तित्व के स्तर पर एक दूसरे से स्वतत्र हैं किन्तु सार (Essence) और गुणो में वे समान होते है। हम गुणो का अपरोक्ष प्रत्यक्ष करते है और इस प्रकार का प्रत्येक गुण निरपेक्ष है, वह अपने घटित होने के देश-काल और सम्बन्धो से स्वतत्र और आत्मपूर्ण हैं। अत इसकी आवृत्ति की जा सकती है और यह सार्वभौम तत्व है। सन्तयाना सार की परिभाषा देते हुए कहते है "विशुद्ध प्रत्यय अथवा

---

[1] वास्तव सवेद रसल मस्तिष्क में घटित होने वाले सवेंद को कहते है।

[2] रसल ने सवेदो के प्रति यह दृष्टिकोण (The Analysis of mind) तक ही रखा है। पीछे (The Analysis of matter) के बाद उन्होने सवदो के वजाय घटनाओ को वास्तविक अस्तित्व माना है और अपने से वाहर स्वतन्त्र घटनाओ का अस्तित्व स्वीकार किया है।

विशुद्ध ऐंद्रिय सवेद का वह विषय जिसके साथ अन्य कोई भी विश्वास और अन्वय (एसोसियेशन), सलग्न नही है......वाह्य सम्बन्धो तथा भौतिक गुणो से रहित।" वे आगे कहते हैं "जो विश्व हमारा सवेद्य है वह केवल इन निरपेक्ष और अमर सारो के असीम समवाय में से निर्वाचन मात्र है, जो सार स्वत. न तो मानसिक हैं और न अस्तित्ववान ही।" सन्तयाना इन सवेदित सारो में भावित गुणो के लिए कहता है "सभव है वे स्वय पदार्थ के भी गुण हो।" उसके अनुसार "क्योकि सवेदितसार और पदार्थ में निहित सार सार्वभौम हैं अत सवेद अपरोक्ष रूप से पदार्थ का भावन कर सकता है।" सन्तयाना की सार की कल्पना एक सीमा तक रसल के विशिष्ट (Particular) जैसी है। रसल का विशिष्ट न तो मानसिक है न भौतिक, वह उभयविध है, और सवेदित विशिष्ट अनन्त सभाव्य विशिष्टो में से कुछेक का आकस्मिक (Accidental) चयन मात्र हैं। किन्तु विशिष्टो का यह असवेदित अनन्त समवाय स्वय अनस्तित्व है। किन्तु रसल सन्तयाना के समान इन्हे सार्वभौम नही मानते प्रत्युत इन्हें निश्चित दैशिक-कालिक सम्बन्धो से युक्त मानते हैं। सन्तयाना की सार की इस कल्पना को स्वीकार करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं। सर्वप्रथम, यह समझना कठिन है कि इनका पदार्थ से क्या सम्बन्ध है और भूत विज्ञान से इनका समन्वय किस प्रकार किया जा सकता है। सवेदित सार मूलत पदार्थ से भिन्न है और असवेदित अनस्तित्व हैं, जबकि पदार्थ का अस्तित्व अक्षुण्ण रहता है। पुन यह भी समझना सभव नही है कि सारो का प्रत्यय से क्या सम्बन्ध है अथवा वे सवेद्य कैसे होते हैं, क्योकि जब मैं लाल फूल देखता हूँ उस समय मुझमें घटित होने वाला सवेदित सार उन असख्य सारो में से एक है जो सवेदित नहीं हैं, ये असवेदित सार अनस्तित्व हैं और सार मात्र का पदार्थ से कोई सम्बन्ध नही है, अत यह समझ सकना कठिन है कि क्यो यह विशेष सार ही उस समय मुझमें घटित हुआ, अन्य क्यो नही घटित हुआ।

सार की सार्व भौमता भी असदिग्ध नही: जब मैं लाल रग का सवेदन करता हूँ उस समय इस गुण विशेष अथवा सारो की असख्य परपरा को एक ऐसी घटना घटित होती है जिसे सार का सवेदन कहते हैं और जो इन असख्य अनस्तित्व सारो में से एक को अस्तित्व-गुण विशिष्ट कर देती है। सार के सवेदन में सन्देह नही किया जा सकता और यह भी नि सन्देह है कि प्रत्यक्षीकरण की यह घटना एक निश्चित देश और काल में घटित हुई है और इसीलिए इसकी पुनरावृत्ति भी नही हो सकती। लाल होने का गुण एब्स्ट्रैक्ट में (In Abstraction) सार्व भौम कहा जा सकता है किन्तु

ईस गुण की एक विशेष छाया के एक विशेप देश और काल में मवेक्षन की घटना के लिए यही वात नही कही जा सकती ।

यद्यपि हमारे उपर्युक्त विश्लेषण से ही यह स्पष्ट है कि सन्तयाना के सिद्धान्तानुसार प्रत्यक्ष को किसी भी प्रकार से पदार्थ से सम्बन्धित नही किया जा सकता किन्तु इस विश्लेषण को और भी आगे वढाया जा सकता है। आँख को एक विशेष प्रकार से दबाने पर हम एक के बजाय दो चाँद देखते है और न दबाने पर एक। अब यदि सवेदित सार अनन्त सार-शृखलाओ में से एक है और यह देश-काल निरवच्छिन्न सौर्वभौम है तो हमारे उपर्युक्त दो सवेदो में कोई सम्बन्ध नही स्थापित किया जा सकता और यदि हम इनमे से एक को चाँद का अपरोक्ष भावन कहेगे और दूसरे को नही तो इसे किसी तर्क के आधार पर नही प्रत्युत् केवल विश्वास के आधार पर ही। यह केवल सुविधापेक्षता ((Arbitrariness) होगी। इसी प्रकार मेज के सभी सवेदो को भी मेज का अप्रत्यक्ष भावन नही कहा जा सकता। मेज ठीक ऊपर से देखने पर जब कि एक विशेष आकार का दिखाई देता है, कुछ दूर पर जमीन पर खडे हो कर सर्वथा भिन्न आकार का दिखाई देता है। ये दो भिन्न आकार एक साथ ही मेज के आकार नही हो सकते। इनमें से किसी एक को दूसरे के बजाय मेज का वास्तविक आकार कहना निराधार कल्पना होगी।

इसके विपरीत रसल के सवेदो के वारे में यही नही कहा जा सकता। उनकी व्याख्यानुसार प्रत्येक सवेद अन्य असख्य सवेदो की दैशिक और कालिक सापेक्षता में अवस्थित है। जब हम एक के बजाय दो चाँद देखते हैं उस समय इस सवेद का अन्य सम्भाव्य और वास्तविक सवेदो के साथ समन्वय नही किया जा सकता, अत इस सवेद को असाधारण कहा जाएगा ।

ब्रॉड इस समस्या का कुछ भिन्न प्रकार से विश्लेषण करते हैं। उनके विचार में ऐंद्रिय सवेद की घटना का विश्लेषण—सवेदन क्रिया, सवेद तथा सवेद्य विषय में किया जाना चाहिए। वे कहते हैं, 'यह प्रमाणित करने के लिए अत्यन्त ठोस प्रमाण दिये जा सकते हैं कि सवेदित विपय अपने अस्तित्व के लिए मन पर निर्भर करते हैं, यद्यपि सवेद का विश्लेषण सवेदन क्रिया और सवेद्य विषय में किया जा सकता है। और इस प्रकार सवेद्य विषय को क्रिया तथा सवेद से भिन्न किया जा सकता है। किन्तु फिर भी ये दो फेक्टर एक दूसरे से स्वतत्र नही रह सकते। सवेदन का कोई व्यापार सवेदित विषय के विना सभव नहीं है जिस पर कि यह व्यापारित होता है, और इमी प्रकार

कोई असंवेदित विषय 'सम्भव' नहीं है जब तक कि संवेदन का व्यापार नहीं हो।" संवेद्य विषय को अपने अस्तित्व के लिए मन पर वे इस लिए आश्रित मानते हैं 'क्योंकि 'वह एक दम व्यक्तिगत है, उसमें तथा शारीरिक अनुभव में समता है तथा उन में और मानसिक कल्पनाओ में समता है।' किन्तु फिर भी इस विषय को वे मानसिक विषय अथवा मन की अवस्था नहीं मानते क्योंकि "यदि संवेद्य विषय मन की अवस्था हो तो ऐसी मानसिक अवस्थाएँ माननी होगी जो शब्दश. लाल, गोल, गर्म और स्वरित हो। मुझे यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नही दिखाई देती कि बहुत सी मानसिक घटनाएँ ऐसी (टर्म्ज़) से युक्त होती हैं जिन्हे हम विषय कहते हैं, किन्तु मुझे यह स्वीकार करना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है कि मानसिक अवस्थाए स्वय ऐसी टर्म्ज है।"

संवेदन की क्रिया के सम्बन्ध में हम पीछे देखेंगे, यहाँ ब्रॉड की अन्तिम पंक्तियाँ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। 'जब कि संवेद्य विषय संवेद का अविभाज्य अंग है और संवेदन क्रिया का भी, और संवेदन क्रिया मानसिक अवस्था है तब संवेद्य-विषय मानसिक अवस्था नही है क्योंकि वह लाल, चौडा और गर्म है। दूसरे शब्दो में, यद्यपि ललाई, चौडाई और गर्माई मन से स्वतंत्र नही हो सकती किन्तु फिर भी वह मन में नही हो सकती, और इसी प्रकार, यद्यपि विशेष मानसिक अवस्थाए ललाई, चौडाई और गर्माई के बिना नही हो सकती किन्तु ये गुण इन अवस्थाओ के नही हैं।' हमारे विचार में यह एक अत्यन्त दूराकृष्ट कल्पना है। कल्पना में भी हम ललाई, चौडाई और गर्माई का भावन करते हैं। यदि कल्पना भी सम्पूर्ण रूप से मानसिक अवस्था नही है तो हमें नही मालूम कि मानसिक अवस्था वे किसे कहते हैं। इस के अतिरिक्त, मान लीजिए मानसिक अवस्थाओ का लम्बे, चौडे और गर्म होना असभाव्य है, और यह भी कि विषय इन अवस्थाओ से युक्त होते हैं, अथवा ठीक शब्दो में, ये अवस्थाए विषयो की मौलिक अवस्थाए है, तो ये दो अस्तित्व, चौडाई-ललाई रहित मानसिक अवस्था और इन से युक्त वैषयिक अवस्था कैसे अधिकरण और अधिकृत (Container and Contained) का सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं? कैसे मानसिक अवस्था—संवेद की क्रिया, वैषयिक अवस्था से 'युक्त' हो जाती है? इन प्रश्नो का उत्तर हम ब्रॉड से नही पाते। उन्होने विश्लेषण को बहुत दूर तक खैंचा है।

अब संवेद की क्रिया के सम्बन्ध में। हमने इस बारे में पहले भी विचार किया है, किन्तु यहाँ एक बार पुन इस विषय पर इस प्रकरण में विचार

कर लेना उपयोगी होगा। ब्रॉड का क्रिया (एक्ट) को रखने का मुख्य कारण यह है कि वह सवेद में विषय को स्वतत्र रखना चाहते हैं और इसके कारण हमने ऊपर उद्धृत किये हैं। क्रिया को वे सवेद का वह भाग कहते हैं जो विषय-रहित है। किन्तु यदि सवेद के लिए ये दोनो भाग अनिवार्य हैं और यदि तथाकथित एक भाग दूसरे के बिना हो ही नही सकता तो किस आधार पर वे क्रिया का प्रतिपादन करते हैं, हम नही समझ सकते। इसी प्रकार, यदि सवेद्य विषय (Sensum) सवेद का एक भाग है तो किस प्रकार वह सवेद से पृथक् है ? सवेद को पूर्ण शुद्ध रूप में लेकर उसका विषय और व्यापार में विभाजन करना असभव है। मेज का चाक्षुष सवेद (अथवा कोई भी ऐंद्रिय सवेद) एक घटना है जो देश और काल में एक विनिश्चित सापेक्ष बिन्दु पर घटित होती है, यह एक दम मौलिक और आधार-भूत है। यह सन्तयाना के 'सार' और 'सार्वभौम' सवेद से इस अर्थ में समान है कि यह अविभाज्य है। ब्रॉड सवेद्य विषय की भी सन्तयाना से भिन्न व्याख्या करते हैं, वे कहते हैं "भौतिक विषय, जिसे कि मैं इस समय देख रहा हूँ, एक विशिष्ट गुण युक्त है', इस तर्क वाक्य का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है—एक विशेष विषय चाक्षुष घटना घ के विषय भाग का घटक है। यह यथार्थ में ही एक विशेष गुण क से सयुक्त है जिसे कि मैं निरीक्षणसे इसमें देख सकता हूँ, और इसका यह गुण द्विविध सम्बन्ध के रूप में विद्यमान है। और इसके अतिरिक्त भौतिक पदार्थ भ है जिससे कि विषय य सम्बन्ध स से सम्बन्धित है जो कि अद्वितीय है—अन्य किसी विषय के साथ जो नही हो सकता। यह सम्बन्ध स 'विषय की प्रतीति होने' का है। सवेद्य विषय की इस व्याख्या का लाभ यह है कि इस प्रकार एक विषय की विभिन्न प्रतीतियो में सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। सवेद्य विषय को एक स्वतत्र अस्तित्व भी रखा जा सकता है, जो स्वय भौतिक पदार्थ का भाग नही है, और इसे सवेद से भी स्वतत्र रखा जा सकता है। किन्तु यदि ध्यान से देखा जाए तो इस स्वतत्रीकरण में अनेक कठिनाइयाँ हैं। जब कि सवेद्य विषय भौतिक पदार्थ का भाग नही है और न ही यह मानसिक अवस्था है तो इसे पदार्थ की प्रतीति कहने का क्या अभिप्राय है ? क्या प्रतीति होने पर यह मन की अवस्था नही होगा जिसमें कि यह प्रतीति है ? यदि इसे पदार्थ की अवस्था नही भी कहा जाए तो भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि प्रतीति की घटना, जो कि मन में होती है, वह पदार्थ के किसी भाग को भी होती है। तब चाहे यह घटना इस पदार्थ के इतिहास का भाग न भी हो सके, तो भी यह पदार्थ से इस प्रकार सम्बन्धित है जिस कारण हम इसे इस

विशेष पदार्थ की प्रतीति कहते हैं। सभवत यह समझना सहज नहीं है कि ब्रॉड सवेद्य-विषय के सम्बन्ध में क्या कहना चाहते हैं। माईण्ड एड इट्स प्लेस इननेचर में पृष्ट २१८-२२० पर उन्होने सवेद्य विषय को केवल सवेद का विषय भाग कहा है जो शारीरिक स्तर पर कारित (Physiologically Caused) है, और वहां यह समझना कठिन है कि इसका भौतिक पदार्थ से, "जो कि स्वय इनके समान ही हो सकता है," क्या सम्बन्ध है। दूसरी ओर उन्होने 'साइटिफिक थाट' के अन्तिम निवध 'कडोशज एड स्टेट्स ऑफ सेंसा' में निर्वाचन सिद्धान्त को सर्वाधिक तर्क सम्मत वताया है, क्योकि "इस से सवेद्य विषय का प्रज्ञानात्मक (Epistimological) और सत्तात्मक (Exxistentıal) पद वढ़ जाता है।" इस सिद्धान्तानुसार सवेद्य विषय पदार्थ के वे भाग हैं जो कि हमारे सवेद के प्रज्ञानात्मक-प्रतीत्यात्मक प्रसग में आते हैं।

विश्लेपणात्मक वैज्ञानिकतावादी, जैसा कि इन्हे कहा जाता है, तथा रसल (एनेलेसिस ऑफ माइड तक) सवेद्य विषयो को भौतिक ससार में एक निश्चित और ठोस स्थान दिलाना चाहते हैं। इसका प्रमुख कारण ये है कि ये प्रत्यक्ष विषय ही वास्तव में हमें ज्ञेय हैं और इन्ही को सामान्य जन भौतिक पदार्थ अथवा उसके पहलू मानते हैं। विश्लेपणात्मक ैज्ञानिकतावादी अथवा वैज्ञानिक अद्वैतवादी (जैसे रसल) सामान्य जन से विपरीत सवेद्य विषयो के स्वतत्र रूप से आवश्यक कारण वाहर भौतिक प्रदेश में न मानकर मस्तिष्क में ही मानते हैं जव कि इनके 'पराश्रित रूप से आवश्यक कारण' वाहर भौतिक प्रदेश में मानते हैं (किन्तु रसल नही)। किन्तु रसल वाह्य पदार्थो और कारणो इत्यादि के सम्बन्ध में सन्देह शील हैं, वे सवेदो को ही सव कुछ मानते हैं। इसके विपरीत विश्लेपणवादी इन्हे भौतिक विषयों के समधिक समान अथवा उन्ही के भाग मानते हैं। इनसे असहमत होने के कारण हम पीछे दे चुके है।

जैसा कि हम पीछे कह चुके हैं, सवेद एक घटना है और यह हमारे मस्तिष्क में घटित होती है। यह घटना एक असीम कारण-श्रृखला की कडी मात्र है। इसका पूर्ण पृथक्कृत प्रत्यय असम्भव है और यह प्रत्येक घटना के लिए कहा जा सकता है, किन्तु फिर भी इसकी कुछ कल्पना की जा सकती है। मानसिक प्रत्यक्ष (Perception-recognıtıon) एक ओर काल में हमें अन्य घटनाओ—जैसे अन्वयो—से सम्वद्ध होता मिलेगा और दूसरी ओर देश में क्रमश धुधला होता हुआ। अत दोनो तरह से इसकी कल्पना केवल प्रवर्द्धमान और प्रायिक (Progressive and Approxi-

mate) ही हो सकती है, निश्चित नही। अन्य तत्वो अथवा सम्मिश्रणो को सवेद से जितना ही हम अलग करते जाएगे सवेद उतना ही अधिक धुधला होता जाएगा। अत सवेद का प्रत्यय केवल सीमा (Limit) है। जैसा कि सीमा कहने मे स्पष्ट है, घटना असीमल्प (Infinitessimel) नही होती और इसी प्रकार यह सम्पृक्त भी नही होती। एक सम्पृक्त घटना पुन घटनाओ का समवाय है।

हम कल्पना करते है कि हमारे मस्तिष्क के समान ही बाहर भी घटनाए घटित होती हैं। भूत विज्ञान में ये घटनाए केवल गाणतिक प्रकृति की है। किन्तु यह मानना सुविधा जनक है कि ये घटनाए किसी गुण से युक्त है, यद्यपि यह प्रमाणित नही किया जा सकता। जहाँ तक घटनाओ की गाणितिक प्रकृति का प्रश्न है, यह भी मानसिक प्रत्यय मात्र है, हम इसके तद्गत रूप को नही जान सकते। "सापेक्षता सिद्धान्त ने फोर्स, मोमेंटम, गुरुत्वाकर्षण, शक्ति इत्यादि सभी कल्पनाओ को मानसिक प्रत्यय सिद्ध कर दिया है। नवीन क्वाटम सिद्धान्त ने परमाणु को कण के बजाय लहर-चित्र के रूप में विश्लेषित कर दिया है जो कि लहरें भौतिक देश में न होकर हमारे प्रत्ययात्मक देश में घटित होती हैं।" (जेम्जजींज) इसी प्रकार कारणता के सम्बन्ध में हमने पिछले निबन्ध में देखा है कि वह केवल निगमनात्मक अनुमान है, अत मानसिक है। किन्तु यह निगमनात्मक अनुमान हमें अपने से स्वतन्त्र घटनाओ के होने में भी विश्वास देता है। मान लीजिए मैं एक घटना ख का प्रत्यक्ष करता हूँ, तब मै अनुमान करता हूँ कि इससे पूर्व एक घटना क घटित हो चुकी है जो कि यद्यपि मैने नही देखी, किन्तु वह किसी और ने देखी होगी, और यदि नही देखी तो देखी जा सकती थी। इसी प्रकार, जब मै एक विशेष आकृति का रगीन सस्थान देखता हूँ जिसे कि मैं मेज का एक पहलू कहता हूँ, तो मै अनुमान करता हूँ कि इसके इस काल बिन्दु क पर दूसरे भी पहलू है जो, यदि उन बिन्दुओ पर मेरे समान ही अन्य द्रष्टा भी हो तो, उनके मस्तिष्क में भी मेरे सवेद के समान ही घटित होते हैं। मै यह भी कल्पना करता हूँ कि मेज मेरे प्रत्यक्षो से अधिक स्थायी है यदि मैं इस कमरे से बाहर चला जाऊ तो भी यह अन्य वास्तव या सभाव्य द्रष्टाओ का चाक्षुष सवेद्य होगा। यदि मेरे साथ एक मूवी कैमरा भी सक्रिय है तो मै अन्य किसी मस्तिष्क के अस्तित्व में विश्वास किये बिना भी अनुमान कर सकता हूँ कि मेज के अन्य पहलू भी थे। यह बात मेरे कमरे से बाहर चले जाने के बाद लिए गये चित्रो के लिए भी कही जा सकती है।

इस तर्क की कुछ सीमाए है, प्रथमत निगमनात्मक पद्धति हमें अनिवार्य

रूप से बाह्य घटनाओ मे विश्वास नही देती । ख के घटित होने पर क के घटित हुए होने का अनुमान केवल सहज विश्वास (एनिमल फेथ) है और यह तभी होता है यदि हमने पहले भी ख' को क' से सम्बन्द्ध देखा है तो । अत ख के होने से क के हुए होने का अनुमान केवल सवेदो तक ही सीमित है, उससे बाहर जाने का कोई साधन नही । इसके अतिरिक्त, इससे मुझे स्मृति पर विश्वास करना होगा, जिसकी सत्यता स्वय सिद्ध नही है । स्मृति वह घटना है जिसके सह-सम्बन्ध (Correlations) अन्य वर्तमान घटनाओ के साथ नही देखे जा सकते और जिसके साथ यह विश्वास सलग्न है कि 'ऐसा अतीत में हुआ था।' हमारे विचार में यह विश्वास मौलिक नही है, जैसा कि बर्ट्रेंड रसल मानते प्रतीत होते हैं, यह केवल एसोसियेशज और कोरिलेशज का व्यापार है । यदि मौलिक भी हो तो ज्ञान मीमासा की पदार्थ सम्बन्धी समीक्षा की दृष्टि से इसमें कोई अन्तर नही पडता । जो यहाँ प्रासगिक है वह यह है कि स्मृतिज्ञान की सत्यता का प्रश्न एक समस्या है । सवेद जब कि हमें केवल सवेदो का ही ज्ञान देते हैं, स्मृति 'स्मृति सबधी घटना' का ही ज्ञान नही देती जो कि मुझमें अब घटित हो रही है, प्रत्युत अन्य घटनाओ-अतीत सवेदो-का ज्ञान भी देती है, जो मात्र छलना हो सकती है। अत सवेद में भ्रम-ज्ञान का प्रश्न उत्पन्न नही होता और स्मृति में होता है, जिसका उत्तर सहज नही है । स्मृति अनेक बार भ्रामक हो सकती है (केवल विश्वासो के स्तर पर ही रहते हुए यदि देखें, तो भी) और यह कब भ्रामक नही है, यह जानना असभव है । उपर्युक्त विश्लेपण की दूसरी सीमा है—जबकि मैं स्वय एक घटना समवाय हूँ तो जो मैं इस क्षण हूँ वह दूसरे क्षण नही रहूँगा, अत कैमरे से जो मैं देखूंगा न तो वह वही होगा जो कैमरे का मौलिक सवेद था और न मै वही हूँगा जिसने कि मेज का पहलू काल क पर देखा था । यदि सापेक्षता सिद्धान्त की दृष्टि से देखा जाए तो इन दोनो के काल का भी समन्वय नही हो सकता, मै यह नही कह सकता कि मैंने मेज का पहलू प[१] काल क पर जो देखा था वह कैमरे के सवेद प[१] का समकालीन था। किन्तु काल सम्बन्धी ये कठिनाइयाँ अधिकाशत यहाँ उत्पन्न नहीं होती, यदि कैमरा मेज से हजारो मील दूर नही है तो। अत मेरे सवेद की घटना इतिहास मे एक अद्वितीय घटना है और वह किसी अन्य घटना से उपमित नही की जा सकती ।

इस सुलझाव के लिए हम अभी अतीत की सत्यता का स्वीकार स्थगित कर सकते हैं और अपने आपको वर्तमान तक सीमित कर सकते हैं । अब जब देश द[१] पर एक सवेद घटित होता है जिसका गुण म[१] है और केन्द्र

क है और यह देश $द^1$ मेरा मस्तिष्क है उस समय मैं अनुमान करता हूँ कि $द^2 . \quad द^न$ पर भी घटनाएँ घटित हो रही हैं जिनका गुण $म^2 . \quad म^न$ है और केन्द्र क है। हम यहाँ इन घटनाओ से एक और गुण हटा लेते हैं—वह है वास्तविक होने का, क्योकि जब अन्य देश-बिन्दुओ पर मेरे समान ही अन्य मस्तिष्क नही है तो वहाँ कम से कम वैसे सवेद अथवा घटनाए नही हो सकती जैसी मेरे मस्तिष्क में होती हैं। अतः इन्हे हम सम्भाव्य सवेद कह सकते हैं। इन सभाव्य सवेदो को हम और भी क्षीण कर सकते हैं और कह सकते हैं कि ये सवेद केवल मस्तिष्क की ही सृष्टि हैं, देश $द^2 \ . \ . \ . द^न$ में केवल इतनी ही सम्भावना है कि जब भी इन बिन्दुओ पर मस्तिष्क होगा तो केन्द्र क के साथ सह-सम्बन्धित अन्य सवेद भी घटित होगे जिनका गुण $म^2 \ . \ . \quad म^न$ होगा। इस प्रकार प्रत्येक घटना अपने समान अन्य दैशिक और कालिक घटनाओ से सह-सम्बन्धित है। यद्यपि अपनी इस सम्भावना को हम पूरी तरह से चरितार्थ नही कर सकते किन्तु फिर भी यह विनम्र सम्भावना हम कर सकते है। ये सवेद देश और काल में इस प्रकार घटित होते हैं कि इनका पृथक्-पृथक् सकलन भी किया जा सकता है यदि एक सवेद इस प्रकार घटित होता है कि उसमे एक से अधिक केन्द्र हैं तो हम अनुमान कर सकते हैं कि देश $द^1$ पर एक साथ ही एकाधिक घटनाए घटित हो रही हैं। और इसी प्रकार दो केन्द्रो के गुणो में भी अन्तर हो सकता है। यह घटनाओ का पृथक् सकलन इस प्रकार किया जा सकता है कि यदि सवेद $स^1$ काल क पर देश $द^1$ में देखा जाता है और इसी प्रकार $स^न$ काल क पर देश $द^न$ में और यदि $स^1$ और $स^न$ में सम्बन्ध $ब^1$ है तो हम कहेगे कि $स^1$ और $स^न$ एक ही मेज के बारे में है। अन्य किसी घटना का सम्बन्ध $व^1$ इस वर्ग से नही हो सकता। यह सम्बन्ध $व^1$ अब दो प्रकार का हो सकता है। यदि $स^1 \quad . \quad स^न$ का समवाय यही मेज है तो $व^1$ का अभिप्राय होगा वर्ग सदस्यता और यदि केन्द्र क एक वास्तविक घटना समवाय है और $स^1 . \ .. \quad स^न$ इसकी अवस्थाए तो $ब^1$ का अभिप्राय होगा प्रतीति। जहा तक दूसरे प्रकार के सम्बन्ध का प्रश्न है, वह तर्क-सम्मत नही जान पडता, क्योकि यदि मेज वास्तविक भी है तो भी $स^1 \quad स^न$ का सम्बन्ध सीधे मेज से नही है क्योकि उस अवस्था में भी

मेज मेरे मस्तिष्क से अथवा $द^{1}$ . . $द^{न}$ से बहुत दूर है।

किन्तु मेज को केवल क्षणिक अस्तित्व नही कहा जा सकता। उसका कालिक प्रसार भी उतना ही आवश्यक है जितना दैशिक प्रसार। वैसे इन दोनो ही प्रसारो का आधार केवल सहज विश्वास है, किन्तु यह कम से कम है जो पदार्थत्व के लिए आवश्यक है, अन्यथा हम अपदार्थवादी कहे जाएगे।

। सवेदो का अथवा मेज का कालिक प्रसार वास्तव में उसके दैशिक प्रसार से अधिक विनिश्चित आधारो पर है। वर्तमान सवेद का अस्तित्व हमने असन्दिग्ध माना है, इसी प्रकार इसके एक दम साथ का अतीत सवेद यद्यपि उतना ही असदिग्ध नही है, और स्मृति के सम्बन्ध में दिए गए हमारे तर्क उस पर भी लागू होते हैं, किन्तु फिर भी हम उसके अस्तित्व में विश्वास करते है और यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि 'ऐसा हुआ था।' मान लीजिए, मैं अभी खाना खाकर निवृत्त हुआ हूँ, उस अवस्था में मेरा यह विश्वास कि यह घटना घटी थी, एक दम सदेह से परे ही समझा जाना चाहिए। अब यदि अतीत की एक दम समीप की घटना सत्य सिद्ध है तो सिद्धान्तत हम स्मृति की सारता में विश्वास कर सकते हैं। यह देखने पर, अब यह समझा जा सकता है कि यदि हम स्मृति की सत्यता को स्वीकार कर लें तो हम किस प्रकार मूवी कैमरे के साथ अपनी सवेदनाओं का समन्वय कर सकते हैं

जब केन्द्र क के प्रसग से काल $क^{1}$. $क^{न}$ पर देश $द^{1}$ में सवेद $स^{1}$ . . ..$स^{न}$ घटित होते हैं, और यदि हम यह स्वीकार करते हैं कि सवेद $स^{1'}$.. $म^{न'}$ काल $क^{1}$ ....$क^{न}$ पर देश $द^{2}$. $द^{न}$ पर घटित होते है तो इन सब सवेदो में सह-सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। पीछे हमने वर्ग मदस्यता के सम्बन्ध को स्वीकार किया है और इसलिए $स^{1}$. . $स^{न}$ का $स^{1'}$. $स^{न'}$ से काल $क^{1}$ $क^{न}$ पर सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। यहाँ हम यहभी, विना अन्य विवाद के, स्वीकार कर लेते है कि यह सम्बन्ध भिन्नेन्द्रिय सवेदो में भी परस्पर स्थापित किया जा सकता है। सामान्य जीवन में तो अभ्यासेन यह किया ही जाता है। उसी आधार पर उसी प्रणाली से यह सम्बन्ध स्थापन हम भी स्वीकार कर सकते हैं।

इस विश्लेपण से हम जिस परिणाम पर पहुँचते हैं वह यह है कि पदार्थ असत्य वास्तव और सभव सवेदो का सह-सम्बन्पित समवाय है। सभव सवेदो

से अभिप्राय है देश-काल विशेष, जहाँ विद्यमान होने पर मस्तिष्क मे वास्तव सवेद घटित होगे। मस्तिष्क स्वय क्या है ? पुन उत्तर होगा, सवेद अथवा सवेदो का समवाय। किस प्रकार के सवेदो का, यह हम पीछे विचार कर आए है।

किन्तु सामान्यत हम पदार्थ को इस से कुछ अधिक ठोस अस्तित्व समझते हैं। उपर्युक्त विश्लेषण लगभग बर्ट्रेंड रसल की मिस्टिसिज्म एड लॉजिक, आवर-आइडिया ऑफ दि एक्सटर्नलवर्ल्ड तथा दि एनेलेसिस ऑफ-माइड के अनुसार है। इसमें सभवत सभाव्य सवेदो की व्याख्या हमने अपनी ओर से की है और हमारे विचार में, रसल की प्रणाली की सुठिता के लिए यही व्याख्या उपयुक्त है। स्वय रसल इन सभाव्य सवेदो के सम्बन्ध में क्या समझते हैं, यह कम से कम हमारे पर प्रकाशित नही हुआ। इस प्रकार की व्याख्या का कारण असदिग्ध से आगे न जाने की सावधानी है और यह सावधानी ही इन प्रणाली की वैज्ञानिकता है। अन्तत पदार्थ की सामान्य जन की कल्पना का आधार सवेद ही है। किन्त पदार्थ को सवेद से स्वतत्र अस्तित्व स्वीकार करने का आधार यह भी है कि सामान्यजन उसे इन सवेदो का कारण समझते है। स्वप्न की सवेद्य घटनाओ और जागृति की ऐसी घटनाओ के सह सम्बन्धो में अन्तर को हमने देखा था। यह अन्तर बहुत गभीर है और हमें जागृति के सवेदो के बाह्य कारण होने में विश्वास देता है। जब जागृति में मैं मेज का चाक्षुष प्रत्यक्ष करता हूँ तव यह घटना-क्रम तब तक जारी रहता है जब तक मेरी आँखे उसी केन्द्र पर रहती है। यह घटना-क्रम असख्य घटनाओ का समवाय है। सवेद की एक घटना को हम सवेद्य वर्तमान अथवा प्रातीत्य वर्तमान (speciouspresent) कहते हैं।[१] इसी प्रकार, यदि मैं उसी केन्द्र पर दृष्टि कर एक वृत्त में चलू तो भी सवेद की घटनाएँ घटित होगी जिनमें एक अनुक्रम और प्रायिक समता का सम्बन्ध होगा। ऐसा स्वप्न में नही होता और जागृति के ये सह-

---

[१] वर्तमान शब्द से असीमल्प काल बिन्दु का बोध होता है क्योकि अत्यन्तल्प काल बिन्दु का भी कुछ परिमाण होगा और उसे तब तक भूत और भविष्यत् में विभाजित किया जा सकेगा जब तक कि उसका परिमाण समाप्त नही हो जाता। किन्तु ऐसा वर्तमान केवल अभ्युपगमित है, सवेद्य नही हो सकता। सवेद्य होने के लिए काल का कुछ परिमाण होना चाहिए, कितना, यह ह्वाइटहेडने अत्यन्त मौलिकता से अपनी पुस्तको 'दि कासेप्ट ऑफ नेचर' तथा 'प्रिंसीपल्ज्ञ आफ नेचुरल नॉलेज' में अत्यन्त योग्यता से प्रतिपादित किया है।

सम्बन्ध ऐसे है जिनसे सहज में ही यह विश्वास होता है कि वह केन्द्र, जहाँ पहुँचने पर स्पर्श सम्बन्धी घटनाए भी घटित होगी, मेरे सवेदो से एक स्वतत्र अस्तित्व है। यह विश्वास तब और भी दृढ हो जाता है जब मैं उस केन्द्र से धीरे-धीरे दृष्टि फेरता हूँ और मेरे मेज सम्बन्धी सवेद क्रमश परिवर्तित होकर पुन धुँधले होकर तिरोहित हो जाते हैं और पुन. उसी क्रम से लौटने पर उसी क्रम से सवेद भी लौटते हैं। इसी प्रकार, यदि मेरे और मेज के बीच कोई विषम सतह का शीशा है तो मेरे आँखें हिलाने पर मेज में दो प्रकार की गति दिखाई देगी जिनमें एक का सम्बन्ध मेरी आखो की सापेक्ष स्थिति के परिवर्तन से है और दूसरी का सम्बन्ध उससे नही है। तब मैं शीशा बीच से हटा देता हूँ और उस अवस्था में एक ही प्रकार की गति होती है। उस अवस्था में दूसरी प्रकार के सवेदो में विचित्रता का कारण मैं शीशे को समझता हूँ और यह मानने में मेरा विश्वास दृढ़ होता है कि शीशा कुछ स्वतत्र अस्तित्व है—मेरी आँखो का भ्रम नही। इसी प्रकार कुछ अन्य भी सवेद हैं जिन्हे मैं अन्य मनुष्यो के, अपने पैर-हाथ के सवेद कहता हूँ। इन सवेदो में हाथ-पैर सम्बन्धी मेरे चाक्षुष सवेदो के वाह्य केन्द्र (हाथ-पैर) मेरे एक अन्य प्रकार के सवेदनो के भी विषय हैं जिन्हे मैं अन्त. सवेदन (Somatic Senses) कहता हू। ये सवेद एक दम विलक्षण हैं क्योकि ये देश में अन्य बिन्दुओ से सह-सम्बन्धित नही किये जा सकते और न ये अन्य किसी सवेद के साथ जुडे होते हैं। इसी प्रकार, इन चाक्षुप सवेदो को मैं अपनी 'इच्छानुसार' हिला डुला सकता हूँ और इस सब का मैं एक अन्त. सवेद प्राप्त कर सकता हूँ। इस प्रकार इन चाक्षुप सवेदो से मैं अन्य सवेदो के बजाय अधिक 'परिचित' हो सकता हूँ। किन्तु अन्त: सवेद उतने ही अधिक मेरे मस्तिष्क में घटित होते हैं जितने चाक्षुप सवेद। अब यद्यपि सवेद के होने के लिए शरीर का होना कोई अनिवार्यता नही है किन्तु फिर भी अपने शरीर के अस्तित्व में विश्वास मुझमें मौलिक है। जब मेरा हाथ हिलता है उस समय इसका चाक्षुप सवेद घटित होता है और साथ ही अन्त. सवेद के द्वारा भी मैं इस हिलने को जानता हूँ, हाथ कट जाने पर मुझे तीव्र पीडा होती है और साथ ही, हाथ का उपयोग में मैं जिन कार्यों में पहले कर सकता था उनमें अब नही कर सकता। जो भी हो, अपने शरीर के होने में मेरा विश्वास मौलिक है यद्यपि इसके सम्बन्ध मैं उतना ही सन्देहशील होने का कारण रखता हूँ जितना मेज के पृथक् अस्तित्व होने-के सम्बन्ध में। यह मेरा ज्ञान निश्चा-त्मकताकी द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत हो सकता है। रसल या अन्य अधिकाश दार्शनिक शरीर के अस्तित्व को बिना किसी तर्क के ही स्वीकार कर लेते हैं

किन्तु वास्तविकता यह है कि शरीर का अस्तित्व एक दम असदिग्ध नही है, क्योकि जिस प्रकार स्पर्श सम्बन्धी घटनाए केवल मेरे मस्तिष्क में घटित होने वाले सवेद हैं उतनी ही अधिक हाथ कटने से उत्पन्न पीडा मेरे मस्तिष्क मे घटित होने वाले सवेद है। स्पर्श सवेद तथाकथित अन्तर्वाहिनी और वहिर्वाहिनी धमनियो में तथाकथत विद्युल्लहर के रूप में व्यापारित होते हैं, किन्तु वे सवेद नही हैं, उनका अस्तित्व मात्र अभ्युपगमित है। इसी से हमने शरीर के ज्ञान को द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत रखा है। किन्तु प्रश्न किया जा सकता है कि यदि सवेद . क का सवेद है और क अनिवार्य रूप से कोई सवेद से स्वतत्र तत्व न हो कर केवल सवेद का निजीगुण मात्र है, उस अवस्था में विश्वास का आधार क्या है ? अथवा क्या शरीर सम्बन्धी सवेद क सवेद नही हैं ? हमारे विचार में यह तर्क केवल तर्क नही प्रत्युत् अत्यन्त सगत तर्क है और एक दम उचित है। किन्तु फिर भी रसल-ब्रोंड इत्यादि ने इसे प्रथम श्रेणी के विश्वास के अन्तर्गत रखा है। हमारे इसे द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत रखने का कारण यह है कि हम वाह्य घटनाओ का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। किस प्रकार, यह हम आगे देखेंगे। इसे अन्य सवेदो से प्राथमिकता देने का कारण स्पष्ट है–अन्त सवेद (Somatic Senses) केवल शरीर कही जाने वालो घटनाओ के साथ ही सम्बद्ध हैं। प्रश्न किया जा सकता ह कि जव कि सवेदो का अस्तित्व अपने से बाहर किसी अस्तित्व पर अनिवार्य रूप से निर्भर नही है तो क्यो अन्य घटनाओ के अस्तित्व में विश्वास किया जाए ? इस का उत्तर यह है कि हमारे विश्लेषण को निपेधात्मक न हो कर विनिश्चयात्मक होना चाहिए। विश्लेशण की प्र णाली प्रदत्त (Given) सत्वो का परीक्षण होनी चाहिए। मान लीजिए, मैं शरीर के अस्तित्व अथवा सत्व का विचार स्थगित कर देता हूँ, अथवा इसका निषेध ही कर देता हूँ, किन्तु जो मैं इस समय लिख रहा हूँ उसका, अर्थात् इस व्यापार का, इसके साधन का और साध्य का कैसे निषेध कर सकता हूं ? यदि मैं पत्र लिखता हूँ तो कम से कम पत्र लिखने का और उस का 'सगत' उत्तर पाने का कैसे निषेध कर सकता हूं ? ये सव तथ्य हैं, दार्शनिक होने के नाते मैं केवल इन सब के गुणो और मूल्यो का विश्लेपण करता हुँ।

अस्तु, अपने शरीर के अस्तित्व के पश्चात् मै अपने ही समान अन्य शरीरो और मनो में विश्वास कर सकता हूं। इस विश्वास का आधार अधिकांशत उपमा है। यद्यपि इसमें हमें वडे परोक्ष अनुमानो से काम लेना पडता है किन्तु पूर्ण एकात्म वादी हो कर हमारा जीवन असभव है। अन्त सवेदनाओ

के द्वारा मैं अनुभव करता हूँ कि जब मैं बोलता हूँ उस समय ओठ कुछ
विशेष प्रकार से हिलते है, जब मेरा कुछ अमुक प्रकार का भाव होता है
तब मैं अमुक शब्दो का प्रयोग करता हूँ। अत जब मैं कुछ उसी प्रकार अपने
चाक्षुप सवेदो में ओठ हिलते देखता हूँ और कुछ उसी प्रकार के श्रौत्र-सवेद
अनुभव करता हूँ उस समय मैं कुछ वैसे ही मन के होने का अनुमान करता
हूँ जैसा मेरा मन है। यह परिणाम बहुत परोक्ष है किन्तु व्यावहारिक है,
इस के विपरीतस्थिति तर्क शस्त्र में स्वीकार की जा सकती है किन्तु जीवन
मे नही। किन्तु एक बार अन्य मनुष्यो अथवा मनो का स्वतत्र अस्तित्व—
हमारे सवेदो से अतिरिक्त अस्तित्व—स्वीकार कर लेने पर हम मेज,
वस्त्र और घडी के स्वतत्र अस्तित्व स्वीकार करने को भी बाध्य है।
क्योकि चाक्षुप सवेद अथवा श्रौत्र सवेद में एक मेज और मनुष्य में कोई
अन्तर नही है, इस से भी, अन्य मनो का अनुमान हमें तार्किक आधार
पर अधिक आनुमानिक अथवा परोक्ष प्रतीत होता है।

अपने हाथ अथवा पैर या अन्य अगो को भी हम सवेद्य घटनाओ
तथा अन्त सवेदो का समवाय कह सकते हैं जो कि घटनाएँ हमारे मस्तिष्क
में घटित होती हैं। किन्तु मस्तिष्क क्या है? क्या हम इसके अस्तित्व के
सम्बन्ध में अन्त सवेदो के समवाय से अधिक जान सकते है? स्पष्टत
नही। तो स्वभावत मस्तिष्क भी मात्र अन्त सवेदनाओ का समवाय है और
सभाव्य ऐंद्रिय सवेदो का भी, इस से अधिक वह कुछ नही हो सकता। किन्तु
यह मस्तिष्क जब कि मेरे लिए मात्र अन्त सवेदनाओ का समवाय है तो अन्य
मस्तिष्को के लिए मात्र ऐंद्रिय सवेदनाओ का। इस लिए जिस समय यह
मस्तिष्क ऐंद्रिय सवेद्य अस्तित्व से रहित है उस समय भी उसका अस्तित्व
मेरे अन्त. सवेदो के रूप में विद्यमान रहता है। किन्तु अन्य किसी मस्तिष्क
के लिए मैं यही बात नही कह सकता। वास्तव में, दूसरो के मस्तिष्क है ही,
यह पुन अत्यन्त परोक्ष अनुमान है, क्योकि मैं केवल दूसरो के ऐंद्रिय सवेदो
को अपने मस्तिष्क के सम्बन्ध में सुन कर और दूसरो के मस्तिष्क को अपने
ऐंद्रिय सवेदो के साथ उन का मिलान कर अपने मस्तिष्क के चाक्षुप रूप का
अनुमान करता हूँ और दूसरो के अन्त सवेदो का। इस प्रकार मैं विश्व
में ऐसी घटनाओ के अस्तित्व की कल्पना पर पहुँचता हूँ जो मेरे निज के
अस्तित्व से स्वतत्र हैं।

जैसाकि स्पष्ट है, हम एक चक्कर से बाहर नही निकल सकते, हम यह
प्रमाणित नही कर सकते कि यह सब मात्र मेरे ही सवेद क्यो नही हैं।

और ये मेरे सवेद विशुद्ध सवेद ही क्यो नही रह सकते। किन्तु इस स्थिति को पचा सकना मै असभव पाता हूँ। इसके पक्षमें एक तर्क यह भी है कि मेरे सवेदो में जो एक सगति है वह इन सवेदो से 'बाहर' किन्ही घटनाओ के कारण है जब कि मेरे स्वप्न सम्बन्धी सवेदो में प्रत्यक्ष विसगति इस बात का विश्वास मुझे देती है कि ये सवेद 'सगत' सवेदो से भिन्न कारणता रखते है। इस सम्बन्ध में हम पीछे देख आए हैं। मुझे यह पचा सकना कुछ असभव सा जान पडता है कि मेरे सवेदो के अतिरिक्त कुछ नही है। अन्य सवेदो का अस्तित्व तो तर्क सम्मत भी जान पडता है। मानलीजिए, यह विश्व केवल सवेदो का सकलन मात्र ही है। 'मै' भी सवेदो का सकलन हूँ। अन्य सवेदो के अस्तित्व में मेरे सदेह का आधार यह है कि वे परोक्ष हैं, मेरे सवेद प्रत्यक्ष है। किन्तु यह स्थिति भी अतर्क सम्मत हैं क्योकि वे सवेद जो सकलित रूप में 'मेरा' निर्माण करते है सम्बन्ध स से शृखलित है, इसी प्रकार ऐसी अन्य भी असख्य शृखलाए हो सकती हैं जो $स_२ . . स_३$ $स_न$ से शृखलित हो, यह केवल अनुमान की बात नही है, प्रत्युत् विनिश्चयात्मक वितर्क है। इन शृखलाओ में भी एक सम्बन्ध ब की कल्पना सगत है, जिसे कि हम सह-अस्तित्व का सम्बन्ध कह सकते हैं। सम्बन्ध यद्यपि वास्तविक अस्तित्व होता है किन्तु यह परिवर्तमान भी है—ब सम्बन्ध कभी भी (स) सम्बन्ध भी हो सकता है। अत: हम 'अपने' सवेदो से स्वतत्र संवेदो के अस्तित्व में सदेह शील होने का कोई कारण नही देखते। हमारे कारणता सिद्धान्त के अनुसार, इस सम्बन्ध विपर्यय की व्याख्या की जा सकती है और इस प्रकार सवेदन की कारणात्मक व्याख्या दी जा सकती है। अब मानलीजिए, मेरे चाक्षुष सवेदन में 'दो तारे' दीख पड रहे हैं। इस सवेदन का भौतिक देश में वहा स्थान है जहाँ मेरे मस्तिष्क सम्बन्धी अन्त सवेदो का, किन्तु मनोवैज्ञानिक देश में ये वहाँ हैं जहा मै चलकर कुछ देर में पहुँच सकता हूँ। इस स्थिति में इन दो देश-कालो के समीकरण में कठिनाई उत्पन्न होती है। अब यदि ये 'दो तारे' मनोवैज्ञानिक देश के समान ही देश में दो भिन्न स्थितिया रखते है तो इन का समन्वय मेरे सवेद के देश से नही किया जा सकता। इसी प्रकार काल के सम्बन्ध में भी यह समस्या रहती है।

किन्तु इस कठिनाई का समाधान इस प्रकार हो सकता है कि सवेदो को करण-शृखला स२ . $स^न$ जिनका स१ शृखला से सम्बन्ध ब है जब इससे $(स)_१$ सम्बन्ध में एक साथ आती है उस समय मै दो तारे देखता हूँ।

यह दो तारे सवेंद-शृखला स१ में एक ही सवेद है और इन का एक ही देश और काल है। किन्तु इस समस्या का समाधान विश्लेपणात्मक वैज्ञानिकता-वादी प्रणाली से सभवत. नही हो सकता जिसमें कि "वह मेज है" इस वाक्य का विश्लेषण सवेद की क्रिया, सवेद विषय (Sensa) तथा स्वलक्षण सत्ता (Ontological Existence) में किया जाता है। यहाँ 'दो तारे' इस सवेद में सवेदन की क्रिया जब कि एक है, सवेद विपय दो हैं और इसी प्रकार स्वतत्र सत्तात्मक अस्तित्व भी, जिससे सवेद-विषय रहस्यमय ढग से वॅधे हैं, दो हैं। किन्तु जैसा कि हमने पीछे देखा है, वह अन्य दृष्टियो से भी विचित्र और असभाव्य है।

इन सवेदो को हम घटनाएँ कहते हैं, और इनका देश और काल में अत्यन्त लघु विस्तार है। हमने अब अपने सवेदो से बाहर भी घटनाओ का अस्तित्व स्वीकार किया है, जिनके समूह को हम मेज, मस्तिष्क, अथवा हाथ कहते हैं। किन्तु क्या हम इन घटनाओ को 'अपने सवेदो' के समान ही सवेद मानने का कोई निश्चित कारण रखते हैं? सभवत नही, किन्तु इस निपेध से अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो उठती हैं।

भूत विज्ञान, जो कि पदार्थ का प्रयोगात्मक दर्शन है, हमे बाह्य घटनाओ के सम्बन्ध में गणितात्मक तथा प्रयोगात्मक शब्दावली में कुछ बताता है। इस विज्ञान के अनुसार भौतिक घटनाओ की प्रकृति गणितात्मक है। इस अवधारणा के तीन लाभ हैं—प्रथमत इससे हमारे प्रत्यक्षो का, जो कि मूलत विपयी निष्ठ है, एक 'सर्व समन्वयात्मक' रूप निर्धारित किया जा सकता है, और दूसरे, तथा कथित विपय-निष्ठ अथवा 'स्वलक्षण' घटनाओ की प्रयोग सम्मतता का विघात नही होता। तीसरे, इससे सवेदो के वैविध्य की एक पूर्ण व्याख्या दी जा सकती है। किन्तु जैसा कि विज्ञान की इस स्थिति में स्वीकार कर लिया गया है, गणितात्मक प्रकृति (गणितात्मक विश्व) वास्तव में हमारे प्रत्ययो का ही प्रतिविम्ब है। और जो आधार भूत और स्वतत्र अस्तित्व है वह अविश्लेष्य, अप्रायोगिक. और हमारी अवधारणाओ की सीमा से परे है। जैसा कि इडिगटन कहते हैं—"स्ट्रक्चरल यूनिट (Structural unit) इलेक्ट्रान या प्रोटन है जो कि मौलिक अवस्था में अवस्थित है, न कि जो कि मौलिक अवस्थाओ के समवाय में निरूपित होता है। जव एक कण अन्य कणो से प्रकम्पित किया जाता है, उस समय उसकी मौलिक अवस्थाएँ नहीं प्रकम्पित होती, इसका ढाचा वही रहता है जो कि उस समय होता है जव कि वह अपने परिवेश से पूर्णतः पृथक्कृत होता है।

प्रकम्पन केवल विभिन्न मौलिक अवस्थाओ की सम्भावना (Probability) के वितरण में होता है। ये सम्भावना लहरें और कुछ नही हमारे सवेद ही हैं और आधार भूत कण (केंद्र) केवल अभ्युपगम है जो कि सम्भावना लहरो के समन्वय को सहज बना देता है। अब यदि इन कणो को स्वतत्र अस्तित्व माना जाए तो इसमें अनेक कठिनाइयां हैं, क्योकि हम इससे सम्बन्धित वाक्यो को कोई अर्थ नही दे सकते।" "यदि हम कहे कि विश्व सवेद्य और असवेद्य उभयविध है तो असवेद्य वह है जिसे हम कभी नहीं जान सकते। अत उसके अस्तित्व के सम्बन्ध में हमारे पास कोई प्रमाण नही हो सकता, और जब भी कभी हम उसे जान सकेगे, वह हमारे सवेदनो का भाग होगा। अतः जो विश्व को उभयविध विभाजित करने का प्रयास करते हैं वे असगत हैं क्योकि हम वहां केवल चैतन्य गुणो के आधार पर ही यह विभाजन करते है। "प्रायोगिक और आनुभविक आधार पर हम सवेदो से स्वतत्र विश्व की कल्पना नही कर सकते। भूत विज्ञान में बहुत सी ऐसी अवधारणाए और 'तत्व' हैं जो सवेदो के विषय नही हैं किन्तु उनकी भी सवेदो के आधार पर ही व्याख्या की जाती है—अर्थात् वे सभाव्य सवेद हैं। सभाव्य सवेदो की यह कल्पना सार्वभौम मन की कल्पना को प्रेरित करती है, जिसके आधार पर कि हमारे सवेदो से स्वतत्र 'वस्तुओ' की कल्पना को सगति दी जा सके। 'मैं देखूं या न देखूं, मेज वहां है', यह पदार्थ की कल्पना के लिए आधार भूत महत्व का है, किन्तु असवेद्य अस्तित्व की बात को कोई सगति नही दी जा सकती। अत मेज को हम सवेदो का समवाय भी कह सकते हैं।" वर्कले समझता था कि सवेद के होने के लिए किसी अधिकरण (मन) की अनिवार्य आवश्यकता है, अत उसने एक सार्वभौम मन की कल्पना की जो हमारे मनो को सवेद भेजता है। इडिग्टन ने भी इस अभ्युपगय (Hypothesis) को तार्किक रूप से उपयुक्त माना है। किन्तु हमारे विचार में, यह तार्किक रूप से ठोस होते हुए भी असभाव्य (Unplausible) है। प्रथमत, सार्वभौम मन की कल्पना भी आनुभविक और प्रायोगिक (Emperical) आधार नही रखती और न रख सकती है, क्योकि वह अनिवार्य रूप के असवेद्य ही रहेगी। तार्किक आधार पर भी इस पर आपत्ति की जा सकती है वर्कले हमारे सवेदो को सार्वभौम मन में कल्पित और उसके द्वारा हमारे मनो में प्रेरित अथवा प्रेषित मानता है। किन्तु यदि हमारे सवेदो के होने के लिए उनका किसी अन्य मन में होना आवश्यक है तो वह मन निश्चय ही हमारे मन से भिन्न है, अन्यथा उस मन में सवेदो के होने के लिए भी उनका किसी

अन्य मन में होना आवश्यक है। किन्तु सभवत बर्कले का अभिप्राय अनिवार्य रूप से यह नही है, उसका अभिप्राय सभवत इतना ही है कि सवेदो के कारण और गुण सभी कुछ मानसिक है। सार्व भौम मन का अभिप्राय हो सकता है—मनो का समवाय। किन्तु स्पष्टत. सार्वभौम का इतना मात्र अर्थ भी नही है। उसके अनुसार 'मेज वहाँ है, मेरे सवेदो से स्वतत्र, किन्तु वह पुन सवेद ही है, जो कि सार्वभौम मन में है। 'इस प्रकार सार्व भौम मन सभाव्य सवेदोका समवाय ही है जिसे यहाँ एक ठोस और वास्तविक अस्तित्व प्राप्त है और इस प्रकार कोई सवेद सभाव्य न रह कर सभी वास्तव है।

सार्व भौम मन की कल्पना का कारण अभ्युपगमिक वस्तुओ की हमारे सवेदो से स्वतत्र सत्ता का प्रतिपादन करना है। वस्तुओ की एक विशेपता उनकी हमारे सवेदो से स्वतत्रता और सर्व सामान्यता है। मेज को जब मैं नही भी देखता तब भी वह रहता है (स्वतन्त्रता), और जिस मेज को मैं देखता हूँ अन्य भी देखते हैं अथवा देख सकते हैं (सर्वसामान्यता)। यह मेज के लिए हमें कम से कम स्वीकार करना है, चाहे कोई भी व्याख्या हम इसकी क्यो न करें। इसके विना मेज का कुछ अभिप्राय नही है।

इस स्थिति की तर्क सम्मत व्याख्या इस प्रकार भी हो सकती है कि हम मेज-कुर्सी इत्यादि को घटनाओ का समवाय मानें। सवेद, जैसा कि हमने पीछे देखा है, एक घटना है और इसका गुण वह है जो वह है, इस प्रसग में चैतन्य अथवा भावन इत्यादि को कोई अर्थ नही दिया जा सकता। अतः सवेद भी घटनाएँ हैं और इनमें इनके सह-सबन्धो के अतिरिक्त कोई विशेपता नही है, जो इन्हें भौतिक घटनाओ से पृथक् कर सके। भौतिक घटनाएँ एकत्र अथवा अनेकत्र विद्यमान हैं और कारण-शृंखलाओ के रूप में व्यापारित होती हैं। जब एक कारण शृंखला (मेज) मेरी आँख में कारण शृखलाओं को व्यापारित करती हैं तो ठीक परिस्थितियो में एक सवेद घटित होता है। मेरा यह मेज का सवेद ऐसी घटना है जो प्रदत्त (Given data) है, इससे पहले की घटना शृखला केवल अनुमान है। यह कारण शृंखला वास्तव में ही मेरे सवेदो के समान है या नही यह निश्चयात्मक रूप से नही कहा जा सकता। किन्तु यह अनुमान सुविधा जनक है कि अन्य घटनाए मेरे सवेदो से मौलिक रूप से भिन्न नहीं होगी। 'मौलिक रूप से भिन्न नहीं' कहने का अभिप्राय यह है कि यदि मेरे विशेप संवेद का रूप क है तो आवश्यक नही कि शेष घटना-शृखला का रूप भी क ही हो, सभव है यह क हो, किन्तु यह क से मौलिक रूप में कभी भिन्न नही हो सकता।

इस प्रकार पदार्थ घटनाओ के समवाय रूप में विश्लेष्य है और इसी प्रकार मन भी। क्वाटम सिद्धान्त के समान ही घटनाओ का विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है—प्रत्यक्ष (वास्तव या सम्भाव्य) तथा स्वलक्षण, जैसे मेज (क्वाटम सिद्धान्त में इलेक्ट्रन-प्रोटन), जो कि सवेद की सीमा से बाहर है और इसीलिए जिसका अस्तित्व केवल कल्पना है। उसकी आवश्यकता केवल अनेक सवेदो के सह-सम्बन्ध के लिए है।

इस प्रकार सवेद्य और स्वलक्षण घटनाओ के सम्बन्ध को हम कारण सम्बन्ध कह सकते हैं। जैसा कि हमारे पिछले निबन्ध से स्पष्ट है, कारण सम्बन्धो का अभिप्राय उत्पादक और उत्पादित का सम्बन्ध नही है प्रत्युत् घटनाओ के दृष्ट और द्रष्टव्य अथवा उनके आधार पर अनुमानित सम्बन्धो में विश्वास से है। यह विश्वास पूर्णत शरीर वैज्ञानिक स्तर का है, जिसे कि हम पीछे एनिमल फेथ कहते आए हैं। किन्तु पदार्थ और मन की हमारी उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार शरीर स्वय घटनाओ का समवाय है, अतः विश्वास की व्याख्या भी इन घटनाओं के प्रसग से ही होनी चाहिए। इस अवस्था में हम कहेंगे कि दो सवेदो के निश्चित अनुक्रम में घटित होने पर एक कारण शृखला व्यापारित होती है जो कि उस कारण शृखला का एक भाग बन जाती है जिसे हम समवेत रूप से शरीर कहते हैं। पुन जब भी कभी नवीन घटना, जिसे हम पूर्व सवेद युगल की प्रथम घटना के समान कहते हैं, घटित होती हैं तो उससे अनुगमित कारण शृखला भी उस कारण शृंखला के 'समान ही' होती है जो पूर्व सवेद युगल के घटित होने पर अनुगमित हुई थी। मान लीजिए पूर्व सवेद युगल अ+आ है और उससे अनुगमित कारण शृखलाएँ, $र^{न}$ जो कि काल $अ^{न}$ पर घटित होती हैं। अब पुन अ' के $क^{न'}$ पर घटित होने पर भी यदि $र^{न'}$ कारण शृखला अनुधावित होती है तो कहा जाएगा अ+आ में कारण सम्बन्ध है। इस व्याख्या से सवेदो के बाह्य घटनाओ से कारित होने पर वह आपत्ति नही हो सकती जो ब्रॉड ने की है, क्योकि कारित होने का अभिप्राय उत्पादित होना नही है।

कारण सम्बन्धो की यह व्याख्या मन और पदार्थ के भेद को समाप्त कर देती है। इसे ज्ञान मीमासात्मक (Epistemological) व्याख्या भी कहा जा सकता है, किन्तु जैसा कि हमने देखा है, इसके अतिरिक्त और कोई व्याख्या तर्क सम्मत नही हो सकती। वस्तुओ की स्वलक्षण (Ontological) व्याख्या एकदम स्वतत्र रूप से नही हो सकती, यह केवल आधुनिक तर्कशास्त्र र मनोविज्ञान ने ही प्रमाणित नही कर दिया है प्रत्युत् भूत वैज्ञानिक ने भी

पाया है कि अब तक भूत विज्ञान के विषयों को स्वलक्षण मान कर वह भ्रान्त धारण में रहा है। इस विज्ञान ने इस नवीन दर्शन को स्वीकार कर अपनी प्रगति की सम्भावनाओं को शतधा प्रवर्द्धित कर लिया है। इसका अर्थ यह नही कि आज एक निश्चित और सर्वमान्य दर्शन का विकास कर लिया गया है, किन्तु यह ठीक है कि एक निश्चित और बहुमान्य प्रणाली का विकास कर लिया गया है। इस प्रणाली के आधार पर इस दर्शन की अनेक सभव व्याख्याएं की गई है, जिनमें से कुछक की चर्चा इस निबन्ध में की गई है। इसमें से कोई भी व्याख्या अभी अन्य से अधिक सभाव्य नही हो सकी है, किन्तु इस प्रणाली का एक मानदण्ड यह है कि जो व्याख्या स वेद और कथित पदार्थ में सर्वाधिक तर्क सम्मत स-सम्बन्ध प्रस्तुत कर सके वह सर्वाधिक मान्य है।

REFERENCES

1 *Bergson H* — Matter and Memory
2. *Broad C D.* — Mind and Its Place in Nature.
3 *Broad C D* — Scientific Thought
4 *Eddington A S* — Philosophy of Physical Science
5 *James Jeans* — Physics and Philosophy
6. *Russell B* — Our knowledge of the Externa World.
7. — Mysticism and Logic.
8 — The Analysis of Mind
9 — The Analysis of Matter
10 *Santayana* — Scepticism and Animal Faith
11 *Santayana* — Essays in Critical Realism

अनुक्रमणिका

शुद्धिपत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	पृष्ठ संख्या
समान्य	सामान्य	ऊपर से ६	१६३
एसी	ऐसी	नीचे से १२	१६४
अघिक	अधिक	नीचे से २	"
ह	हैं	ऊपर से ४	१६५
चाहत	चाहते	ऊपर से १	१६६
ह	हैं	ऊपर से १३	"
गु जाइस	गु जाइश	ऊपर से १४	१६८
दृष्य	दृश्य	नीचे से ६	"
आकस्मि	आकस्मिक	ऊपर से ८	२०५
चीड़ियाँ	चिडियाँ	ऊपर से ६	"
इत्यदि	इत्यादि	"	"
अन्तरानुभूति	अन्तरानुभूति	नीचे से १५	२०९
स्थितियो	स्थितिओ	ऊपर से १३	२१२
पौ	पौधे	अंतिम	"
ो	तो	प्रथम	२१३
वासाओ	वासनाओ	ऊपर से १२	२१६
लाभग	लगभग	ऊपर से १०	२१७
देखेंगें	देखेंगे;	ऊपर से ७	२२२
निहित हैं;	निहित ह,	नीचे से १३	२२२
Parallalism	Parallelism	ब्रैकेट में	२२४
सुई	सूई	नीचे से १२	२२४
−१+घ	−२+घ	नीचे से २	२२५
अघार-प्रदेश	आधार-प्रदेश	अंतिम	२२७
ऊपर	—	नीचे से १३	२२८
सापक्ष	सापेक्ष	नीचे से ४	२२९
`	हैं	ऊपर से ६	२३०
आघान	आधीन	ऊपर से ८	"

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	
अतीतानुभूति	अतीततानुभूति	ऊपर से १०	
अनाभ्यास	अनाभ्यास	ऊर से ३	२
सहासन	सिहासन	नीचे से ८	२
र	वार	नीचे से ६	,,
वरणात्मक	विवरणात्मक	नीचे से ५	,,
काय	कार्य	ऊपर से १३	२४
ठहरान	ठहराने	ऊपर से ६	२४
रहा है किन्तु	रहा है, किन्तु	,, ,, ५	२४०
घन	घ$_{न}$	नीचे से १६	२५०
—कन	क$_{न}$	नीचे से १५	२५१
व्यवहारिक रूप से,	व्यावहारिक रूप से	अन्तिम	२५१
शक्ति	दवाव	ऊपर से १६	२५१
मिलाना अनुमित	मिलाना—अनुमित	ऊपर से ४	२५२
Knoweedge	Knowledge	ऊपर से ७	२५४
बदलने वाला	अनिश्चित	नीचे से १५ और १०	२५५
घ^{२}	घ$_{२}$ (सव निम्नसकेतितकरें	५,८,९	२५६
विर्भाव	अविर्भाव	नीचे से १२	२५६
Psychologieal	Psychological	नीचे से ४	२५७
अत्यधिका	अत्यधिक	नीचे से ३	२६०
करते हैं।	करते हैं,	ऊपर से १३	२६४
पर्ण	पूर्ण	नीचे से २	२६५
अभ्युपगम(स्त्रीलिंग)	अभ्युपगम(पुल्लिंग)	——	२६५
लॉ ऑफप्रॉविविलिटी	लॉ ऑफ प्रॉवेविलिटी	नीचे से १४	२६६
तीव्रिता से,	तीव्रता से	नीचे से १२	२६६
अनर्धारितावाद	अनिर्धारिततावाद	नीचे से ११	२६६
Indeterminism	आदि उद्धरण	पृ० २६६ के नीचे	२६६
प्राणियो पर	प्राणियो पर,	नीचे से ४	
कहते हैं काल	कहते हैं "काल	. ऊपर से ४	२६८
नियमो को जो,	नियमो को, जो	नीचे के ११	२६९
प्राणी-मनुष्य	प्राणी—मनुष्य	ऊपर से ११	२६९
नवन्धो	निवन्धो	ऊपर से २	२७०
			२७३

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	पृष्ठ
लें	ले	ऊपर से १३	२७४
Initial	Inherent	ऊपर से ३	२७५
घटना-स्मृति	घटना-स्मृति	ऊपर से ९	२७६
प्वाईट प्रतिपादन को	प्वाइट को	नीचे से ६	२७६
इस प्रकार की	इस प्रकार कि	नीचे से १४	२७७
चिन्ह	चिह्न	नीचे से ९-६-५	२७७
रूप से	रूप से और	प्रथम पक्ति	२८३
होगा,	होगा	नीचे से ३	२८३
Associative	Of associations	ऊपर से ४	२८४
डेकार्ड	डेकार्ट	ऊपर से १६	२८८
सुविधापेक्ष	सुविधापेक्षी	नीचे से ६	२८९
सार्व ौम	सार्वभौम	नीचे से १४	२९७
टम्ज	टर्म्ज	ऊपर से ११	३०१
सिश्लेषणात्मक	विश्लेषणात्मक	ऊपर से १३	३०३
निश्चात्मक	निश्चयात्मक	नीचे से ३	३०९